IN MEMORY

OF

G. A. NATESAN

(FOUNDER, G. A. NATESAN & CO & INDIAN REVIEW)



BORN 24-8-1873] [DIED 10-1-1949



जोधपुर-नरेशों की वंशावली

मारवाड़ का इतिहास

प्रथम भाग

लेखक

पण्डित विश्वेश्वरनाथ रेउ

साहित्याचार्य

सुपरिंटैंडैण्ट–आर्कियॉलॉजीकल डिपार्टमैण्ट

और

सुमेर पब्लिक लाइब्रेरी

जोधपुर.

[कॉरस्पॉण्डिङ्ग मैम्बर–इण्डियन हिस्टोरिकल रेकर्डस कमीशन]



जोधपुर,

आर्कियॉलॉजीकल डिपार्टमैण्ट.

१९३८.

जोधपुर गवर्नमैण्ट प्रेस मे मुद्रित

मूल्य रु० ५) सजिल्द
४।।) बिना जिल्द

प्राक्-कथन ।

मारवाड़-राज्य राजपूताने के पश्चिमी भाग में स्थित है और इसका क्षेत्रफल राजपूताने की रियासतों से ही नहीं, किन्तु हैदराबाद और काश्मीर को छोड़कर भारत की अन्य सब ही रियासतों से बड़ा है। राव सीहाजी के कन्नौज से आने के पूर्व यहां पर अनेक राज-वंशों का अधिकार रह चुका था और विक्रम की नवीं शताब्दी में यहां के प्रतिहार-नरेश नागभट (द्वितीय) ने कन्नौज विजय कर वहां पर अपना राज्य स्थापित किया था। परन्तु विक्रम की तेरहवीं शताब्दी में चक्र में परिवर्तन हुआ और कन्नौज के राठोड़-नरेश जयचन्द्र के पौत्र सीहाजी ने आकर मारवाड़ में अपना राज्य जमाया।

यद्यपि वैसे तो राठोड़-नरेश पहले से ही पराक्रम और दानशीलता में प्रसिद्ध थे, तथापि मारवाड़ के आधिपत्य से इनका प्रताप-सूर्य फिर से पूरी तौर से चमक उठा।

इसी वंश में राव मालदेव-से पराक्रमी, राव चन्द्रसेन-से स्वाधीनताभिमानी और महाराजा जसवन्तसिंह (प्रथम)-से भारत सम्राट् औरंगज़ेब तक की अवहेलना करने-वाले नरेश हो गए हैं।

इसी से किसी कवि ने कहा है:—

बल हट बंका देवड़ा, किरतब बंका गोड़।
हाडा बंका गाढ में, रणबंका राठोड़॥

चारणों की कविताओं से प्रकट होता है कि जिस प्रकार इस वंश के नरेश वीरता में अपना जोड़ नहीं रखते थे, उसी प्रकार दानशीलता में भी बहुत आगे बढ़े हुए थे। इनके सम्मान और दान में दिए गांवों के कारण इस समय मारवाड़-राज्य का प्रतिशत ८३ भाग जागीरदारों और शासनदारों के अधिकार में जा चुका है।

इनके अलावा इस इतिहास के पृष्ठ ३६२-३६३ पर दी हुई अपूर्व घटना तो, जिसमें महाराजा रामसिंहजी की सेना ने अपने विरोधी जुल्फ़िकार की भटकती हुई

" I must too mention the despatch with which Mr. Drake Brockman has been able to push through the compilation of the long awaited History of Marwar, a task which the Historical Department through its life of three generations showed no signs of accomplishing. "

अर्थात्-"मैं यह प्रकट करना भी आवश्यक समझता हूं कि मारवाड़ का वह इतिहास, जिसकी बहुत समय से प्रतीक्षा की जा रही थी और जिसको सरकारी 'इतिहास-कार्यालय' तीन पीढी बीत जाने पर भी तैयार नहीं कर सका था, मिस्टर ड्रेकब्रोकमैन की प्रेरणा से शीघ्र ही तैयार हो गया।"

इसके बाद वि० सं० १९९० (ई० स० १९३३) में 'आर्कियॉलॉजीकल' महकमे की तरफ़ से 'History of Rashtrakutas (Rathodas)' और इसके अगले वर्ष उसी का हिन्दी संस्करण 'राष्ट्रकूटों (राठोड़ों) का इतिहास' प्रकाशित किया गया। उनमें राव सीहाजी के मारवाड़ में आने से पूर्व का दक्षिण, लाट (गुजरात) और कन्नौज के राष्ट्रकूटों (राठोड़ों) का इतिहास दिया गया था। अब यह उसी का अगला भाग इतिहास-प्रेमियों के सामने उपस्थित किया जाता है। इसमें मारवाड़ के संक्षिप्त प्राचीन-इतिहास के साथ-साथ राव सीहाजी के मारवाड़ में आने से लेकर अब तक का इतिहास दिया गया है।

इस इतिहास को इस रूप में प्रस्तुत करने के कारण जिन लोगों के स्वार्थों में बाधा पहुँचती थी, उनकी तरफ़ से लेखक पर अनुचित दबाव डालने और शिखण्डियों के नाम से नोटिस-बाज़ी करने में भी कमी नहीं की गई। इसी सिलसिले में एक समय ऐसा भी आ गया, जब राज्य के कुछ प्रभावशाली लोगों ने षड्यन्त्र रच लेखक को राजकीय सेवा से हटा देने तक का प्रयत्न किया। परन्तु लेखक ने परिणाम की परवा न कर अपना कर्तव्य पालन करने में यथासाध्य त्रुटि न होने दी। अन्त में ईश्वर की कृपा से विरोधियों का सारा ही प्रयत्न विफल हो गया और जिस समय इस घटना की सूचना महाराजा साहब को मिली, उस समय आपने लेखक को बुलवाकर और स्वयं मामले की जाँच कर अपनी प्रसन्नता और सहानुभूति प्रकट की।

यहां पर यह प्रकट कर देना भी आवश्यक प्रतीत होता है कि इस इतिहास का अधिकांश भाग ई० स० १९२७ से ही समालोचना के लिये हिन्दुस्तानी, सरस्वती, सुधा, माधुरी, विशालभारत, वीणा, चाँद, क्षत्रियमित्र आदि हिन्दी की प्रसिद्ध-प्रसिद्ध

पत्रिकाओं में प्रकाशित किया जाने लगा था, इसी से इस पुस्तक के संपादन में विकल्प-रूप से लिखे जानेवाले शब्दों में कहीं कहीं भिन्नता रह गई है।

इसके अलावा इस इतिहास में कहीं-कहीं पुरानी ख्यातों में मिलने वाले श्रावणादि (श्रावण मास से प्रारम्भ होनेवाले) संवतों को चैत्रादि (चैत्र सुदि से प्रारम्भ होने वाले) संवतों में परिवर्तन कर लिखना छूट गया था, इसी से शुद्धि-पत्र नं० १ में यह संशोधन दे दिया गया है। परन्तु इसमें के राजाओं के चित्रों के नीचे जो राज्यवर्ष दिए गए हैं वे चैत्रादि संवतों में ही हैं।

इस इतिहास के लिखने में जिन-जिन मुद्रित और अमुद्रित ग्रन्थों से सहायता ली गई है, उनके अवतरण और नाम आदि यथास्थान टिप्पणी में देने का प्रयत्न किया गया है।

यद्यपि वर्तमान मारवाड़-नरेश के राजत्वकाल का इतिहास इसके 'प्रथम परिशिष्ट' में दिया गया है, तथापि वह इस इतिहास का ही एक अङ्ग है। इसके अलावा उन बातों का उल्लेख भी, जो मारवाड़ राज्य के इतिहास से गौणरूप से सम्बन्ध रखती हैं, अन्य परिशिष्टों में दे दिया गया है। हमारा विचार इस इतिहास के साथ ही मारवाड़ का संक्षिप्त भौगोलिक वर्णन भी जोड़ देने का था, परन्तु कई कारणों से ऐसा न हो सका।

इसके प्रकाशन में जोधपुर गवर्नमेंट-प्रेस के सुपरिन्टेंडेंट मिस्टर चनपुरी और अन्य कर्मचारियों ने जिस तत्परता से सहायता दी है, उसके लिये वे धन्यवाद के पात्र हैं।

आर्कियॉलॉजिकल डिपार्टमेंट,
जोधपुर
आषाढ सुदि १४ वि० सं० १९९५.

विश्वेश्वरनाथ रेउ.

जोधपुर-नरेश के कनिष्ठ भ्राता महाराज श्री अजीतसिंहजी साहब

का

वक्तव्य ।

मारवाड़ और उसके विख्यात नरेशों का यह विशद इतिहास पूरी विद्वत्ता और छानबीन के साथ लिखा गया है, और इस श्रमसाध्य कार्य को पूर्ण करने के लिये इसके लेखक पण्डित विश्वेश्वरनाथ रेउ बधाई के पात्र हैं ।

यह पुस्तक स्वयं ही श्रीयुत रेउ की पूरी खोज और अध्ययन का प्रमाण है ।

अजीतसिंह महाराज,
सभापति,
परामर्शदात्री सरदार सभा,
और
मुख्य परामर्शदात्री सभा.

(1) This comprehensive History of Marwar and its illustrious rulers has been written with scholarly care and thoroughness and its author Pandit Bisheshwar Nath Reu, is to be congratulated on the accomplishment of a laborious task. The work evidences a good deal of research and study done by Mr. Reu.

AJIT SINGH MAHARAJ,
President,
Consultative Committee of Sardars
and
Central Advisory Board.

Jodhpur,
21-6-1939.

जोधपुर-राज्य के प्रधान मन्त्री सर डोनाल्ड फील्ड (सी. आइ . ई.)
का
वक्तव्य।

इस विशद और सर्वाङ्ग-पूर्ण इतिहास को ऐसी सफलता के साथ लिखकर प्रस्तुत करने के कारण मैं पण्डित विश्वेश्वरनाथ रेउ को हार्दिक बधाई का अधिकारी समझता हूं।

यह इतिहास, परम्परागत धारणाओं के ऐतिहासिक आधार को ढूंढ निकालने में की गई, लेखक की सावधानतापूर्ण और यथार्थ खोजका स्वयं ही प्रमाण है और साथ ही, अन्य बातों में, वीर राठोड़-वंश पर लगाए गए कलङ्कों का ऐतिहासिक प्रमाणों द्वारा मूलोच्छेदन करने में भी पण्डित विश्वेश्वरनाथ ने पूर्ण सफलता प्राप्त की है।

लेखक ने उस कार्य को, जिसे जोधपुर-राजकीय इतिहास-कार्यालय के पहले के तीन अधिकारी केवल प्रारम्भ ही कर सके थे, पूरी योग्यता से समाप्त किया है और मेरी सम्मति में उसका इस कार्य को सम्पूर्ण करने में सफल होने के कारण सच्चा गौरव अनुभव करना ठीक ही है।

उन विद्वानों ने भी, जो इतिहास पर सम्मति देने के पूर्ण अधिकारी हैं, पण्डित विश्वेश्वरनाथ के लिखे इतिहास की सहानुभूति-पूर्ण समालोचना की है और मेरे विचार मे यह इतिहास राजकीय कागज-पत्रों में भी एक अमूल्य वस्तु समझा जायगा।

मैं इस संक्षिप्त वक्तव्य को भूमिका के रूप में लिखने में बड़ी प्रसन्नता का अनुभव करता हूं।

डी. एम. फील्ड,
लैफ्टिनैन्ट कर्नल,
चीफ मिनिस्टर,
गवर्नमेन्ट ऑफ जोधपुर.

---

(१) Pandit Bisheshwar Nath Reu deserves, in my opinion warm congratulations on the accomplishment of a detailed and exhaustive History of Marwar. The work affords evidence of careful and accurate research in an effort to discover a historical basis for the facts alleged, and Pt. Bisheshwar Nath has, amongst other things, been successful in dispelling certain false ideas which have in the past been promulgated about the brave dynasty of the Rathors. He has accomplished with marked ability a task that was no more than begun by three of his predecessors in the History Department of the Jodhpur State and he can I think claim a legitimate pride in the accomplishment of his task.

Pandit Bisheshwar Nath's History has earned favonrable criticism by scholars well qualified to pronounce an opinion on the subject, and I think that this history will be a most valuable acquisition to the State records.

I have great pleasure in writing this brief foreword by way of introduction.

D. M. FIELD,
LT. COLONEL,
Chief Minister,
Govt. of Jodhpur.

JODHPUR,
March 23, 1939.

जोधपुर-राज्य के गृह-सचिव (होम मिनिस्टर)

का

वक्तव्य ।

मुझे पण्डित विश्वेश्वरनाथ रेउ के लिखे मारवाड़ के इतिहास को आदि से अन्त तक अवलोकन करने का अवसर मिला । मैं इस देश का निवासी होने के कारण इसके प्राचीन गौरव से अवगत होने का दावा कर सकता हूं । यह करीब आठ सौ वर्षों का लंबा इतिहास है और इसके तैयार करने में लेखक की आयु का श्रेष्ठ भाग व्यतीत हुआ है । निस्सन्देह उसने इसकी सामग्री एकत्रित करने, अनेक साधनों द्वारा उसकी सत्यता जाँचने और फिर सच्ची घटनाओं को सुचारु और समुचित रूपसे उपस्थित करने में अत्यन्त परिश्रम उठाया है ।

समय-समय पर श्रीयुत रेउ का कार्य अवश्य ही कठिन और अप्रिय प्रतीत हुआ होगा । परन्तु उसने सच्चे ऐतिहासिक के कर्तव्य को कभी न भुलाया, और बिना किसी भय या पक्षपात के वास्तविक घटनाओं और उनके सच्चे परिणामों का उचित रूप से चित्रण किया है ।

मारवाड़ के राठोड़ों के इस गौरवमय इतिहास के साथ-साथ इसके लेखक का नाम भी अनन्तकाल तक बना रहेगा ।

माधोसिंघ,
होम मिनिस्टर, जोधपुर गवर्नमेंट,
(प्रेसीडैन्ट हिस्टोरिकल कमेटी).

महकमा ख़ास
जोधपुर,
ता० २८ अक्टोबर १९३८.

(१) I have had the privilege and pleasure of revising the History of Marwar written by Pt. Bisheswar Nath Reu. I belong to this place and claim to know something of its ancient glory It is a long record covering a period of about 800 years and its compilation has taken the writer the best part of a life time. He has no doubt taken infinite pains in collecting material, verifying the contents from various sources and then presenting the proved facts in an interesting and proper form.

At times Mr. Reu's task must have been irksome and unpleasant but he has always adhered to the true historian's principle and has without fear or favour presented facts and their consequences in correct perspective

With this proud record of Rathors in Marwar will go down the name of its writer to the end of time.

MADHO SINGH,
Home Minister,
Government of Jodhpur.
(President, Historical Committee.)

Mehkma Khas,
JODHPUR,
Dated October 28, 1938

विषय-सूची।

चित्र-सूची ।

मारवाड़ का इतिहास

स्थिति और विस्तार

यह देश राजपूताने के पश्चिमी भाग में है और इसका विस्तार यहां के सब राज्यों से अधिक है। इसकी लंबाई ईशानकोण से नैर्ऋत्यकोण तक ३२० मील और चौड़ाई उत्तर से दक्षिण तक १७० मील है।

इसके पूर्व में जयपुर, किशनगढ़ और अजमेर; अग्निकोण में मेरवाड़ा और उदयपुर (मेवाड़); दक्षिण में सिरोही और पालनपुर; नैर्ऋत्यकोण में कच्छ का रण; पश्चिम में थरपाकर और सिंध; वायव्यकोण में जैसलमेर तथा उत्तर में बीकानेर और ईशानकोण में शेखावाटी है।

यद्यपि आजकल यह देश २४ अंश ३६ कला उत्तर अक्षांश से लेकर २७ अंश ४२ कला उत्तर अक्षांश तक; तथा ७० अंश ६ कला पूर्व देशांतर से लेकर ७५ अंश २४ कला पूर्व देशांतर तक फैला हुआ है, और इसका क्षेत्रफल ३५०१६ वर्गमील है, तथापि कर्नल टॉड के मतानुसार किसी समय मरुदेश का विस्तार समुद्र से सतलज

१. कुछ लोग "मरु" और "माड़" देशों के नामों के मिलने से "मारवाड़" नामकी उत्पत्ति होना अनुमान करते हैं। 'माड़' जैसलमेर के पूर्वी भाग का नाम है और यह मरुदेश के पश्चिमी भाग से मिला हुआ है। उन के मतानुसार कालान्तर में इसी 'माड़' शब्द का 'वाड़' के रूप में परिवर्तन होगया है।

तक था। अबुलफ़ज़ल ने इसकी लंबाई १०० कोस और चौड़ाई ६० कोस लिखी है और अजमेर, जोधपुर, नागोर, सिरोही और बीकानेर, को इसके अंतर्गत माना है। उसने इसके प्रसिद्ध क़िलों के नाम इस प्रकार दिए हैं:--अजमेर, जोधपुर, बीकानेर, जैसलमेर, उमरकोट और जैनगर।

पौराणिक-काल

इसकी उत्पत्ति के विषय में वाल्मीकीय रामायण में इस प्रकार लिखा है--

"लंका पर चढ़ाई करने की इच्छा से जब श्रीरामचंद्र समुद्र के किनारे पहुँचे, तब जल में मार्ग पाने की इच्छा से उन्होंने उसकी अभ्यर्थना प्रारंभ की। परन्तु समुद्र ने इस पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। इससे क्रुद्ध हो राम ने समुद्र-जल को सुखा देने के लिये आग्नेयास्त्र का अनुसंधान किया। यह देख समुद्र क्षुब्ध हो उठा और उसने प्रकट होकर श्री रामचंद्र से उस अस्त्र को अपने द्रुमकुल्य-नामक उत्तरी भाग पर

१. उत्तरेणावकाशोऽस्ति कश्चित्पुण्यतरो मम।
द्रुमकुल्य इतिख्यातो लोके ख्यातो यथा भवान्॥ २९॥
उग्रदर्शनकर्माणो बहवस्तत्र दस्यवः।
आभीरप्रमुखाः पापाः पिबन्ति सलिलं मम॥ ३०॥
तैर्न तत्स्पर्शनं पापं सहेयं पापकर्मभिः।
अमोघः क्रियतां राम! अयं तत्र शरोत्तमः॥ ३१॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सागरस्य महात्मनः।
मुमोच तं शरं दीप्तं परं सागरदर्शनात्॥ ३२॥
तेन तन्मरुकान्तारं पृथिव्यां किल विश्रुतम्।
निपातितः शरो यत्र वज्राशनिसमप्रभः॥ ३३॥
ननाद च तदा तत्र वसुधा शल्यपीडिता।
तस्माद्व्रणमुखात्तोयमुत्पपात रसातलात्॥ ३४॥
स बभूव तदाकूपो व्रण इत्येव विश्रुतः॥
..................रामो दशरथात्मजः।
वरं तस्मै ददौ विद्वान्मरवेऽमरविक्रमः॥ ३७॥
पशव्यश्चाल्परोगश्च फलमूलरसायुतः।
बहुस्नेही बहुक्षीरः सुगंधिर्विविधौषधः॥ ३८॥
एवमेतैश्च संयुक्तो बहुभिः संयुतो मरुः।
रामस्य वरदानाच्च शिवः पंथा बभूव ह॥ ३९॥
(युद्धकांड, सर्ग २२)

चलाने की प्रार्थना की। उन्होंने भी उसके विनीत वचन सुन उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। राम के आग्नेयास्त्र के प्रभाव से द्रुमकुल्य का जल सूख गया और वहां पर मरुदेश की उत्पत्ति हुई, तथा जहां पर वह तीर गिरा था वहां पर गढे से पानी निकलने लगा।"

रामायण की कथा से यह भी प्रकट होता है कि पहले उक्त स्थान पर आभीर आदि जंगली (अनार्य) जातियां रहती थीं। परंतु इस घटना के बाद से वहां का मार्ग निष्कंटक हो गया और आर्य लोग उधर आने-जाने और बसने लगे। अब तक भी मारवाड़ के अन्य प्रदेशों से उस प्रदेश में गाएं आदि (दूध देनेवाले पशु) अधिक होती हैं।

मारवाड़ के पश्चिमी प्रदेश में अर्धपाषाणरूप में परिवर्तित शंख, सीप आदि के मिलने से भी पूर्वकाल में वहां पर समुद्र का होना सिद्ध होता है और प्राकृतिक कारणों से उसके हट जाने से वहां पर रेतीली पृथ्वी निकल आई है।

यह भी अनुमान होता है कि वहां पर किसी समय सतलज की एक धारा बहती थी। लोग उसे हाकड़ा नदी के नाम से पुकारते थे और उसके किनारों पर गन्ने की खेती करतेथे। परंतु अब उधर की पृथ्वी के कुछ ऊँची हो जाने के कारण उस धारा का पानी मुलतान की तरफ़ मुड़कर सिंधु में जा मिला है। मारवाड़-राज्य का एक प्रांत अब तक हाकड़ा के नाम से प्रसिद्ध है और 'वह पानी मुलतान गया' की एक कहावत भी यहाँ पर प्रचलित है।

'भागवंत' से ज्ञात होता है कि कंस का वैर लेने के लिये उस के श्वशुर (मगध के राजा) जरासंध ने सत्रह बार मथुरा पर विफल चढ़ाइयाँ की थीं। इसके बाद उक्त नगरी पर कालयवन का हमला हुआ। यह देख श्रीकृष्ण ने सोचा कि यदि इस मौके पर कहीं फिर जरासंध चढ़ आया तो यदु लोग निरर्थक ही मारे जायँगे। इसी से उन्होंने यदु लोगों को द्वारकापुरी की तरफ़ भेज दिया।

इससे अनुमान होता है कि संभवतः इसी समय (अर्थात्-महाभारत के समय के पूर्व ही) से मारवाड़ का गुजरात की तरफ़ का दक्षिणी भाग आबाद होने लगा होगा।

---

१. कुछ लोग बीलाड़ा नामक गांव की 'बाण गंगा' के कुण्ड को उक्त बाण के गिरने का स्थान अनुमान करते हैं। परन्तु यह ठीक प्रतीत नहीं होता।

२. श्रीमद्भागवत, दशमस्कंध, अध्याय ५०।

३. श्रीमद्भागवत में लिखा है—"मरुधन्वमतिक्रम्य सौवीराभीरयोः परान्।"

(भागवत, स्कन्ध १, अ० १०, श्लो० ३५)

पहले मारवाड़ का उत्तरी भाग और उसके आगे का बीकानेर का सारा प्रदेश जांगल देश कहाता था और उसकी राजधानी अहिच्छत्रपुर (नागोर ?) थी। महाभारत से पता चलता है कि उस समय वहां पर कौरवों का अधिकार था।

ऐतिहासिक-काल

इसके बाद से मौर्यवंशी नरेश चंद्रगुप्त के पूर्व तक का इस देश का विशेष वृत्तांत नहीं मिलता है। परंतु इस राजा के अंतिम समय मौर्य-राज्य का विस्तार नर्मदा से अफ़ग़ानिस्तान तक फैल गया था। इसका पौत्र अशोक भी बड़ा प्रतापी राजा था। उसने सुदूर दक्षिण को छोड़ करीब-करीब सारे हिंदुस्तान, अफ़गानिस्तान और बलूचिस्तान पर अधिकार कर लिया था। जयपुर-राज्य के वैराट (विराट) गाँव से उसका एक स्तंभलेख मिला है। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि मौर्य-सम्राट् चंद्रगुप्त और उसके पौत्र अशोक के समय मारवाड़ भी मौर्य-साम्राज्य का ही एक भाग रहा होगा।

विक्रम सं० ९७ से २८३ (ईसवी स० ४० से २२६) तक भारत के पश्चिमी प्रदेशों पर कुशानवंशी राजाओं का अधिकार रहा था; क्योंकि इन्होंने बलख से आगे बढ़कर धीरे-धीरे काबुल, कंधार, फ़ारस, सिंध और राजपूताने का बहुतसा भाग दबा लिया था। इनमें कनिष्क विशेष प्रतापी राजा हुआ। समग्र उत्तर-पश्चिमी भारत और दक्षिण का विंध्य तक का प्रदेश इसके राज्य में था। इसलिये मारवाड़ के कुछ भाग पर इस वंश के नरेशों का अधिकार भी अवश्य रहा होगा।

इससे अनुमान होता है कि 'मरु' और 'धन्व' दो भिन्न देश थे। यदि कोषकार अमरसिंह के लेखानुसार ये दोनों शब्द पर्यायवाची होते तो भागवत में इन दोनों शब्दों का प्रयोग इस प्रकार एकही स्थान पर न किया जाता। इससे प्रतीत होता है कि शायद मारवाड़ का दक्षिणी भाग 'धन्व' कहाता होगा।

१. "पैत्र्यं राज्यं महाराज ! कुरवस्ते सजाङ्गलाः।"

(उद्योगपर्व, अध्याय ५४, श्लोक ७)

(एक स्थान पर सिंधु से अरवली तक के भूभाग को शाल्वदेश के नाम से लिखा है।)

२. मौर्यों के बाद उनका राज्य शुंगवंशी राजाओं के अधिकार में चला गया था। इस वंश के संस्थापक पुष्यमित्र के समय, वि० सं० से ९९ (ई० स० से १५६) वर्ष पूर्व, ग्रीक नरेश मिनैंडर ने राजपूताने पर चढ़ाई की थी और उसकी सेना नगरी (चित्तौड़ से ६ मील उत्तर) तक जा पहुँची थी। नहीं कह सकते कि उस समय मारवाड़ में भी उसका प्रवेश हुआ था या नहीं ?

वि० सं० १७६ (ई० स० ११९) के क़रीब गुजरात, काठियावाड़, कच्छ आदि प्रदेशों पर पश्चिमी क्षत्रप नहपान का राज्य था। इससे मारवाड़ के दक्षिणी भाग का भी इसके अधिकार में होना पाया जाता है। इसके जामाता ऋषभदत्त (उषवदात) ने पुष्कर में जाकर बहुतसा दान दिया था। वि० सं० १८१ के कुछ काल बादही नहपान का राज्य आंध्रवंशी गौतमीपुत्र शातकर्णी ने छीन लिया था। इसपर मारवाड़ का दक्षिणी भाग भी उसके अधिकार में चला गया होगा।

शक संवत् ७२ (वि० स० २०७) के जूनागढ़ से मिले पश्चिमी क्षत्रप रुद्रदामा प्रथम के लेख से पता चलता है कि श्वभ्र (उत्तरी गुजरात), मरु (मारवाड़), कच्छ और सिंधु (सिंध) प्रदेशों पर उसका अधिकार हो गया था।

समुद्रगुप्त का पुत्र चंद्रगुप्त द्वितीय था। इसको विक्रमादित्य भी कहते थे। इसने वि० सं० ४४५ के क़रीब पश्चिमी क्षत्रपों के राज्य की समाप्ति कर अपने राज्य का और भी विस्तार किया था। गुप्त संवत् २९८ (वि० सं० ६७४) का एक शिलालेख मारवाड़ के गोठ और मांगलोद की सीमा पर के दधिमती देवी के मंदिर से मिला है। ये दोनों गाँव नागोर से २४ मील उत्तर-पश्चिम में हैं। मारवाड़ की प्राचीन-राजधानी मंडोर के विशीर्ण-दुर्ग में एक तोरण के दो स्तंभ खड़े हैं। उन पर श्रीकृष्ण की बाललीलाएँ खुदी हैं। इनमें के एक स्तंभ पर गुप्त लिपि का लेख था, जो अब क़रीब-क़रीब सारा ही नष्ट हो गया है। इन सब बातों से सिद्ध होता है कि इस देश के कुछ भागों पर गुप्त राजाओं का अधिकार भी रहा होगा।

वि० सं० ५२७ (ई० स० ४७०) के क़रीब हूणों ने स्कंदगुप्त के राज्य पर (दुबारा) चढ़ाई की। इससे गुप्त-राज्य की नींव हिल गई और उसके पश्चिमी प्रांत पर हूणों का अधिकार हो गया। सम्भवतः उस समय मारवाड़ का कुछ भाग भी अवश्य ही उनके अधिकार में चला गया होगा।

१. एपिग्राफिया इंडिका, भाग ८, पृ० ३६

२. वि० सं० ५४१ (ई० स० ४८४) में हूणों ने पर्शिया (ईरान) के राजा फ़ीरोज़ को मारकर वहां का खज़ाना लूट लिया था। इसी से वहां के ससेनियन सिक्कों का भारत में प्रवेश हुआ। ये सिक्के अठन्नी के बराबर होते थे और इन पर सीधी तरफ़ राजा का मस्तक और उलटी तरफ़ अग्निकुण्ड बना रहता था, जिसके दोनों तरफ़ आदमी खड़े होते थे। ये आजकल के सिक्कों से बहुत पतले होते थे। ये सिक्के हूणों का राज्य नष्ट हो जाने पर भी गुजरात, मालवा और राजपूताने में विक्रम संवत् की बारहवीं शताब्दी के

इसी प्रकार वि० सं० ४४५ के आसपास पश्चिमी क्षत्रपों के राज्य के नष्ट होने पर मारवाड़ के कुछ भाग पर गुर्जरों ने अधिकार कर लिया था। इसी से धीरे-धीरे मारवाड़ का पूर्व की तरफ़ का (दक्षिण से उत्तर तक का) सारा भाग गुर्जर-राज्य के अंतर्गत हो गया था और गुर्जरत्रा (गुर्जर या गुजरात) कहाता था।

चीनी यात्री हुएन्तसंग, जो वि० सं० ६८६ में चीन से रवाना होकर भारत में आया था, भीनमाल को गुजरात की राजधानी लिखता है। वि० सं० ९०० के सिवा गाँव (डीडवाना प्रांत) से मिले प्रतिहार भोजदेव प्रथम के दानपत्र से उस प्रदेश का भी एक समय गुर्जर-प्रांत में रहना सिद्ध होता है।[1]

यही बात कालिंजर से मिले विक्रम की नवीं शताब्दी के लेख से भी प्रकट होती[2] है।

वि० सं० ५८९ (ई० स० ५३२) के मंदसोर से मिले यशोधर्मा के लेख में उसके राज्य का विस्तार पूर्व में ब्रह्मपुत्र से पश्चिम में समुद्र तक और उत्तर में हिमालय से दक्षिण में महेन्द्र पर्वत तक होना लिखा है। परंतु अबतक न तो उसके पूर्वजों का ही पता चला है न उत्तराधिकारियों का ही। संभव है उस समय गुर्जर लोग उसके सामंत होगए हों[3]।

वि० सं० ६८५ मे भीनमाल के रहनेवाले ब्रह्मगुप्त ने 'ब्रह्मस्फुटसिद्धांत' की रचना की थी। उस समय वहाँ पर चावड़ा वंश के व्याघ्रमुख नामक राजा का राज्य था।

भीनमाल के प्रसिद्ध कवि माघ ने अपने 'शिशुपालवध' नामक महाकाव्य के कवि-वंश-वर्णन मे अपने दादा को राजा वर्मलात का मंत्री लिखा है। वसंतगढ़ (सिरोही-राज्य) से, वि० सं० ६८२ का, इस वर्मलात का एक शिला-लेख मिला है।

पूर्वार्ध तक प्रचलित थे। परंतु क्रमशः इनका आकार छोटा होने के साथही इनकी मुटाई बढ़ती गई और धीरे धीरे इनमें का राजा का चेहरा ऐसा भद्दा हो गया कि वह गधे के खुर के समान दिखाई देने लगा। इसी से इसका नाम गधिया (गधैया) हो गया। इस प्रकार के सिक्के मारवाड़ के अनेक प्रदेशों में मिले हैं।

१. एपिग्राफ़िया इंडिका, भाग ५, पृ० २११ (गुर्जरत्राभूमौडेंडवानकविषय०)

२. एपिग्राफ़िया इंडिका, भाग ५, पृ० २१०, नोट ३ (श्रीमद्गुर्जरत्रामंडलांतःपातिमंगलानक०)

३. विक्रम की छठी शताब्दी के उत्तरार्ध के करीब वैसवंशी प्रभाकरवर्धन ने सिंध और गुजरात वालों से युद्ध कर उन्हें हैरान कर दिया था, ऐसा 'श्रीहर्षचरित' से पाया जाता है। इसका छोटा पुत्र हर्षवर्धन भी बड़ा प्रतापी था। उसने उत्तरापथ के राजाओं पर चढ़ाई कर उधर के देशों को जीत लिया था। यह बात विजयभट्टारिका के दानपत्र और हुएन्त्संग के लेखों मे प्रकट होती है।

इसके और ब्रह्मगुप्त-रचित 'ब्रह्मस्फुटसिद्धांत' के रचना-काल के बीच केवल तीन वर्ष का अंतर होने से विद्वान् लोग वर्मलात को व्याघ्रमुख का पिता या उपनाम अनुमान करते हैं।

इससे ज्ञात होता है कि गुर्जरों के बाद मारवाड़ का दक्षिणी भाग चावड़ों के अधिकार में रहा था। कलचुरी संवत् ४९० (वि० सं० ७९६) के (लाटदेश के) सोलंकी पुलकेशी के दानपत्र से प्रकट होता है कि उस समय के पूर्व ही अरब लोगों की चढ़ाई से चावड़ों का राज्य नष्ट हो गया था। फ़ारसी के 'फ़तूहुल् बुलदान' नामक इतिहास से ज्ञात होता है कि खलीफ़ा हशाम के समय सिंध के शासक जुनैद की सेना ने मारवाड़ और भीनमाल पर चढ़ाई की थी। इस चढ़ाई से चावड़े कमज़ोर हो गए और कुछ ही काल बाद उनका राज्य पड़िहारों ने दबा लिया।

जोधपुर नगर की शहरपनाह से वि० सं० ८९४ का मंडोर के राजा बाउक का एक लेख मिला है। यह शायद मंडोर के किसी वैष्णव-मंदिर के लिये खुदवाया गया था। इसी प्रकार वि० सं० ९१८ के दो शिला-लेख बाउक के भाई कक्कुक के घटियाला (जोधपुर से २० मील उत्तर) से मिले हैं। इनमें का एक प्राकृत का और दूसरा संस्कृत का है[3]। इनसे प्रकट होता है कि हरिश्चंद्र के पुत्रों ने वि० सं० ६७० के क़रीब मंडोर के क़िले पर अधिकार कर वहाँ पर कोट बनवाया था। इसके बाद इसके प्रपौत्र नागभट ने मेड़ता नगर में अपनी राजधानी क़ायम की और मंडोर में अपने नाम पर नाहड़स्वामिदेव का एक मंदिर बनवाया। नाहड़ के बड़े पुत्र तात ने

१. नागरी-प्रचारिणी पत्रिका, भाग १, पृ० २११, नोट २३

२. जर्नल रॉयल एशियाटिक सोसाइटी (१८९४), पृ० ४-९। इसमें शीलुक का 'स्रवणी' और 'वल्लमण्डल' पर अधिकार करना लिखा है। अनुमान से ज्ञात होता है कि उस समय मारवाड़ का वायव्य कोण का जैसलमेर से मिला मल्लानी की तरफ़ का भाग 'स्रवणी' और फलोदी की तरफ़ का भाग 'वल्ल' कहलाता था। इसी लेख में बाउक का मयूर को मारना भी लिखा है। कुछ लोगों का अनुमान है कि उस समय मंडोर के पश्चिमी प्रान्त पर मौर्य वंशियों का राज्य था और यह मयूर उन्हीं का वंशज होगा। कुछ काल बाद पड़िहारों ने उस वंश के राजाओं को सिंध की तरफ़ भगा दिया था। इस समय उनके वंशज सिंध और मुलतान में मोर के नाम से प्रसिद्ध हैं। परन्तु उन्होंने इसलाम धर्म ग्रहण कर लिया है।

३. जर्नल रॉयल एशियाटिक सोसाइटी (१८९५), पृ० ५१७-१८

४. पृथ्वीराजरासे में मंडोर के नाहड़राव पड़िहार और पृथ्वीराज चौहान के युद्ध की जो कथा लिखी है वह कपोल-कल्पित ही है।

अपने छोटे भाई भोज को राज्य देकर मांडव्य के आश्रम (मंडोर) में तपस्या की। इसी भोज की छठी पीढ़ी में कक्क हुआ। जिस समय कन्नौज और भीनमाल के पड़िहार राजा वत्सराज[1] ने मुंगेर के गौड़ राजा पर चढ़ाई की, उस समय यह कक्क भी, सामंत की हैसियत से, वत्सराज के साथ था। परंतु जिस समय इस वत्सराज ने मालवे पर चढ़ाई की, उस समय मान्यखेट का राष्ट्रकूट राजा ध्रुवराज मालवे वालों की सहायता को जा पहुँचा। इस से वत्सराज को भागकर मारवाड़ में आना पड़ा। श० सं० ७०५ (वि० सं० ८४०) में जिनसेन ने 'हरिवंशपुराण' लिखा था। उसमें वत्सराज को पश्चिम (मारवाड़) का राजा लिखा[2] है।

इसका पुत्र नागभट द्वितीय था। पुष्कर का घाट बनवानेवाला प्रसिद्ध नाहड़ यही होगा। इसके समय का वि० सं० ८७२ का एक लेख बुचकला (बीलाड़ा परगने) से मिला[3] है। इसी ने अपनी राजधानी भीनमाल से हटाकर कन्नौज में स्थापित की थी।

उपर्युक्त कक्क का पुत्र बाउक हुआ। इसके बाद इसके भाई कक्कुक ने मारवाड़ और गुजरात के लोगों से मित्रता की, घटियाले (रोहिंसकूप) में बाज़ार बनवाया और मंडोर तथा घटियाले में जयस्तंभ खड़े किए। वि० सं० ९९३ का एक लेख प्रतिहार (पड़िहार) जसकरण का भी चेराई (जोधपुर-राज्य) से मिला है।

वि० सं० १२०० के करीब तक तो मंडोर पर पड़िहारों का ही राज्य रहा। परंतु इसके क़रीब नाडोल के चौहान रायपाल ने वहां पर अपना अधिकार कर लिया और पड़िहार लोग छोटे-छोटे जागीरदारों की हैसियत से रहने लगे।

वि० सं० १२०२ की समाप्ति के क़रीब का चौहान रायपाल के पुत्र सहजपाल का एक टूटा हुआ लेख[4] मंडोर से मिला है। उससे भी इस बात की पुष्टि होती है।

---

१. हांसोट (भड़ोच ज़िले) में चौहान भर्तृवड्ढ द्वितीय का, वि० सं० ८१३ का, एक दानपत्र मिला है। उसमें उसे पड़िहार नागावलोक का सामंत लिखा है। यह नागावलोक इस वत्सराज का पितामह था। इसके राज्य का उत्तरी भाग मारवाड़ और दक्षिणी भाग भड़ोच तक फैला हुआ था। इसके वंशज भोजदेव की ग्वालियर की प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि इसने अपने राज्य पर सिंध की तरफ़ से हमला करनेवाले बल्लोचों को हराकर भगा दिया था। (आर्कियॉलॉजिकल सर्वे ऑफ़ इंडिया (१९०३-४), पृ० २८०

२. 'वत्सादिराजे परां' (बॉंबे गज़ैटियर, जि० १, भा० २, पृ० १९७, नोट २

३. एपिग्राफिया इंडिका, भा० ९, पृ० १९९-२००

४. आर्कियॉलॉजिकल सर्वे ऑफ़ इण्डिया (१९०९-१०), पृ० १०१-३। यद्यपि इस लेख में संवत् नहीं लिखा है, तथापि सहजपाल के पिता रायपाल की वि० सं० १२०२

वि० सं० १३१९ के, सूँधा से मिले, चाचिगदेव के लेख से भी उसके पिता चौहान उदयसिंह (वि० सं० १२६२ से १३०६) का मंडोर पर अधिकार होना पाया जाता है। इसके बाद वि० सं० १२८४ में वहां पर शम्सुद्दीन अल्तमश का अधिकार होगया। परंतु कुछ काल बाद मुसलमानों की कमज़ोरी से मंडोर फिर पड़िहारों के अधिकार में चला गया। इस पर वि० सं० १३५१ में जलालुद्दीन फ़ीरोज़शाह ख़िलजी ने चढ़ाई कर पड़िहारों को वहां से भगा दिया।

वि० सं० १४५२ के करीब मुसलमानों से तंग आकर ईंदा शाखा के पड़िहारों ने फिर एकवार मंडोर पर अधिकार कर लिया। परंतु उसकी रक्षा करना कठिन जान उन्होंने उसे राठोड़ राव चूड़ाजी को दहेज में दे दिया, जो अब तक उन्हीं के वंशजों के अधिकार में है।

वि० सं० ७४३ के क़रीब चौहान वासुदेव ने अहिच्छत्रपुर से आकर शाकंभरी (सांभर) में अपना राज्य कायम कर लिया था। इसी से ये (चौहान) शाकंभरीश्वर (सांभरीराज) कहाए और इनके राज्य का प्रदेश, जिसमें नागोर आदि के प्रान्त भी थे, 'सपादलक्ष' या 'सवालख' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

वि० सं० १०३० का सांभर के चौहान राजा विग्रहराज के समय का एक लेख शेखावाटी (जयपुर-राज्य) के हर्षनाथ के मंदिर से मिला है। उससे ज्ञात होता है कि उस समय तक चौहान लोग क़न्नौज के पड़िहारों के सामंत थे। परंतु उसके बाद धीरे-धीरे स्वतंत्र हो गए। 'पृथ्वीराजविजय काव्य' के लेखानुसार वि० सं० ११६५ (ई. स. ११०८) के क़रीब चौहान अजयदेव ने अजमेर बसाकर उसे इस वंश की राजधानी बनाया। वि० सं० १२५१ तक तो वहां पर इसी वंश का अधिकार रहा, परंतु इसके बाद प्रसिद्ध पृथ्वीराज[2] चौहान के भाई हरिराज की मृत्यु के बाद उस पर मुसलमानों का पूरी तौर से अधिकार हो गया।

इसी वंश की एक शाखा ने वि० सं० १०१७ (ई. स. ९६०) के क़रीब नाडोल का राज्य क़ायम किया था। परंतु वि० सं० १०७८ के बाद ही इस शाखा के

तक की प्रशस्तियों के मिलने से यह लेख उस समय के बादका ही प्रतीत होता है।

१. वि० सं० १२७४ में एकवार मंडोर पर मुसलमानों का अधिकार हो गया था। परन्तु शीघ्र ही चौहान उदयसिंह ने वहां पर फिर से अधिकार कर लिया।

२. वि० सं० १२४९ में पृथ्वीराज शहाबुद्दीन ग़ोरी द्वारा मारा गया था।

चौहानों को सोलंकियों की आधीनता स्वीकार करनी पड़ी। वि० सं० १२५६ (ई. स. १२०२) के करीब कुतुबुद्दीन ने इन चौहानों के राज्य पर हमला कर उसे नष्ट कर दिया।

वि० सं० १२१८ के करीब चौहानों की उसी शाखा के (केल्हण के छोटे भाई) कीर्तिपाल ने पँवारों से जालोर[1] छीनकर सोनगरा[2] नाम की प्रशाखा चलाई थी। इस शाखा की राजधानी जालोर थी। वि० सं० १४८२ के क़रीब राव रणमल्लजी ने, राजधर को मार, इसकी समाप्ति कर दी[3]। इसी प्रकार वि० सं० १४४४ में नाडोल से निकली साचोर के चौहानों की भी एक शाखा का पता चलता है।

पोकरण से वि० सं० १०७० का एक लेख मिला है। इससे उस समय वहां पर परमारों (पँवारों) का अधिकार होना पाया जाता है।

किराडू से वि० सं० १२१८ का परमार सोमेश्वर के समय का एक लेख मिला है। उसमें परमार सिंधुराज को मारवाड़ का राजा लिखा[4] है। इसका समय वि० सं० ६५६ के क़रीब होगा और इसने मंडोर के पड़िहारों की कमज़ोरी से मारवाड़ के कुछ प्रदेशों पर अधिकार करलिया होगा। जालोर का सिंधुराजेश्वर का मंदिर भी इसी ने बनवाया था। इसकी चौथी पीढ़ी में धरणीवराह हुआ। वि० सं० १०५३ के, हथूँडी (गोडवाड़ परगने) के, राठोड़ राजा धवल के लेख से ज्ञात होता है कि

---

१. यह बात वि० सं० ११७४ के, जालोर के तोपखाने के लेख से भी सिद्ध होती है। उस लेख में परमारों की ७ पीढ़ी दी हुई हैं। (आजकल यह लेख जोधपुर के अजायबघर में रक्खा है।)

२. लेखों में जालोर के पर्वत का नाम कांचन गिरि (सुवर्ण गिरि) लिखा है। अनुमान होता है कि वहां पर मिलनेवाली सुवर्ण के समान चमकीली धातु के कारण ही (जो शायद कुछ धातुओं का मिश्रण है) इस पर्वत का नाम कांचन गिरि या सुवर्ण-गिरि होगया होगा; और इस पर्वत के नाम से ही चौहानों की इस शाखा का नाम सोनगरा हुआ होगा।

३. सूँधा पहाड़ी वाले मंदिर के वि० सं० १३१६ के लेख में सोनगरा शाखा के उदयसिंह को नाडोल, जालोर, मंडोर, बाड़मेर, सांचोर, गुढ़ा, खेड, रामसेन, भीनमाल और रतनपुर का स्वामी लिखा है। इसीके समय रामचंद्र ने 'निर्भयभीम व्यायोग' और जिनदत्त ने 'विवेक-विलास' बनाया था। इस उदयसिंह का प्रपौत्र कान्हड़देव बड़ा वीर था फरिश्ता लिखता है कि उसने खुद ही बादशाह अलाउद्दीन को अपने क़िले पर चढ़ाई करने का निमंत्रण दिया था और इसी युद्ध में वि० सं० १३६६ (हि० स० ७०६) में वह मारा गया। इस से कुछ दिन के लिये जालोर और सिवाना चौहानों से छूट गया।

४. 'सिंधुराजो महाराजः समभून्मरुमण्डले।'

जिस समय सोलंकी मूलराज ने इस (धरणीवराह) पर चढ़ाई की थी, उस समय इसने उक्त राठोड़ धवल का आश्रय लिया था। मारवाड़ में किसी कवि का बनाया एक छप्पय प्रचलित है। उससे प्रकट होता है कि धरणीवराह ने अपने नौ भाइयों में अपना राज्य बांट दिया था और इसी से यह देश 'नौ कोटी मारवाड़' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। परंतु अजमेर चौहान अजयदेव के समय बसा था; जिसका समय वि० सं० ११६५ के करीब आता है। ऐसी हालत में उक्त छप्पय के अनुसार धरणीवराह का अपने एक भाई को अजमेर देना सिद्ध नहीं हो सकता।

धरणीवराह की पांचवीं पीढ़ी में कृष्णराज द्वितीय हुआ। भीनमाल से इसके समय के दो लेख मिले हैं। एक वि० सं० १११७ का है[1] और दूसरा वि० सं० ११२३ का। इस कृष्ण से दो शाखाएँ चलीं। एक आबू की और दूसरी किराड़ू की। इस कृष्णराज को गुजरात के सोलंकी भीमदेव प्रथम ने कैद कर लिया था। परंतु नाडोल के शासक चौहान बालप्रसाद ने इसे छुड़वा दिया।

वि० सं० १२८७ में, गुजरात के सोलंकी भीमदेव का सामंत, परमार सोमसिंह आबू का राजा था। इसने अपने पुत्र कृष्ण तृतीय (कान्हड़देव) को (गोडवाड़ परगने का) नाणा गांव दिया था।

वि० सं० १३६८ के करीब तक तो परमार ही आबू के शासक रहे, परंतु इसी के आसपास वहां पर चौहानों का अधिकार हो गया।

किराड़ू से मिले, वि० सं० १२१८ के, लेख में किराड़ू की शाखा के पँवार-नरेशों के तीन नाम दिए हुए हैं। ये गुजरात के सोलंकी नरेशो के सामंत थे।

बारहवीं और तेरहवीं शताब्दी के कुछ लेख (नागोर परगने के) रोल नामक गांव से मिले हैं। इनसे उस समय वहां पर भी परमारों का अधिकार रहना सिद्ध होता है।

पोकरण से विक्रम की दसवीं शताब्दी के करीब का एक लेख मिला है। उसमें गुहिलवंश का उल्लेख है। आबू के अचलेश्वर के लेख से गुहिलराजा जैत्रसिंह[3] का नाडोल को नष्ट कर तुरकों को भगाना लिखा है।

---

१. बॉंबे गज़ेटियर, जि० १, भा० १, पृ० ४७२-४७३

२. बॉंबे गज़ेटियर, जि० १, भा० १, पृ० ४७३-४७४

३. जैत्रसिंह वि० सं० १२७० से १३०६ तक विद्यमान था और वि० सं० १२५६ के बाद नाडोल पर कुतुबुद्दीन का अधिकार हो गया था। इसलिये जैत्रसिंह ने इसके बाद ही चढ़ाई की होगी।

वि० सं० १०५१ के सोलंकी मूलराज के ताम्रपत्र से ज्ञात होता है कि उसने साँचोर के पवाँरों को हराकर उक्त प्रदेश पर अधिकार कर लिया था और वे इसके सामंत हो[1] गए थे। इसी प्रकार वि० सं० १०७८ के क़रीब नाडोल के चौहानों ने भी सोलंकी भीमदेव की सामंती स्वीकार कर ली थी। सांभर से सोलंकी जयसिंह के समय का एक लेख मिला है। इससे वि० सं० ११५० और ११९९ के बीच वहाँ पर उसका अधिकार होना पाया जाता है।

वि० सं० १२०७ के क़रीब सोलंकी कुमारपाल ने साँभर पर चढ़ाई कर वहाँ के चौहान राजा अर्णोराज को हराया और नाडोल पर भी अपना हाकिम नियत कर दिया। इस कुमारपाल का वि० सं० १२०९ का एक लेख पाली के सोमेश्वर के मंदिर में भी लगा है।

वि० सं० १२१८ के किराडू के लेख से ज्ञात होता है कि किराडू के परमार शासक सोलंकियों के सामंत थे।

आबू के परमार सोमसिंह के, वि० सं० १२८७ के, लेख से पता चलता है कि वह गुजरात के सोलंकी भीम का सामंत था। उस समय गोड़वाड़ की तरफ़ का देश भी इसी सोमसिंह के अधिकार में था।

इसी प्रकार कुछ काल के लिये देसूरी पर भी सोलंकियों का अधिकार रहा था।

ख्यातों में लिखा है कि एक समय मारवाड़ (खास कर मंडोर और नागोर) पर नाग-वंशियों का राज्य भी रहा था। नागकुंड, नागादरी, नागोर, नागाणा आदि नामों में पहले नाग शब्द लगा होने से लोग इनका नामकरण उसी वंश के संबन्ध से हुआ मानते हैं और उनका अनुमान है कि मंडोर का पर्वत भी उन्हीं के सम्बन्ध से 'भोगिशैल'[2] कहाता है।

इसी प्रकार जोहिया (यौधेय), दहिया और गौड़वंशी राजपूत भी इस देश के अधिकारी रह चुके हैं। इनमें से जोहिया लोग बीकानेर की तरफ़ थे। दहियों के दो लेख किनसरिया (पर्बतसर से ४ मील उत्तर) के केवाय माता के मंदिर से मिले हैं। इनमें का एक वि० सं० १०५६ का और दूसरा वि० सं० १३००

१. इसके बाद सांभर के चौहान राजा वीसलदेव (विग्रहराज द्वितीय) ने सोलंकी मूलराज पर चढ़ाई कर उसे कच्छ की तरफ़ भगा दिया था।

२. संस्कृत साहित्य में भोगि शब्द भी नाग का पर्यायवाची है।

का है। तीसरा लेख मगलाना (परबतसर परगने) से मिला है। यह वि० सं० १२७२ का है। ये लोग चौहानों के सामंत थे। कहते हैं कि गोड़वाड़ में गौड़-वंशियों का अधिकार रहा था। लोग इस प्रदेश का नामकरण इसी वंश के पीछे होना अनुमान करते हैं। इसी प्रकार मारोठ के आसपास का प्रदेश भी इन्हीं के अधिकार में रहने के कारण गौडावाटी कहाता था। परन्तु वि० सं० १६८६ में मेड़तिया रघुनाथसिंह ने इन से यह प्रदेश छीन लिया।

मुसलमानों के हमले

आगे मारवाड़ पर होने वाले मुसलमानों के आक्रमणों का संक्षिप्त विवरण दिया जाता है।

हि० स० १०५ से १२५ (वि० सं० ७८१ से ८००=ई० स० ७२४ से ७४३) तक हशाम अरब का ख़लीफ़ा था। पहले लिखे अनुसार इसके समय इसके भारतीय प्रदेशों के शासक जुनैद की सेना ने मारवाड़, भीनमाल, अजमेर, गुजरात आदि पर चढ़ाई की। यह बात कलचुरी संवत् ४९० (वि० सं० ७९६= ई० स० ७३९) के चालुक्य पुलकेशी के दान-पत्र से भी प्रकट होती है।

हांसोट (भड़ोच ज़िले) से चौहान भर्तृवद्ध द्वितीय का एक दान-पत्र मिला है। यह वि० सं० ८१३ (ई० स० ७५६) का है। इससे ज्ञात होता है कि पड़िहार नागभट्ट (प्रथम) के समय उसके राज्य (मारवाड़ के दक्षिणी भाग) पर बलोचों ने चढ़ाई की थी। परंतु उन्हें सफलता नहीं मिली।

सिंध और मारवाड़ की सीमा मिली हुई होने से समय-समय पर मुसलमानों के ऐसे अनेक आक्रमण यहां पर होते रहते थे।

हि० स० ५१२ (वि० सं० ११७६=ई० स० ११९९) में मुहम्मद बाहलीम बाग़ी हो गया और उसने नागोर का क़िला बनवाया। इस पर बहरामशाह ने उसपर चढ़ाई की। परंतु इसी बीच मुहम्मद बाहलीम के मर जाने से वह लौट गया।

वि० सं० १०८२ (हि० स० ४१६=ई० स० १०२५) में जिस समय महमूद ग़ज़नवी ने सोमनाथ पर चढ़ाई की थी, उस समय वह नाडोल की तरफ़ से होता हुआ उधर गया था। इसके बाद भी मौक़ा पाकर ग़ज़नवी-वंश के हाकिमों की सेनाएं लाहौर से आगे बढ़ मारवाड़ के भिन्न भिन्न प्रदेशों पर हमला करती रहती

१. तबक़ाते-नासिरी (इलियटस् हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया), भा० २, पृ० २७६

थीं और उन्हीं के एक हमले में साँभर का चौहान राजा दुर्लभराज[1] मारा गया था। परन्तु उस का वंशज अजयदेव और उसका पुत्र अर्णोराज इन आक्रमण-कारियों को मार भगाने में समर्थ हुए। अर्णोराज का छोटा पुत्र विग्रहराज (वीसलदेव) चतुर्थ था। देहली के अशोक के स्तंभ पर (जिसको फ़ीरोज़शाह की लाट कहते हैं) इसका वि० सं० १२२० (ई० स० ११६३) का एक लेख खुदा है। उससे ज्ञात होता है कि इसने आर्यावर्त से मुसलमानों को भगा दिया था। उस समय तक तो इधर की तरफ़ मुसलमानों के पैर नहीं जमे और वे लूट-मारकर के ही लौटते रहे। परंतु उसके बाद सुलतान शहाबुद्दीन के आक्रमण शुरू हुए। पहले पहल मारवाड़ में नाडोल पर उसका हमला हुआ। परंतु उसमें उसे सफलता नहीं मिली। वि० सं० १२४७ (ई० स० ११९१) में उसका और अजमेर के चौहान पृथ्वीराज का पहला युद्ध हुआ। इसमें उसे बुरी तरह से घायल होकर भागना पड़ा। इस पर वि० सं० १२४९ (ई० स० ११९२) में उस (शहाबुद्दीन) ने पहली हार का बदला लेने के लिये दूसरी बार पृथ्वीराज पर चढ़ाई की। उस समय आपस की फूट के कारण पृथ्वीराज मारा गया और अजमेर, सवालक आदि पर मुसलमानों का अधिकार हो गया। तथा वहाँवाले उनको कर देने लगे। वि० सं० १२५२ (ई० स० ११९५) में कुतुबुद्दीन ने पृथ्वीराज के भाई हरिराज से अजमेर छीनकर वहाँ पर पूरी तौर से अधिकार कर लिया। इसी वर्ष गुजरात के सोलंकी भीमदेव ने मेरों की सहायता से कई महीनों तक कुतुबुद्दीन को अजमेर में घेरे रक्खा। अंत में ग़ज़नी से नई सेना के आ जाने पर घिराव उठाना पड़ा। इसके बाद शहाबुद्दीन ने गुजरात पर चढ़ाई की। परंतु इसमें उसे घायल होकर लौटना पड़ा। इसीके दूसरे वर्ष (वि० सं० १२५३ में) इस हार का बदला लेने के लिये उस (कुतुबुद्दीन) ने दुबारा चढ़ाई कर गुजरात को लूटा। इस बार विजय उसके हाथ रही। ये दोनों युद्ध कायद्रां में (आबू के पास) हुए थे। इस पिछली चढाई में उसकी सेना अजमेर से नाडोल और पाली (बाली ?) की तरफ़ होती हुई गई थी, और वहाँ के लोग उसके डर से क़िले ख़ाली कर भाग खड़े हुए थे।

१. यदि दुर्लभराज को दुर्लभराज प्रथम मानें तो यह जुनैद का समकालीन होता है; और यदि इसे दुर्लभ तृतीय मानें तो इस घटना का ग़ज़नी के खुसरो या उसके पुत्र खुसरो मलिक के समय होना पाया जाता है।

वि० सं० १२६७ (ई० स० १२१०) में दिल्ली के बादशाह शम्सुद्दीन अल्तमश ने जालोर विजय किया और वि० सं० १२७४ (ई० स० १२१७) में लाहौर के सूबेदार नासिरुद्दीन महमूद ने मंडोर पर अधिकार कर लिया। परंतु कुछही दिनों में वह उसके हाथ से निकल गया। इसपर वि० सं० १२८४ (ई० स० १२२७) में उसके पिता शम्सुद्दीन अल्तमश ने दुबारा उसे विजय किया। इसके अलावा स्वालक और साँभर पर भी उसका अधिकार हो गया।

वि० सं० १२९९ (ई० स० १२४२) में अलाउद्दीन की गद्दीनशीनी के समय मंडोर, नागोर और अजमेर मल्लिक इजुद्दीन के अधिकार में आए।

इसके बाद वि० सं० १३५१ (ई० स० १२९३) में मंडोर पर फ़ीरोज़शाह द्वितीय का आक्रमण हुआ। उस समय की बनी मसजिद इस समय भी वहाँ पर विद्यमान है और उसमें उसका एक खंडित शिला-लेख लगा है। सम्भवतः उस समय मंडोर पर सोनगरा चौहान सामन्तसिंह का अधिकार होगा।

वि० सं० १३६५ (ई० स० १३०८) में अलाउद्दीन खिलजी ने चौहान शीतलदेव (सातल) से सिवाना और वि० सं० १३६८ (ई० स० १३११) में चौहान कान्हड़देव से जालोर छीन लिया।

वि० सं० १४६४[1] में ज़फ़रखाँ गुजरात का स्वतंत्र बादशाह बन बैठा और उसने अपने भाई शम्सखां को नागोर की हुकूमत दी। यह हुकूमत यद्यपि राव चूंड़ाजी, राव रणमल्लजी आदि की चढ़ाइयों के कारण बीच-बीच में छूटती रही, तथापि वि० सं० १५९५ तक समय-समय पर वहाँ पर इस वंश के शासकों का अधिकार होता रहा।

वि० सं० १४५० में जालोर पर बिहारी पठानों का अधिकार होगया था।

इनके अलावा मारवाड़ के प्रदेशों पर इधर-उधर के मुसलमान-शासकों के और भी अनेक साधारण हमले हुए थे।

१. 'तबक़ात-अकबरी' (पृ० ४४८) मे इस घटना का समय हिजरी सन् ८०८ के बाद लिखा है। इस हिसाब से वि० सं० १४६४ ही होना ठीक प्रतीत होता है।

जोधपुर के राष्ट्रकूट नरेशों और उनके वंशजों का प्रताप

इस इतिहास के प्रथम खण्ड में पहले के राष्ट्रकूट नरेशों के प्रताप के विषय में, उनकी प्रशस्तियों और समकालीन लेखकों की पुस्तकों से, प्रमाण उद्धृत किए जा चुके हैं; इसलिये यहां पर राव सीहाजी के वंशजों के प्रताप के विषय में कुछ प्रमाण दिए जाते हैं।

वि० सं० १५६१ के महाराणा रायमल्ल के घोसूंडी (मेवाड़) से मिले लेख[1] में लिखा है:---

"श्रीयोधक्षितिपतिरुग्रखड्गधारानिर्घातप्रहतपठानपारशीकः ॥ ५ ॥
पूर्वानतार्प्सीद्गयया विमुक्तया काश्यां सुवर्णैर्विपुलैर्विपश्चितः ।

अर्थात्--राव जोधाजी ने अपनी तलवार से पठानों और पर्शियावालों (मुसलमानों) को हराया, और गया के यात्रियों पर लगनेवाला कर छुड़वाकर अपने पूर्वजों को और काशी में बहुतसा सुवर्ण दान कर विद्वानों को तृप्त किया।

फरिश्ता (मुहम्मद कासिम) ने वि० सं० १६७१ के करीब 'तारीख़ फ़रिश्ता' नामक इतिहास लिखा था। उस में लिखा[2] है कि जोधपुर के राव मालदेव के साथ के युद्ध में स्वयं बादशाह शेरशाह ने कहा:--

"ख़ुदाका शुक्र है कि, किसी तरह फ़तह हासिल हो गई, वरना मैंने एक मुट्ठी भर बाजरे के लिये हिन्दुस्तान की बादशाहत ही खोई थी।"

"अकबर नामा[3]" नामक इतिहास में राव मालदेवजी को हिन्दुस्तान के तमाम दूसरे रावों और राजाओं से बड़ा लिखा है, और "तुज़ुक जहाँगिरी" में उन्हें सेना और राज्य की विशालता में महाराणा सांगा (संग्रामसिंह) से भी बड़ा[4] बतलाया है। राव मालदेवजी की सेना में ८०,००० सिपाही थे।

---

१. जर्नल बंगाल एशियाटिक सोसाइटी, भा० ५६, अङ्क १, नं० २
२. (जिल्द १, मिकाला २, पेज २२८)
३. जिल्द २, पेज १६०,
४. दिबाचा (भूमिका), पेज ७,

राव मालदेवजी के पुत्र राव चन्द्रसेनजी के विषय में किसी कवि ने लिखा है:-

"अणदगिया तुरी ऊजला असमर, चाकर रहण न डिगियौ चीत।
सारे हिन्दुस्थान तणौ सिर पातल नै चन्द्रसेण प्रवीत।

अर्थात्—उस समय महाराणा प्रताप और राव चन्द्रसेन दोनों ने न तो शाही अधीनता ही स्वीकार की और न अपने घोड़ों पर शाही निशान का दाग़ ही लगवाया।

इसके अलावा स्वयं महाराणा प्रताप ने भी राव चन्द्रसेन द्वारा अंगीकृत मार्ग का ही (दस वर्ष बाद) अनुसरण किया था।

" आलमगीर नामे[1]" में महाराजा जसवंतसिंहजी प्रथम को "रुक्ने रकीने दौलत व सितूने कवीमें सल्तनत" (अर्थात्--रौब--दाब में सबसे बढ़कर और बादशाही सल्तनत का स्तंभ) लिखा है।

"मआसिरुल उमरा[2]" में महाराजा जसवन्तसिंहजी को फ़ौज और सामान की अधिकता से हिन्दुस्तान के राजाओं में सबसे बड़ा बतलाया है।

इन महाराजा ने औरंगज़ेब के समय ही बहुत सी मसजिदें गिरवाकर उनके स्थान पर मन्दिर[3] बनवा दिए थे। महाराजा जसवन्तसिंहजी के जीते जी बादशाह औरंगज़ेब की हिम्मत हिन्दुओं पर 'जज़िया' लगाने की नहीं हुई। इसीसे इनके मरने पर उसने फिर से 'जज़ियाँ' लगाया था।

जोधपुर-नरेश महाराजा अजितसिंहजी ने सैय्यद भ्राताओं से मिलकर बादशाह फ़र्रुख़सीयर को मरवा डाला, और फिर क्रमशः तीन बादशाहों को देहली के तख़्त पर बिठाया।

राठोड़ वीर दुर्गादास की कुशलता और वीरता की प्रसिद्धि आज तक चली आती है।

महाराजा रामसिंहजी की राठोड़ वाहिनी ने सम्मुख-रण में प्रवृत्त अपने शत्रु 'अमीरुल उमरा' (जुल्फ़िकार जंग) की सेना को मौके पर पानी पिलाकर अपनी उदारता का परिचय दिया था।

---

१. पृ० ३२
२. जिल्द ३, पृ० ६०३
३. सरकार लिखित-हिस्ट्री ऑफ़ औरंगज़ेब, भाग ३ पृ० ३६८-३६६
४. वी० ए० स्मिथ की—ऑक्सफोर्ड हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया, पृ० ४३८
५. सहरुल मुताखरीन, भाग ३, पृ० ८८५

कर्नल टॉड ने अपने 'राजस्थान के इतिहास'[1] में महाराजा बखतसिंहजी को राजस्थान (राजपूताने) में होनेवाले नरेशों में सर्वश्रेष्ठ और आदर्श नरेश माना है।

कर्नल टॉड ने अपने इतिहास में एक स्थान पर यहां तक लिखा है कि:--

"मुग़ल बादशाह अपनी विजयों में से आधी के लिये राठोड़ों की एक लाख तलवारों के एहसानमंद थे।"[2]

इस बीसवीं शताब्दी के यूरोपीय महायुद्ध में भी, अन्य राठोड़--नरेशों की सहायता के अलावा, जोधपुर-नरेश महाराजा सुमेरसिंहजी ने अपनी १६ वर्ष की अवस्था में और ईडर-नरेश महाराजा प्रतापसिंहजी ने अपनी ६९ वर्ष की आयु में रण-स्थल में पहुंच, जो क्षत्रियोचित आदर्श उपस्थित किया था, वह भी किसी से छिपा नहीं है।

इससे प्रकट होता है कि राष्ट्रकूट (राठोड़) सदा से ही प्रतापी और वीर[3] होते चले आए हैं, और इसी से ये राजस्थान में 'रणबंका राठोड़' के नाम से प्रसिद्ध हैं।

आगे राष्ट्रकूटों की वैयक्तिक वीरताओं के कुछ उदाहरण दिए जाते हैं---

अकबर नामे में लिखा है कि--'राव मालदेव के राज्य में जिस समय अकबर की सेना ने मेड़ता नामक नगर पर चढ़ाई की, उस समय जैतावत राठोड़ देवीदास ने अपने ४०० सवारों के साथ क़िले से निकल विशाल शाही सेना का ऐसी वीरता से मुकाबला किया कि रुस्तम का नाम और निशान दुनिया से मिटा दिया।'

उसी इतिहास से प्रकट होता है कि अकबर के चढ़ाई करने पर जब महाराणा उदयसिंह को पहाड़ों में जाना पड़ा, तब चित्तोड़ के क़िले की रक्षा का भार मेड़तिया राठोड़ जैमल ने ग्रहण किया और अपने जीते जी अकबर को सफल न होने दिया। परन्तु उसके मारे जाते ही क़िला बादशाह के अधिकार में चला गया।

१. (क्रुक संपादित) भा० २ पृ० १०५७,

2. The Moghul Emperors were indebted for half their conquest to the 'Lakh Tarwar Rathoran,' the 1,00,000 swords of the Rathors (Annals and Antiquities of Rajsthan (edited by W. Crooke), Vol. I, pp 105—106.

३. जोधपुर नरेशों के प्रताप और वीरता का पूरा-पूरा विवरण उनके इतिहास में यथास्थान मिलेगा।

४. दफ्तर २, पृ० १६२

५. 'अकबरनामा', दफ्तर २, पृ० ३२०-३२१,

बीसवीं शताब्दी के यूरोपीय महायुद्ध के समय भी जोधपुर के रिसाले ने जो वीरता दिखलाई थी, उस की ब्रिटिश और भारत गवर्नमेंट ने मुक्त कंठ से प्रशंसा की थी। उदाहरणके लिये ई० सन् १९१८ की २३ सितंबरकी घटनाका विवरण ही पर्याप्त होगा।

उस समय टर्की के शत्रु पक्ष में मिल जाने से मिस्र (इजिप्ट) के रणस्थल मे भीषण युद्ध हो रहा था। इसी से ई० सन् १९१८ के मार्चमें जोधपुर-रिसाले को पश्चिम के रणक्षेत्र से हटाकर पूर्व के रणक्षेत्र में भेजा गया। जिस समय यह रिसाला हैफा के सामने पहुंचा, उस समय उस नगर को टर्की के युद्ध विशारदों ने पूर्ण रूप से सुरक्षित कर रक्खा था और वे इस रिसाले को देखतेही वहां के सुरक्षित मोरचों में बैठ भीषण नाद के साथ आग उगलनेवाली अपनी तोपों से इस पर गोले बरसाने लगे। वहां पर जोधपुर रिसाले के और हैफा के बीच नदी की प्राकृत बाधा होने से शत्रु की स्थिति और भी सुरक्षित हो रही थी। यह देख अनुभवी और कुशल ब्रिटिश सेनापति भी एका एक आगे बढने की हिम्मत न करसके। परन्तु मारवाड़ के वीरों को शत्रु के सामने पहुँच पीछे पैर रखना सह्य न हुआ। इसी से इन्होंने अपने सेनापति की अधिनायकता में अपने चमचमाते हुए भालों को सम्हाल कर शत्रु पर आक्रमण कर दिया। इन्हें इस प्रकार मृत्यु को आलिंगन करने के लिये आगे बढ़ते देख, शत्रु ने इन्हें नदी के उस पार रोक रखने के लिये, अपनी गोला-वृष्टि को और भी तीव्रतम कर दिया। परन्तु जोधपुर-रिसाले ने इसकी कुछ भी परवाह न की और कुछ ही देर में नदी, शत्रु की गोला-वृष्टि और उसके सुदृढ़ मोरचों की बाधाओं को पार कर हैफा नगर पर अधिकार कर लिया। इस युद्ध में राजपूतों के भालों से अनेक तुर्क-योद्धा मारे गए और करीब ७०० ज़िन्दा पकड़े गए।

इसी प्रकार ई० स० १९१८ की १४ जुलाई के जार्डन की घाटी के युद्ध में भी जोधपुर के रिसाले ने अद्भुत वीरता दिखलाई थी[1]।

---

१. इन कार्यों का उल्लेख ब्रिटिश सेनापतियों के खलीतों (Despatches) मे और भारत के उस समय के वाइसराय लार्ड चैम्सफोर्ड की २० नवंबर १९२० की जोधपुर की वक्तृता में विशद रूपसे मिलता है। वायसराय ने अपने भाषण में कहा था कि—

"By their exploits at Haifa and in the Jorden Valley recalled the deeds of their ancestors who fought at Tonga, Merta and Patan. The reputation which they have gained is well worthy of the glorious annals of Marwar."

जोधपुरके राष्ट्रकूट नरेशोंका विद्याप्रेम और उनकी दानशीलता ।

जोधपुर (मारवाड़) के राठोड़ नरेश भी अपने पूर्वजों के समान ही विद्वानों और कवियों के आश्रयदाता थे और अपने समय के कवियों आदि का दान और मान से सत्कार करते रहते थे। इसके अलावा इनमें के कुछ नरेश स्वयं भी अच्छे विद्वान थे और उनके या उनके वंशजों के बनाए[1] या बनवाए[2] ग्रन्थ इस समय तक भी आदर की दृष्टि से देखे जाते हैं।

प्राचीन ख्यातों और प्राचीन काव्यों से प्रकट होता है कि राजा गजसिंहजी ने अपने समय के १४ कवियों को 'लाख पसावे'[3] दिया था। इन्हीं के समय हेम कवि[4] ने 'गुण भाषाचित्र' और गाडण शाखा के चारण कवि केशवदास ने 'गुण रूपक' नामक काव्य लिखे थे। ये दोनों काव्य डिंगल भाषा के हैं और इनमें राजा गजसिंहजी के वीर-चरित्र का वर्णन है। उपर्युक्त कवियों में से पहले कवि को कितना पुरस्कार मिला यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। परन्तु दूसरे कवि को १५०० रुपये वार्षिक आय की जागीर मिली थी।

राजा गजसिंहजी के उत्तराधिकारी महाराजा जसवन्तसिंहजी प्रथम विद्वानों के आश्रयदाता होने के साथ ही स्वयं भी विद्वान थे। इनके लिखे भाषा-ग्रन्थों के नाम इस प्रकार हैं:—

(१) भाषाभूषण — अलङ्कार[5]

अर्थात्–जोधपुर के वीरों ने हैफा और जार्डन में किए अपने वीरतापूर्ण कार्यों से अपने पूर्वजों के तुङ्गां, मेड़ता और पाटन में किए युद्धों की याद करवा दी। इस रिसाले के वीरों ने जो प्रशंसा प्राप्त की है, वह मारवाड़ की वीरतापूर्ण प्राचीन गाथाओं के अनुकूल ही है।

१. जोधपुर बसाने वाले राव जोधाजी की प्रपौत्री (राव दूदाजी की पौत्री और रत्नसिंहजी की पुत्री) मीरांबाई के भजन और नरसीजी का मायरा आदि सर्व प्रसिद्ध हैं। इनका विवाह मेवाड़ के राणा संग्रामसिंह (प्रथम) के ज्येष्ठ पुत्र भोजराजजी के साथ हुआ था।

२. राव वीरमजी और उनके पुत्र गोगादेव के यशोवर्णन में ढाढी जाति के कवि बहादर ने डिंगल भाषा का "वीरमायण" नामक काव्य लिखा था।

३. राजस्थान में कवियों को 'लाख पसाव' देने का यह नियम था कि, जिसे यह पुरस्कार दिया जाता था, उसे वस्त्र, आभूषण, हाथी, घोड़ा और कमसे कम एक हज़ार से पांच हज़ार तक वार्षिक आयकी जागीर दी जाती थी।

४. हेम कवि ने 'गुणरूपक' नाम का एक अन्य काव्य भी लिखा था।

५. यह ग्रन्थ नागरी प्रचारिणी सभा, बनारस द्वारा प्रकाशित हुआ है।

(२)	आनन्दविलास	वेदांत[1] (इनमें के चार ग्रन्थ पद्यमय हैं और 'सिद्धान्त-बोध' में गद्य और पद्य दोनों हैं।)
(३)	अनुभवप्रकाश	
(४)	अपरोक्षसिद्धान्त	
(५)	सिद्धान्तबोध	
(६)	सिद्धान्तसार	
(७)	चन्द्रप्रबोध	(यह नाटक संस्कृत के 'प्रबोधचन्द्रोदय' नामक नाटक का अनुवाद है।)
(८)	पूली जसवन्त संवाद और फुटकर दोहे और कुण्डलिये	वेदान्त विषयक।
(९)	आनन्दविलास	यह संस्कृत पद्यों में है, और इसका विषय भी भाषा के 'आनन्दविलास' के समान वेदान्त ही है।

इनके अलावा नायिका भेद पर भी महाराज की लिखी एक पुस्तक बतलाई जाती है।

महाराजा जसवन्तसिंहजी प्रथम के पुत्र महाराजा अजितसिंहजी के समय के तीन काव्य मिले हैं। इनमें से दीक्षित बालकृष्ण रचित 'अजितचरित्र' और भट्ट जगजीवन कृत 'अजितोदय' संस्कृत के और 'अजितचरित' भाषा का है। महाराज ने ब्राह्मणों और चारणों को करीब ३५ गांव दान दिए थे[2]।

स्वयं महाराजा अजित के बनाए भाषा के दो ग्रन्थ मिले हैं। एक 'गुणसार'[3] और दूसरा 'भाव विरही'[4]।

मिश्रबन्धु विनोद[5] में इनके बनाए अन्य ग्रन्थों के नाम इस प्रकार मिलते हैं:-

> दुर्गापाठ भाषा, राजरूप का ख्याल, निर्वाणी दोहा, ठाकुरों (आदि) के दोहे, भवानी सहस्रनाम और फुटकर दोहे।

---

१. जोधपुर दरबार की आज्ञा से इस इतिहास के लेखक ने, इन पांचों ग्रन्थों को संपादित कर (वेदान्तपंचक के नाम से) गवर्नमैंट प्रेस, जोधपुर से प्रकाशित करवाया है।

२. इन्हीं के समय पण्डित श्यामराम ने 'ब्रह्माण्डवर्णन' नामक काव्य लिखा था।

३. प्रथम वरण शृङ्गार को, राजनीति निरधार।
जोग जुगति यामें सबै, ग्रन्थ नाम गुणसार॥

४. यह साहित्य का ग्रन्थ है।

५. भाग २, पृ. ५५६-५५७

अजितसिंहजी के पुत्र महाराजा अभयसिंहजी के समय के बने तीन काव्यों में से भट्ट जगजीवन का बनाया 'अभयोदय' संस्कृत में और कविया शाखा के चारण करणीदान का बनाया 'सूरजप्रकाश' और रतनू शाखा के चारण वीरभाण का बनाया 'राजरूपक' डिंगल भाषा में हैं। सूरजप्रकाश के कर्त्ता ने ही अपने काव्य के आशय को १२६ पद्धरी छन्दों में लिख कर उसका नाम 'बिड़दसिणगार' रख दिया था। इन्हीं दोनों काव्यों के पुरस्कार में महाराजा ने करणीदान को २००० रुपये वार्षिक आय की जागीर दी थी। परन्तु अभाग्यवश वीरभाण को शीघ्र ही मारवाड़ छोड़ कर चला जाना पड़ा और इसीसे उसका काव्य महाराजा अभयसिंहजी के सामने पेश न होसका। अन्त में करीब १०० वर्ष बाद जब महाराजा मानसिंहजी ने उस काव्य को देखा, तब उन्होंने कवि के आभार से उऋण होने के लिये वीरभाण के वंशज का पता लगवाकर, उसके अशिक्षित होने पर भी, उसे ५०० रुपये वार्षिक आय की जागीर दी।

'सूरजप्रकाश' के एक छप्पय से प्रकट होता है कि महाराजा अभयसिंहजी ने १४ 'लाख पसाव' दिए थे।[1]

इन्हीं के समय सांदू शाखा के चारण कवि पृथ्वीराज ने 'अभयविलास' नाम का भाषा-काव्य लिखा था।

महाराजा बखतसिंहजी की डिंगल भाषा में लिखी एक देवीस्तुति और कुछ भजन मिले हैं।

महाराजा भीमसिंहजी के समय रामकर्ण कवि ने 'अलङ्कारसमुच्चय' नामक भाषा-ग्रन्थ लिखा था।

ऊपर जिन महाराजा मानसिंहजी का उल्लेख आ चुका है, वह भी विद्वानों और कवियों के आश्रयदाता होने के साथ ही स्वयं भी संस्कृत और भाषा के

१. 'बारठ नरहर बगस एक लख प्रथम उजागर।
कवि आढा किशन नूं अवे लख दुवौ क्रीतवर॥
अभंग खेम धधवाड़ दोय लख हाथे दीधा।
हरि संढायच हेक लाख अव बहु जस लीधा॥
लह हेक लाख महड्ड बलू लख त्रण सांदू नाथ लह।
आढा महेस हू रीझ अति पांच लाख दीधा सुपह॥ १॥

अच्छे विद्वान् थे। उनके बनाए ग्रन्थों के नाम आगे दिए जाते हैं:–

(१) नाथ चरित्र (संस्कृत गद्यात्मक काव्य।)
(२) विद्वज्जनमनोरंजनी (संस्कृत–मुण्डकोपनिषद् की टीका प्रथम खंड[2]।)
(३) कृष्णाविलास[3] (भागवत के दशम स्कन्ध का भाषा में पद्यात्मक अनुवाद।)
(४) टीका[4] (भागवत की मारवाड़ी भाषा की टीका।)
(५) चौरासी पदार्थ नामावली } भाषापद्यात्मक (इसमें न्याय, साहित्य, संगीत, वैद्यक, आदि अनेक विषय हैं।

(६) जलंधरचरित
(७) नाथचरित
(८) जलंधरचन्द्रोदय
(९) नाथपुराण
(१०) नाथस्तोत्र
(११) सिद्धगंगा, मुक्ताफल, संप्रदाय आदि
(१२) प्रश्नोत्तर
(१३) पदसंग्रह
(१४) शृङ्गार रस की कविता
(१५) परमार्थ विषय की कविता (भाषा की स्फुट कविता का बड़ा संग्रह)
(१६) नाथाष्टक
(१७) जलंधर ज्ञानसागर
(१८) तेजमञ्जरी
(१९) पंचावली
(२०) स्वरूपों के कवित्त
(२१) स्वरूपों के दोहे
(२२) सेवासार
(२३) मानविचार
(२४) आराम रोशनी
(२५) उद्यानवर्णन

---

१. मिश्रबन्धु विनोद में इनके कुछ अन्य ग्रन्थों के नाम इस प्रकार मिलते हैं:–रागारो जीलो, बिहारी सतसई की टीका, रागसागर, श्रीनाथजी रा दोहा, नाथप्रशंसा, वंशावली (?), नाथजी की वाणी, नाथकीर्तन, नाथमहिमा, नाथसंहिता, रामविलास, फुटकर कवित्त, सवैये, दोहे आदि। (भा॰ २, पृ॰ ८६१–८६२)

२. इन्हीं महाराजा मानसिंहजी की आज्ञासे श्रीकृष्ण शर्मा ने उक्त उपनिषद् के द्वितीय और तृतीय खण्डों की 'सारग्राहिणी' (संस्कृत) टीका और भीष्मपति ने उक्त उपनिषद् की भाषा टीका बनाई थी। यह पिछली टीका अपूर्ण है।

३. जोधपुर दरबार की आज्ञा से इस इतिहास के लेखक ने इसके ३२ अध्यायों को संपादित कर गवर्नमेंट प्रेस, जोधपुर से प्रकाशित करवाया है।

४. इस समय इसका तीसरा और पांचवां स्कन्ध ही उपलब्ध है।

आपकी भटियानी रानी प्रताप कुंवरिजी ने भी भगवद्भक्तिपूर्ण अनेक छोटे छोटे ग्रन्थ लिखे[1] थे।

इन्हीं महाराज के समय बांकीदास आदि अनेक कवियों ने 'मानजसोमण्डन' आदि अनेक कवित्वपूर्ण ग्रन्थ लिखकर एकाधिक वार पुरस्कार प्राप्त किया था[2]।

महाराजा मानसिंहजी के उत्तराधिकारी महाराजा तखतसिंहजी ने भी अनेक पदों की रचना की थी। आपकी जाडेजा वंश की रानी प्रतापकुंवरिजी (प्रतापबाला) ने 'हरिपदावली' और 'रामपदावली' नाम के दो ग्रन्थ[3] लिखे थे। इनमें भक्तिरस भरे सुन्दर भजन हैं।

१. आप के बनाए ग्रन्थों का संग्रह ईडर की महारानी रत्नकुंवरिजी ने प्रकाशित करवाया है। उसमें उनके बनाए निम्नलिखित ग्रन्थ हैं:—१ ज्ञानसागर, २ ज्ञानप्रकाश, ३ प्रतापपचीसी, ४ प्रेमसागर, ५ रामचन्द्र नाम महिमा, ६ रामगुणसागर, ७ रघुवर स्नेह लीला, ८ रामप्रेम सुखसागर, ६ राम सुजस पचीसी, १० पत्रिका, ११ रघुनाथजी के कवित्त, १२ भजन पद हरिजस, १३ प्रताप-विनय, १४ श्रीरामचन्द्र विनय, १५ हरिजसगायन।

(मारवाड़ी भजन सागर,–कवियों का परिचय, पृ० १६—१७)

२. महाराजा मानसिंहजी के समय के बने कुछ अन्य ग्रन्थ:—

कवि शंभुदत्त कृत 'नाथचन्द्रोदय', 'जलंधरस्तोत्र' और 'राजकुमारप्रबोध'; पण्डित सदानन्द त्रिपाठी कृत 'अवधूतगीता' की संस्कृत टीका, गीताकी 'सिद्धतोषिणी' नामकी संस्कृत टीका और 'जलंधराष्टक' की 'आत्मदीप्ति' नामकी (संस्कृत) टीका; पण्डित विश्वरूप कृत 'गोरक्ष-सहस्र-नाम' की टीका, 'मेघमाला' (संस्कृत पद्यात्मक); भीष्म भट्ट कृत 'विवेकमार्तण्ड' की 'योगितोषिणी' टीका; मूलचन्द्र यति कृत 'मानसागरी महिमा', 'नायिकालक्षण'; सेवग दौलतराम कृत 'जलंधर-गुण-रूपक'; शिवनाथ कवि कृत 'जलंधर जस वर्णन'; सेवग वगीराम गाडूराम कृत 'जलंधर जस भूषण', और 'मानसिंह जस रूपक'; कवि बांकीदास कृत 'नाथस्तुति'; चारण चैना कृत 'जलंधरस्तुति'; व्यास ताराचन्द कृत 'नाथानन्द प्रकाशिका'; मीर हैदर अली कृत 'जलंधरस्तुति'; सुकालनाथ कृत 'नाथ आरती'; सेवग पन्ना कृत 'नाथ उत्सव माला'; चारण सेणीदान और भंडारी पीरचन्द कृत 'नाथस्तुति'; और विप्र गुमान कृत भागवत दशम स्कन्ध के ४६ से ६१ तक के अध्यायों का भाषा पद्यानुवाद आदि। इनके अलावा महाराजको प्रसन्न करने के लिये बहुत से अन्य कवियों ने अनेक नाथाष्टक, जलंधराष्टक और फुटकर गीत, कवित्त, दोहे आदि भी लिखे थे।

महाराजा मानसिंहजी की एक परदायत तुलछराय भी भगवद्भक्ति-पूर्ण-भजन-रचना में प्रवीण थी। (मारवाड़ी भजन सागर 'कवियों की जीवनी' पृ० ११—१२)

३. आपकी कविताओं का 'संग्रह प्रतापकुँवरि-पद-रत्नावली' के नाम से प्रकाशित हो चुका है।

(मारवाड़ी भजन सागर, कवियों की जीवनी, पृ० १०—११)

आपकी बघेल वंश की रानी रणछोड़कुंवरि जी भी भक्ति-पूर्ण पदों के बनाने में प्रवीण थीं।

महाराजा तखतसिंहजी के उत्तराधिकारी महाराजा जसवन्तसिंहजी[1] द्वितीय के समय महामहोपाध्याय कविराजा मुरारिदान ने 'यशवन्त-यशो-भूषण' नाम का ग्रन्थ लिखा था, और इसके संस्कृत और भाषा के दो-दो संस्करण[2] तैयार किए गए थे। इस पर महाराजा ने कवि को लाख पसाव में पांच हजार रुपये वार्षिक आय की जागीर देकर सम्मानित किया था।

इनके अलावा इन नरेशों के समय अनेक कवियों ने इनकी प्रशंसा में सैंकड़ों गीत, कवित्त, दोहे आदि बनाए थे और इन्होंने भी अपनी गुण-ग्राहकता दिखलाने में कमी नहीं की थी। कई ऐसे भी अवसर आए थे जब कवि की एक छोटी सी उक्ति से प्रसन्न होकर इन नरेशों ने उन्हें अच्छी आय के अनेक गांव दे डाले थे। इन नरेशों की दान और मान में दी हुई सैंकड़ों जागीरें इस समय भी कवियों और वीरों के वंशजों के अधिकार में चली आती हैं।

महाराजा मानसिंहजी ने काशी, नेपाल आदि अनेक नगरों से संस्कृत के और राजपूताने के अनेक स्थानों से डिंगल आदि भाषाओं के ग्रन्थ अथवा उनकी नकलें मँगवाकर जोधपुर के किले में 'पुस्तकप्रकाश' नामक पुस्तकालय की स्थापना की थी। यद्यपि उनके स्वर्गवास के बाद उसकी तरफ़ विशेष ध्यान नहीं दिया जाने से वहां की बहुतसी पुस्तकें इधर-उधर हो गई हैं, तथापि इस समय भी उसमें १६७८ संस्कृत की और १०६४ डिंगल आदि भाषाओं की

इन्हीं की समकालीन बीरां के बनाए कृष्ण--भक्ति से पूर्ण कुछ भजन मिलते हैं। परन्तु इसका जोधपुर राज-घराने से क्या संबंध था यह अज्ञात है।

(मारवाड़ी भजन सागर, कवियों की जीवनी, पृ० २१)

१. महाराजा जसवन्तसिंहजी (द्वितीय) के छोटे भ्राता महाराजा प्रतापसिंहजी की भटियानी रानी रत्नकुंवरिजी और महाराज किशोरसिंहजी की बघेल रानी विष्णुप्रसादकुंवरिजी भी हरि-भक्ति-पूर्ण पद बनाने में कुशल थीं।

बघेलीजी ने १ अवधविलास, २ कृष्णविलास और ३ राधा-रास-विलास नाम के ग्रन्थ बनाए थे।

(मारवाड़ी भजन सागर, कवियों की जीवनी, पृ० ३५, १६)

२. एक संक्षिप्त और दूसरा बड़ा।

हस्तलिखित पुस्तकें विद्यमान हैं। जिस प्रकार संस्कृत की पुस्तकों में वेद, पुराण, दर्शन, साहित्य, काव्य आदि सब विषयों की पुस्तकें होने पर भी योग विषयक ग्रन्थों की संख्या अधिक है, उसी प्रकार भाषा में भी अन्य विषयों के ग्रन्थों से योग-विषयक ग्रन्थ अधिक हैं। इसका कारण महाराजा मानसिंहजी का इस विषय से अधिक प्रेम होना ही सिद्ध होता है।

इस 'पुस्तकप्रकाश' में महाराजा जसवन्तसिंहजी प्रथम रचित ग्रन्थों का संग्रह होने से अनुमान होता है कि इस पुस्तकालय का सूत्रपात उनके समय (अर्थात् विक्रम की १८ वीं शताब्दी के प्रारम्भ) से ही हो चुका था। वि० सं० १७७६ से १७८९ (ई० स० १७१९ से १७३२) के बीच नकल किए गए महाभारत, पुराण और काव्य-ग्रन्थों से प्रकट होता है कि महाराजा अजितसिंहजी और महाराजा अभयसिंहजी के समय भी इस संग्रह में वृद्धि हुई थी। इसी प्रकार वल्लभ संप्रदायके ग्रन्थों की संख्या से पता चलता है कि इनका संग्रह महाराजा विजयसिंहजी के समय किया गया होगा। परंतु इसकी वास्तविक उन्नति महाराजा मानसिंहजी के समय ही हुई थी।

इसके अलावा 'पुस्तकप्रकाश' में जो लेखक नियत थे वे अन्य कार्य न होने पर वहां की पुस्तकों की नकलें तैयार किया करते थे। इससे इन नकलों की संख्या को मिला देने से संस्कृत पुस्तकों की संख्या १६७८ से ३०५७ और हिंदी पुस्तकों की संख्या १०९४ से १८४१ तक पहुंच जाती है। परंतु यह भी सम्भव है कि महाराजा मानसिंहजी की तरफ़ से समय-समय पर इस प्रकार तैयार की गई अनेक विषयों के ग्रन्थों की नकलें प्रेस के अभाव में विद्या प्रचार के लिये विद्वानों और विद्यार्थियों में बांटी जाती हों और इसीसे कुछ लेखक नियत किए गए हों। 'पुस्तकप्रकाश' में सब से पुरानी पुस्तक वि० सं० १४७२ (ई० स १४१५) की लिखी हुई है।

जोधपुर के राष्ट्रकूट (राठोड़) नरेशों का धर्म।

जोधपुर-नरेशों की कुलदेवी चामुण्डा है, जो प्राचीन विश्वास के अनुसार श्येन का रूप धर इनके राज्य की रक्षा करती है। इसी से इन राजाओं के झन्डे या निशान पर श्येन-पक्षी का चिह्न बना रहता है। परन्तु इन नरेशों ने समय-समय पर वैष्णव और शैव मतों को भी बड़ी श्रद्धा से आश्रय दिया था। जोधपुर नरेश महाराजा विजयसिंहजी परम वैष्णव थे। उनके राज्य समय जोधपुर नगर में मांस[1] और मदिरा का प्रचार बिलकुल बंद करदिया गया था। इस आज्ञा के उल्लंघन करने वाले को, चाहे वह कितना ही प्रभावशाली क्यों न हो, कठोर से कठोरतर दण्ड दिया जाता था[2]। इनके दिए अनेक गाँव इस समय तक भी वल्लभ-संप्रदाय वालों के अधिकार में चले आते हैं।

महाराजा मानसिंहजी के समय शैव[3]मत के अङ्गभूत नाथ-संप्रदाय का विशेष प्रभाव रहा और उक्त संप्रदाय के आचार्य उस समय में मिले अनेक गाँवों आदि का उपभोग अब तक करते चले आरहे हैं।

इन राठोड़ नरेशों के समय उपर्युक्त पौराणिक मतों के अलावा जैन मत को भी अच्छा अवलम्ब मिला था। इसी से मारवाड़ में इस संप्रदाय का अच्छा प्रचार चला आता है।

---

१. उस समय पशुवध का निषेध होने से कसाइयों को मकानों के छतों की पट्टियां (छीनें) और बड़े-बड़े पत्थर उठाने का काम सौंपा गया था। उनके वंशज इस समय तक भी वही काम करते हैं और 'चॅवालियें' कहलाते हैं।

२. महाराज ने आउवा ठाकुर जैतसिंह के इस आज्ञा का उल्लंघन करने पर उसे प्राण दण्ड दिया था।

३. राजा शूरसिंहजी ने चांदपोल दरवाज़े के बाहर रामेश्वर महादेव का मन्दिर बनवाया था। उसके पुजारियों को राज्य की तरफ़ से जागीर मिली हुई है।

जोधपुर के राष्ट्रकूट (राठोड़) नरेशों का कलाकौशल-प्रेम ।

इन नरेशों का कला-कौशल की उन्नति पर भी विशेष ध्यान रहा है। इसका प्रमाण जोधपुर के सुन्दर और सुदृढ किले को, जिसकी स्थापना राव जोधाजी ने वि० सं० १५१६ (ई० स० १४५९) में की थी, देखने से आपही आप मिल जाता है। इस में जोधाजी के और उनके बाद होने वाले उनके उत्तराधिकारियों के बनावाए अनेक सुन्दर महल आदि विद्यमान हैं।[1]

जोधपुर नगर की शहरपनाह पहले पहल राव मालदेवजी ने बनवाई थी। परन्तु महाराजा बखतसिंजी ने शहर के घेरे के बढ़ जाने से इसका विस्तार किया। इसके अलावा मारवाड़ राज्य के वैभव की उत्तरोत्तर वृद्धि और उसके साथ साथ यहां के नरेशों की क्रमशः बढ़ती हुई कला-कौशल की अभिरुचि का प्रमाण यहां के कुछ राजाओं पर बने मंडोर के देवल (Cenotaphs.) हैं। इनको देखने से अनुमान होता है कि जिस प्रकार राव मालदेवजी, राजा उदयसिंहजी, सवाई राजा शूरसिंहजी, राजा गजसिंहजी, महाराजा जसवन्तसिंहजी और महाराजा अजितसिंहजी के समय मारवाड़ राज्य की उत्तरोत्तर उन्नति होती गई, उसी प्रकार उनके नाम पर बने देवलों (Cenotaphs) के आकार और उनकी स्थापत्य कला में भी वृद्धि होती गई।

इनके अलावा महाराजा अजितसिंहजी के समय का बना मंडोर का एक-थंभिया महल, पहाड़ काटकर बनवाई वीरों आदि की मूर्तियां और उनके उत्तराधिकारी महाराजा अभयसिंहजी के समय पहाड़ काट कर तैयार की गई देवताओं आदि की मूर्तियां[2] भी विक्रम की अठारहवीं शताब्दी की मारवाड़ की स्थापत्य-कला के अच्छे नमूने हैं।

---

१. कहते हैं कि किले पर का प्रसिद्ध मोतीमहल सवाई राजा शूरसिंहजी ने, फ़तैमहल और दौलतखाना महाराजा अजितसिंहजी ने और फूलमहल महाराजा अभयसिंहजी ने बनवाया था। इसी प्रकार शृङ्गार चौकी, जिस पर नवीन महाराजाओं का राज-तिलक होता है, महाराजा विजयसिंहजी ने बनवाई थी।

२. इस समय इन मूर्तियों पर चूने की कली की हुई होने से इनकी असली कारीगरी नहीं देखी जासकती।

मारवाड़ के नरेशों ने अनेक नए क़िले और महल बनवाए थे; और बहुत से पुराने क़िलों की मरम्मत करवा कर उनमें कई नवीन स्थान आदि तैयार करवाए थे। इनमें राव मालदेवजी का बनवाया अजमेर के क़िले में बींटली का कोट और चश्मे से क़िले में पानी चढ़ाने का मार्ग और (राव अमरसिंहजी और) महाराजा बखतसिंहजी के बनवाए नागोर के क़िले में के महल सराहनीय हैं। नागोर के क़िले का 'आबहवामहल, दिल्ली या आगरे के शाही महलों से बहुत कुछ समानता रखता है।

महाराजा सरदारसिंहजी के समय बना महाराजा जसवंतसिंहजी (द्वितीय) का संगमरमर का देवल (Cenotaph) विक्रम की बीसवीं शताब्दी का अत्युत्तम नमूना है। इसी प्रकार जोधपुर का जुबली कोर्ट्स (Jubilee Courts.) नाम का न्यायालय भी इसी शताब्दी का सुन्दर भवन है।

मारवाड़ के वर्तमान नरेश महाराजा उम्मैदसिंहजी साहब के समय बना विण्ढम अस्पताल, विलिङ्गडन बग़ीचा, उसमें का अजायबघर और पुस्तकालय का भवन और बालसमंद और मण्डोर के बग़ीचों को दिया गया नया दर्शनीय रूप भी बहुत ही सुन्दर है। इनके अलावा महाराजा साहब का छीतर नामक पहाड़ी पर का भव्य भवन भी, जो इस समय बन रहा है, जब तैयार हो जायगा, तब राजपूताने भर में एक अपूर्व महल होगा।

मारवाड़ नरेशों के आश्रय के कारण यहां के कारीगर भी बड़े ही सिद्धहस्त होते थे। उनकी बनाई विशाल तोपें, और बंदूकें इस समय भी देखने वालों को आश्चर्य में डाल देती हैं।

इन सब के अलावा महाराजा मानसिंहजी के समय बने चित्रों का संग्रह भी अपूर्व है। यह इस समय राजकीय अजायबघर में रक्खा हुआ है। इसमें अन्य अनेक चित्रों के अलावा करीब ४९६ चित्र, जिनमें से प्रत्येक की लंबाई करीब ४ फुट और चौड़ाई करीब १$\frac{१}{२}$ फुट के है ऐसे हैं, जिन पर समग्र रामायण, दुर्गाचरित, शिवपुराण आदि हिन्दू-धर्म के ग्रन्थों की कथाऐं चित्रित हैं। इसके अलावा ७३४ चित्रों में जो करीब १ फुट लंबे और आध फुट चौड़े हैं, सूरजप्रकाश नामक इतिहास का कुछ अंश, भागवत के दशमस्कन्ध का पूर्व भाग, पंचतंत्र और ढोला मारवण की कथाएं अंकित हैं।

इस संग्रह की प्रशंसा इसको देखने वाले बड़े-बड़े विद्वानों ने की है । महाराजा मानसिंहजी, जिनके समय में यह संग्रह तैयार करवाया गया था, अन्य अनेक कलाओं के भी मर्मज्ञ थे। इसी से उनके विषय में यह दोहा प्रसिद्ध है:—

जोध बसायो जोधपुर, व्रज कीनो व्रजपाल ।
लखनेऊ काशी दिली, मान कियो नेपाल ॥

अर्थात्—राव जोधाजी ने जोधपुर बसाया, महाराजा विजयसिंहजी ने वैष्णवमत में दृढ भक्ति होने से उसे व्रज बनादिया । (उनके समय यहां पर वल्लभ-संप्रदाय के अनेक मन्दिर बन गए थे।) परन्तु महाराजा मानसिंहजी ने उसे लखनऊ, काशी, दिल्ली, और नेपाल बनादिया। (उनके समय उनकी गुणग्राहकता के कारण यहां पर बहुत से कत्थक, संस्कृत के पंडित, गवैये, और योगी या नाथ-संप्रदाय के लोग इकट्ठे हो गए थे।)

मारवाड़ के राठोड़ नरेश

राव सीहाजी

इस इतिहास के प्रथम भाग (राष्ट्रकूटों के इतिहास) में लिखा जाचुका है कि इतिहास-प्रसिद्ध राठोड़-नरेश जयचन्द्र (जयच्चन्द्र) के शहाबुद्दीन गोरी के हमले में मारे जाने पर भी कन्नौज के आस-पास का प्रदेश उस (जयचन्द्र) के पुत्र हरिश्चन्द्र के अधिकार में ही रहा था। सम्भवतः इसी हरिश्चन्द्र की उपाधि या दूसरा नाम वरदायीसेन[1] था। परन्तु वि० सं० १२५३ के बाद जब मुसलमानों के आक्रमणों से हरिश्चन्द्र का रहा-सहा राज्य भी जाता रहा, तब वरदायीसेन के पुत्र

१. यह भी सम्भव है कि वरदायीसेन हरिश्चन्द्र का छोटा भाई हो। परन्तु रामपुर और खिमसेपुर के इतिहासों में सीहाजी को प्रहस्त का पौत्र लिखा है। यह प्रहस्त शायद हरिश्चन्द्र का ही बिगड़ा हुआ रूप है। इसीसे हम भी हरिश्चन्द्र और वरदायीसेन को एक ही व्यक्ति अनुमान करते हैं।

जिस प्रकार जयचंद्र की उपाधि "दलपुंगल" थी उसी प्रकार हरिश्चन्द्र की उपाधि "वरदायी-सैन्य" होना भी सम्भव है।

सेतराम और सीहाजी खोर (शम्साबाद) की तरफ़ चले गए और कुछ दिन बाद मोधा की तरफ़ होते हुए महुई[1] में जा रहे। परन्तु जब उक्त प्रदेश में भी मुसलमानों का उपद्रव प्रारम्भ हो गया, तब इन्हें और सेतराम को मारवाड़ की तरफ आना पड़ा। सम्भव है, विदेश में आ जाने पर सेतराम ने अपने छोटे भाई सीहाजी को ही अपना दत्तक पुत्र मान लिया हो।

१. महुई गाँव फ़र्रुख़ाबाद ज़िले में है। वहाँ पर काली नदी के किनारे बने सीहाजी के निवासस्थान के खण्डहर अब तक विद्यमान हैं और लोग उन्हें 'सीहा राव का खेड़ा' के नाम से पुकारते हैं।

२. शम्सुद्दीन अल्तमश पहले बदायूं का शासक था। (क्रॉनॉलॉजी ऑफ़ इण्डिया, पृ० १७६।) परन्तु वि० सं० १२६८ (ई० स० १२११) में वह दिल्ली के तख़्त पर बैठा, और उसके बाद उसकी सेना ने खोर विजय किया। खोर (शम्साबाद) की तरफ़ के लोग इस घटना का समय वि० सं० १२७१ की चैत्र (सुदि) ३ रविवार अनुमान करते हैं। परन्तु श्रीयुत आर० डी० बैनर्जी शम्सुद्दीन के कन्नौज-विजय करने का समय वि० सं० १२८३ (ई० सं० १२२६) मानते हैं। (जर्नल बङ्गाल एशियाटिक सोसाइटी, भा० १२ नं० ११, पृ० ७६६)

मारवाड़ की ख्यातों में सीहाजी का वि० सं० १२१२ में मारवाड़ में आना लिखा है। परन्तु जब कन्नौज-नरेश जयचन्द्र स्वयं ही वि० सं० १२५० में मारा गया था, तब उसकी सन्तान का इस घटना से ३८ वर्ष पूर्व मारवाड़ में आना कैसे सम्भव हो सकता है?

कर्नल टॉड ने अपने 'ऐनल्स ऐण्ड ऐण्टिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान' नामक इतिहास (भा० २, पृ० ६४०) में सीहाजी के, कन्नौज छोड़ कर, मारवाड़ में आने का समय वि० सं० १२६८ (ई० स० १२१२) लिखा है। जनरल कनिङ्गहम इस घटना का वि० सं० १२८३ (ई० स० १२२६) में होना मानते हैं। (कनिङ्गहम की आर्कियोलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट, भा० ११, पृ० १२३)

विक्रम की १७ वीं शताब्दी के लेखक मुहणोत नैणसी ने अपने इतिहास में एक स्थल पर सीहाजी का विवाह सोलंकी जयसिंह की कन्या से होना लिखा है। यदि उसका लिखना ठीक हो, तो यह जयसिंह (जयन्तसिंह) द्वितीय की कन्या ही होगी। इस जयसिंह द्वितीय का, वि० सं० १२८० की पौष सुदि ३ (२६ दिसम्बर १२२३) का, एक ताम्रपत्र काडी से मिला है। (इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, भा० ६, पृ० १६६) इसने इसी समय के क़रीब गुजरात-नरेश सोलंकी भीमदेव द्वितीय के राज्य पर कुछ समय के लिये अधिकार कर लिया था।



१. राव सीहाजी

वि० सं० १२६८-१३३० (ई० स० १२१२-१२७३)

वि० सं० १६५० (ई० स० १५९३) का बीकानेर के महाराजा रायसिंहजी का

इस घटना से भी जनरल कनिङ्गहम के मत की पुष्टि होती है। परन्तु मारवाड़ की सारी ही ख्यातों में सीहाजी के पुत्र आसथानजी का जन्म उनके मारवाड़ में आने के बाद होना लिखा मिलता है। यदि यह सत्य हो तो सीहाजी का मारवाड़ में वि० सं० १२६८ (ई० स० १२१२) के क़रीब आना ही मानना होगा; क्योंकि हम आसथानजी का जन्म वि० सं० १२६६ (ई० स० १२१२) के क़रीब मान लेने को बाध्य हैं। इसके बिना मारवाड़ के राठोड़ों का सारा का सारा प्रारम्भिक इतिहास गड़बड़ हो जाता है। हमारे मतानुसार जयचन्द्र के पुत्र हरिश्चन्द्र से लेकर राव चूँडाजी तक के नरेशों के जन्म-संवत् इस प्रकार मानने होंगे:—

जयचन्द्र

हरिश्चन्द्र [जन्म वि० सं० १२३२-जयचन्द्र के ताम्रपत्रों के आधार पर]

वरदायीसेन [या तो यह हरिश्चन्द्र का ही उपनाम होगा या उसका छोटा भाई होगा। पिछली हालत में इसका जन्म वि० सं० १२३३ में माना जा सकता है।]

सेतराम [जन्म वि० सं० १२५०]

राव सीहा [जन्म वि० सं० १२५१]

राव आसथान [जन्म वि० सं० १२६६]

राव धूहड़ [जन्म वि० सं० १२८७]

राव रायपाल [जन्म वि० सं० १३०५]

राव कनपाल [जन्म वि० सं० १३२३]

राव जालणसी [जन्म वि० सं० १३४१]

राव छाडा [जन्म वि० सं० १३५६]

राव तीडा [जन्म वि० सं० १३७७]

राव कान्हड [जन्म वि० सं० १३९५] राव त्रिभुवनसी [जन्म वि० सं० १३९६] राव सलखा [जन्म वि० सं० १३९७]

रावल मल्लिनाथ [जन्म वि० सं० १४१५]

राव वीरम [जन्म वि० सं० १४१६]

राव चूँडा [जन्म वि० सं० १४३४-ख्यातों के आधार पर]

(सम्भव है, बीच के सम्वतों में एक-दो वर्षों का अन्तर हो। सीहाजी के मारवाड़ की तरफ़ आने का कारण बदायूँ के शासक शम्सुद्दीन का दबाव ही प्रतीत होता है।)

एक लेख मिला है। इस में की नारायण से विजयचन्द्र के पूर्व तक की पीढ़ियाँ भाटों के आधार पर लिखी हुई प्रतीत होती हैं। इसीसे वे लेखों की पीढ़ियों से नहीं मिलतीं। इस लेख में आगे लिखा है:—

तस्माद्विजयचन्द्रोऽभूज्जयचन्द्रस्ततोऽभवत्।
वरदायीसेननामा तत्पुत्रोऽतुलविक्रमः
तदात्मजः सीतरामो रामभक्तिपरायणः।
सीतरामस्य तनयो नृपचक्रशिरोमणिः।
राजा सीह इति ख्यातः शौर्यवीर्यसमन्वितः।

अर्थात्—उसका पुत्र विजयचंद्र हुआ और विजयचन्द्र का जयचन्द्र। जयचन्द्र का पुत्र वरदायीसेन था और उसका सीतराम हुआ। इसी सीतराम का पुत्र सीहा था।

इस लेख में जयचन्द्र के पुत्र का नाम हरिश्चन्द्र न देकर वरदायीसेन दिया है। इससे ज्ञात होता है कि या तो इस वंश का सम्बन्ध हरिश्चन्द्र के छोटे भाई वरदायीसेन से था या हमारे अनुमान के अनुसार हरिश्चन्द्र का ही उपनाम वरदायीसेन था। इसीसे उक्त लेख में हरिश्चन्द्र का नाम नहीं लिखा गया है।

कर्नल टॉड ने अपने इतिहास में सीहाजी को कहीं जयचन्द्र का पुत्र, कहीं भतीजा और कहीं पौत्र तथा सेतराम का भाई लिखा है। परन्तु मारवाड़ की ख्यातों और सीहाजी के वि० सं० १३३० के लेख में इन्हें सेतराम का पुत्र लिखा है।

'आईने अकबरी' में लिखा है कि मोइज़ुद्दीन साम (गोरी) ने जब राय पिथोरा की लड़ाई से फ़ुरसत पाई, तब वह कन्नौज के राजा जयचन्द के मुक़ाबले को चला। जयचन्द हार कर भागा और गङ्गा में डूब गया। उसका भतीजा सीहा भी, जो शम्साबाद में रहता था, बहुत से आदमियों के साथ मारा गया। इसके बाद सीहा के तीनों बेटे—सोनग, अश्वत्थामा (आसथान) और अज गुजरात की तरफ़ जाते हुए पाली में आकर ठहरे। कुछ दिन बाद उन्होंने गोयलों से खेड़ छीन लिया। इसके बाद सोनग ने ईडर में और अज ने बगलाने में अपना अधिकार जमाया। (भा० २, पृ० ५०७।)

परन्तु सीहाजी का उस समय मारा जाना सिद्ध नहीं होता।

१. जर्नल बङ्गाल एशियाटिक सोसाइटी (ई. सन् १६२०), भा० १६, पृ० २७६

२. ऐनाल्स ऐण्ड ऐण्टिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान, भा० १, पृ० १०५; भा० २, पृ० ३० और भा० २, पृ० ६४०

इतिहास से ज्ञात होता है कि जिस समय सीहाजी करीब २०० साथियों के साथ मह्रुई से पश्चिम की तरफ़ चले थे, उस समय इनका विचार द्वारका की तरफ़ जाने का था। परन्तु मार्ग में जब यह पुष्कर में ठहरे, तब वहीं पर इनकी भेट तीर्थ-यात्रार्थ आए हुए भीनमाल (मारवाड़ के दक्षिणी प्रान्त के एक नगर) के ब्राह्मणों से हो गई। उन दिनों मुलतान की तरफ़ के मुसलमान अक्सर भीनमाल पर आक्रमण कर लूट-मार किया करते थे। इसीसे उन ब्राह्मणों ने सीहाजी को अपने दल-बल सहित देख कर इनसे सहायता की प्रार्थना की। सीहाजी ने भी इसको सहर्ष स्वीकार कर लिया और भीनमाल जाकर आक्रमणकारी मुसलमानों के मुखियाओं को मार डाला।

इस विषय का यह दोहा मारवाड़ में अब तक प्रसिद्ध है:-

भीनमाल लीधी भड़ै, सीहै सेल बजाय।
दत दीन्हौ सत संग्रह्यो, ओ जस कदे न जाय॥

अर्थात्-वीर सीहाजी ने भाले के ज़ोर से भीनमाल पर अधिकार कर लिया और इसके बाद उसे (ब्राह्मणों को) दान देकर पुण्य का सञ्चय किया। इनका यह यश सदा ही अमर रहेगा।

इस प्रकार भीनमाल के ब्राह्मणों का कष्ट दूर कर सीहाजी ने द्वारका (गुजरात) की यात्रा की और वहाँ से लौटते हुए[1] कुछ दिन पाटन (अनहिलवाड़े) में ठहरे। वहाँ पर उस समय सोलंकियों का राज्य था।

ख्यातों में लिखा है कि सीहाजी ने पाटन के राजा[2] मूलराज सोलंकी की सहायता कर कच्छ के राजा लाखा फूलानी को मारा था और इसके एवज़

---

१. ख्यातों में यह भी लिखा है कि सीहाजी ने द्वारका से लौटते समय भुज के सामा भाटी, थिराद के शासक, साँचोर के चौहान, पीलूडा गाँव के कोली मेघा, करड़ा पर्वत के करतर (जाति के) हरदास छोगाला; और भीलड़ा गाँव के डाभी आसा (ईडर के दीवान) को भी दण्ड दिया था।

ख्यातों में सीहाजी का द्वारका को जाते समय भी पाटन होकर जाना लिखा है।

२. मुहणोत नैणसी ने पाटन के राजा मूलराज को चावड़ा जाति का लिखा है।

में मूलराज ने इन्हें अपनी कन्या ब्याह दी थी। परन्तु यह ठीक प्रतीत नहीं होता, क्योंकि जैनाचार्य हेमचन्द्र रचित 'द्वयाश्रय काव्य'[1] के पाँचवें सर्ग में लिखा है:–

तौ गूर्जरत्राकच्छस्य द्वारका कुण्डनस्य नु
नाथौ शरोर्मिमालाभिर्गङ्गाशोणं प्रचक्रतुः ॥ १२१ ॥

× × ×

कुन्तेन सर्वमारेणावधील्लक्षं चुलुक्यराट् ॥ १२७ ॥

अर्थात्—गुजरात के सोलंकी राजा मूलराज और कच्छ के राजा लाखा के बीच भीषण युद्ध हुआ। अन्त में सोलंकी मूलराज प्रथम ने लाखा को मार डाला।

साँभर (मारवाड़) से मिले सोलंकियों के एक शिलालेख[2] में लिखा है:–

वसुनन्दनिधौ वर्षे व्यतीते विक्रमार्कतः ।
मूलदेवनरेशस्तु चूडामणिरभूद्भुवि ॥ ६ ॥

अर्थात्–वि० सं० ९९८ के बीत जाने पर मूलदेव राजा हुआ।

इससे ज्ञात होता है कि मूलराज प्रथम ने वि० सं० ९९८ (ई० स० ९४१) के बादही गुजरात विजय कर वहाँ पर अपना राज्य स्थापित किया था। इसकी प्रशस्तियों से प्रकट होता है कि यह वि० सं० १०५१

१. यह काव्य वि० सं० १२१७ (ई० सन् ११६०) के क़रीब बनाया गया था। इसमें लिखा है कि जिस समय सौराष्ट्र देश के राजा ग्रहरिपु ने पाटण पर चढ़ाई की, उस समय कच्छ देश का राजा लाखा भी उसके साथ था। इसी युद्ध में गुजरात के राजा मूलराज ने नेज़े (कुन्त) का प्रहार कर लाखा को मारा था।

वि० सं० १२८२ (ई० स० १२२५) के क़रीब की बनी सोमदेव की 'कीर्ति-कौमुदी' में भी लाखा का मूलराज प्रथम के हाथ से मारा जाना लिखा है:–

महेच्छकच्छभूपालं लक्षं लक्षीचकार यः ।

वि० सं० १३६२ (ई० स० १३०५) की बनी मेरुतुङ्ग की 'प्रबन्धचिन्तामणि' से भी इसकी पुष्टि होती है। उसमें लिखा है:–

कच्छपलक्षं हत्वा सहसाधिकलम्बजालमायातम् ।
सङ्गरसागरमध्ये धीरवता दर्शिता येन ॥

डफ़ की 'क्रॉनॉलॉजी ऑफ़ इण्डिया' में ग्रहरिपु का समय ई० स० ९१६ और ९५९ (वि० सं० ९७३ और १०१६) के बीच लिखा है।

२. सरदार म्यूज़ियम और सुमेर पब्लिक लाइब्रेरी, जोधपुर की ई० स० १९२५-२६ की रिपोर्ट, पृ० २; और इण्डियन ऐण्टिक्केरी, भाग ५८, पृ० २३४-२३६।

(ई० स० ९९४) तक जीवित था। ऐसी हालत में इसकी मृत्यु सीहाजी के मारवाड़ में आने से करीब २१६ वर्ष पूर्व हुई होगी। इसलिये मूलराज और उसके समकालीन लाखा का सीहाजी के समय विद्यमान होना और उस लाखा का सीहाजी के हाथ से मारा जाना असम्भव ही प्रतीत होता है।

ख्यातों में लिखा है कि जब सीहाजी पाटन से लौट कर पाली (मारवाड़) पहुँचे, तब वहाँ के पल्लीवाल ब्राह्मणों ने भी इनसे सहायता की प्रार्थना की। उस समय पालीनगर व्यापार का केन्द्र हो रहा था और फ़ारस, अरब आदि पश्चिमी

१. पं० गौरीशङ्करजी ओझा के लिखे 'राजपूताने के इतिहास' में गुजरात के सोलंकी मूलराज प्रथम का समय १०१७ से १०५२ लिखा है (भा० २, पृ० २१५)। परन्तु उपर्युक्त नवीन लेख के मिल जाने से वह ठीक नहीं हो सकता। सोलंकियों के वंश में एक मूलराज द्वितीय भी हुआ है। परन्तु एक तो उस (मूलराज द्वितीय) का समय वि० सं० १२३३ से १२३५ तक माना गया है। दूसरे वह बाल्यावस्था में ३ वर्ष राज्य करके ही मर गया था। इसीसे वह बाल मूलराज के नाम से प्रसिद्ध था। ऐसी हालत में उसकी कन्या से सीहाजी का विवाह होना भी असम्भव ही है। वास्तव में सीहाजी के समय गुजरात पर सोलंकी भीमदेव द्वितीय का राज्य था। उसका समय वि० सं० १२३५ से १२९८ तक माना गया है। परन्तु पहले लिखा जा चुका है कि मुहणोत नैणसी के इतिहास में सीहाजी का विवाह सोलंकी सिद्धराज जयसिंह की कन्या से होना लिखा है। यदि उसका लिखना ठीक हो, तो यह जयसिंह (जयन्तसिंह) द्वितीय ही हो सकता है; जिसने कुछ समय के लिये सोलंकी भीमदेव द्वितीय के राज्य पर अधिकार कर लिया था। परन्तु इस विषय में भी निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता।

२. कच्छ के जाड़ेजा नरेशों में लाखा नाम के तीन नरेश मिलते हैं। डफ़ की 'क्रॉनॉलॉजी ऑफ़ इण्डिया' में इनके नाम और समय इस प्रकार दिए हैं:—

(१) लाखा गुडारा या ढोडरा, ई० स० १२५० (वि० सं० १३०७)

(२) लाखा फूलानी, ई० स० १३२० (वि० सं० १३७७)

(३) लाखा जाम, ई० स० १३५० (वि० सं० १४०७)

इसी पुस्तक में लाखा फूलानी के विषय में लिखा है कि वह खेड़कोट का राजा था और उसने काठियों को दबा कर काठियावाड़ के कुछ भाग पर अधिकार कर लिया था। कहीं पर इसकी मृत्यु का इसके जामाता के हाथ से होना और कहीं पर इसका, अड़कोट (काठियावाड़) में मूलजी वाघेला के साथ के युद्ध मे, राठोड़ सीहाजी के द्वारा मारा जाना लिखा है। परन्तु इसके समय के विषय में बड़ी गड़बड़ है। (देखो पृ० २९० और पृ० २१५-२१६)। परन्तु इस पुस्तक में दिए वृत्तान्त और समय के विषय में स्वयं ग्रन्थ लेखिकाने ही सन्देह प्रकट कर दिया है। कुछ लोग सीहाजी का जैसलमेर के रावल भाटी लाखा से लड़ना अनुमान करते हैं। उक्त राज्य की ख्यातों में उसका समय वि० सं० १३२७ से १३३० तक लिखा है। (तवारीख़ जैसलमेर, पृ० ३३)

देशों के माल के यहीं होकर आगे जाने के कारण यहाँ के पल्लीवाल व्यापारी बड़े समृद्धिशाली बन गए थे। परन्तु साथ ही सोलङ्कियों और चौहानों के निर्बल हो जाने से आस-पास के जङ्गलों में रहने वाले मीणा, मेर आदि लुटेरी जातियों के लोग मौक़ा पाते ही उन्हें लूट लिया करते थे। सीहाजी ने उन ब्राह्मणों की और उस प्रदेश की दशा देख उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और वहीं पर अपना निवास स्थापित कर आस-पास की लुटेरी जातियों से उन व्यापारी ब्राह्मणों की रक्षा करने लगे। इस सहायता के एवज़ में उन ब्राह्मणों ने भी इनके खर्च के लिये कुछ लागें नियत कर दीं। कुछ ही काल में आस-पास के प्रदेश पर सीहाजी का अधिकार हो गया।

उस समय खेड़ पर गुहिल राजपूतों का अधिकार था। परन्तु उनके और उनके मन्त्री डाभी राजपूतों के बीच मनोमालिन्य रहा करता था। इसी घर की फूट से लाभ उठाने के लिये सीहाजी ने उनके देश पर चढ़ाई की। परन्तु इसी समय पाली पर मुसलमानों ने हमला कर दिया। इसकी सूचना मिलते ही सीहाजी खेड़ की तरफ़ से लौट कर मुसलमानी सेना पर टूट पड़े। इससे उसे मैदान छोड़ कर भागना पड़ा। यह देख राठोड़ों ने उसका पीछा किया। परन्तु उनके बीठू नामक गाँव के पास पहुँचते ही मुसलमानों की एक नवीन सेना उधर आ निकली। इससे मुसलमानों का बल बहुत बढ़ गया और उनकी भागती हुई सेना ने मदद पाकर पीछा करती हुई राठोड़-सेना पर प्रत्याक्रमण कर दिया। दोनों तरफ़ से जी खोल कर युद्ध हुआ। परन्तु थकी हुई अल्पसंख्यक राठोड़-सेना मुसलमानों की बहु-संख्यक ताज़ादम फ़ौज के सामने

---

१. यह गांव पाली से ७० मील पश्चिम जमोल के पास उजड़ी हुई दशा में अबतक विद्यमान है।

यद्यपि कर्नल टॉड ने सीहाजी का खेड़ राज्य पर अधिकार करलेना लिखा है और इसकी पुष्टि नगर (मारवाड़) से मिले वि० सं० १६८६ के राठोड़ जगमाल के लेख से भी होती है, तथापि ख्यातों से खेड़ पर पहले पहल आसथानजी का अधिकार होना ही पाया जाता है। ऐसी हालत में मानना पड़ता है कि यदि सीहाजी ने खेड़ के कुछ प्रदेशों पर अधिकार किया भी होगा तो भी सम्भवतः उनकी मृत्यु के बाद वे स्थान एकवार फिर राठोड़ों के हाथ से निकल गए होंगे।

अधिक समय तक न ठहर सकी। इससे मैदान मुसलमानों के हाथ रहा और वीरवर सीहाजी इसी युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुए¹।

१. मारवाड़ की ख्यातों में यह भी लिखा है कि सीहाजी कुछ दिन तक पाली में रह कर कन्नौज लौट गए थे। वहाँ पर इनकी राजधानी गढ़ गोयन्दाणे मे थी। इनका पहला विवाह बङ्गाल-नरेश की राज-कन्यासे और दूसरा पाटण के सोलंकी राजा की पुत्री से हुआ था। इनके पहली रानी से ४ पुत्र और दूसरी से ३ पुत्र हुए। सीहाजी ने मारवाड़ से लौट कर १३ वर्ष तक गढ़ गोयन्दाणे में राज्य किया। इनकी मृत्यु के बाद वहाँ का अधिकार पहली रानी के बड़े पुत्र को मिला और दूसरी रानी अपने तीनों पुत्रों (आसथान, सोनग और अज) को लेकर पाली (मारवाड़) में चली आई। परन्तु यह ठीक प्रतीत नहीं होता।

कर्नल टॉड ने अपने राजस्थान के इतिहास में सीहाजी का वृत्तान्त इस प्रकार लिखा है:-

"वि० सं० १२६८ (ई० स० १२१२) में जयचन्द्र के पौत्र सेतराम और सीहाजी, दो सौ आदमियों को साथ लेकर, कन्नौज से रवाना हुए। जिस समय ये कोलूमढ (आधुनिक बीकानेर नगर से २० मील पश्चिम की तरफ़) पहुँचे, उस समय वहाँ पर सोलंकियों का राज्य था। वहाँ के राजा ने इनकी बड़ी ख़ातिर की। इसकी एवज़ में सीहाजी ने सोलंकियों के शत्रु लाखा फूलानी से युद्ध कर उसे हराया। इसी युद्ध में सेतराम मारा गया। इनकी इस सहायता से प्रसन्न होकर सोलंकी-नरेश ने अपनी बहिनका विवाह सीहाजी के साथ कर दिया। वहाँ से चल कर यह (सीहाजी) द्वारका जाते हुए अनहिल पाटन पहुँचे। वहाँ के राजा ने भी इनकी बड़ी आवभगत की। जिस समय सीहाजी पाटन में ठहरे हुए थे, उसी समय लाखा फूलानी ने उक्त नगर पर आक्रमण किया। इस बार के युद्ध में सीहाजी ने लाखा को मार कर अपने भाई का बदला ले लिया। उधर से लौटकर जब सीहाजी लूनी के किनारे पहुँचे, तब इन्होंने डाभियों से मेहवा और गुहिलों से खेड़ छीन लिया। इसके बाद यह पाली आए और इन्होंने वहाँ पर होने वाले मेर व मीणों के उपद्रव को शान्तकर पल्लीवाल ब्राह्मणों की रक्षा की। परन्तु कुछ समय बाद इन्होंने पल्लीवाल ब्राह्मणों को मारकर वहाँ पर भी अधिकार कर लिया। इसके एक वर्ष बाद वहीं पर इनका स्वर्गवास हुआ। (ऐनाल्स ऐण्ड ऐंटिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान, भा० २, पृ० ६४०-६४३)। परन्तु यह सारी कथा कपोल-कल्पित है; क्योंकि पल्लीवाल ब्राह्मण पाली के शासक न होकर व्यापारी ही थे। पाली मे स्थित सोमनाथ के मन्दिर से मिले वि० सं० १२०६ के लेख से प्रकट होता है कि उस समय वहां पर सोलंकी कुमारपाल का राज्य था और उसकी तरफ़ से बाहडदेव वहां का शासक था। वि० सं० १३१६ के सूंधासे मिले चौहान चाचिगदेव के लेख से ज्ञात होता है कि इस चाचिगदेव का पिता उदयसिंह नाडोल, जालोर, मंडोर, बाहडमेर, रत्नपुर, साँचोर, सूराचंद, राडधड़ा, खेड़, रामसीन और भीनमाल आदि का शासक था। उदयसिंह के वि० सं० १२६२ से १३०६ तक के लेख मिले हैं। इससे अनुमान होता है कि सोलंकियों के बाद पाली पर चौहानों का अधिकार हुआ होगा। ऐसी हालत में सीहाजी का वहाँ के पल्लीवाल व्यापारियोंको मारकर उनसे पाली छीनना बिलकुल असंगत ही है।

सीहाजी के स्वर्गवास का, वि० सं० १३३० (ई० स० १२७३) का, एक लेख बीठू (मारवाड़ का एक गाँव, जो पाली से ६ कोस के अन्तर पर है) से मिला है,

इस लेख से प्रकट होता है कि वि० सं० १३३० की कार्तिक वदि १२ सोमवार (ई० स० १२७३ की ६ अक्टूबर) को करीब ८० वर्ष की अवस्था में सीहाजी

---

१. उक्त लेख मे लिखा है:-

(१) "ओं ॥ सॉ (सं) वछ (त्) १३३०

(२) कार्तिक वदि १२ सोम-

(३) वारे रठड़ा श्री सेत-

(४) कवर सुतु (त) सीहो दे-

(५) वलोके गतः सो [लं-]

(६) क पारवतिः (ती) तस्यार्थे देव-

(७) ली स्थ (स्था) पिना (ता) क (का) रायि (पि) व (ता) मु (शु) भं भवतुः (तु) ।

(इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, भा० ४०, पृ० १४१)

इस लेख के ऊपर घोड़े पर चढ़ी सीहाजी की मूर्ति बनी है, और सामने उनकी रानी हाथ जोड़े खड़ी है । घोड़े के पैरों के नीचे एक मुसलमान पड़ा है ।

हमारे मतानुसार इस लेख में इतनी बातें विचारणीय हैं:--

१—सीहाजी के मस्तक पर पगड़ी या साफ़ा नहीं है । उनके घुँघराले बाल आगे से साफ़ दिखाई देते हैं ।

२—सीहाजी की मूर्ति का कमर तक का भाग खुला है (परन्तु रानी शायद कंचुकी पहने हुए है ।) दोनों के कन्धों पर से केवल एक-एक दुपट्टा लटकता हुआ बना है ।

३—सीहाजी के कमर के नीचे के भाग में कवच और पैरों में घुटनों तक के बूट (झाडोले) बने हैं । (रानी के पहनने को चुन्नतदार धोती है और उसकी नाभि से पैरों तक धोती की चुन्नत या करधनी की लम्बी लड़ी लटकती है ।)

४—सीहाजी की शकल और दाढ़ी मुसलमानी ढङ्ग की है ।

५—इस लेख के सम्वत् १३३० के बीच के दोनों अङ्क (३३) आधुनिक शैली के प्रतीत होते हैं ।

६—लेख में सीहाजी को 'सेतकँवर सुत' लिखा है । (इसलिये या तो 'सेतराम' के लिये ही 'सेतकँवर' शब्द का प्रयोग किया गया है या इससे उसका छोटा पुत्र होना प्रकट होता है । पूरब में आजकल भी राजाओं और ज़मींदारों के छोटे पुत्र या उनकी सन्तान अपने नामों के आगे कुँवर की उपाधि लगाती है ।)

का स्वर्गवास हुआ था और उसी दिन इनकी सोलंकी वंश की पार्वती नामक रानी इनके साथ सती हुई थी।

परन्तु इस लेख के विषय में निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है; क्योंकि इसके लाने वाले के बताए स्थान पर इतिहास कार्यालय के भूतपूर्व अध्यक्ष ने स्वयं जाकर पूछ-ताछ की थी। फिर भी इसके वहाँ से लाए जाने का कुछ पता नहीं चला।

पाली की रोदाबाव नामक पुरानी बावली के पास एक चबूतरा[2] बना है। कुछ लोग उसे सीहाजी का चबूतरा बतलाते हैं। सम्भव है, इनके वंशजों ने इनके निवास-स्थान पर पीछे से, यादगार की तौर पर, यह चबूतरा बनवाया हो।

इनके तीन[3] पुत्र थे—आसथान, सोनग और अज।

१. मारवाड़ की ख्यातों में सीहाजी की सोलंकी वंशकी रानी का नाम राजलदे लिखा है और उसे सोलंकी मूलराज की पुत्री माना है। यदि वास्तव में यह ठीक हो तो यह कोई तीसरा ही मूलराज होगा; क्योंकि पहले लिखे अनुसार प्रथम और द्वितीय मूलराज की पुत्री का विवाह तो सीहाजी से होना असम्भव सिद्ध होचुका है।

२. यह चबूतरा इस समय टूटी फूटी दशा में है। कुछ ख्यातों में इसको आसथानजी का चबूतरा भी लिखा है।

३. इनके एक भीम नामक चौथे पुत्रका उल्लेख भी मिलता है। परन्तु उसका हाल न मिलने से अनुमान होता है कि वह बालकपन में ही मरगया होगा।

२. राव आसथानजी

यह राव सीहाजी के ज्येष्ठ पुत्र थे, और उनके युद्ध में वीर-गति प्राप्त कर लेने पर उनके उत्तराधिकारी हुए । यह भी अपने पिता के समान ही वीर और साहसी थे ।

ख्यातों में लिखा है कि यद्यपि उस समय पाली पर इन्हीं का अधिकार था, तथापि इन्होंने अपना निवास वहाँ से ५ कोस दक्षिण के गूंदोच नामक गाँव में कर रक्खा था । इसके बाद जब इनके पास धन-जन का अच्छा संग्रह हो गया, तब इन्होंने, डाँभी राजपूतों को अपनी तरफ़ मिलाकर, गुहिल क्षत्रियों से खेड़ का राज्य छीन लिया ।

---

१. जोधपुर, बीकानेर, किशनगढ़, रतलाम, सीतामऊ, सैलाना, झाबुआ और ईडर के राठोड़-नरेश इन्हीं के वंशज हैं ।

२. हमारे मतानुसार इनका जन्म वि० सं० १२६८ (ई० सन् १२१२) में हुआ होगा । इनके पिता राव सीहाजी की मृत्यु से संबंध रखनेवाला लेख वि० सं० १३३० की कार्तिक बदी १२ (ई० सन् १२७३ की ६ ऑक्टोबर) का है । उसके अनुसार राव आसथानजी का राज्याभिषेक भी उसी समय हुआ होगा ।

३. डाभियों का निवास पाली से ३६ कोस पश्चिम के महेवे में था ।

४. ख्यातों में लिखा है कि उस समय खेड़ के गुहिल-नरेश का प्रधान मंत्री डाभी-क्षत्रिय सांवतसी था । परन्तु उन दोनों के बीच मनोमालिन्य हो जाने के कारण वह आसथानजी से मिल गया । यद्यपि उसी की प्रेरणा से खेड़ के गुहिल-नरेश ने अपनी कन्या का विवाह आसथानजी से करना निश्चित किया था, तथापि उस (मंत्री) ने आसथानजी को समझाया कि विवाहोत्सव के समय जब गुहिल वंशी दाईं तरफ़ और डाभी लोग बाईं तरफ़ बैठे हों, तब आप गुहिलों को मारकर खेड़ पर अधिकार करलें, और बाद में उनके राज्य का आधा हिस्सा मुझे देदें । यह सुन आसथानजी ने सोचा कि जब यह इस समय हमसे मिलकर अपने वर्तमान स्वामी को धोका देने को तैयार है, तब संभव है, किसी समय तीसरे पुरुष से मिलकर हमारे साथ भी यही बर्ताव करे । ऐसा सोच उस समय तो यह चुप हो रहे, परन्तु समय आने पर इनके इशारे से इनके साथ के सरदारों ने डाभी और गुहिल दोनों ही जातियों के मुखियाओं को मार डाला । इसी घटना के कारण मारवाड़ में यह कहावत चली है--"डाभी डावा ने गोहिल जीवणा" अर्थात्-किसी स्थान पर इकट्ठे हुए दाएं और बाएं दोनों ही तरफ़ के लोग अविश्वसनीय या शत्रु हैं । कहते हैं कि इस घटना के बाद बचे हुए गुहिल काठियावाड़ की तरफ़ चले गए, क्योंकि वहां पर इस वंश के लोग पहले से ही अधिकार प्राप्त कर चुके थे । भावनगर, लाठी, पालीताना और वल के राजवंश गुहिल वंश की ही संतान हैं ।



२. राव आसथानजी

वि० सं० १३३०-१३४६ (ई० स० १२७३-१२६२)

इनके इसी खेड़ नगर में पहले पहल यथानियम अपनी राजधानी स्थापित करने के कारण इनके वंशज 'खेड़ेचा' कहाने लगे।

कुछ काल बाद राव आसथानजी ने ईडर (गुजरात) के (कोली-जाति के) राजा सामलिया सोड के मंत्री से मिलकर उक्त नरेश को मार डाला, और वहाँ का राज्य अपने छोटे भाई सोनग को दे दिया।

ईडर के राजा होने के कारण ही सोनग के वंशज ईडरिया राठोड़ कहाए।

ख्यातों से ज्ञात होता है कि उस समय खेड़-राज्य में ३४० गाँव थे।

१. यद्यपि कर्नल टॉड ने उस समय ईडर पर डाभियों का राज्य होना लिखा है (ऐनाल्स ऐंड ऐंटिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान, क्रुक-संपादित, भा० २, पृ० ९४३), तथापि मिस्टर फॉर्ब्स ने वहाँ के, उस समय के, राजा का परिचय सामलिया सोड लिखकर दिया है (रासमाला, भा० १, पृ० २९४)। उसी में यह भी लिखा है कि यह (कोली-जाति का नरेश) अपने मंत्री (जो जाति का नागर ब्राह्मण था) की रूपवती कन्या पर आसक्त हो गया, और उसका विवाह अपने साथ कर देने का आग्रह करने लगा। इस पर मंत्री ने सोचा कि यदि मैं इस समय इनकार कर दूँगा, तो यह कन्या को ज़बरदस्ती पकड़कर ले जायगा। इस वास्ते कुछ समय के लिये इसको टाल देना ही उचित है। इसी के अनुसार उसने विवाह का प्रबंध करने के लिये ६ मास की मियाद माँग ली। इसके बाद वह सामेतरा में जाकर सोनगजी से मिला, और ईडर का राज्य दिलवाने का वादा कर उन्हें अपनी सहायता के लिये तैयार कर लिया। इस प्रकार सब प्रबंध कर लेने पर उसने सामलिया को विवाह के लिये आने का निमंत्रण भेजा। परंतु जिस समय विवाह में इकट्ठे हुए कोली लोग शराब पीकर मस्त हो गए, उस समय सोनगजी के साथवालों ने अपनी छिपने की जगह से निकल उन पर हमला कर दिया। यद्यपि सामलिया स्वयं इनके पंजे से निकल भागा, तथापि क़िले के द्वार के पास पहुँचते-पहुँचते वह भी आहत होकर गिर पड़ा। इसके बाद उसने अपने बचने की आशा न देख स्वयं अपने हाथ से ही सोनगजी के ललाट पर ईडर का राज-तिलक लगा दिया, और इनसे प्रार्थना की कि मेरी यादगार बनाए रखने को जब-जब आपके वंश के नरेश पहली बार गद्दी पर बैठें, तब-तब मेरी जातिवाले को ही राजतिलक करने का अधिकार रहे। सोनगजी ने उसकी यह प्रार्थना स्वीकार करली (रासमाला, भा० १, पृ० २९३-२९४)। यह घटना वि० सं० १३३१ (ई० सन् १२७४) के क़रीब या इससे कुछ समय बाद हुई होगी। वहाँ पर इनके वंशजों का राज्य वि० सं० १७७५ (ई० सन् १७१८) के कुछ काल बाद तक रहा था।

२. कर्नल टॉड ने सोनग के वंशजों का हथूंडिया राठोड़ के नाम से प्रसिद्ध होना लिखा है (ऐनाल्स ऐंड ऐंटिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान, भा० २, पृ० ९४३)। परंतु यह ठीक नहीं है; क्योंकि बीजापुर (गोडवाड़-मारवाड़) में मिले वि० सं० १०५३ के लेख

रावजी के तीसरे भाई अज ने ओखामंडल (शंखोद्धार-द्वारका के निकट) के स्वामी चावड़ा भोजराज[1] को मारकर वहाँ पर अधिकार कर लिया।

अज ने स्वयं अपने हाथ से वहाँ के राजा का मस्तक काटा था, इसलिये उसके वंश के लोग वाढेल[2] राठोड़ के नाम से प्रसिद्ध हुए।

वि० सं० १३४७ (ई० सन् १२९०) में[3] जलालुद्दीन (खिलजी) ने शम्सुद्दीन को मार डाला और खुद फ़ीरोज़शाह द्वितीय के नाम से दिल्ली के तख़्त पर बैठा। इसी के अगले वर्ष उसकी फ़ौज ने पाली पर चढ़ाई की। जैसे ही यह सूचना आसथानजी को मिली, वैसे ही यह खेड़ से रवाना होकर पाली आ पहुँचे, और वहीं पर शाही सेना से युद्ध कर १४० राजपूत वीरों के साथ वीर-गति को प्राप्त हुए। यह घटना वि० सं० १३४८ की वैशाख सुदी १५ (ई० सन् १२९१ की १५ एप्रिल) की है[4]।

राव आसथानजी के ८ पुत्र[5] थे।

से प्रकट होता है कि उक्त स्थान के पास जो हस्तिकुंडी (हथूंडी) नामक नगरी थी, वहाँ पर तो विक्रम की दसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से ही राष्ट्रकूटों की एक शाखा का राज्य था।

इसी तरह सीहाजी के मारवाड़ में आने के पूर्व यहां पर (मारवाड़ में) राठोड़ों की और भी कुछ शाखाएँ विद्यमान थीं। यह बात वि० सं० १२१३ के लेख से प्रकट होती है (यह लेख जोधपुर के अजायबघर में रक्खा है)।

१. 'गुजरात राजस्थान' में यही नाम है। परंतु कर्नल टॉड ने उसका नाम भीकमसी लिखा है (ऐनाल्स ऐंड ऐंटिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान, भा० २, पृ० ९४३)।

२. इस शाखा के राठोड़ इस समय भी वहाँ पर पाए जाते हैं।

३. किसी-किसी तवारीख़ में इस घटना का समय वि० सं० १३४५ (ई० सन् १२८८) भी लिखा मिलता है।

४. परंतु यदि यह श्रावणादि संवत् हो, तो इसमें एक वर्ष का अंतर आवेगा। इसके अनुसार वि० सं० १३४९ की वैशाख सुदी १५ (ई० सन् १२९२ की २ मई) को इस घटना का होना मानना होगा।

वि० सं० १३५१ (ई० सन् १२९३) का फ़ीरोज़शाह द्वितीय के समय का एक खंडित-शिलालेख उसकी बनवाई मंडोर में की मसजिद में अब तक विद्यमान है।

५. किसी-किसी ख्यात में इनके पुत्रों में मूपा और गुडाल इन दो के नाम और भी मिलते हैं। कर्नल टॉड ने आसथानजी के पुत्रों के नाम इस प्रकार लिखे हैं—१ धूहड़, २ जोपसी, ३ खीपसा, ४ भोपसू, ५ धाँधल, ६ जेठमल, ७ बांदर और ८ ऊहड (ऐनाल्स ऐंड ऐंटिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान, भा० २, पृ० ९४३)।

१ धूहड़, २ धाँधल, ३ चाचक, ४ आसल, ५ हरडक (हरखा), ६ खींपसा, ७ पोहड और ८ जोपसा।

१. धाँधल ने कोलू के चौहानों को हराकर वहाँ पर अधिकार कर लिया था। इसी के छोटे पुत्र का नाम पाबू था। यह बड़ा वीर और दृढ़-प्रतिज्ञ था। एक बार जायल (नागोर-प्रांत) के स्वामी खीची जींदराव ने ऊदा चारण से उसकी एक घोड़ी माँगी। परंतु उसने वह घोड़ी उसे न देकर पाबू को देदी। इससे जींदराव मन-ही-मन कुढ़ गया। इसके बाद जिस समय पाबू ऊमरकोट के सोढा परमारों के यहाँ विवाह करने को गया, उस समय जींदराव ने अपने पुराने अपमान का बदला लेने के लिये ऊदा की गाएं छीन लीं। यह देख ऊदा की स्त्री देवल पाबू के पास सहायता माँगने पहुँची। यद्यपि उस समय वह विवाह-मंडप में था, तथापि देवल की प्रार्थना सुन तत्काल गायों को छुड़वाने के लिये चल दिया। मार्ग में उसने अपने बड़े भाई बूडा को भी साथ ले लिया। युद्ध होने पर ये दोनों भाई मारे गए। ख्यातों में इस घटना का समय वि० सं० १३२३ लिखा है, परंतु यह संदिग्ध है। अंत में बूडा के पुत्र झरड़ा ने (जो इस घटना के समय मातृ-गर्भ में था, बड़े होने पर) जींदराव को मारकर अपने पिता और चाचा के वैर का प्रतिशोध किया।

मारवाड़ के लोग विवाह-मंडप में उठकर गो और शरणागत-रक्षा के निमित्त प्राण देने के कारण पाबू की और पितृ-भक्ति तथा साहस के कारण झरड़ा की अब तक पूजा करते हैं।

कोलू (फलोदी-प्रांत) के पाबू के मंदिर में के पढ़े गए लेखों मे सबसे पुराना लेख वि० सं० १४१५ का है। उसमें धाँधल सोभ के पुत्र सोहड़ द्वारा पाबू का मंदिर बनवाने का उल्लेख है।

३. राव धूहड़जी

यह राव आसथानजी के बड़े पुत्र थे, और उनके युद्ध में मारे जाने पर उनके उत्तराधिकारी हुए[1]। इन्होंने अपनी वीरता से अपने पैतृक राज्य की और भी वृद्धि की, आस-पास के १४० गांवों पर विजय प्राप्त कर उन्हें अपने राज्य में मिला लिया[2]।

१. इनका राज्याभिषेक वि० सं० १३४८ या १३४९ (ई० सन् १२९१ या १२९२) के ज्येष्ठ में हुआ होगा।

२. पहले लिखा जा चुका है कि ख्यातों के अनुसार सीहाजी की मृत्यु के समय उनके गढ़ गोयंदाने (कन्नौज के पास) के राज्य पर उनकी बड़ी रानी के पुत्रों ने अधिकार कर लिया था; इससे आसथानजी को पाली (मारवाड़) की तरफ़ लौट आना पड़ा। इसी का बदला लेने के लिये राव धूहड़जी ने गढ़ गोयंदाने पर चढ़ाई की। यद्यपि वहांवालों को मुसलमानों की मदद मिल जाने से धूहड़जी सफल न हो सके, तथापि लौटते समय यह कर्नाट से अपनी कुलदेवी चक्रेश्वरी की मूर्ति ले आए, और उसे नागाना-नामक गांव में एक नीम के वृक्ष के नीचे स्थापित कर दिया। इसी से इनके वंशज (राठोड़) नीम को पवित्र मानने लगे। यह भी प्रसिद्ध है कि नागाना गांव के संबंध के कारण ही उस देवी का नाम नागनेची हुआ। कर्नल टॉड ने भी धूहड़जी की कन्नौज पर की इस चढ़ाई का उल्लेख किया है (ऐनाल्स ऐंड ऐंटिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान, भा० २, पृ० ९४३)। परंतु यह कथा कल्पित ही प्रतीत होती है।

किसी-किसी ख्यात में इस मूर्ति का कल्याणी (कोंकन-दक्षिण में) से लाया जाना भी लिखा है। साथ ही उक्त देवी (नागनेची) के नाम के पीछे दक्षिण में प्रयुक्त होनेवाला 'ची' प्रत्यय लगा होने से भी इस मत की पुष्टि होती है। परंतु ऐतिहासिक इस कल्याणी से कन्नौज के कल्याण कटक (बांबे गज़ेटियर भा० १, खंड १, पृ० १५०) का तात्पर्य ही लेते हैं; क्योंकि षष्ठी विभक्ति का बोधक यह 'ची' या 'चा' प्रत्यय राजस्थानी भाषा में भी प्रयुक्त होता आया है, जैसेः–

(१) खेड़ के संबंध से राव आसथानजी के वंशजों (राठोड़ों) का खेड़ेचा के नाम से प्रसिद्ध होना।

(२) "हे जगत-जननी, पुत्र तुमचो, मेरु मज्जन वर करी;
उच्छंग तुमचे बलिय थापिस, आतमा पुराये भरी।"

(जिन-पूजा-पद्धति)

इस देवी के पुजारी भी राठोड़ ही हैं, जो नागनेचिया राठोड़ कहाते हैं। किसी-किसी ख्यात में लिखा मिलता है कि जयचंदजी ने जब चित्तौड़ विजय किया था, तब वहाँ पर भी अपनी कुलदेवी (नागनेची) का मंदिर बनवाया था।



३. राव धूहड़जी

वि० सं० १३४६-१३६६ (ई० स० १२६२-१३०६)

राव धूहड़जी ने पड़िहारों को हराकर[1] मंडोर पर भी अधिकार कर लिया था। परंतु उन्होंने मौका पाकर शीघ्र ही मंडोर वापिस छीन लिया। यह देख इन्होंने उन पर दुबारा चढ़ाई की। परंतु मार्ग में थोभ[2] और तरसींगड़ी[3] नामक गांवों के बीच इनका पड़िहारों से सामना हो गया, और यह उनके साथ के युद्ध में मारे गए[4]।

इनकी यादगार में तरसींगड़ी के तालाव पर जो चबूतरा बनाया गया था, उस पर की पुतली का लेख घिस जाने के कारण अब पढ़ा नहीं जा सकता।

तरसींगड़ी से ही इनका वि० सं० १३६६ (ई० सन् १३०९) का एक अन्य लेख[5] भी मिला है। कहा जाता है कि नागाने का नागनेचियां देवी का मंदिर इन्होंने ही बनवाया था[6]।

जोधाजी के ताम्रपत्र की नकल से प्रकट होता है कि राव धूहड़जी के समय लुंबऋषि नाम का सारस्वत ब्राह्मण कन्नौज से राठोड़ों की कुलदेवी चक्रेश्वरी (आदि पक्षिणी) की मूर्ति लेकर मारवाड़ में आया था। इसके बाद जब उक्त देवी ने राव धूहड़जी को नाग के रूप में दर्शन देकर वर दिया, तब वह नागनेचियाँ के नाम से प्रसिद्ध हुई। इस सेवा के बदले में धूहड़जी ने लुंबऋषि को अपना पुरोहित नियत कर एक ताम्रपत्र लिख दिया था। उसी को देखकर जोधाजी ने भी उसके वंशज को एक नवीन ताम्रपत्र लिख दिया।

यह नागना गांव खेड़ से १५ कोस ईशान कोण और जोधपुर से १६ कोस नैर्ऋत्य कोण में है।

नगर (मल्लानी प्रांत के एक गांव) में मिले महारावल जगमाल के वि० सं० १६८६ (ई० सन १६३०) के लेख में लिखा है—"सूरिजवंशी कनौजिया राठोड़ सीहा सोनग इए पे (खे) ड गोहिलाँ पासे खडग बले लीधी आस्थान पुः धूहड नि (ने) देवी नागणेची अविचल राज दीधु.........।"

१. इस घटना के समय राव धूहड़जी ने एक पड़िहार राजपूत को पकड़कर ज़बरदस्ती अपना ढोली (नक्कारची) बना लिया था। उसके वंशज देधड़ा कहाते हैं।

२. उस समय खेड़ राज्य की सीमा थोब तक थी। यह खेड़ से ६ कोस ईशान कोण में है।

३. यह स्थान खेड़ से ११ कोस ईशान कोण में और पचपदरे से ७ कोस ईशान कोण में है।

४. कर्नल टॉड ने धूहड़जी का मंडोर के युद्ध में मारा जाना लिखा है (ऐनाल्स ऐंड ऐंटिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान, भा० २, पृ० ९४३)। इसी प्रकार किसी-किसी ख्यात में लिखा है कि यह चौहान आना के थोब पर आक्रमण करने के समय उससे लड़कर वीरगति को प्राप्त हुए थे।

५. उक्त लेख का पढ़ा गया अंश—"ओं सम्वत् १३६६......आसथान सुत धूहड़........" (इंडियन ऐंटिक्वेरी, भा० ४०, पृ० ३०१)।

६. ख्यातों में लिखा है कि राव धूहड़जी ने निम्नलिखित ३ गाँव दान दिए थे—
१ बसी (पाली परगने का) आसिया-जाति के चारण को, २ मेघावस (पचपदरा परगने का) पुरोहित को, ३ समराखिया (पचपदरा परगने का) पुरोहित को।

इनके ७ पुत्र थे--१ रायपाल, २ चंद्रपाल, ३ बेहड़, ४ पेथड़, ५ जोगा, ६ खेतपाल और ७ ऊनड़ ।

४. राव रायपालजी

यह राव धूहड़जी के बड़े लड़के थे और उनके रणभूमि में वीर-गति प्राप्त करने पर खेड़ की गद्दी पर बैठे । यह वीर होने के साथ ही दयालु और उदार स्वभाव के थे । इन्होंने अपने पिता की मृत्यु का बदला लेने के लिये पड़िहारों को हराकर मंडोर पर अधिकार कर लिया । परन्तु कुछ समय बाद ही वह नगर फिर पड़िहारों के हाथ में चला गया ।

इसके बाद राव रायपालजी ने बाहड़मेर की तरफ़ के पँवारों को परास्तकर उनके अधिकृत प्रदेश को अपने राज्य में मिला लिया । इससे महेवे का सारा प्रान्त इनके शासन में आ गया । यही प्रान्त आजकल मालानी के नाम से प्रसिद्ध है ।

ख्यातों में लिखा है कि जिस समय खीची जींदराव और राठोड़ पाबू के बीच युद्ध हुआ था उस समय पाबू[3] की मृत्यु भाटी फरड़ा के हाथ से हुई थी । इसलिये रायपालजी ने उसे मार कर उसके ८४ गांवों पर भी अधिकार कर लिया । उनमें यह भी लिखा है कि इन्होंने जैसलमेर के (बुध शाखा के) भाटी (यादव) मांगा के पुत्र चन्दे को बहुतसा द्रव्य देकर, ज़बरदस्ती, अपना पौलपात (राजद्वार पर दान लेने वाला) बना लिया था ।

एक बार वर्षा न होने से जब रावजी के राज्य में अकाल पड़ा तब इन्होंने राजकीय भण्डार से अन्न बाँट कर प्रजा की सहायता की, इसीसे लोग इन्हें 'महीरेलण' (इन्द्र) के नाम से पुकारने लगे ।

---

१. कर्नल टॉड ने इनके पुत्रों के ७ नाम इस प्रकार लिखे हैं:--

१ रायपाल, २ कीरतपाल, ३ बेहड़, ४ पीथल, ५ जुगेल, ६ डालू और ७ बेगड़ (ऐनाल्स ऐंड ऐंटिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान, भा० २, पृ० ९४३) । इसीप्रकार कहीं-कहीं इनके पुत्रों के कुछ अन्य नाम भी मिलते हैं ।

२. ख्यातों के अनुसार उस समय उसमें ५६० गाँव थे ।

३. यह रायपालजी का चचेरा भाई था ।

४. यह माँगा की चारण जाति की स्त्री के गर्भ से पैदा हुआ था । इसके वंशज रोहड़िया बारहठ कहलाते हैं ।



४. राव रायपालजी

वि० सं० १३६६ और १३७० (ई० स० १३०६ और १३१३) के बीच ?

इनके १४ पुत्र थे:-१ कनपाल, २ सूंडा, ३ केलण, ४ लाखणसी, ५ थांथी, ६ डांगी, ७ रांदा, ८ जूंझण, ९ राजा, १० हथूंडिया (हसत), ११ राणा, १२ मूहण[2], १३ बूला और १४ बीकम।

५. राव कनपालजी

यह राव रायपालजी के ज्येष्ठ पुत्र थे और उनके बाद उनके उत्तराधिकारी हुए। उस समय महेवे का सारा प्रान्त इनके अधिकार में होने से इनके राज्य[3] की और जैसलमेर राज्य की सीमाएं मिली हुई थीं। इसीसे बहुधा जैसलमेर वाले इनके राज्य में घुसकर लूट-खसोट किया करते थे। परन्तु इनकी आज्ञा से इनके बड़े पुत्र भीम ने, उन्हें दण्ड देकर, काक नदी को खेड़ और जैसलमेर राज्य के बीच की सीमा नियत कर दिया[4]। यद्यपि इससे एक बार तो जैसलमेर वाले शान्त हो गए, तथापि कुछ काल बाद मुसलमानों की मदद मिल जाने से वे फिर उपद्रव करने लगे। यह देख भीम ने फिर दुबारा उन पर चढ़ाई की। परन्तु इस बार के युद्ध में भीम के मारे जाने से भाटी और भी उच्छृंखल हो उठे और वे खेड़ राज्य के भीतरी प्रान्तों तक में घुसकर लूट मार करने लगे। उनके इस प्रकार बढ़ते हुए उपद्रव को देख राव कनपालजी को स्वयं उन पर चढ़ाई करनी पड़ी। परन्तु मार्ग में अचानक भाटियों और मुसलमानों की सम्मिलित सेना से घिर जाने के कारण यह, वीरता से शत्रु का सामना कर, मारे गए।

इनके ३ पुत्र थे:—१ भीम, २ जालणसी, और ३ विजपाल।

१. इन १४ पुत्रों में कहीं जूँझण और राणा के नाम लिखे मिलते हैं तो कहीं उनके स्थान पर छाजड़ और मोपा के नाम पाए जाते हैं।

२. मुहणोत ओसवाल (वैश्य) भी इसी मूहण की सन्तान हैं।

३. ख्यातों के अनुसार उस समय इस राज्य में ९८४ गाँव थे।

४. इस विषय का यह सोरठा प्रसिद्ध है:—

आधी धरती भीम, आधी लोदरवै धणी।
काक नदी छै सीम, राठोडाँ ने भाटियाँ॥

(लोदरवा जैसलमेर के भाटियों की पहली राजधानी थी।)

६. राव जालणसीजी

यह राव कनपालजी के द्वितीय पुत्र थे और अपने बड़े भाई भीम के, पिता के जीतेजी निस्सन्तान, मारे जाने के कारण खेड़ के स्वामी हुए।

एक साधारण घटना[1] के कारण इनके और उमरकोट के सोढ़ों के बीच झगड़ा उठ खड़ा हुआ। परन्तु युद्ध होने पर सोढे हार गए[2] और उन्होंने नियत दण्ड देने का वादा कर[3] इनसे सुलह करली।

इसके बाद यह सिंध और थट्टे की तरफ़ के यवन-शासित प्रदेशों को लूटते हुए मुलतान की तरफ़ पहुँचे। इनके पिता जिस युद्ध में मारे गए थे, उसमें भाटियों की तरफ़ से मुलतान के शासक की सेना ने भी भाग लिया था। इसी वैर का बदला लेने के लिये इन्होंने वहाँ वालों को हरा कर उनसे दण्ड वसूल किया।

किसी किसी ख्यात में यह भी लिखा है कि जिस समय इन्होंने अपने पिता के वैर का बदला लेने के लिये भाटियों पर चढ़ाई की, उस समय भीनमाल के सोलङ्कियों को भी अपना साथ देने के लिये कहलाया था। परन्तु उन्होंने इस पर कुछ ध्यान नहीं दिया। यह देख उस समय तो यह चुप हो रहे, परन्तु अवकाश मिलते ही इन्होंने भीनमाल पर चढ़ाई करदी। सोलङ्की घबरा गए और उन्हें, अपनी असमर्थता के कारण, इनसे माफ़ी माँगनी पड़ी।

ख्यातो में यह भी लिखा है कि इनके चचा को सराई जाति के हाजी मलिक ने मारा था। इसलिये इन्होंने उसे मार इसका बदला लिया[4]।

१. राव जालणसीजी ने चाँदणी गाँव के एक वृक्ष के पत्र, पुष्प, फल, टहनी आदि तोड़ने की मनाई कर रक्खी थी। परन्तु सोढों (पँवारों की एक शाखा) ने जान बूझ कर उसका उल्लंघन कर डाला। इसीसे यह झगड़ा हुआ था।

२. रावजी ने इस युद्ध में सोढ़ा राजपूतों के मुखिया का साफ़ा छीन लिया था। उसी दिन से, अपनी इस विजय की यादगार में, राठोड़ साफ़ा बाँधने लगे।

३. इस अवसर पर सोढा दुर्जनसाल ने कुछ घोड़े भेट करने का वादा किया था। परन्तु राव जालणसीजी की मृत्यु समय तक भी वह अपनी प्रतिज्ञा पूरी न कर सका। इसीसे अपने स्वर्गवास के समय रावजी ने राजकुमार को इस भेट के वसूल करने की, ख़ास तौर से, ताकीद कर दी थी।

४. किसी किसी ख्यात में इनका पालनपुर पहुँच हाजी मलिक को मारना लिखा है।



५. राव कनपालजी

वि० सं० १३७० और १३८० (ई० स० १३१३ और १३२३) के बीच ?

इनके इस प्रकार बढ़ते हुए प्रताप को देख जब भाटियों और मुसलमानों की सम्मिलित सेना ने इन पर चढ़ाई की, तब उसी का मुकाबला करते हुए यह युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुए[1]।

इनके ३ पुत्र थे:—१ छाड़ा, २ भाकरसी और ३ डूंगरसी।

७. राव छाडाजी

यह राव जालणसीजी के बड़े पुत्र थे और उनके बाद उनके उत्तराधिकारी हुए[2]। कुछ दिन बाद ही इन्होंने उमरकोट के सोढ़ों पर चढ़ाई कर उन से दण्ड में घोड़े लिए[3] और जैसलमेर के भाटियों को कहला भेजा कि यदि वे लोग किले के बाहर नगर बसावेंगे तो उन्हें कर (खिराज) देना होगा। परन्तु वहां के भाटी नरेश ने इस पर कुछ ध्यान नहीं दिया। यह देख छाडाजी ने जैसलमेर पर चढ़ाई की। यद्यपि एकवार तो भाटियों ने भी इनका बड़ी वीरता से सामना किया, तथापि अन्त में हार कर उन्हें अपने वंश की एक कन्या रावजी को व्याहनी पड़ी। इस प्रकार भाटियों से सुलह हो जाने के बाद रावजी ने पाली, सोजत, भीनमाल और जालोर पर चढ़ाई कर उन प्रदेशों को लूटा। परन्तु जिस समय यह इस युद्ध यात्रा से लौटते हुए जालोर प्रान्त के रामा नामक गांव में पहुँचे, उस समय सोनगरों[4] और देवड़ा[5] चौहानों ने मिलकर इन

---

१. यह घटना वि॰ सं॰ १३८५ (ई॰ स॰ १३२८) की है।

२. ख्यातों में लिखा है कि मुलतान के यवन सेनापति की चढ़ाई के कारण छाड़ाजी को कुछ दिन के लिये महेवा छोड़ना पड़ा था। परन्तु शीघ्र ही उसकी मृत्यु हो जाने से इन्होंने उस पर फिर अधिकार कर लिया।

३. अपने पिता राव जालणसीजी की अन्तिम आज्ञा के अनुसार ही इन्होंने सोढ़ा दुर्जनसाल पर चढ़ाई कर उसे अपने पहले किए वादे से चौगुने घोड़े देने को बाध्य किया था।

४. सम्भवतः उस समय सोनगरों का मुखिया वनवीरदेव या उसका पुत्र रणवीरदेव होगा (भारत के प्राचीन राजवंश, भा॰ १, पृ॰ ३१३)। ख्यातों में राव छाडाजी का सोनगरों के मुखिया सामंतसिंह के हाथ से मारा जाना लिखा है। परन्तु जालोर के सोनगरा नरेश सामंतसिंह के लेख वि॰ सं॰ १३३९ से १३५९ (ई॰ स॰ १२८२ से १३०२) तक के मिले हैं। इसलिये वह तो इनका समकालीन हो ही नहीं सकता। परन्तु यदि ख्यातों में का यह नाम ठीक हो तो मानना होगा कि यह कोई दूसरा ही सामन्तसिंह था।

५. ये सिरोही की तरफ़ के थे।

पर अचानक हमला कर दिया। इसी हमले में यह शत्रुओं का मुकाबला करते हुए स्वर्ग को सिधारे। यह घटना वि० सं० १४०१ (ई० स० १३४४) की है।

इनके ७ पुत्र थे। १ तीडा, २ खोखर, ३ वानर, ४ सीहमल, ५ रुद्रपाल, ६ खीमसी और ७ कानडदेव।

८. राव तीडाजी

यह राव छाडाजी के ज्येष्ठ पुत्र थे और उनके बाद महेवे की गद्दी पर बैठे। इन्होंने अपने पिता की मृत्यु का बदला लेने के लिये सोनगरा चौहानों पर चढ़ाई कर उन्हें हराया और भीनमाल पर अधिकार कर लिया।

कुछ दिन बाद इन्होंने देवड़ों, (लोद्रवा के) भाटियों, बालेचा चौहानों और सोलंकियों पर चढ़ाइयां कर उनसे भी दण्ड के रूप में रुपये वसूल किए।

सिवाने के शासक चौहान सातल और सोम तीडाजी के भानजे थे। इसलिये जिस समय मुसलमानों ने चढ़ाई कर उनकी राजधानी को घेर लिया, उस समय रावजी भी अपने दलबल के साथ अपने भानजों की मदद को जा पहुँचे और वहीं पर मुसलमानों से लड़ते हुए वीर-गति को प्राप्त हुए[२]।

इनके ३ पुत्र थे। १ कान्हडदेव[३], २ त्रिभुवनसी और ३ सलखा।

१. ख्यातों में लिखा है कि उक्त गाँव में जहाँ पर इनका दाह हुआ था, वहाँ पर एक चबूतरा भी बनाया गया था।

२. ख्यातों के अनुसार यह घटना वि० सं० १४१४ (ई० स० १३५७) में हुई थी।

३. (९) **राव कान्हडदेवजी**—यह राव तीडाजी के बड़े पुत्र होने के कारण उनके बाद महेवे के राव हुए। सिवाने से लौटती हुई मुसलमानी सेना ने इनके राज्य पर भी हमला करदिया। यद्यपि मुख्य-मुख्य राठोड़ वीरों के पहले ही राव तीडाजी के साथ सिवाने के युद्ध मे हताहत हो जाने के कारण उस समय इनके पास सैनिकों की संख्या बहुत ही कम थी, तथापि इन्होंने बड़ी वीरता से शत्रुदल का सामना किया। परन्तु अन्त में अपनी संख्याधिकता के कारण महेवे पर मुसलमानों ने अधिकार कर लिया।

कुछ समय बाद जब कान्हडदेवजी के पास फिर धन-जन का संग्रह हो गया, तब इन्होंने मुसलमानों को निकाल कर खेड़ पर कब्ज़ा कर लिया और अपने अन्त समय तक यह वहाँ पर शासन करते रहे।



६. राव जालणसीजी

वि० सं० १३८०-१३८५ (ई० स० १३२३-१३२८) के बीच।

९. राव सलखाजी

यह राव तीडाजी के छोटे पुत्र थे। जिस समय इनके बड़े भाई कान्हड़देवजी गद्दी पर बैठे उस समय उन्होंने इन्हें एक गांव जागीर में दिया था। यह गांव सलखाजी की जागीर में रहने के कारण 'सलखा-वासनी' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

इसके बाद जब कान्हड़देवजी के समय महेवे पर मुसलमानों का अधिकार हो गया, तब मौका पाकर इन्होंने महेवे का कुछ भाग उन (मुसलमानों) से छीन लिया[1] और भिरड़कोट में रहकर अपने अधीनस्थ प्रदेश का शासन करने लगे। इन्होंने चौहानों को परास्त कर भीनमाल को भी लूटा था। इनके इस प्रकार बढ़ते हुए प्रताप को देखकर मुसलमानों ने इन पर अचानक चढ़ाई कर दी। इसी में राव सलखाजी मारे गए[2]।

इनके ४ पुत्र थे। १ मल्लिनाथजी[3], २ जैतमालजी, ३ वीरमजी और ४ शोभितजी।

---

(१०) **राव त्रिभुवनसीजी**—यह राव कान्हड़देवजी के छोटे भाई थे और उनकी मृत्यु के बाद खेड़ की गद्दी पर बैठे। परन्तु शीघ्र ही इनके छोटे भ्राता सलखाजी के पुत्र मल्लिनाथजी ने, मुसलमानों की सहायता प्राप्त कर, इन पर चढ़ाई कर दी। युद्ध में घायल हो जाने के कारण त्रिभुवनसीजी हार गए और कुछ ही दिन बाद इनकी मृत्यु हो गई।

ख्यातों में लिखा है कि मल्लिनाथजी ने अपने बन्धु पद्मसी को आधे राज्य का प्रलोभन देकर उसके द्वारा त्रिभुवनसी के घावों में नीम के पत्तों के साथ विष का प्रयोग करवा दिया था। इससे शीघ्र ही इनकी मृत्यु हो गई। परन्तु कार्य हो जाने पर मल्लिनाथजी ने अपनी प्रतिज्ञा तोड़ दी और उसे केवल दो गाँव देकर ही टाल दिया। त्रिभुवनसीजी के तीन पुत्र थे।

किसी किसी ख्यात में यह भी लिखा है कि राव तीडाजी के बाद पहले त्रिभुवनसीजी और उनके बाद कान्हड़देवजी गद्दी पर बैठे थे, तथा मल्लिनाथजी ने, जालोर के मुसलमान शासकों की सहायता से, इन्हीं कान्हड़देवजी को राज्यच्युत किया था। परन्तु यह क्रम ठीक प्रतीत नहीं होता।

१. कुछ ख्यातों में इनका वि० सं० १४२२ (ई० स० १३६५) में, मंडोर के पड़िहारों की सहायता से, मुसलमानों को हरा कर महेवे पर अधिकार करना लिखा है।

२. किसी किसी ख्यात में इस घटना का समय वि० सं० १४३१ (ई० स० १३७४) दिया है।

३. (११) **रावल मल्लिनाथजी**—यह सलखाजी के ज्येष्ठ पुत्र थे और पिता की मृत्यु के बाद अपने तीनों छोटे भाइयों को साथ लेकर अपने चचा राव कान्हड़देवजी के पास जा रहे। थोड़े ही दिनों में इनकी कार्य कुशलता से प्रसन्न होकर उन्होंने राज्य का सारा प्रबन्ध इन्हें सौंप दिया। परन्तु कुछ दिन बाद इन्होंने महेवे पर अधिकार कर लेने का विचार किया और इसके लिये मुसलमानों की सहायता प्राप्त करना आवश्यक समझ, यह उसकी तलाश

१०. राव वीरमजी

यह सलखाजी के पुत्र और रावल मल्लिनाथजी के छोटे भाई थे। यद्यपि मल्लिनाथजी

में चल दिए। इसी समय इनके बड़े चचा कान्हड़देवजी का स्वर्गवास हो गया और छोटे चचा त्रिभुवनसीजी महेवे की गद्दी पर बैठे। जैसे ही इस घटना की सूचना मल्लिनाथजी को मिली, वैसे ही यह यवन-सेना के साथ वहां आ पहुँचे और त्रिभुवनसीजी को युद्ध में आहत कर खेड़ के स्वामी बन बैठे।

रावल मल्लिनाथजी एक वीर पुरुष थे। इससे जब इन्होंने मंडोर, मेवाड़, आबू और सिंध के बीच लूट मारकर मुसलमानों को तंग करना शुरू किया, तब उनकी एक बड़ी सेना ने इनपर चढ़ाई की। उस सेना में तेरह दल थे। परन्तु मल्लिनाथजी ने इस बहादुरी से उसका सामना किया कि यवन-सेना को मैदान छोड़ कर भाग जाना पड़ा। इस विषय का यह पद मारवाड़ में अबतक प्रचलित है:-

'तेरह तुंगा भांगिया माले सलखाणी'

अर्थात्–सलखाजी के पुत्र मल्लिनाथजी ने सेना के तेरह दलों को हरा दिया। ख्यातों के अनुसार यह घटना वि० सं० १४३५ (ई० स० १३७८) में हुई थी। इस पराजय का बदला लेने के लिये मालवे के सूबेदार ने स्वयं इन पर चढ़ाई की। परन्तु मल्लिनाथजी की वीरता और युद्ध-कौशल के सामने वह भी कृतकार्य न हो सका।

मल्लिनाथजी ने सालोडी गांव अपने भतीजे (वीरमजी के पुत्र) चूंडाजी को जागीर मे दिया था और उनके नागोर पर चढ़ाई करने के समय उनकी सहायता भी की थी।

रावलजी ने सिवाना मुसलमानों से छीन कर अपने छोटे भाई जैतमाल को, खेड़ वीरमजी को (किसी किसी ख्यात में भिरड़कोट लिखा है) और ओसियां शोभितजी को जागीर में दी थी। वास्तव में ओसियां पर उस समय पँवारों का अधिकार था और मल्लिनाथजी की अनुमति से शोभितजी ने उन्हें हरा कर वहां पर अधिकार कर लिया था।

रावल मल्लिनाथजी का स्वर्गवास वि० सं० १४५६ (ई० स० १३९९) में हुआ। मारवाड़ के लोग इनको सिद्ध पुरुष मानते हैं। लूनी नदी के तट पर बसे तिलवाड़ा नामक गांव में इनका एक मन्दिर बना है और वहां पर चैत्र मास में एक मेला लगा करता है। इसमें घोड़े, बैल, ऊँट और गायों की लेवा-बेची होती है। इस अवसर पर बाहर के भी बहुत से ख़रीददार आया करते हैं।

इनके ५ पुत्र थे। १ जगमाल, २ कूंपा, ३ जगपाल, ४ मेहा और ५ अडवाल।

(१२) रावल जगमालजी–यह मल्लिनाथजी के बड़े लड़के थे और उनकी मृत्यु के बाद उनके उत्तराधिकारी हुए। इन्होंने मल्लिनाथजी की जीवित अवस्था में ही गुजरात की मुसलमानी सेना को हरा कर उसके अधिनायक की कन्या गींदोली को छीन लिया था।

किसी किसी ख्यात में लिखा है कि एक बार गुजरात के यवन-शासक का पुत्र, सावन में झूला झूलने को नगर से बाहर इकट्ठी हुई, महेवे की कुछ लड़कियों को ले भागा था। इसका बदला लेने के लिये ही जगमालजी व्यापारी का वेष बना कर उसके राज्य में पहुँचे और ईद के दिन मौका पाकर उन



७. राव छाडाजी

वि० सं० १३८५-१४०१ (ई० स० १३२८-१३४४)

ने इन्हें खेड़ की जागीर दी थी, तथापि जोहिया दला की रक्षा करने के कारण इनके और मल्लिनाथजी के बीच झगड़ा उठ खड़ा हुआ। इससे इन्हें खेड़ छोड़ देना पड़ा।

कन्याओं को मय बादशाह की लड़की के ले आए। इसी से वहां के शासक ने महेवे पर चढ़ाई की। परन्तु युद्ध में जगमालजी की मार से घबरा कर उसे अपने शिविर में घुस जाना पड़ा। उस समय का यह दोहा मारवाड़ में अब तक प्रसिद्ध है:—

"पग पग नेजा पाड़िया, पग पग पाड़ी ढाल।
बीबी पूछे खानने, जग केता जगमाल॥"

अर्थात्—जगमाल के कदम-कदम पर शत्रुओं के नेज़े तोड़ कर गिराने और कदम कदम पर उनकी ढालें गिराने का हाल सुन कर बीबी खान से पूछती है कि यह तो बताओ, आखिर, दुनिया में कितने जगमाल हैं?

जगमालजी ने राज्याधिकार प्राप्त करने के पूर्व ही सिवाना हस्तगत कर लेने की इच्छा से अपने चचा जैतमालजी को मारडाला था। परन्तु सिवाने पर इनका अधिकार न हो सका।

रावल जगमालजी की मृत्यु के बाद इधर इनका राज्य तो इनके पुत्रों में बंट गया और उधर इनके चचा वीरमजी के पुत्र राव चूंडाजी ने मंडोर पर अधिकार कर नया राज्य स्थापित किया। इस विषय की यह कहावत मारवाड़ में अब तक चली आती है:—

"माला रा मड्ढे नै वीरम रा गड्ढे -"

अर्थात्—मल्लिनाथजी के वंशज मालानी की मढ़ियों में रहे और वीरमजी के वंशज किले के मालिक (राजा) हुए।

जगमालजी के १० पुत्र थे। १ लूंका, २ वैरीसाल, ३ अज, ४ रिडमल, ५ ऊँगा, ६ भारमल, ७ कान्हा, ८ दूदा, ९ मांडलक और १० कुँभा।

१. किसी किसी ख्यात में खेड़ के स्थान पर भिरड़कोट का नाम लिखा है।

२. ख्यातों में लिखा है कि लखबेरा गांव के कुछ जोहिया (यौधेय) राजपूत मुसलमानी धर्म ग्रहण कर गुजरात के यवन-शासक की सेवा में रहते थे। उनके मुखिया का नाम दला था। एक बार वह बहुतसा माल असबाब और एक बढ़िया घोड़ी लेकर अहमदाबाद से निकल भागा। परन्तु मार्ग में जिस समय वह महेवे के पास पहुँचा, उस समय जगमालजी ने वह घोड़ी लेने की इच्छा प्रकट की। इस पर दला भाग कर वीरमजी के पास चला आया। इन्होंने भी शरणागत की रक्षा करना अपना कर्त्तव्य समझ उसकी हर तरह से रक्षा की। इस उपकार से प्रसन्न होकर उसने वह घोड़ी वीरमजी को भेट कर दी। जब इसकी सूचना जगमालजी को मिली, तब उन्होंने इनसे वह घोड़ी मांगी। परन्तु इन्होंने इस प्रकार भेट में मिली वस्तु को देने से इनकार कर दिया। यही इनके और जगमालजी के बीच मनोमालिन्य का कारण हुआ।

वहां से पहले तो यह सेतरावा[1] की तरफ़ गए और फिर चूँटीसरा[2] में जाकर कुछ दिन रहे। परन्तु वहां पर भी घटनावश एक काफिले को लूट लेने के कारण शाही फ़ौज ने इन पर चढ़ाई की। इस पर यह जांगलू में सांखला ऊदा[3] के पास चले गए। इसकी सूचना मिलने पर जब बादशाही सेना ने वहां भी इनका पीछा किया, तब यह जोहियावाटी में जोहियों के पास जा रहे। जोहियों के मुखिया दला ने भी इनकी पहले दी हुई सहायता का स्मरण कर इनके सत्कार का पूरा-पूरा प्रबन्ध कर दिया। परन्तु कुछ ही दिनों में इनके और जोहियों के बीच झगड़ा हो गया। इसी में वि० सं० १४४० (ई० स० १३८३) में यह लखबेरा गांव के पास वीर-गति को प्राप्त हुए। वीरमजी[5] के ५ पुत्र थे।

१ देवराज[6], २ चूँडा, ३ जैसिंह, ४ विजा और ५ गोगादेव[7]।

---

१. यह गांव वीरमजी ने उसी समय बसाया था। किसी-किसी ख्यात में वीरमजी का पहले वरिया नामक पर्वत के पास वीरमपुर बसाकर रहना और वहां से सेतरावे की तरफ़ जाना भी लिखा है।

२. यह गांव नागोर परगने में है। किसी-किसी ख्यात में इस गांव का नाम चूँडासर भी लिखा मिलता है। परन्तु इस समय नागोर प्रान्त में इस नाम का कोई गांव नहीं है।

३. वीरमजी ने ऊदा को भी मल्लिनाथजी के विरुद्ध शरण दी थी। इसी उपकार का ध्यान कर उसने इन्हें अपने यहां रख लिया।

४. कुछ ख्यातों में लिखा है कि जिस समय यह सिन्ध में जोहियों के पास पहुँचे उस समय उन्होंने इनके खर्च के लिये सहवान का प्रान्त दे दिया था।

५. ढाढी जाति के बहादर नामक कवि ने 'वीरमायण' नाम का भाषा का एक काव्य लिखा है। इसमें रावल मल्लिनाथजी का और उनके पुत्र जगमालजी का हाल लिख कर वीरमजी का इतिहास दिया है। और अन्त में उनके पुत्र गोगादेव का अपने पिता के वैर का प्रतिशोध कर युद्ध में वीर-गति प्राप्त करना वर्णित है।

६. **देवराज**–यह वीरमजी का ज्येष्ठ पुत्र था। पहले लिख चुके हैं कि वीरमजी अपने बड़े भाई मल्लिनाथजी से झगड़ा हो जाने के कारण, सेतरावा नामक गांव बसाकर कुछ दिन वहां रहे थे। परन्तु उसी झगड़े के कारण जब वह वहां से नागोर प्रान्त की तरफ़ चले, तब सेतरावा और उसके आस पास के २४ गांव अपने पुत्र देवराज को देकर उसकी रक्षा का पूरा प्रबन्ध कर गए थे। इसके बाद वीरमजी का पीछा करनेवाली शाही सेना ने सेतरावे पर भी चढ़ाई की। परन्तु देवराज के रक्षकों ने बड़ी वीरता से उसका सामना किया।

७. **गोगादेव**–यह वीरमजी का छोटा पुत्र था। इसका जन्म वि० सं० १४३५ (ई० स० १३७८) में हुआ था और यह कुण्डल के शासक भाटी वैरिसाल का दौहित्र था। इसने, आसायच राजपूतों को हराकर, सेखाला और उसके आस-पास के २७ गांवों पर अधिकार कर लिया था।



८. राव तीडाजी

वि० सं० १४०१-१४१४ (ई० स० १३४४-१३५७)

एक बार अनावृष्टि के कारण महेवे की बहुतसी प्रजा को अपनी गायों आदि को लेकर मालवे की तरफ जाना पड़ा। इन्हीं में गोगादेव का कृपापात्र वानर राठोड़ तेजा भी था। अगले वर्ष वर्षा हो जाने पर जिस समय वह वापिस लौट रहा था, उस समय उसके और वांसोलिया गांव के स्वामी मायल माणकराव के बीच झगड़ा हो गया। तेजा ने गोगादेव के पास पहुच उसकी शिकायत की। यह सुन गोगादेव ने स्वयं ही माणकराव पर चढ़ाई कर दी। युद्ध होने पर माणकराव को हार कर भागना पड़ा।

कुछ दिन बाद ही गोगादेव ने, अपने पिता की मृत्यु का बदला लेने के लिये, जोहियों पर चढ़ाई की। पहली बार तो इसे बिना लड़े ही लौटना पड़ा। परन्तु दूसरी बार के आक्रमण के रात्रि में अचानक किए जाने और उस समय जोहियों के दूसरे मुखिया धीरदेव के पूगल के भाटी राणँगदेव की कन्या से विवाह करने को गए होने से जोहियादला मारा गया। वहां से लौट कर जिस समय यह (गोगादेव) लच्छूसर गांव के पास ठहरा हुआ था, उसी समय, दला के पुत्र के द्वारा उपर्युक्त घटना की सूचना पाकर, धीरदेव और उसका श्वशुर राणँगदेव दोनों अपने दलबल सहित वहां आ पहुँचे, और मौका देख उन्होंने पहले तो जंगल में चरने को छोड़े हुए गोगादेव के घोड़ों को दूर भगा दिया और फिर वे एकाएक आगे बढ़ गोगादेव पर टूट पड़े। इस विषय का यह दोहा प्रसिद्ध है:

भूका तिसिया थाकड़ा, राखी जे नैडाह।
दलिया हाथ न आवसी, गोगादे घोड़ाह॥

यद्यपि इसने भी एक बार तो अपनी (रलतली नामक) तलवार सम्हाल कर जोहियों और भाटियों के सम्मिलित दल का बड़ी वीरता से सामना किया, तथापि कुछ देर बाद यह जांघों के कट जाने से पृथ्वी पर गिर पड़ा। इसी समय राणँगदेव उधर आ निकला। उसे देख गोगादेव से न रहा गया और इसने उस अवस्था में होने पर भी उसे युद्ध के लिये ललकारा। परन्तु वह गोगादेव के पराक्रम से भली भांति परिचित था। इसलिये दूर से ही दुर्वचन कहकर चला गया। इसके थोड़ी देर बाद धीरदेव भी किसी कार्यवश वहाँ आ पहुँचा और गोगादेव की ललकार को सुन वार करने के लिये इसकी तरफ झपटा। परन्तु अभी वह आगे बढ़ा ही था कि गोगादेव ने उछल कर अपनी तलवार का एक हाथ उस पर जमा दिया। इससे धीरदेव के दो टुकड़े हो गए। इस प्रकार शत्रु से बदला लेकर गोगादेव भी रक्त निकल जाने से वहीं शान्त हो गया। इसने मरते समय कहा था कि जोहियों से तो मैंने अपना बदला आपही ले लिया है, परन्तु भाटियों से बदला लेना बाकी है। आशा है इस कार्य को भी मेरे वंश का कोई न कोई सुपुत्र अवश्य ही पूरा करेगा। यह घटना वि० सं० १४५९ की जेष्ठ सुदि ५ (ई० स० १४०२ की ७ मई) की है। (परन्तु ख्यातों में का यह संवत् श्रावणादि हो तो वि० सं० १४६० की ज्येष्ठ सुदि ५ को ई० स० १४०३ की २६ मई होगी।)

इस युद्ध में गोगादेव की तरफ का सांखला मेहराज का पुत्र आलणसी भी मारा गया था। इसलिये कुछ दिन बाद ही राणँगदेव ने मेहराज पर चढ़ाई करदी। यह देख वह भाग कर राव चूंडाजी के पास चला गया। चूंडाजी ने उसका बड़ा आदर किया और निर्वाह के लिये जागीर देकर उसे अपने पास रख लिया।

११. राव चूंडाजी

यह राव वीरमदेवजी के द्वितीय पुत्र थे[1]। इनका जन्म वि० सं० १४३४ (ई० सन् १३७७) में हुआ था। इसलिये पिता की मृत्यु के समय इनकी अवस्था केवल ६ वर्ष की थी। इसके बाद ७ वर्ष तक तो यह अपनी माता के इच्छानुसार गुप्त रूप से कालाऊ[2] में आल्हा चारण की देखभाल में रहे[3], और इसके बाद आल्हा[4] ने इन्हें इनके चचा रावल मल्लिनाथजी के पास पहुँचा दिया। वहाँ पर कुछ ही दिनों में इन्होंने अपनी कुशलता से रावलजी को इतना प्रसन्न कर लिया कि उन्होंने सालोडी गाँव इन्हें जागीर में देदियां[5], और साथ ही इनकी अवस्था छोटी होने से

ख्यातों में लिखा है कि राव चूंडाजी की दी हुई जागीर की आय, उसकी जैसलमेर वाली पहली जागीर की आय से भी अधिक थी और उसका प्रधान गांव भूंडेल था। जैसलमेर की ख्यातों में मेहराज को सुरजड़े का स्वामी और जैसलमेर-नरेश का सामन्त लिखा है। उनमें यह भी लिखा है कि उसका पुत्र जैसा जैसलमेर रावल के भतीजे लूणकरण की तरफ़ से युद्ध कर भाटी राणगदेव के हाथ से मारा गया था, उसी वैर का प्रतिशोध करने को वह (मेहराज) राव चूंडाजी के पास जा कर रहा था।

१. पहले लिख आए हैं कि इनके पिता ने इनके बड़े भाई देवराजजी को सेतरावा नामक गाँव जागीर में दिया था।

२. यह मारवाड़ के शेरगढ़ परगने का गाँव है।

३. उस समय इनके छोटे भाई ननिहाल में थे। ख्यातों से ज्ञात होता है कि चूंडाजी बचपन से ही होनहार थे, और इनकी रुचि भी अधिकतर राजसी खेलों में ही रहती थी।

४. ख्यातों से प्रकट होता है कि जिस समय चूंडाजी मंडोर के स्वामी हुए, उस समय इसी आल्हा ने वहाँ पहुँच अपनी की हुई सेवा की याद दिलाने के लिये यह सोरठा पढ़कर सुनाया थाः-

चूँडा, नावै चीत, काचर कालाऊ तणा।
भूप भयौ भैभींत, मंडोवर रै मालियै।

अर्थात्-हे चूंडाजी! इस समय तो आपको कालाऊ के कचरों की याद भी नहीं आती है; क्योंकि इस समय आप मंडोर के इस ऊँचे महल में राजा होकर पत्थर की दीवार से बने बैठे हैं (किसी की तरफ़ देखते तक नहीं)। यह सुन चूंडाजी ने उसे अपने पास बुलवा लिया, और दान-मान आदि से संतुष्ट कर घर जाने की आज्ञा दी।

५. ख्यातों में लिखा है कि चूंडाजी की चतुराई से प्रसन्न होकर जिस समय मल्लिनाथजी ने इन्हें सालोडी गाँव जागीर में दिया था, उस समय इनसे कहा था कि वहाँ से पूर्व की तरफ़ का जितना भी प्रदेश हस्तगत करोगे वह सब तुम्हारे ही अधिकार में रहेगा।



६. राव सलखाजी

वि० सं० १४१४-१४३१ (ई० स० १३५७-१३७४)

वहाँ के प्रबंध और इनकी निगरानी के लिये ईंदा (पड़िहार) शिखरा को नियुक्त करदिया। यह शिखरा बड़ा चतुर व्यक्ति था। इसलिये कुछ ही दिनों में उसने लूट-खसोट द्वारा बहुतसा माल जमाकर चारों तरफ़ अपना आतंक जमा लिया। यह देख धीरे-धीरे बहुत से योद्धा भी उसके पास इकट्ठे हो गए। जब इस बात की शिकायत रावलजी के पास पहुँची, तब उन्होंने स्वयं जाकर इसकी जाँच करने का विचार किया। परंतु उनके मंत्री ने, जो चूंडाजी से प्रेम रखता था, सब बातों की सूचना पहले से ही इनके पास भेजदी। इससे शिखरा सावधान हो गया, और उसने मल्लिनाथजी के आने के पहले ही अपने सैनिकों आदि को इधर-उधर भेज दिया। इसलिये मल्लिनाथजी को, स्वयं वहाँ जाने पर भी, इनके वैभव का ठीक-ठीक हाल न मालूम हो सका, और वह चूंडाजी द्वारा किए गए सत्कार से प्रसन्न होकर लौट आए। इसके कुछ दिन बाद ही चूंडाजी के सैनिकों ने एक अरब-व्यापारी के घोड़े लूट लिए। यद्यपि इससे इनका सैनिक बल बहुत बढ़ गया, तथापि इस घटना से मल्लिनाथजी अप्रसन्न हो गए।

जहाँ तक हो, वहाँ से पश्चिम की तरफ़ के प्रदेश को हस्तगत करने का उद्योग न करना। परन्तु (मल्लिनाथजी के पुत्र) जगमाल को यह बात अच्छी न लगी, और वह चूंडाजी से द्वेष रखने लगा। इसके बाद एक रोज़ जिस समय जगमाल और चूंडाजी दोनों भाई कुछ साथियों को लेकर शिकार को चले, उस समय मार्ग में इन्हें एक बनैला सुअर मिला, जो इनको देख शीघ्र ही एक तरफ़ को भाग चला। इस पर यद्यपि सब लोगों ने मिलकर उसका पीछा किया, तथापि ख़ुद शिकार करने की इच्छा से जगमाल ने साथवालों को उस पर प्रहार करने से रोक दिया। परन्तु जब सायंकाल हो जाने पर भी जगमाल उसे अपनी मार में न ला सका, तब चूंडाजी ने आगे बढ़ उसे मार डाला। जगमाल ने इसे अपना अपमान समझा, और वह इनसे अधिक रुष्ट हो गया। इस गृह-कलह को मिटाने के लिये ही मल्लिनाथजी ने चूंडाजी को सालोडी में जाकर रहने की आज्ञा दी थी।

१. ख्यातों से मालूम होता है कि जैसे ही मंडोर के शाही अधिकारी को घोड़ों के लूटे जाने की सूचना मिली, वैसे ही उसने मल्लिनाथजी को उनके लौटा देने का प्रबंध करने के लिये कहलाया। परन्तु मल्लिनाथजी की आज्ञा पहुँचने पर चूंडाजी ने जवाब में लिख भेजा कि वे घोड़े तो मैं अपने राजपूत सैनिकों में बाँट चुका हूँ, इसलिये वापस नहीं ले सकता। हाँ, मेरी सवारी का घोड़ा अवश्य मेरे पास है, आप चाहें तो उसे मँगवा सकते हैं। यह उत्तर पाकर मल्लिनाथजी इनसे अप्रसन्न हो गए। परन्तु उन्होंने फिर भी इनसे कुछ न कहा, और शाही अधिकारी को कुछ दे-दिलाकर झगड़े को दबा दिया।

उस समय मंडोर पर माँडू के सूबेदार का अधिकार था, और वहाँ पर उसकी तरफ़ से एक अधिकारी रहा करता था। एक बार इसी अधिकारी ने आस-पास में रहनेवाले ईंदा (पड़िहार) राजपूतों से घोड़ों के लिये घास भेजने को कहलाया। इस आज्ञा से ईंदों ने अपना अपमान समझा, और इसलिये आपस में सलाहकर सौ गाड़ियाँ ऐसी तैयार कीं, जिनमें ऊपर से तो घास भरी हुई मालूम होती थी, परंतु भीतर प्रत्येक गाड़ी में शस्त्रों से सजे चार-चार योद्धा छिपे थे। इसी प्रकार गाड़ीवान के स्थान पर भी एक-एक योद्धा बैठा था, और उसके शस्त्र घास के भीतर छिपे थे। जब ये गाड़ियाँ क़िले में पहुंचीं[2], तब इनमें के पाँच सौ आदमियों ने निकलकर वहाँ पर उपस्थित यवन-सैनिकों को मार डाला। इससे क़िले पर ईंदा पड़िहारों का अधिकार हो गया। यह घटना वि० सं० १४५१ (ई० सन् १३९४) की है। इस कार्य में ईंदा शिखरा की सलाह से चूंडाजी के योद्धाओं ने भी भाग लिया था। इस प्रकार अपने खोए हुए क़िले के एक बार फिर अपने अधिकार में आ जाने पर ईंदों ने सोचा कि, यद्यपि इस समय तो हमने इस दुर्ग पर अधिकार कर लिया है, तथापि जिस समय भागे हुए मुसलमान नागोर और अजमेर से सहायता प्राप्तकर क़िले पर प्रत्याक्रमण करेंगे, उस समय इसकी रक्षा करना अवश्य ही कठिन हो जायगा। इसलिये यदि चूंडाजी मंडोर का अधिकार मिल जाने पर हमारे ८४ गाँवों[1] में हस्तक्षेप न करने की प्रतिज्ञा करलें, तो यह क़िला उन्हें सौंप दिया जाय। इस प्रकार यवनों से इस दुर्ग की रक्षा भी हो जायगी, और इस पर अधिकार करते समय दी हुई चूंडाजी की सहायता का बदला भी उतर जायगा। इसके बाद शीघ्र ही सब बातें

१. उस समय मंडोर के राज्य में ३४२ गाँव थे। इनमें से ८४ पर ईंदा पड़िहारों का, ८४ पर बालेसों का, ८४ पर आसायचों का, ५५ पर मांगलियों का और ३५ पर कोटेचों का अधिकार था।

२. ख्यातों से ज्ञात होता है कि जिस समय ये गाड़ियाँ क़िले पर पहुँचीं, उस समय एक मुसलमान सैनिक ने यह मालूम करने के लिये कि इन गाड़ियों में अच्छी तरह से घास भरी गई है या नहीं, अपना बरछा एक गाड़ी में भरी घास में घुसेड़ दिया। यद्यपि उस बरछे की नोक घास के अंदर छिपे एक सैनिक की जाँघ में घुस गई, तथापि उसने बाहर खींचे जाने के पहले ही उसे कपड़े से पोंछ लिया। इससे उसमें लगे रुधिर का उस मुसलमान सैनिक को पता न चला। उलटा बरछे के बाहर खींचे जाने में रुकावट पड़ने से उसने समझा कि गाड़ी में घास ख़ूब दबाकर भरी गई है।



१०. राव वीरमजी

वि० सं० १४३१-१४४० (ई० स० १३७४-१३८३)

तय कर इंदों ने अपने मुखिया राना उगमसी की पोती (गंगदेव की पुत्री) चूंडाजी को ब्याह दी, और उसके दहेज में मंडोर का क़िला भी इन्हें दे दिया। इस आशय का यह सोरठा मारवाड़ में अब तक प्रसिद्ध है:-

इंदारों उपकार, कमधज मत भूलो कदे।
चूंडो चँवरी चाढ, दी मंडोवर दायजे॥

इसके बाद ही राव चूंडाजी ने चावंडा नामक गाँव में अपनी इष्टदेवी चामुंडा का मंदिर बनवाया। यह अब तक विद्यमान है। चूंडाजी के मंडोर प्राप्त करने की सूचना पाकर रावल मल्लिनाथजी स्वयं इनसे मिलने को मंडोर आए। चूंडाजी ने भी उनका यथायोग्य सत्कार किया। उनके कुछ दिन रहकर लौट जाने पर यह (चूंडाजी) बड़ी तत्परता से अपने अधिकृत क़िले की रक्षा का प्रबंध करने लगे।

उन दिनों दिल्ली पर तुग़लक़ों का अधिकार था। परंतु उनकी शक्ति के क्षीण हो जाने से चूंडाजी को अच्छा मौक़ा मिल गया। कुछ दिनों में मंडोर के प्रबंध से छुट्टी पाकर इन्होंने आस-पास के मुसलमानों को भी तंग करना शुरू किया।

१. किसी-किसी ख्यात में इसका नाम राय धवल लिखा है।

२. कर्नल टॉड ने चूंडाजी का पड़िहार-नरेश को मारकर मंडोर पर अधिकार करना लिखा है (ऐनाल्स ऐंड ऐंटिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान, क्रुक संपादित, भा० १, पृ० १२०; और भा० २, पृ० ६४४), परन्तु यह ठीक प्रतीत नहीं होता।

३. यह गाँव जोधपुर से ७ कोस वायुकोण में है।

४. इस मंदिर की बग़ल में एक पहाड़ी गुफा है। उसका आधा भाग मंदिर में आ गया है, और आधा खुला है। उसी खुले हुए भाग की एक तरफ़ की चट्टान पर एक लेख खुदा है, जिसमें केवल निम्नलिखित पंक्तियाँ ही पढ़ी जाती हैं:—

संवत् १४५१ वर्षे मार्गसिर सुदि ३ त्रि(तृ) ति(ती)या बृहस्पतिवारे उत(त्त)रापाढा नक्षत्रे मध्ये मि(मी)न लग्ने मकरस्थ चन्द्र (न्द्रे) उच्च(च्च)नक्षत्रे······(आगे एक कुंडली बनी है। उसके पहले घर में १२ का अंक और 'बृ' लिखा है, दूसरे और तीसरे घरों में क्रमशः १ और २ के अंक खुदे हैं, और कुंडली के बीच में 'श्री' लिखा है)।

इससे ज्ञात होता है कि चूंडाजी ने इस तिथि के पूर्व ही मंडोर पर अधिकार कर लिया था। परन्तु किसी-किसी ख्यात में इस घटना का समय वि० सं० १४५२ भी लिखा है। फिर भी उपर्युक्त तिथि ही अधिक प्रामाणिक प्रतीत होती है।

उपर्युक्त लेख में की वि० सं० १४५१ की मंगसिर सुदी ३ को ई० सन् १३६४ की २६ नवंबर थी।

इसकी सूचना मिलने पर वि० सं० १४५३ (ई० सन् १३९६=हि० सन् ७९८) में गुजरात के सूबेदार ज़फ़रख़ाँ ने आकर मंडोर के क़िले को घेर लिया। परंतु जब एक वर्ष और कुछ महीने घेरे रहने पर भी क़िले के हाथ आने की आशा नहीं दिखाई दी, तब वह चूंडाजी से आगे मुसलमानों को तंग न करने की नाम-मात्र की प्रतिज्ञा करवाकर ही लौट गया[1]।

उससे निपटकर चूंडाजी ने कोटेचा राठोड़ भान को मार डाला, और उसके अधिकृत प्रदेश[2] को अपने राज्य में मिला लिया।

इस प्रकार इधर तो धीरे-धीरे राव चूंडाजी अपना बल बढ़ा रहे थे, और उधर वि० सं० १४५५ (ई० सन् १३९८=हि० सन् ८०१) के तैमूर के हमले के कारण दिल्ली की बादशाहत कमज़ोर हो रही थी। इससे वि० सं० १४५६ (ई० सन् १३९९) में इन्होंने खोखर[3] को हराकर नागोर पर भी अधिकार कर लिया।

---

१. 'मिराते-सिकंदरी' में भी इस घटना का उल्लेख मिलता है। परन्तु उसमें भूल से मंडोर के स्थान पर माँडू लिख दिया गया है (देखो पृ० १३)। उस समय माँडू पर हिन्दुओं का अधिकार न होकर मुसलमानों का ही अधिकार था।

'मिराते-सिकंदरी' के लेखक ने ज़फ़रख़ाँ का ज़ियारत (तीर्थ-यात्रा) के लिये माँडू से अजमेर जाना लिखा है (देखो पृ० १३)।

इससे भी उपर्युक्त अनुमान की ही पुष्टि होती है, क्योंकि अजमेर मंडोर से ही नज़दीक पड़ता है।

२. भान का राज्य मंडोर से ५ कोस वायुकोण में कैरू के पास था। उसके रहने की जगह आज भी 'भान का भाकर' (पर्वत) के नाम से प्रसिद्ध है। ख्यातों में लिखा है कि एक बार जब चूंडाजी शिकार से लौटते हुए उसके यहाँ पहुँचे, तब उसने अपने घोड़ों के लिये तैयार किया हुआ हलुवा इनके सामने लाकर रख दिया। चूंडाजी ने इसे अपना अपमान समझा, और एक नाई को द्रव्य देकर हजामत बनवाते समय उसे मरवा डाला।

३. खोखर के विषय में बड़ा मतभेद चला आता है। किसी ख्यात में उस समय नागोर पर खोखर राठोड़ों का अधिकार होना लिखा है, और उसमें यह भी लिखा है कि वहाँ के उस समय के शासक को चूंडाजी की मौसी (या साली) ब्याही थी। किसी में उस समय वहाँ पर खोकर मुसलमानों का शासन होना प्रकट किया है। फिर किसी में वहाँ पर माँडू के शासक की तरफ़ से खाँज़ादा आज़म के हाकिम होने का उल्लेख है। परन्तु यह अंतिम बात संभव नहीं हो सकती, क्योंकि नागोर के खाँज़ादों का संबंध माँडू के शासक से न होकर गुजरात के शासक मुज़फ्फ़रशाह प्रथम से था, और पहले-पहल वि० सं० १४६४ (ई० सन् १४०८) में मुज़फ्फ़र का भाई शम्सख़ाँ (दंदानी) नागोर का हाकिम बनाया गया था।



११. राव चूंडाजी

वि० स० १४५१-१४८० (ई० स० १३९४-१४२३)

इस कार्य में इन्हें इनके चचा रावल मल्लिनाथजी ने भी सहायता दी थी। इसके बाद इन्होंने नागोर के उत्तरी प्रदेश को विजयकर वहाँ पर अपने नाम पर चूंडासर[1] गाँव बसाया, और कुछ ही समय में शाही हाकिमों को मारकर खाटू, डीडवाना, साँभर और अजमेर[2] पर भी कब्ज़ा करलिया। इसी तरह कुछ दिनों में नाडोल भी इनके अधिकार में आ गया[3]।

'तबकाते-अकबरी' (पृ० ४४८) और 'मिरातेसिकंदरी' (पृ० १७-१८) में लिखा है–"जब तातारखाँ (मोहम्मदशाह) मर गया, और गुजरात का शासन दुबारा ज़फ़रखाँ (आज़म हुमायूं मुज़फ्फ़रशाह प्रथम) के हाथ में आया, तब उसने मलिक जलाल खोकर की जगह अपने छोटे भाई शम्सखाँ दंदानी को नागोर का हाकिम बनाकर भेजा।" उसकी मृत्यु के बाद उसके पुत्र से चूंडाजी ने दुबारा नागोर छीना था। ख्यात-लेखकों ने इन दोनों घटनाओं को एक समझकर ही शायद यह गड़बड़ की है।

१. यह स्थान (बीकानेर के ईशानकोण में) गजनेर के पास है। यहीं पर इनका बनवाया चूँडासर तालाव भी है। इसके उत्तर की तरफ़ के टीले पर दो स्तंभ खड़े हैं। कहते हैं, चूँडाजी ने अपने घोड़े की लंबी छलांग की यादगार में ये पाषाण-स्तंभ खड़े करवाए थे। इससे यह भी प्रकट होता है कि इन्होंने जांगलू के सांखलों, मोहिलों और भाटियों की कुछ भूमि पर भी अवश्य ही अधिकार कर लिया था। साथ ही इन्होंने जोहियों से भी अपने पिता का बदला अवश्य लिया होगा।

२. इन्होंने अजमेर वि० सं० १४६२ (ई० सन् १४०५) में लिया था। वहां के छतारी गांव में इस समय भी चूँडावत राठोड़ पुराने जागीरदार (भोमियों) के रूप में विद्यमान हैं।

३. (ऐनाल्स ऐंड ऐंटिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान, भा० २, पृ० ९४४)। 'तवारीख़ पालनपुर' में लिखा है कि राव चूँडा ने जालोर के मालिक बीसलदेव चौहान को अपनी कन्या के साथ विवाह करने के लिये मंडोर बुलवाया, और जब वह जालोर का क़िला बिहारी पठान मलिक खुर्रम को सौंपकर वहां गया, तब पहले से किए निश्चय के अनुसार चूँडा के पांचवें पुत्र पुंजा ने उसे मार डाला। इसके बाद उन्होंने जालोर पर अधिकार करने का इरादा किया। परंतु मलिक खुर्रम ने बीसलदेव की रानी पोपांबाई को गद्दी पर बिठाकर उनका इरादा पूरा न होने दिया। फिर भी कुछ दिन बाद, लोगों के कहने से, पोपांबाई ने बिहारी पठानों को धोका देकर मरवा डालने का इरादा किया। जैसे ही इस बात का पता मलिक खुर्रम को लगा, वैसे ही उसने पोपां के महल को घेर लिया। परंतु अंत में पोपां के पक्ष वाले हार गए और पोपां क़िला ख़ाली कर अपने दो पुत्रों के साथ सिरोही के पहाड़ों में चली गई। वहां से जब वह ईडर पहुँची, तब वहां के स्वामी राठोड़ राव रणमल्ल ने उसके पुत्रों को जोरामीरपुर गांव जागीर में दे दिया। पोपांबाई के चले जाने पर जालोर बिहारी पठानों के अधिकार में चला गया (खंड १, पृ० ४-६)। संभव है, जालोर पर की चढ़ाई के समय बिहारियों के कारण वहां पर तो इनका अधिकार न हो सका हो, परंतु नाडोल इनके हाथ लग गया हो।

वि० सं० १४६४ (ई० सन् १४०८=हि० सन ८१०) में शम्सखाँ ने अपने भाई (गुजरात के शासक मुज़फ़्फ़रशाह प्रथम) की सहायता से नागोर पर अधिकार करलिया।[1] इस पर चूंडाजी मंडोर चले आए।

जिस समय राव चूंडाजी ने डीडवाना और साँभर पर चढ़ाई की, उस समय इनके कहने से इनके अन्य भाइयों ने भी इन्हें उस कार्य में यथासाध्य सहायता दी थी। परंतु इनका भाई जैसिंह चुप बैठ रहा था। इसी से वि० सं० १४६८ (ई० सन् १४११) में इन्होंने सेना भेजकर फलोधी का अधिकार उससे छीन लिया।

शम्सखाँ के मरने पर नागोर पर उसके पुत्र फ़ीरोज़खाँ का अधिकार हो गया।[2] परंतु वि० सं० १४७८ (ई० सन १४२१) के क़रीब इन्होंने उसको भगाकर नागोर पर दुबारा अधिकार कर लिया।

राव चूंडाजी के और पूंगल के भाटियों के बीच बहुत दिनों से झगड़ा चला आता था। इसीसे उन्होंने मुलतान के सेनानायक सलीम[3] की सहायता प्राप्तकर नागोर पर चढ़ाई की। जांगलू के सांखलों और जैसलमेर के भाटियों[4] ने भी उनका साथ दिया। जब यह सम्मिलित दल नागोर के पास पहुँचा, तब भाटियों ने धोका देने की नियत से आगे बढ़ चूंडाजी से मेलजोल की बातें शुरू कीं। भाटियों के इस रुख़ को देख जिस समय चूंडाजी स्वयं उनसे मिलने को नगर से बाहर आए, उसी समय पीछे ठहरी हुई शत्रु-सैन्य ने एकाएक आगे बढ़ इनको घेर लिया। इस पर यद्यपि रावजी ने और उनके साथ के राठोड़ों ने बड़ी वीरता से शत्रु-दल का सामना किया, तथापि अंत में अपनी संख्याधिकता के कारण शत्रु विजयी हुए, और

१. 'तबकाते-अकबरी' पृ० ४४८ और 'मिराते सिकंदरी' पृ० १८।

२. हि० सन् ८१६ (वि० सं० १४७४=ई० सन् १४१६) में जिस समय गुजरात के शासक अहमदखाँ ने बुरहानपुर पर चढ़ाई की थी, उस समय शम्सखाँ ने उसे एक पत्र लिखा था (मिराते-सिकंदरी पृ० ३३)। इसमें उस समय तक नागोर पर शम्सखाँ का ही अधिकार होना प्रकट होता है।

३. यह शायद देहली के बादशाह की तरफ़ से मुलतान में नियत था। किसी किसी ख्यात में इसे मुलतान के हाकिम का सेनापति लिखा है।

४. उस समय जैसलमेर की गद्दी पर महारावल लखमणजी थे। और, ओडीट के मोहिलों ने भी इस चढ़ाई में भाग लिया था।

राव चूंडाजी सन्मुख रण में वीर-गति को प्राप्त होगए। यह घटना वि० सं० १४८० की चैत्र-सुदी ३ (ई० सन् १४२३ की १५ मार्च) की है[1]।

राव चूंडाजी का, वि० सं० १४७८ का, एक ताम्रपत्र बडली (जोधपुर परगने) से मिला है। उसमें उक्त गांव के दान का उल्लेख है[3]।

१. कर्नल टॉड ने चूंडाजी का वि० सं० १४३८ (ई० सन् १३८२) मे गद्दी बैठना और वि० सं० १४६५ (ई० सन् १४१६) में मारा जाना लिखा है। उसने यह भी लिखा है कि बादशाह खिज़रखाँ ने भी, जो उस समय मुलतान मे था, भाटियों की सहायता की थी (ऐनाल्स ऐंड ऐंटिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान, भा० २, पृ० ६४५ और ७३३)। परन्तु यह ठीक नहीं है। खिज़रखाँ वि० सं० १४७१ (ई० सन् १४१४=हि० सन् ८१७) मे दिल्ली के तख्त पर बैठा था, और वि० सं० १४७८ (ई० सन् १४२१=हि० सन् ८२४) मे मरा था; ऐसी हालत में वि० सं० १४६५ (ई० सन् १४०८) मे खिज़रखाँ की मदद से चूंडाजी का मारा जाना संभव नहीं हो सकता।

२. इस ताम्रपत्र की लिखावट महाजनी होने से इसमे मात्राओं आदि का बहुत कम प्रयोग किया गया है। परन्तु यथास्थान मात्राएँ आदि लगा देने से उसमे का लेख इस प्रकार पढ़ा जाता है:—

१. श्री राव चूंडाजी रो दत बडली गांव।
२. प्रोयत सादा नै दीधो संवत् १४ व---
३. रस आठतरो काती सुद पूनम रै।
४. दिन वार सूरज पुष्करजी माथे।
५. पुण्यार्थ कीदो महाराज चूंडाजी।
६. दुवो तेवीस हज़ार वीगा जमी नी--
७. म सीम समेत ईश्वर प्रीतये
८. गांव दीधो हिंदू नै गऊ मुसलमा [न नै]
९. सूर माताजी चामुंडाजी सूं बेमुख।
१०. आल-औलाद अग्यारी कोई गोती पोतो।
११. ईश्वर सूँ बेमुख प्रोयत सादानै।
१२. ... ...

(उसमें का पीछे का लेख इस प्रकार है)

१३. राव चूंडाजी रै भंडारी शिवचंद।

३. कहते हैं, राव चूंडाजी ने कई गांव दान किए थे:--

१ बंभोर-पुरोहितां, २ बड़ली, ३ चावंडां, ४ बाड़िया, ५ भैसेर-चावंडां, ६ भाटेलाई-पुरोहितों का बास, ७ हिंगोला (जोधपुर परगने के) पुरोहितों को और ८ भांडु-

राव चूंडाजी के १४ पुत्र थे–१ रिडमल (रणमल्ल), २ सत्ता, ३ रणधीर[2], ४ हरचंद, ५ भीम, ६ कान्ह, ७ अड़कमल[3], ८ पूना, ९ सहसमल, १० अज,

---

चारणां, ६ सीयादां (शेरगढ़ परगने के), १० गडवाडा (पाली परगने का) और कालाऊ (शेरगढ़ परगने का) की भूमि चारणों को। परन्तु इस विषय में निश्चय पूर्वक कुछ नहीं कह सकते।

१. कर्नल टॉड ने चूंडाजी के पुत्रों में पूना के स्थान में पुंजका और हरचंद के स्थान में बाघ का नाम लिखा है (ऐनाल्स ऐंड ऐंटिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान, भा० २, पृ० ९४५)। इसी प्रकार ख्यातों में इनके पुत्रों में राजधर, माला, मूला, गोपा और चाचिगदेव के नाम भी दिए हैं। इसी प्रकार कहीं-कहीं इनके पुत्रों में मांडण, डूंग और रावत के नाम भी लिखे मिलते हैं।

२. इसने पिता की मृत्यु के बाद नागोर छोड़कर अर्वली-पर्वत की उपत्यका में बसे झाडोल नामक गांव में अपना निवास क़ायम किया। (यह गांव खारची-मारवाड़ जंक्शन से २१ मील पर मेवाड़-राज्य में था।) इस पर जब वहां के स्वामी झाला हम्मीर ने आपत्ति की, तब इसके मंत्री (ईंदा पड़िहार) ऊदा ने कुछ दिन तक तो उसे वादों में भुला रक्खा। परन्तु जब वह इस पर चढ़कर आ गया, तब इसने उसे मार डाला। इसी बीच इसके भाई राव सत्ता ने इसे मंडोर में बुलवा लिया। इसलिये इस घटना के बाद यह वहां चला गया।

३. वि० सं० १४६१ (ई० सन् १४०४) में जिस समय इसने दशहरे के दिन चामुंडा के बलिदान के लिये लाए हुए महिष की गर्दन तलवार के एक ही वार में काट गिराई, उस समय लोग इसकी प्रशंसा करने लगे। परन्तु राव चूंडाजी ने कहा कि मैं तो इसे तभी वीर समझूंगा, जब यह पूंगल के भाटी राणँगदेव से अपने चचा गोगादेव का बदला ले लेगा। यह सुन अड़कमल ने इस कार्य को करने की प्रतिज्ञा कर ली। ख्यातों में लिखा है कि (लाडणू के निकट के) छापर–द्रोणपुर के स्वामी मोहिल (चौहान) माणक राव का विचार पहले अपनी कन्या का विवाह अड़कमल से करने का था। परन्तु बाद में उसने उसे भाटी राणँगदेव के पुत्र सादा से ब्याह देना निश्चित किया। यद्यपि चूंडाजी के भय से राणँगदेव स्वयं तो इस संबंध को करने के लिये सहमत नहीं हुआ, तथापि उसके पुत्र सादा ने यह बात स्वीकार कर ली। कुछ दिन बाद जब सादा विवाह करने को ओडींट की तरफ़ गया, तब मेहराज ने (जिसका पुत्र भाटी राणँगदेव के हाथ से मारा गया था) इसकी सूचना अड़कमल के पास पहुँचा दी। यह सुन विवाह कर लौटते हुए सादा को मार्ग में ही दंड देने की नियत से अड़कमल भी कुछ चुने हुए योद्धाओं और मेहराज को साथ लेकर रवाना हुआ। जिस समय यह जसरासर और सादासर गांवों के पास पहुँचा, उस समय इसका सामना नव-वधू को लेकर लौटते हुए सादा से हो गया। युद्ध होने पर सादा मारा गया, और उसकी

११ विजेमर्ल, १२ लुंभा, १३ शिवराज और १४ रामदेव।

नव-विवाहिता पत्नी कोड़मदे उसके साथ सती हो गई। उन्हीं में यह भी लिखा है कि चिता-प्रवेश के पूर्व कोड़मदे ने अपनी एक भुजा काटकर श्वशुर के चरणों पर रखने के लिये भेज दी थी। राणँगदेव ने उसकी दाह-क्रिया करवाकर उसी में पहने हुए ज़ेवरों से वहां पर कोड़मदे-सर-नामक तालाब बनवाया। यह बीकानेर से ८ कोस पश्चिम में है। परन्तु वास्तव में यह तालाब जोधाजी की माता ने बनवाया था। यह बात वहाँ से मिले वि० सं० १५१६ (ई० सन् १४५६) के जोधाजी के लेख से सिद्ध होती है।

उपर्युक्त युद्ध वि० सं० १४६२ (ई० सन् १४०६) में हुआ था (ऐनाल्स ऐंड ऐंटिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान, भा० २, पृ० ७३२)। अड़कमल की इस प्रतिज्ञा-पूर्ति से प्रसन्न होकर चूंडाजी ने उसे डीडवाना जागीर में दे दिया।

कुछ ख्यातों में अड़कमल का इस युद्ध मे अधिक घायल हो जाने से छ महीने बाद मर जाना लिखा है। परन्तु कुछ में इसका रणमल्लजी की चाचा और मेरा पर की चढ़ाई के समय उनके साथ रहना और मार्ग में तलवार के एक ही वार मे एक शेरनी को मारना लिखा है।

इस घटना के बाद उपर्युक्त वैर का बदला लेने के लिये राणँगदेव ने मेहराज पर चढ़ाई की। यद्यपि इसकी सूचना मिलते ही राव चूंडाजी स्वयं उसकी रक्षा को चले, तथापि इनके पहुँचने के पूर्व ही वह मेहराज को मार और उसकी जागीर के गाँव को लूटकर लौट गया। यह देख चूंडाजी ने उसका पीछा किया, और (जैसलमेर-राज्य के) सिरढों-नामक गाँव के पास उसे जा घेरा। युद्ध होने पर राणँगदेव मारा गया, और चूंडाजी उसका डेरा लूट वि० सं० १४६२ (ई० सन् १४०६) में ही नागोर लौट आए।

ख्यातों में लिखा है कि इस प्रकार अपने पुत्र और पति के राठोड़ों के हाथ से मारे जाने पर राणँगदेव की स्त्री ने यह निश्चय किया कि जो कोई राव चूंडाजी से इन दोनों का बदला लेगा, उसी को मैं पूंगल का राज्य सौंप दूंगी। यह सुन जैसलमेर-रावल केहर का पुत्र केलण, जो अपने बड़े भाई रावल लखमण से मनोमालिन्य हो जाने के कारण बीकमपुर में रहता था, पूंगल जाकर राणँगदेव की स्त्री (सोढी) से मिला, और वहाँ का अधिकार प्राप्त करने के बाद मुलतान के सेनानायक की सहायता प्राप्त कर चूंडाजी को धोके से मारने में सफल हुआ।

कर्नल टॉड ने राणँगदेव के दो पुत्रों का मुसलमानी धर्म ग्रहण कर खिज़रखाँ से सहायता प्राप्त करना और केल्हण का उनके साथ मिलकर अपनी लड़की का विवाह चूंडाजी से करने के बहाने चूंडाजी को नगर से बाहर बुलवाकर मारना लिखा है (ऐनाल्स ऐंड ऐंटिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान, भा० २, पृ० ७३३-७३४)।

१. किसी-किसी ख्यात में लिखा है कि इसने जालोर-नरेश चौहान बीसलदेव को बाथ (भुजाओं) में पकड़कर मारा था। इसलिये यह 'बाथपंचायण' (बाथपंचानन=शेर की-सी भुजाओंवाला) के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

१२. राव कान्हाजी

यह चूँडाजी के पुत्र थे और ज्येष्ठ पुत्र न होते हुए भी, उनकी इच्छानुसार, उनके उत्तराधिकारी हुए[१]। इनका जन्म वि० सं० १४६५ (ई० स० १४०८) में हुआ था।

चूँडाजी की मृत्यु के बाद जाँगलू[३] का सांखला पुनपाल स्वाधीन बन इधर-उधर लूट मार करने लगा था। यह देख कान्हाजी ने उसे मार कर फिर से उसके अधिकृत प्रदेश पर कब्जा कर लिया और इसके बाद नागोर के आसपास के प्रदेशों को भी, जो चूँडाजी की मृत्यु के कारण राठोड़ों के हाथ से निकल गए थे, दुबारा विजय किया। इस पर उन प्रदेशों के शासक शम्सखाँ के पुत्र खाँज़ादे फ़ीरोज़ से मिल कर उसे नागोर पर चढ़ा लाए। युद्ध होने पर नागोर उसके अधिकार में चला गया और कान्हाजी को अपना निवास मंडोर में कायम करना पड़ा। यह करीब ११ महीने राज्य कर वहीं पर स्वर्गवासी हुए[४]।

१. राव चूंडाजी ने कान्हाजी की माता के आग्रह से ही, अपने ज्येष्ठ पुत्र रणमल्लजी की सम्मति लेकर, कान्हाजी को अपना उत्तराधिकारी नियत किया था।

२. राजपूताने के इतिहास मे लिखा है कि—'राव चूंडा के मरने पर उसका छोटा पुत्र मंडोवर का स्वामी हुआ। (देखो पृ० ५८४) परन्तु वास्तव में उस समय नागोर भी कान्हाजी के ही अधिकार में था। चूंडाजी की मृत्यु के बाद शत्रुदल नागोर में केवल लूटमार करके ही लौट गया था।

३. यह प्रदेश नागोर से २५ कोस उत्तर में है। उस समय इसकी सीमा नागोर प्रान्त की सीमा से मिली हुई थी।

४. कुछ ख्यातों मे कान्हाजी का करणी नाम की चारण जाति की स्त्री के शाप मे नागोर में ही स्वर्गवासी होना लिखा है। उनके लेखानुसार इनकी मृत्यु के बाद वहाँ पर फीरोज़ का अधिकार हुआ था।

(करणी राजपूतों और चारणों मे देवी की तरह पूजी जाती है। इसका जन्म वि० सं० १४४४ (ई० सन् १३८७) में हुआ था। यह (फलोदी प्रान्त के) सुवाप निवासी (किनिया शाखा के) चारण मेहा की कन्या थी और साठीका निवासी (वीटू शाखा के) चारण दीपा को व्याही गई थी।

इसकी मृत्यु का वि० सं० १५९५ (ई० स० १५३८), में होना माना जाता है। बीकानेर-नरेश जैतसीजी का बनवाया इसका एक मन्दिर देसणोक (बीकानेर-राज्य) में अब तक विद्यमान है।

१३. राव सत्ताजी[1]

यह राव चूँडाजी के द्वितीय पुत्र थे और अपने भाई कान्हाजी की मृत्यु के समय रणमल्लजी के मेवाड़ में होने के कारण मंडोर की गद्दी पर बैठे[2]। इन्होंने अपने भाई रणधीर को, झाडोल (मेवाड़ राज्य में) से बुलवा कर, राज्य का सारा काम सौंप दिया था। परन्तु सत्ताजी का पुत्र नरबद इस प्रबन्ध से सन्तुष्ट न था[3]। इस से कुछ ही दिनों में उसने सत्ताजी को भी उस (रणधीर) से नाराज़ कर दिया। यह देख रणधीर रणमल्लजी के पास मेवाड़ पहुँचा और उन्हें समझाने लगा कि पिता की आज्ञानुसार आपने राज्य का अधिकार कान्हाजी को दिया था। परन्तु उनकी मृत्यु हो जाने से अब उस पर आप ही का हक है। सत्ताजी उसमें कुछ भी नहीं मांगते। यह बात रणमल्लजी की समझ में भी आ गई। इसीलिये उन्होंने राना मोकलजी से सहायता लेकर मंडोर पर चढ़ाई कर दी। युद्ध होने पर नरबद ज़खमी हुआ और मंडोर पर रणमल्लजी का अधिकार हो गया[4]। यह घटना वि० सं० १४८४ (ई० स० १४२७) की है।

१. कहते हैं कि इन्होंने (जोधपुर परगने का) खारी नामक गाँव एक चारण को दान में दिया था।

२. किसी-किसी ख्यात में लिखा है कि राव चूंडाजी ने जिस समय कान्हाजी को अपना उत्तराधिकारी नियत किया था, उसी समय सत्ताजी को मंडोर जागीर में दिया था।

३. ख्यातों में लिखा है कि नरबद ने रणधीर के पुत्र नापा को विष दिलवा कर मरवा डाला था।

४. किसी-किसी ख्यात में कान्हाजी के मरने पर रणमल्लजी और राना मोकलजी का एक बार पहले भी मंडोर पर चढ़ाई करना लिखा है। उनमें यह भी लिखा है कि उस समय तक सत्ताजी ने रणधीर से आधा राज्य देने का वादा कर रक्खा था। इसलिये वह (रणधीर) नागोर जाकर खाँज़ादा फ़ीरोज़ को अपनी सहायता में ले आया और इस प्रकार उसने मेवाड़ की सेना को सफल-मनोरथ न होने दिया। परन्तु कुछ दिन बाद ही नरबद के कहने से सत्ताजी ने वह आधा राज्य देने का वादा तोड़ दिया। इसी से रणधीर रणमल्लजी से मिल गया। और उन्हें समझा बुझा कर मंडोर पर चढ़ा लाया। परन्तु यह ठीक प्रतीत नहीं होता। क्योंकि यदि ऐसा होता तो रणधीर को रणमल्लजी के पास जाकर कान्हाजी के बाद राज्य पर उन्हीं का हक सिद्ध करने की आवश्यकता न होती।

इसके कुछ दिन बाद सत्ताजी और नरबद दोनों मेवाड़ में महाराना मोकलजी के पास चले गऐ। उन्होंने भी इन्हें निर्वाह के लिये जागीर देकर अपने पास रख लिया।

१४. राव रणमल्लजी

यह मारवाड़-नरेश राव चूंडाजी के बड़े पुत्र थे। इनका जन्म वि० सं० १४४६ की वैशाख सुदी ४ (ई० सन् १३९२ की २८ अप्रैल) को हुआ था। वि० सं० १४६५ (ई० सन् १४०८) में यह पिता की आज्ञा से अपना राज्याधिकार छोड़कर जोजावर नामक गांव में जा बसे। ख्यातों के अनुसार उस समय इनके पास क़रीब ५०० योद्धा थे। कुछ दिन बाद यह (वहां से धणला (सोजत-प्रान्त में[४]) होते हुए मेवाड़ में महाराणा लाखाजी के पास चले गए। महाराणा लाखाजी ने इनकी योग्यता से प्रसन्न होकर इन्हें अपने पास रख लिया, और खर्च के लिये धणला के साथ ही अन्य कई गाँव जागीर में दिए। इसी समय इन्होंने महाराणा की सेना लेकर अजमेर

---

१. ख्यातों में लिखा है कि युद्ध में नरबद की एक आँख फूट गई थी।

मंडोर विजय हो जाने पर रणमल्लजी ने मेवाड़ की सेना और उसके साथ के सरदारों के लिये क़िले के बाहर ही ठहरने का प्रबंध करवा दिया था। उनका विचार था कि जब तक क़िले की रक्षा का पूरा-पूरा प्रबन्ध न होले, तब तक दूसरे राज्य की सेना को क़िले में घुसने देना उचित न होगा। परन्तु मेवाड़ वाले इससे मनही मन नाराज़ हो गए और लौटते समय नरबद को भी अपने साथ मेवाड़ ले गए।

उन्हीं में यह भी लिखा है कि मंडोर पर रणमल्लजी का अधिकार होजाने पर भी सत्ताजी कुछ दिन वहीं रहे और इसके बाद यह आसोप की तरफ़ चले गए। युद्ध में लगे घावों के ठीक हो जाने पर नरबद भी मेवाड़ से पिता के पास आसोप चला आया और कुछ दिन बाद सत्ताजी को साथ लेकर मेवाड़ लौट गया। वहीं कुछ समय बाद राव सत्ताजी का देहान्त हुआ।

२. राजपूताने के इतिहास में लिखा है कि राना मोकल ने सत्ता और नरबद को एक लाख की कायलाणे की जागीर देकर अपना सरदार बना लिया था। (देखो पृ० ५८४) परन्तु यह घटना राना कुंभा के समय, रणमल्लजी के मारे जाने पर, जोधाजी को पैतृक-राज्य से वंचित करने का उद्योग करने के समय की प्रतीत होती है।

३. मारवाड़ की ख्यातों में इनका नाम रिडमलजी लिखा है।

४. उस समय यह प्रान्त मेवाड़ राज्य में था, परन्तु इस समय मारवाड़ राज्य में है। सोजत पर उस समय हुल राजपूतों (गहलोतों की एक शाखा) का अधिकार होना पाया जाता है। परन्तु कर्नल टॉडने हुलों को गहलोतों मे भिन्न माना है। (ऐनाल्स ऐंड ऐन्टिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान, भा० १, पृ० १४४)

५. कहीं इनकी संख्या ४० और कहीं ५० लिखी है।



१४. राव रणमल्ल (रिड़मल) जी

वि० सं० १४८५-१४९५ (ई० स० १४२८-१४३८)

पर चढ़ाई की, और वहां पर अधिकार कर उसे महाराणा के राज्य में मिला दिया[1]। इससे महाराणा इनसे और भी प्रसन्न हो गए। कुछ दिन बाद इन्होंने महाराणा लाखाजी के ज्येष्ठ पुत्र चूंडा के आग्रह से अपनी बहन हंसाबाई का विवाह लाखाजी के साथ कर दिया[2]। परन्तु उस समय महाराना के ज्येष्ठ पुत्र चूंडा से यह प्रतिज्ञा ले ली गई कि यदि इस विवाह से राणाजी के पुत्र होगा, तो राज्य का मालिक वही समझा जायगा। इसके क़रीब एक वर्ष बाद ही हंसाबाई के गर्भ से मोकलजी का जन्म हुआ।

रणमल्लजी के उद्योग से ही मेवाड़ की सेना ने अनेक बार मुसलमानों पर विजय पाई थी, इसीसे राणाजी उनका अत्यधिक सम्मान किया करते थे।

पहले लिख चुके हैं कि हंसाबाई के विवाह के समय ही उनके गर्भ से उत्पन्न होनेवाले पुत्र को मेवाड़ का राज्याधिकार दिया जाना निश्चित हो चुका था, इसलिये वि० सं० १४७७ (ई० सन् १४२०) के क़रीब राणा लाखाजी की मृत्यु हो जाने से रणमल्लजी के भानजे राणा मोकलजी मेवाड़ की गद्दी पर बैठे। उस समय उनकी अवस्था दस-ग्यारह वर्ष की थी। इससे कुछ दिनों तक मेवाड़ राज्य का सारा प्रबन्ध

१. श्रीयुत हरविलास सारडाने रणमल्लजी का, ई० सन् १३६७ और १४०६ (वि० सं० १४५४ और १४६६) के बीच, राणा मोकलजी के बाल्यकाल में, अजमेर विजय करना लिखा है (अजमेर पृ० १५७)। परन्तु राणा लाखाजी के वि० सं० १४७५ (ई० सन् १४१८) के कोट सोलंकियान वाले लेख के मिलने से मोकलजी के पिता राणा लाखाजी का वि० सं० १४७५ (ई० सन् १४१८) तक जीवित रहना सिद्ध होता है (जर्नल एशियाटिक सोसाइटी बंगाल, भाग १२, पृ० ११५)।

२. इस घटना के समय (मारवाड़ के) राव चूंडाजी विद्यमान थे। ऐसी हालत में कुछ लेखकों का रणमल्लजी को (उस समय) राव लिखना भूल है।

मुहणोत नैणसी ने और कर्नल टॉड ने एक स्थान पर महाराणा लाखाजी का विवाह रणमल्लजी की कन्या से होना लिखा है (देखो, क्रमशः हस्तलिखित 'नैणसी की ख्यात', पृ० १६३, और ऐनाल्स ऐंड ऐन्टिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान, भा० १, पृ० ३२३-३२५)। रतनू रामनाथ ने अपने 'इतिहास राजस्थान' (पृ० ३४) में, सूर्यमल्ल ने अपने 'वंश-भास्कर' (भा० ४, पृ० २६११) में और 'तोहफ़ए राजस्थान' (पृ० ६१) में भी यही बात लिखी है। परन्तु यह ठीक नहीं है। कर्नल टॉड ने दूसरे स्थान पर हंसाबाई को रणमल्लजी की बहन लिखा है (ऐनाल्स ऐंड ऐन्टिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान, भा० २, पृ० ६४५)। यही ठीक प्रतीत होता है।

'इतिहास राजस्थान' (पृ० ३५) में हंसाबाई का महाराणा लाखाजी के साथ सती होना लिखा है। यह भी ग़लत है।

उनके बड़े भाई रावत चूंडा की देखभाल में रहा। परन्तु अन्त में हंसाबाई के चित्त में उसकी तरफ़ से सन्देह हो जाने के कारण वह मांडूके सुलतान होशंग के पास चला गया।

इसके बाद महाराणा मोकलजी के छोटे होने के[1] कारण मेवाड़ राज्य का सारा प्रबन्ध उनके मामू रणमल्लजी को सौंपा गया[2]। इन्होंने खास-खास पदोंपर विश्वासपात्र लोगों को नियत कर वहां का प्रबन्ध इतने अच्छे ढंग से किया कि युवावस्था प्राप्त कर लेने पर भी महाराणा ने उसमें किसी प्रकार के हेर-फेर करने की आवश्यकता नहीं समझी।

इन कामों से निश्चिन्त हो वि० सं० १४८० (ई० सन् १४२३) में रणमल्लजी अपने पिता राव चूंडाजी से मिलने को नागोर की तरफ़ चले। परन्तु उनके वहां पहुँचने के पूर्व ही राव चूंडाजी युद्ध में वीरगति प्राप्त कर चुके थे। इसलिये यह पिताकी आज्ञानुसार अपने छोटे भाई कान्हाजी को वहां की गद्दी देकर, मंडोर होते हुए, अपनी जागीर की देखभाल के लिये धणले चले गए। साथ ही इन्होंने पिताकी मृत्यु का बदला लेने के लिये खींवसी को भेज कर, नागोर से अजमेर जाते हुए, सलीम[3] को मरवा डाला।

१. मोकलजी की अवस्था का छोटा होना राजपूताने के इतिहास मे की इन पंक्तियों से भी सिद्ध होता है:--

"इस समय आप (हंसाबाई) का सती होना अनुचित है; क्योंकि महाराणा मोकल कम उम्र है, अतएव आपको राजमाता बनकर राज्य का प्रबन्ध करना चाहिए।"

(पृ० ५८३)

इसके अलावा यदि मोकल की अवस्था छोटी न होती तो पहले कुछ दिन के लिये चूंडा को और उसके बाद रणमल्लजी को मेवाड़ के प्रबन्ध करने का अवसर ही क्यों मिलता।

२. कर्नल टॉड ने लिखा है कि राव रणमल्ल अपने दौहित्र राणा मोकल को गोद में लेकर बापा रावल के सिंहासन पर बैठता था (ऐनाल्स ऐंड ऐन्टिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान, भा० २, पृ० ३२२)। परन्तु यह ठीक नहीं है। राजपूताने के इतिहास में उस समय मोकलजी की अवस्था का कमसे कम १२ वर्ष का होना माना है (देखो, पृ० ५८३, टिप्पणी १)। परन्तु हम वि० सं० १४६५ (ई० सन १४०८) मे कान्हाजी के जन्म समय रणमल्लजी का राज्याधिकार छोड़कर मेवाड़ जाना, वहां पर उनकी बहन का विवाह महाराणा लाखाजी से होना और इसके बाद अगले वर्ष वि० सं० १४६६ (ई० सन् १४०९) में उसके गर्भ से मोकल का जन्म लेना मानकर वि० सं० १४७७ (ई० सन १४२०) के करीब लाखाजी की मृत्यु-समय मोकलजी की अवस्था का करीब १०-११ वर्ष की होना अनुमान करते हैं।

३. किसी-किसी ख्यात में सलीम का अजमेर से लौटते हुए मारा जाना लिखा है।

रणमल्लजी के बढ़ते हुए प्रताप को देख सोनगरों (चौहानों) के चित्त में द्वेष ने घर कर लिया था। इसी से उन्होंने इनको अपने वंश की कन्या के साथ विवाह करने के लिये बुलवाकर मार डालने का इरादा किया। परन्तु बातके प्रकट हो जाने से यह बचकर निकल गए, और कुछ ही दिनों में इन्होंने सोनगरों को मारकर नाडोल पर अधिकार कर लिया। ख्यातों के अनुसार यह घटना वि० सं० १४८२ (ई० सन् १४२५) में हुई थी[1]।

पहले लिखा जा चुका है कि राव चूंडाजी के मारने में जैसलमेर के भाटियों का भी हाथ था। इसी का बदला लेन के लिये रणमल्लजी ने उनके प्रदेशो को लूटना शुरू किया। यह देख वहां के रावल लक्ष्मणजी घबरा गए, और उन्होंने दंड के रुपये देना स्वीकार कर इनसे सुलह कर ली।

वि० सं० १४८३ (ई० सन् १४२६) में इनकी सेना ने सींधल राठोड़ों से जैतारण छीन लिया, और बाद में हुलों को भगाकर सोजत पर भी अधिकार कर लिया। सोजत पर अधिकार करते समय रणमल्लजी का ज्येष्ठ पुत्र अखेराज भी सेना के साथ गया था, इसलिये वहां की देखभाल का भार उसी को सौंपा गया।

इसी समय राव सत्ताजी के और उनके भाई रणधीर के बीच झगड़ा हो गया। इसपर रणधीर रणमल्लजी के पास मेवाड़ चला आया, और उसने समझा-बुझाकर, और कान्हाजी के बाद राज्य पर इन्हीं का हक़ बतलाकर[2], इन्हें मंडोर पर चढ़ाई करने के लिये तैयार कर लिया। इसके बाद रणमल्लजी ने अपनी और मेवाड़ की सम्मिलित सेना लेकर मंडोर पर चढ़ाई की। नजदीक पहुँचने पर इनका और राव सत्ताजी के पुत्र नरबद का मुक़ाबला हुआ। यद्यपि नरबद ने बड़ी वीरता से इनका सामना किया, तथापि उसके घायल हो जाने से मंडोर पर रणमल्लजी का अधिकार हो गया। यह घटना वि० सं० १४८५ (ई० सन् १४२८) की है।

---

१. किसी-किसी ख्यात में इस घटना का वि० सं० १४८० (ई० सन् १४२३) में होना लिखा है।

२. रणधीर ने इन्हें समझाया कि आपने पिता की आज्ञा से कान्हाजी को राज्याधिकार दिया था। परन्तु उनके अपुत्र मरने पर अब उसपर आपका ही हक़ है। छोटे होने के कारण सत्ताजी का उसपर अधिकार कर बैठना बिलकुल अनुचित है।

इस प्रकार मंडोर का राज्य प्राप्त कर लेने पर भी यह कुछ दिन के लिये मेवाड़ जाकर राजकाज की देखभाल में महाराणा मोकलजी को सहायता दिया करते थे। जिस समय मोकलजी ने नागोर के शासक फीरोज़ख़ाँ पर चढ़ाई की, उस समय भी यह उनके साथ थे[1]। इसी प्रकार इन्होंने मोकलजी को सवालख, जालोर, सांभर, जहाज़पुर आदि की चढ़ाइयों में और मुहम्मद[2] (गुजरात के शासक अहमदशाह के पुत्र) के साथ के युद्ध में भी सहायता दी थी।

वि० सं० १४८७ (ई० सन् १४३०) में राव रणमल्लजी ने एक बार फिर जैसलमेर पर चढ़ाई की। इसपर वहां के महारावल लक्ष्मणजी ने एक चारण के[3] द्वारा संधि का प्रस्ताव भेज, अपनी कन्या इन्हें व्याह दी।

---

१. ख्यातों मे इसी समय राव रणमल्लजी का नागोर पर अधिकार कर लेना भी लिखा है, परन्तु यह ठीक प्रतीत नहीं होता।

२. इसका पिता अहमदशाह वि० सं० १४९९ (ई० सन् १४४२) तक जीवित था, परन्तु सम्भवतः उसने इसे नागोर के शासक फीरोज़ख़ाँ की सहायता मे भेजा होगा।

३. ख्यातों में इस चारण का नाम भोजा लिखा है। उसने आकर रणमल्लजी को यह छप्पय सुनाया था—

"तै गंजे पीरोज ढाल गौ महमँद ढाले,
तै गंजे चहुवाँण धरा चावडां उद्राले।
तै गंजे भाटियाँ कोट जाजपुर संघारे,
तै गंजे पतिसाह नहीं गंजिया अवारे।
मो सीख एक सांभल श्रवण तूं आरंभै आप बल,
रिडमल अगंजी गंजिया केवी गंजि अगंजि बल।"

अर्थात्—तूने (नागोर के शासक) फ़ीरोज़ख़ाँ को हराया, तेरे सामने (गुजरात के शासक अहमद का पुत्र) मुहम्मद भाग खड़ा हुआ, तूने (नागोर के सोनगरा) चौहानों को परास्त किया, तेरे प्रताप से चावड़ों के राज्य की पृथ्वी कांपती है, तूने भाटियों को मारा, जहाज़पुर के क़िले को नष्ट किया, और (सलीम को मारकर) सुलतान के गर्व को तोड़ा। परन्तु तूने कभी साधारण लोगों को कष्ट नहीं दिया। हे रिडमल (रणमल्ल)! तू मेरी एक बात सुन। तू सब काम स्वयं अपने ही भरोसे पर करता है। तूने सिर उठानेवालों को ही दबाया है, और आगे भी तुझे ऐसा ही करना चाहिए। (अर्थात्—जब भाटी तेरा सामना करने को तैयार नहीं हैं, तब उन पर क्रोध करना व्यर्थ है।)

इसके बाद यह अपने पुत्र जोधाजी और कांधल को साथ लेकर गंगा और गया की यात्रा को गए और लौटते हुए कुछ दिन आंबेर में ठहर मंडोर चले आए।

उस समय इनका अधिकार मंडोर, पाली, सोजत, जैतारण और नाडोल पर था। परन्तु मेवाड़ के निकट होने के कारण यह अधिकतर सोजत में ही रहा करते थे।

जालोर का शासक बिहारी पठान हसनखाँ उन दिनों आसपास के प्रदेशों में उपद्रव करने लगा था। यह देख रणमल्लजी की आज्ञा से इनके सेनापति राठोड़ ऊदा ने उस पर चढ़ाई की। कुछ दिनों तक तो हसनखाँ भी क़िले का आश्रय लेकर राठोड़-सेना का सामना करता रहा, परन्तु अन्त में रसद आदि का पूरा प्रबन्ध न हो सकने के कारण उसे हार मानकर संधि करनी पड़ी।

वि० सं० १४९० (ई० सन् १४३३) में मेवाड़ नरेश महाराणा मोकलजी को (उनके दादा महाराणा खेताजी की पासवान के[1] पुत्र) चाचा और मेरा ने मदारिया नामक स्थान के पास मारडाला, और इसके बाद ही मेवाड़ राज्य पर अधिकार कर लेने की इच्छा से चित्तौड़ के क़िले को जा घेरा। उस समय कुम्भाजी की अवस्था क़रीब ६ वर्ष की थी, इसलिये उनके पक्षवालों ने शीघ्र ही इस घटना की सूचना राव

१. मुख्य उपपत्नी।

२. इतिहास से सिद्ध होता है कि वि० सं० १४६५ (ई० सन् १४०८) में कान्हाजी का जन्म हुआ था, और उसी समय रणमल्लजी पिता की आज्ञा से राज्याधिकार छोड़कर मेवाड़ चले गए थे। वहीं पर इनकी बहन हंसाबाई का विवाह महाराणा लाखाजी के साथ हुआ। ऐसी हालत में मोकलजी का जन्म जल्दी-से-जल्दी वि० सं० १४६६ (ई० सन् १४०९) में हुआ होगा, और वि० सं० १४९० (ई० सन् १४३३) में, मृत्यु के समय, उनकी अवस्था अधिक से अधिक २४ वर्ष की रही होगी। साथ ही यदि महाराणा मोकलजी की १७-१८ वर्ष की आयु में उनके पुत्र कुंभाजी का जन्म होना मान लिया जाय, तो पिता (महाराणा मोकलजी) की मृत्यु के समय (वि० सं० १४९०=ई० सन् १४३३ में) वह ६-७ वर्ष से अधिक के न रहे होंगे। ऐसी हालत में राजपूताने के इतिहास में लिखी ये पंक्तियाँ कि—"महाराणा कुंभाने गद्दी पर बैठते ही सबसे पहले अपने पिता के मारनेवालों से बदला लेना निश्चय कर, चाचा, मेरा आदि के छिपने की जगह का पता लगते ही उनको मारने के लिये सेना भेजने का प्रबन्ध किया—" (देखो, पृ० ५९२-५९३)-ठीक प्रतीत नहीं होतीं। 'राजपूताने के इतिहास' में राज्य पर बैठते समय—महाराणा मोकलजी की अवस्था का १२ वर्ष की होना लिखा है (देखो पृ० ५८३, टिप्पणी १)। ऐसी हालत में महाराणा लाखाजी का स्वर्गवास वि० सं० १४७८ (ई० सन् १४२१) में मानना होगा। परन्तु यदि

रणमल्लजी के पास भेज कर इन्हें सहायता के लिये बुलवाया। यह ख़बर पाकर रणमल्लजी[1] तत्काल चुने हुए ५०० वीरों के साथ मेवाड़ जा पहुँचे। परन्तु उनके आनेकी सूचना मिलते ही चाचा और मेरा पाई कोटड़ा के पहाड़ों में जा छिपे। इस पर राव रणमल्लजी ने वहां भी उनका पीछा किया, और ६ महीने तक उक्त पहाड़ को घेरे रहने के बाद वहां के भीलों की सहायता से चाचा और मेरा को, मय उनके साथियों के, मार डाला[2]। परन्तु महपा पँवार, जो इस षड्यन्त्र में सम्मिलित था, पहले से ही स्त्री का मेस बनाकर निकल भागा, और महाराणा मोकलजी के ज्येष्ठ भ्राता रावत चूंडा की सहायता से मांडू के सुलतान के पास जा पहुँचा। इसके बाद राव रणमल्लजी चाचा और मेरा के पक्ष के स्वामिद्रोही सीसोदियों की कन्याओं को लेकर देलवाड़े आए, और उन्हें अपने साथ के राठोड़ वीरों को व्याह दिया।

इस प्रकार अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण हो जाने पर वे चित्तौड़ लौट आए और बालक महाराणा कुम्भाजी के पास रह कर मेवाड़ का प्रबन्ध करने लगे[3]। कुछ ही दिनों में इन्हें रावत चूंडा के छोटे भाई राघवदेव पर भी शक हो गया। इसलिये इन्होंने राजपक्ष के लोगों से सलाह कर उसे दरबार में बुलवाया, और वहां महाराणा कुम्भाजी के सामने ही उसे मरवा डाला।

लाखाजी की मृत्यु जल्दी-से-जल्दी वि० सं० १४७६ (ई० सन् १४१६) में मानकर उस समय ही मोकलजी की अवस्था १२ वर्ष की मानली जाय और उनकी १७-१८ वर्ष की आयु में (अर्थात् वि० सं० १४८१-८२=ई० सन् १४२४-२५ में) कुंभाजी का जन्म होना स्वीकार करलिया जाय, तो भी महाराणा मोकलजी की मृत्यु के समय (वि० सं० १४९०=ई० सन् १४३३ में कुंभाजी की अवस्था ८-९ वर्ष से अधिक नहीं हो सकती।

१. ख्यातों में लिखा है कि राव रणमल्लजी ने मोकलजी के मारे जाने का समाचार सुन अपने सिर से पगड़ी उतार कर, साफा बाँध लिया था, और यह प्रतिज्ञा की थी कि जब तक हत्याकारियों को दंड न दे लूँगा, तब तक सिर पर पगड़ी न बाँधूँगा।

२. मारवाड़ की ख्यातों के अनुसार इसी अवसर पर रणमल्लजी के भाई अड़कमल ने, तलवार के एक ही वार से, एक शेरनी को मारा था।

३. कर्नल टॉड ने लिखा है कि—"यद्यपि मोकलकी हत्या का कारण केवल व्यंग्य वचन ही कहा जाता है, तथापि उसके उत्तराधिकारी बालक कुंभा के किए अपनी रक्षा के प्रबन्ध को देख, मानना पड़ता है कि यह अवश्य ही एक गहरे षड्यंत्रका प्रारम्भ था। स्वामिद्रोही लोग माद्री के निकटके सुरक्षित स्थान में चले गए, और कुंभाने इस आवश्यकता के समय मारवाड़-नरेश की मित्रता और सदाशयता पर विश्वास किया।

इसके बाद जैसे ही रणमल्लजी को महपाके मांडूके सुलतान महमूद खिलजी (प्रथम) के निकट होने की सूचना मिली, वैसे ही इन्होंने दूत भेजकर उसे कहलाया कि या तो वह महाराणा के अपराधी महपा को मेवाड़ भेज दे, या युद्ध की तैयारी करे। परन्तु जब इसका सन्तोषजनक उत्तर न मिला, तब वि० सं० १५९४ (ई० सन् १५३७) के क़रीब इन्होंने मेवाड़ और मारवाड़ की सम्मिलित सेना लेकर मांडू पर चढ़ाई की। यद्यपि इसकी सूचना मिलते ही महमूद भी इनके मुकाबले को, सारंगपुर के पास तक, आगे बढ़ आया, तथापि युद्ध में राजपूतों की मार न सह सकने के कारण उसकी सेना भाग चली। इसलिये महमूद को हार माननी पड़ी¹। इस विजय के कारण मेवाड़ में राव रणमल्लजी का प्रभाव और भी बढ़ गया²। परन्तु जिन लोगों के स्वार्थ-साधन में इससे बाधा पहुँचती थी, वे लोग इनके विरुद्ध षड्यन्त्र रचने लगे।

उस विश्वास का बदला भी उसे अच्छा ही मिला।" (ऐनाल्स ऐंड ऐन्टिक्विटीज़ ऑफ राजस्थान, भा० १, पृ० ३३२)

उन्होंने यह भी लिखा है कि—"(मेवाड़ के) कवि लोग अपने नरेश (कुंभा) के पिता की मृत्यु का बदला लेने के कार्य को अपने राज्य की रक्षा के कार्य के समान समझ कर, सहयोग करने के लिये मारवाड़-नरेश की बहुत-कुछ प्रशंसा करते हैं"(ऐनाल्स ऐंड ऐन्टिक्विटीज़ ऑफ राजस्थान, भा० १, पृ० ३३४)।

मेवाड़ के इतिहास से ज्ञात होता है कि महाराणा मोकलजी के मारे जाने पर सिरोही-नरेश महारावल सैंसमलजी ने अपने राज्य की सीमा में मिला मेवाड़ का कुछ प्रदेश दबा लिया था। परन्तु रणमल्लजी ने सेना भेज कर उक्त प्रदेश के साथ ही आबू और उसके आसपास के प्रदेश मेवाड़-राज्य में मिला लिए।

१. कर्नल टॉड ने इस युद्ध में महमूद का क़ैद किया जाना लिखा है। (ऐनाल्स ऐंड ऐन्टिक्विटीज़ ऑफ राजस्थान, भा० १, पृ० ३३५) 'वीरविनोद' में लिखा है कि— "सुलतान भागकर मांडू के क़िले में जा रहा, और उसने महपा को वहां से चले जाने को कहा। जिस पर वह गुजरात की तरफ़ चला गया। कुंभाने मांडू का क़िला घेर लिया। अन्त में सुलतान की सेना भाग निकली, और महाराणा महमूद को चित्तौड़ ले आए। फिर छै महीने तक क़ैद रखा, और कुछ भी दंड न लेकर उसे छोड़ दिया–" (राजपूताने का इतिहास, पृ० ५६८-५६६)। अस्तु, जैसा कुछ भी हुआ हो, परन्तु यह सब राव रणमल्लजी की ही वीरता और रणकुशलता का फल था, क्योंकि कुंभाजी की अवस्था उस समय क़रीब १०-११ वर्ष की थी।

२. 'वीरविनोद' में लिखा है कि—"चाचा और मेरा को मारने और महमूद को क़ैद करने से रणमल्ल का अख्तियार दिन-दिन बढ़ता ही गया।" इससे प्रकट होता है कि मेवाड़ दरबार के ऐतिहासिक भी इन कार्यों का श्रेय राव रणमल्लजी को ही देते हैं।

उन्हीं लोगों के सहारे से महाराणा मोकलजी के हत्याकारी चाचा का पुत्र आका और पँवार महपा भी कुछ ही दिनों में मेवाड़ लौट आए, और रणमल्लजी के विरोध करने पर भी, लोगों के आग्रह से, महाराणा कुम्भाजी ने उनके अपराध क्षमा कर दिए। इसके बाद एक रोज़ महपा ने, रणमल्लजी के मेवाड़ राज्य को दबा बैठने का भय दिखलाकर, कुम्भाजी को इनके विरुद्ध भड़काना चाहा। परन्तु जब यह वार खाली गया, तब आकाने एक नई युक्ति सोच निकाली। एक दिन वह लेटे हुए महाराणा के पैर दबाते हुए रोने लगा। टांगों पर आंसुओं के गिरने से चौंककर जब महाराना ने उससे इसका कारण पूछा, तब उसने कहा कि राव रणमल्लजी के मेवाड़-राज्य पर अधिकार कर बैठने के गुप्त षड्यन्त्र की तरफ़ आपका ध्यान न देख मातृभूमि के दुःख से मेरे आंसू निकल पड़े हैं। यह सुनकर बालक महाराणा कुम्भाजी[१] उसके बहकावे में आ गए और उन्होंने राव रणमल्लजी को धोके से मार डालने की आज्ञा दे दी। इसके बाद षड्यन्त्रकारियों ने रावत चूंडा को भी मांडू से वहां बुला लिया।

इधर यह कपटजाल बिछाया जा रहा था और उधर इसकी कुछ भनक रणमल्लजी के कानों तक भी पहुँच चुकी थी। इसलिये उन्होंने अपने पुत्र जोधाजी आदि को बतला दिया कि आजकल लोग हमारे विरुद्ध महाराणा को भड़का रहे हैं। सम्भव है, सांसारिक अनुभव के अभाव से वह उनके कहने में आ जाय। इससे तुमको सावधान किए देता हूँ कि यदि किसी दिन मैं राणाजी के आग्रह से तुम लोगोंको क़िलेमें आनेके लिये कहला भी दूं, तो भी तुम टाल जाना। इसके बाद सचमुच ही महाराणा ने जोधाजी आदि को क़िले में बुलवा लेने का आग्रह करना शुरू किया। परन्तु जब रणमल्लजी के एक दो-बार कहलाने पर भी वे न आए, तब षड्यन्त्रकारियों को अपनी गुप्त मन्त्रणा के प्रकट हो जाने का सन्देह होने लगा। इसलिये वि० सं० १४९५ की कार्तिक बदि ३० (ई० सन् १४३८ की २ नवम्बर) की रातको उन्होंने बेख़बर सोते हुए राव रणमल्लजी को पलंग से बांधकर इनका वध कर डाला।[२]

१. उस समय कुम्भाजी की अवस्था हमारे मतानुसार केवल ११-१२ वर्ष की और राजपूताने के इतिहास के अनुसार १३-१४ वर्ष की थी।

२. 'वीरविनोद' में इस घटना का वि० सं० १५०० (ई० सन् १४४३) में होना लिखा है। परन्तु यह ठीक नहीं है, क्योंकि राणपुर (गोड़वाड़) के जैन-मंदिर से मिले वि० सं० १४९६ (ई० सन् १४३९) के महाराना कुम्भा के लेख से उस समय के पूर्व ही मंडोर पर कुंभाजी का अधिकार हो जाना सिद्ध होता है (आर्कियॉलॉजीकल सर्वे ऑफ़

राव रणमल्लजी उदार[1], चतुर[2] और वीर[3] पुरुष थे। इन्होंने पिता की आज्ञा से पैतृक राज्य तक छोड़ दिया था। इन्हीं की कुशलता और वीरता से महाराणा मोकलजी और विशेषकर कुम्भाजी की विपत्ति के समय मेवाड़-राज्य की रक्षा हुई थी।

इंडिया की १६०७-१६०८ की वार्षिक रिपोर्ट, पृ० २१४)। कर्नल टॉड और सूर्यमल्ल ने राव रणमल्लजी का महाराणा मोकलजी के समय मारा जाना लिखा है। (देखो क्रमशः ऐनाल्स ऐंड ऐन्टिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान, भा० १, पृ० ३३२; और 'वंशभास्कर', भा० ३, पृ० १८७२) यह भी ठीक नहीं है।

'वीरविनोद' और मुहणोत नैणसी की ख्यात मे लिखा है कि महपा आदि के आक्रमण करते ही रणमल्लजी चारपाई से बंधे होने पर भी उसको लिए हुए उठ खड़े हुए, और कई शत्रुओं को मारकर वीरगति को प्राप्त हुए। कहीं-कहीं उनका लेटे-लेटे ही कई शत्रुओं को मारकर स्वर्ग सिधारना लिखा है।

१. कहते हैं कि राव रणमल्लजी ने निम्नलिखित गांव दान दिए थे:—१ कुंवारडा (जालोर परगने का), २ धर्मद्वारी ३ पुनायतां (पाली परगने के) पुरोहितों को और ४ बीसावास (जोधपुर परगने का) चारणों को।

२. प्रसिद्धि है कि रणमल्लजी ने अपने राज्य-भर में एक ही प्रकार के नाप और तोलका प्रचार किया था।

३. इनकी वीरता का प्रमाण राणपुर (गोडवाड़) से मिला वि० सं० १४६६ (ई० सन् १४३६) का महाराणा कुंभाजी का लेख है। उसमे महाराणा कुंभाजी के प्रथम सात वर्षों के कार्यों का उल्लेख करते हुए लिखा है कि उन्होंने सारंगपुर (मालवा), नागोर, गागरौन, नराणा (जयपुर), अजमेर, मंडोर, मांडलगढ़, बूँदी, खाटू, चाटसू (जयपुर) आदि विजय किए थे। परन्तु वास्तव में इस लेख के लिखे जाने तक भी कुंभाजी की अवस्था करीब १२-१३ वर्ष की ही थी। इसलिये मंडोर को छोड़कर, जहां पर रणमल्लजी की मृत्यु के बाद रावत चूंडाने अधिकार किया था, बाकी सब स्थानों की वि० सं० १४६५ (ई० सन् १४३८) तक की, विजयों का श्रेय, मेवाड़ के एक मात्र निरीक्षक राव रणमल्लजी को ही देना होगा। इसकी पुष्टि राजपूताने के इतिहास मे की इन पंक्तियों से भी होती है:—

"चूंडा के चले जाने पर रणमल्ल ने राज्य का सारा काम अपने हाथ में कर लिया और सैनिक विभाग मे राठोड़ों को उच्च पद पर नियत करता रहा।"

(पृ० ५८४)

इससे स्पष्ट प्रकट होता है कि रणमल्लजी के समय उनके नियत किए इन्हीं राठोड़-सेनापतियों ने उनकी अधीनता मे अनेक प्रदेशों को जीत मेवाड़-नरेश को गौरवशाली बनाया था।

राव रणमल्लजी के २६ पुत्र थे। १ अखैराज[1], २ जोधाजी, ३ कांधल[2], ४ चांपा[3], ५ लाखा, ६ भाखरसी[4], ७ डूँगरसी[5], ८ जैतमाल, ९ मंडला[6], १० पाता[7], ११ रूपा, १२ करण, १३ सांडा, १४ मांडल, १५ ऊदा, १६ बैरा, १७ हापा, १८ अडवाल, १९ जगमाल, २० नाथा, २१ करमचन्द, २२ सींधा, २३ तेजसी, २४ सायर, २५ सगता और २६ गोयन्द[8]।

१. इनकी मुख्य जागीर बगड़ी है।

२. इसने अपने भतीजे राव बीकाजी को बीकानेर का नया राज्य स्थापन करने में सहायता दी थी।

३. मंडोर से १५ कोस पूर्व का कापरड़ा नामक गांव इसी ने बसाया था। राव रणमल्लजी के मारे जाने के समय यह भी चित्तौड़ में था। इसके बाद वहां से मंडोर होता हुआ काहूनी नामक गांव में पहुँच, जोधाजी के साथ हो लिया। इसने उन्हें मंडोर पर अधिकार करने और चित्तौड़ पर सफल आक्रमण करने में भी सहायता दी थी। वि० सं० १५१६ (ई० सन् १४५९) में गोडवाड़-प्रान्त के सींधल, बालिया और सोनगरों ने मिल कर इसकी गाएँ पकड़ लीं। परन्तु इस ने उनके सम्मिलित दल को हराकर उन्हें वापस छुड़वा लिया। वि० सं० १५२२ (ई० सन् १४६५) में इस ने, गुजरात होकर दिल्ली जाते हुए, मांडू के सुलतान महमूद खिलजी से, पूनागर की पहाड़ी के पास, बहादुरी से युद्ध किया था।

वि० सं० १५३६ (ई० सन १४७९) में महाराणा रायसिंहजी की सहायता से सींधल राजपूतों ने इस पर चढ़ाई की। मणियारी के पास युद्ध होने पर उसी में यह मारा गया।

४. ख्यातों में लिखा है कि इसके पुत्र बाला ने जोधाजी की मेवाड़ की चढ़ाई के समय वहां के सेठ पदमशाह को पकड़ने में भाग लिया था। वहां से लौट कर जब जोधाजी खैरवा नामक गाव में पहुँचे, तब उस सेठने बहुतसा द्रव्य भेट कर रिहाई हासिल कर ली। सेठ से मिले हुए द्रव्य से ही जोधपुर का किला बनना प्रारम्भ हुआ था। इसी से जोधाजी ने उसी के पास सेठ के नाम पर पदमसर नामक एक तालाब बनवा दिया। चांपा के मारे जाने के समय भी यह उसके साथ था, और अन्त मे इसी ने सींधलों को भगा कर अपने चचा का बदला लिया।

५. इसने भी अपने भतीजे बीकाजी को बीकानेर का नया राज्य स्थापन करने में सहायता दी थी।

६. रणमल्लजी के मारे जाने पर जब मेवाड़ की सेना ने जोधाजी का पीछा किया, तब इसने कपासण के मुकाम पर उसका सामना कर उसे रोका। इसी युद्ध में घायल होने से इसकी मृत्यु हुई।

७. इसीके वंश में राठोड़-वीर दुर्गादास उत्पन्न हुआ था।

८. यह बाल्यावस्था में ही मर गया था। कहीं-कहीं इसके भाई सायर और सगता का भी बाल्यावस्था में मरना लिखा है।

राव रणमल्लजी की मृत्यु के कारण पर विचार ।

मेवाड़ के कुछ इतिहास-लेखक महाराणा कुम्भाजी की गलती को छिपाने के लिये राव रणमल्लजी पर कुम्भाजी को मार कर मेवाड़-राज्य पर अधिकार कर लेने के इरादे का दोष लगाते हैं, और इसीके आधार पर उनके मारे जाने को न्याय्य सिद्ध करते हैं। परन्तु यह कहां तक ठीक है, इसका निर्णय नीचे लिखे दो पहलुओं पर विचार करने से हो सकता है:—

१. महाराणा लाखाजी की मृत्यु के समय मोकलजी की अवस्था किसी भी हालत में ग्यारह-बारह वर्ष से अधिक न थी और रावत चूंडा के शीघ्र ही नाराज़ होकर मांडू चले जाने पर मेवाड़-राज्य का सारा प्रबन्ध कई वर्षों तक रणमल्लजी के ही हाथों में रहा था। इसके बाद महाराणा मोकलजी के मारे जाने के समय उनके पुत्र कुम्भाजी केवल छै-सात वर्ष के थे और मेवाड़ में अराजकता भी फैल गई थी। परन्तु रणमल्लजी के कठिन परिश्रम से चाचा और मेरा मारे गए और कुम्भाजी को वहां की गद्दी मिली। इसके बाद भी रणमल्लजी ने लगातार पांच वर्षोंतक मेवाड़ राज्य का जैसा कुछ प्रबन्ध किया, उसका हाल राणपुर (गोडवाड़) से मिले, वि० सं० १४९६ (ई० सन् १४३९) के, महाराणा कुम्भाजी के समय के लेख से प्रकट हो जाता है। यदि सचमुच में ही रणमल्लजी का मेवाड़ राज्य पर अधिकार कर लेने का विचार होता, तो वे मोकलजी के समय अथवा उनके मारे जाने से उत्पन्न हुई विकट परिस्थिति के समय, अपनी इच्छा पूर्ण कर सकते थे। कुम्भाजी के युवा होने तक ठहरे रहना तो इस कार्य के लिये उलटा हानिकारक था।

२. इतिहास से सिद्ध है कि जिस समय महाराणा लाखाजी का विवाह हंसाबाई के साथ हुआ था, उस समय वह वृद्ध हो चुके थे। ऐसी हालत में सम्भव है कि विमाता के गर्भ से उत्पन्न होनेवाले भाई के लिये अपना राज्याधिकार छोड़ने की प्रतिज्ञा करते समय (लाखाजी के ज्येष्ठ पुत्र) चूंडा के चित्त में मोकल के उत्पन्न होने की सम्भावना ही न रही हो। फिर यह भी सम्भव है कि उसके उत्पन्न हो जाने से, पूर्व प्रतिज्ञानुसार, राज्याधिकार छोड़ देने को बाध्य होने पर भी उसके चित्त में उसे फिर से प्राप्त कर लेने की इच्छा उत्पन्न हो गई हो। इसके बाद जब मोकलजी के मारने का

षड्यन्त्र करने पर भी राव रणमल्लजी के कारण उसे सफलता न हुई (जैसा इतिहास से प्रकट होता है), तब उसने कम-से-कम उनसे बदला लेने और अपने पैतृक-राज्य में लौट कर बसने के लिये ही इनको मरवाने का उद्योग किया हो। यह हमारा अनुमानमात्र है। परन्तु नीचे उद्धृत घटनाओं से इसकी पुष्टि होती है:-

राजमाता का चूंडा से राजकार्य ले लेना, इसके बाद चूंडा का मेवाड़ के सहज-शत्रु मांडू के सुलतान के पास जाकर रहना, मोकल की हत्या होने पर भी चूंडा, उसके भाई राघवदेव और मेवाड़ के सरदारों का चुपचाप बैठ रहना, मोकलजी के हत्याकारियों में से महपा का भागकर चूंडा के पास मांडू जाना और उसके द्वारा वहां के सुलतान का आश्रय पाना, महपा के कारण कुम्भाजी और सुल्तान के बीच विरोध होने पर भी चूंडा का सुलतान के पास ही रहना आदि।

इनके अलावा 'वीरविनोद' (भा० १, पृ० ३२३-२४) और 'राजपूताने के इतिहास' (भा० २, पृ० ६०३) में लिखा है-"जोधा की यह दशा देखकर महाराणा की दादी हंसाबाई ने कुम्भा को अपने पास बुलाकर कहा कि मेरे चित्तौड़ ब्याहे जाने में राठोड़ों का सब प्रकार से नुक़सान ही हुआ है। रणमल्लने मोकल को मारनेवाले चाचा और मेरा को मारा, मुसलमानों को हराया और मेवाड़ का नाम ऊँचा किया; परन्तु अन्त में वह भी मरवाया गया, और आज उसी का पुत्र जोधा निस्सहाय होकर मरुभूमि में मारा-मारा फिरता है। इस पर महाराणा ने कहा कि मैं प्रकट रूप से तो चूंडा के विरुद्ध जोधा को कोई सहायता नहीं दे सकता, क्योंकि रणमल्ल ने उसके भाई राघवदेव को मरवाया है; आप जोधा को लिख दें कि वह मंडोवर पर अपना अधिकार कर ले, मैं इस बात पर नाराज़ न होऊँगा।"

इससे भी स्पष्ट होता है कि राव रणमल्लजी ने षड्यन्त्रकारियों से मेवाड़ की रक्षा करने के साथ ही मांडू के सुलतान महमूद खिलजी प्रथम को हराकर हर तरह से महाराणाओं का उपकार ही किया था। परन्तु महाराणा कुम्भाजी ने चूंडा के पक्ष-वालों के बहकाने में आकर उन्हें छल से मरवा डाला। यद्यपि इसके बाद शीघ्र ही महाराणा को अपनी गलती मालूम हो गई, तथापि उस समय तक वह चूंडा के दबाव में जा चुके थे। ऐसी हालत में राव रणमल्लजी पर झूठा दोष लगाना सूर्यपर धूल उछालने के समान ही प्रतीत होता है।

राव जोधाजी

यह राव रणमल्लजी के द्वितीय पुत्र थे। इनका जन्म वि० सं० १४७२ की वैशाख बदी ४ (ई० सन् १४१५ की २९ मार्च) को हुआ थां।

वि० सं० १४८४ (ई० सन् १४२७) में जिस समय रणमल्लजी ने राव सत्ताजी से मंडोर का अधिकार छीना, उस समय जोधाजी की अवस्था केवल १२ वर्ष की थी। परन्तु फिर भी यह पिता के साथ रणस्थल में गए थे। इसके बाद वि० सं० १४९० (ई० सन् १४३३) में जब राव रणमल्लजी महाराना मोकलजी की हत्या का बदला लेने को मेवाड़ गए, तब भी यह उनके साथ थे।

वि० सं० १४९५ की कार्त्तिक बदी ३० (ई० सन् १४३८ की २ नवंबर) की रात में जैसे ही इन्हें राव रणमल्लजी के धोके से मारे जाने का समाचार मिला, वैसे ही यह अपने भाइयों और ७०० राठोड़-योद्धाओं को साथ लेकर चित्तौड़ से मारवाड़ की तरफ़ चल दिऐ। परन्तु इनके चीतरोड़ी पहुँचते-पहुँचते पीछा करनेवाली मेवाड़ की सेना भी वहाँ आ पहुँची। उस विशाल सेना का संचालक, महाराना कुंभाजी का चचा, स्वयं रावत चूंडा था। इस प्रकार शत्रु के एकाएक आ पहुँचने से दिन-भर तो दोनों तरफ़ से मारकाट होती रही, परन्तु रात्रि के अंधकार में युद्ध बंद होते ही राठोड़ों ने मारवाड़ का मार्ग लिया। यह देख मेवाड़ की सेना भी इनके पीछे चली। यद्यपि मार्ग में दोनों के बीच कई लड़ाइयाँ हुईं, तथापि कपासण पहुँचने पर एक बार फिर दोनों तरफ़ से जमकर तलवार चलाई गईं। इसी युद्ध में आहत हो जाने से वरजाँगं मेवाड़ वालों के हाथ पड़ गया। इस प्रकार शत्रु से लड़ते-भिड़ते

१. कर्नल टॉड ने इनका जन्म वि० सं० १४८४ (ई० सन् १४२७) में होना लिखा है (ऐनाल्स ऐंड ऐंटिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान, भा० २, पृष्ठ ६४७)। परन्तु यह ठीक नहीं है।

२. ख्यातों में लिखा है कि उस समय जोधाजी का चचा (राव चूंडाजी का पुत्र) भीम नशे में होने से पीछे छूट गया। इसका विवाह महाराना के कुटुम्ब में हुआ था। इससे वहाँवालों ने इसे क़ैद कर लिया। परन्तु कुछ दिन बाद जोधपुर-राजघराने के पुरोहित दमा ने पहुँच इसे छल से छुड़वा लिया।

३. इसी युद्ध में जोधाजी का भाई पाता मारा गया।

४. यह जोधाजी का चचेरा भाई और भीम का पुत्र था।

राठोड़-वीर जिस समय सोमेश्वर की नाल (घाटी) के पास पहुँचे, उस समय इनके ६०० योद्धा मारे जा चुके थे। परन्तु फिर भी मेवाड़वालों ने पीछा न छोड़ा। यह देख राठोड़ों ने भी वहाँ की तंग घाटी का आश्रय ले एक बार फिर सीसोदियों की सेना का सामना किया, और उसके बहुसंख्यक योद्धाओं का संहारकर स्वयं भी वीर-गति को प्राप्त हुए।

ख्यातों से प्रकट होता है कि मेवाड़ से चले राठोड़ों के दल में से जोधाजी सहित केवल आठ व्यक्ति ही भिन्न-भिन्न मार्गों से मारवाड़ तक पहुँच सके थे।

इस युद्ध के बाद मेवाड़ की सेना को मंडोर पर अधिकार करने में बाधा देने वाला कोई न रहा। इसी से रावत चूंडा ने आगे बढ़ वहाँ पर अधिकार कर लिया, और उसकी रक्षा के लिये गोडवाड़ से लेकर मंडोर तक अपनी चौकियाँ बिठा दीं।

उधर जिस समय मेवाड़वाले मंडोर पर अधिकार करने को बढ़े चले आ रहे थे, इधर उस समय जोधाजी के मांडल[2] पहुँचने पर उनकी भेट उनके भाई काँधल से हो गई। इसके बाद जोधाजी मय अपने अन्य साथियों के, जो इधर-उधर से आकर साथ होलिए थे, सोजत और मंडोर[3] की तरफ़ होते हुए काहुँनी[4] (जाँगलू के एक गाँव) की तरफ़ चले, और वहाँ पहुँचने पर अवकाश मिलते ही इन्होंने अपने पिता राव रणमल्लजी का और्ध्वदैहिक कर्म आदि किया।

जोधाजी के उस तरफ़ जाने के अनेक कारण थे। उनमें से पहला उस प्रदेश का रेतीला और निर्जल होना था; क्योंकि इससे वहाँ पर शत्रुओं के आक्रमण का भय बहुत कम था। दूसरा चूंडासर आदि आस-पास के कुछ प्रदेशों पर पहले से ही

१. ख्यातों में यह भी लिखा है कि यहीं पर चौहान (वेलण का पुत्र) समरा ३०० योद्धाओं के साथ आकर राठोड़ों के शरीक हो गया था। परन्तु इस युद्ध में वह अपने २५० वीरों के साथ मारा गया। इसके बाद उसका पुत्र नरा अपने बचे हुए ५० आदमियों को साथ लेकर मार्ग में जोधाजी से आ मिला, और इन्हीं के साथ सोजत की तरफ़ गया। इसी सेवा के कारण जोधाजी ने मंडोर पर अधिकार हो जाने पर उसे अपना मंत्री बनाया था।

२. यह स्थान देसूरी से ६ कोस पर है।

३. उस समय तक मंडोर पर शत्रुओं का अधिकार हो चुका था।

४. यह स्थान (आधुनिक) बीकानेर से १० कोस पर है।



१५. राव जोधाजी

वि० स० १५१० १५४६ (ई० स० १४५३-१४८६)

राठोड़ों का अधिकार चला आता था। तीसरा जाँगलू के सांखले और पूंगल के भाटी आदि इनके संबंधी थे।

जब रावत चूंडा ने मंडोर का प्रबंध अच्छी तरह कर लिया, तब उसने महाराना कुंभाजी को लिखा कि वह सोजत पर सेना भेज कर मारवाड़ को सदा के लिये मेवाड़-राज्य में मिला सकते हैं। इसी के अनुसार महाराना ने जोधाजी के चचेरे भाई राघवदेव[1] को, सोजत जागीर में देकर, वहाँ पर अधिकार करने के लिये भेज दिया, और उसे यह लालच भी दिया कि यदि वह वहाँ का प्रबंध अच्छी तरह से कर लेगा, तो मंडोर भी उसी के अधिकार में दे दिया जायगा। इस पर राघवदेव ने शीघ्र ही मेवाड़ की सेना के साथ जाकर सोजत[2], बगड़ी, कापरड़ा आदि पर अधिकार कर लिया, और विपक्षियों के आक्रमण से उनकी रक्षा करने के लिये चौकड़ी और कोसाना पर सैनिक-चौकियाँ कायम कर दीं।

इसके बाद नरवद[3] ने, मेवाड़वालों की सहायता से, काहुनी पर चढ़ाई की। परन्तु पहले से सूचना मिल जाने के कारण जोधाजी वहाँ से और भी आगे के निर्जल और रेतीले प्रांत में घुस गए। यह देख नरबद को वापस लौटना पड़ा, और उसके निराश होकर लौटते ही जोधाजी फिर काहुनी चले आए।

कुछ समय बाद जब संबंधियों और बांधवों की सहायता से जोधाजी के पास काम के लायक योद्धा एकत्रित हो गए, तब यह शत्रु के अधिकृत गाँवों को लूट कर धन-संग्रह करने लगे, और जैसे-जैसे इनका धन-जन का संग्रह बढ़ता गया, वैसे-ही-वैसे

---

१. यह मारवाड़-नरेश राव चूंडाजी का पौत्र और सहसमल का पुत्र था।

२. सोजत का लक्ष्मीनारायण का मन्दिर राघवदेव ने ही बनवाया था।

३. यह राव सत्ताजी का पुत्र था। ख्यातों में लिखा है कि जिस समय नरबद मेवाड़ में था, उस समय उसकी दान-वीरता की प्रशंसा सुन महाराना कुंभाजी ने उसकी परीक्षा लेने का विचार किया। इसी से एक दिन उन्होंने अपना आदमी भेज नरबद से उसकी आँख निकाल कर भेज देने को कहलाया। यद्यपि नरबद की एक आख युद्ध में पहले ही फूट चुकी थी, और महाराना की इच्छा भी वास्तव में उसकी दूसरी आँख निकलवाकर उसे अंधा करने की न थी, तथापि उसने तत्काल अपनी आंख निकालकर महाराना के भेजे नौकर को दे दी। इसकी सूचना मिलने पर महाराना को बड़ा दुःख हुआ।

इसके बाद महाराना ने नरबद को कायलाने की जागीर दी। यह जागीर संभवतः मंडोर पर उनका अधिकार होने के बाद ही दी गई होगी।

यह नवीन उत्साह के साथ अपने विपक्षियों को तंग करने लगे। इसी बीच जोधाजी का चचेरा भाई वरजाँग भी महाराना की क़ैद से निकलकर काहुनी चला आया था[1]।

इस प्रकार लगातार १५ वर्षों के निज के परिश्रम, भाई-बंधुओं के उद्योग और संबंधियों की सहायता से जब जोधाजी का बल खूब बढ़ गया[2], तब इन्होंने मंडोर पर अधिकार करने का निश्चय किया। इसके लिये सेना के तीन भाग किए गए। एक भाग वरजाँग के साथ मंडोर की तरफ़ भेजा गया। दूसरे भाग ने चाँपा की अधीनता

---

१. ख्यातों में लिखा है कि युद्ध में ज़ख्मी होकर बेहोश हो जाने के कारण वरजाँग को मेवाड़वालों ने क़ैद कर लिया था। परन्तु वहाँ पर वह अपने ज़ख्मों पर बाँधी जानेवाली पट्टियों को इकट्ठा करता रहता था। जब उसके घाव भर गए, और उसके पास काफ़ी पट्टियाँ जमा हो गईं, तब वह उनकी रस्सी बटकर उसी के द्वारा जेल के बाहर निकल गया, और मार्ग में अपना विवाह गागरून के स्वामी खीची (चौहान) चाचिगदेव की कन्या से कर जोधाजी के पास चला आया।

२. मंडोर पर अधिकार करने मे जोधाजी को इनके भाइयों, बंधुओं—मल्लानी के राठोड़ों, सिवाने के जैतमालोतों, पौकरन के पौकरना राठोड़ों, सेतरावा के देवराजोतों, संबंधियों-साँखला हड़बू, रूण के साँखलों, ईंदावाटी के ईंदों, सेखाला (शेरगढ़ परगने) के गोगादे चौहानों, गागरून के खीचियों, वीकपुर और पूंगल के भाटियों, भाटी शत्रुसाल (रणमल्लजी ने इसे चित्तौड़ का क़िलेदार बनाया था। इसकी मृत्यु रावत चूंडा के हाथ से हुई थी।) के पुत्र (बादशाही कृपा-पात्र) अर्जुन, जैसलमेर रावल केहरजी के पौत्र (कलकर्ण के पुत्र) भाटी जैसा आदि ने सहायता दी थी।

ख्यातों में लिखा है कि यह जैसा हड़बू का भानजा और भाथेड़ाँ का स्वामी था। जोधाजी ने उसकी सहायता की एवज़ में उसे ख़ास मंडोर को छोड़ उसके साथ के अन्य सारे प्रदेश का चौथा हिस्सा देने का वादा किया था। परन्तु जब उसकी बहन का विवाह जोधाजी के पुत्र सूजाजी से हुआ, तब इन्होंने वह हिस्सा उससे दहेज़ में माँग लिया। यद्यपि इससे जोधाजी को मंडोर-राज्य पर अधिकार कर लेने पर भी उसका चौथा भाग जैसा को न देना पड़ा, तथापि जैसा नाराज़ होकर महाराना के पास मेवाड़ चला गया, और इनके कई बार बुलवाने पर भी लौटकर न आया। यह देख जोधाजी ने उसके पुत्र जोधा को बालरवा जागीर में दिया।

ख्यातों में यह भी लिखा है कि जिस समय जोधाजी, सेतरावे के स्वामी (देवराज के पुत्र) रावत लूणकर्ण के पास सहायता माँगने गए, उस समय उसने इधर-उधर की बातें कर इन्हें टालना चाहा। परन्तु उसकी स्त्री ने, जो रिश्ते में जोधाजी की मौसी थी, इस बात की सूचना मिलते ही उसे ज़नाने में बुलवा लिया, और जोधाजी को चुने हुए १४० घोड़े देने की आज्ञा चुपचाप बाहर भिजवा दी।

में कोसाना पर हमला किया, और तीसरा भाग स्वयं जोधाजी के सेनापतित्व में चौकड़ी पर चला।

कोसाना और चौकड़ी पर के हमले अर्द्धरात्रि में अचानक किए गये थे। इससे वहाँ पर की मेवाड़ की सेनाओं में शीघ्र ही गड़बड़ मच गई, और वे युद्ध में मुखियाओं के मारे जाते ही अपना साज-सामान छोड़ भाग खड़ी हुईं। इसके बाद शीघ्र ही दोनों भाई (जोधाजी और चाँपा) अपने विजित प्रदेशों का प्रबंध कर वरजाँग के पास जा पहुँचे, और प्रातःकाल होने के पूर्व ही तीनों ने मिलकर मंडोर पर भी अधिकार करलियो। यह घटना वि० सं० १५१० की है।

राव रणमल्लजी की मृत्यु से लेकर मंडोर विजय करने तक राठोड़ों की तरफ़ से अपने देश की स्वाधीनता के लिये जितने कार्य किए गए थे, उन सबमें जोधाजी ने ही मुख्य भाग लिया था, और इनके १५ वर्ष के लगातार परिश्रम से ही यह विजय प्राप्त हुई थी। इसलिये मंडोर के क़िले पर अधिकार होते ही इनके बड़े भ्राता अखैराज ने तत्काल अपने अँगूठे को तलवार से चीरकर उसके रुधिर से जोधाजी के ललाट

१. ख्यातों से ज्ञात होता है कि जिस समय चौकड़ी पर आक्रमण हुआ था, उस समय राघवदेव भी वहीं था। परन्तु वह मेवाड़वालों की पराजय हो जाने से भागकर सोजत चला गया।

२. मंडोर के युद्ध में राना कुंभाजी के चचा रावत चूंडा के दो पुत्र कुंतल और सूआ, चचा का पुत्र आका और आहाडा हिंगोला आदि मारे गए। हिंगोला पर बनी छतरी बालसमंद तालाब पर अब तक विद्यमान है।

उदयपुर के इतिहासलेखकों ने लिखा है कि महाराना कुंभाजी ने, अपनी दादी हंसाबाई के समझाने से, अपने चचा रावत चूंडा से कुछ न कह सकने पर भी, जोधाजी को मंडोर पर अधिकार कर लेने का इशारा करवा दिया था। परन्तु उनका यह लिखना केवल महाराना की पराजय को छिपाने का प्रयत्न करना है; क्योंकि वास्तव में यह विजय जोधाजी ने युद्ध के बाद ही प्राप्त की थी।

किसी-किसी ख्यात में यह भी लिखा है कि राव वीरमजी का एक विवाह मांगलिया-शाखा के सीसोदियों के यहाँ हुआ था। इसी से मेवाड़ की देख भाल के लिये वहाँ रहने के समय रणमल्लजी के और मांगलिया कल्याणसिंह के बीच घनिष्ठ मित्रता हो गई थी। इस घटना के समय यही कल्याणसिंह मंडोर का कोतवाल था। इसने पुरानी मैत्री का विचार कर मंडोर के क़िले का द्वार खुलवा दिया। इसी से जोधाजी को उस पर अधिकार करने में अधिक विलंब न लगा।

पर राज-तिलक लगा दिया[1]। इस पर जोधाजी ने भी मेवाड़वालों से छीन कर बगड़ी का अधिकार उसे वापस सौंप देने की प्रतिज्ञा की।

इस प्रकार अपने पैतृक-राज्य को प्राप्त कर राव जोधाजी ने अपने भ्राता चाँपा को कापरड़े पर और वरजाँग को रोहट पर अधिकार करने की आज्ञा दी। उन्होंने भी शीघ्र ही दल-बल सहित वहाँ पहुँच उन स्थानों पर अधिकार कर लिया।

इसके बाद वीर वरजाँग रोहट से आगे बढ़ पाली, खैरवा आदि विजय करता हुआ नाडोल और नारलाई (गोडवाड़-प्रांत) तक जा पहुँचा। इसी युद्ध-यात्रा में मेवाड़ की सेना का सेनापति (रावत चूंडा का पुत्र) माँजा मारा गया। इससे शत्रुओं का उत्साह बिलकुल शिथिल पड़ गया।

इसी बीच स्वयं जोधाजी ने राघवदेव को भगा कर सोजत ले लिया[2], और उस नगर के मेवाड़ के निकट होने से वहीं पर अपना निवास नियत कर, नए भरती किए सैनिकों द्वारा, मेवाड़ की तरफ़ के मार्गों की रक्षा का प्रबंध शुरू किया। इसी अवसर पर इन्होंने, अपनी की हुई प्रतिज्ञा के अनुसार, बगड़ी का अधिकार अपने बड़े भाई अखैराज को सौंप दिया।

सोजत से भगाए जाने पर राघवदेव ने एक बार फिर मेवाड़ के बिखरे हुए सैनिकों को इकट्ठा कर नारलाई में वरजाँग से लोहा लिया। परन्तु अंत में वरजाँग के साथियों की मार सहने में असमर्थ हो उसे मैदान से भागना पड़ा। इस युद्ध में वरजाँग स्वयं अधिक घायल हो गया था। इसकी सूचना मिलते ही जोधाजी ने अपने भाई वैरसल को वहाँ के प्रबंध के लिये भेज दिया, और वरजाँग को रोहट जाकर इलाज करवाने की आज्ञा दी। वैरसल ने वहा पहुँच मेवाड़ के मार्गों को रोक दिया, और घाणेराव को उजाड़ कर वहाँ के निवासियों को गूँदोच में ला बसाया। वरजाँग भी तीन मास में ठीक होकर फिर गोडवाड़ जा पहुँचा।

---

१. उसी दिन से मारवाड़ मे यह प्रथा चली है कि जब कभी किसी महाराजा का स्वर्गवास होता है, तब बगड़ी ज़ब्त करने की आज्ञा दे दी जाती है, और नए महाराजा के गद्दी बैठने के समय बगड़ी ठाकुर द्वारा अपना अँगूठा चीरकर रुधिर का तिलक कर देने पर वह आज्ञा वापस ले ली जाती है।

(यह रुधिर से तिलक करने की प्रथा स्वर्गवासी महाराजा सरदारसिंहजी के समय उठा दी गई थी।

२. इसी बीच जोधाजी ने अपने भाई काँधल को मंडोर पर अधिकार करने के लिये भेज दिया।

उन दिनों महाराना कुंभाजी और मालवे के सुलतान के बीच झगड़ा छिड़ा हुआ था। इसी से मारवाड़-राज्य के हाथ आकर निकल जाने पर भी वह उस पर फिर से अधिकार करने के लिये नई सेना न भेज सके[1]।

इसप्रकार गोडवाड़ तक अपना अधिकार हो जाने से राव जोधाजी ने आगे बढ़ मेवाड़ पर हमला करने का इरादा किया। परन्तु इसी बीच वरजाँग के और जसोल के रावल बीदा के बीच घोड़ों के लिये झगड़ा हो गया[2]। इसमें बीदा और उसका पुत्र मारा गया।

इसके बाद शीघ्र ही सोजत में चुने हुए योद्धाओं की दो सेनाएँ तैयार की गईं। उनमें से एक का सेनापतित्व काँधल को और दूसरी का वरजाँग को सौंपा गया। राव जोधाजी का इरादा सिरियारी के मार्ग से मेवाड़ पर आक्रमण करने का था, परन्तु इसी समय, गुजरात के बादशाह से धन की सहायता मिल जाने के कारण, नरबद मंडोर पहुँचा, और वहाँ के दुर्ग-रक्षकों को लालच देकर क़िले में घुस बैठा। इसकी सूचना मिलते ही राव जोधाजी ने काँधल के दल को मंडोर की तरफ़ जाने की आज्ञा दी, और साथ ही एक दूत भेजकर मंडोर के दुर्ग-रक्षकों को कहलाया कि हमने मंडोर पर फिर से अधिकार करने को सेना रवाना करदी है। परन्तु उसके वहाँ पहुँचने के पूर्व ही तुम्हें सोच लेना चाहिए कि नरबद के समान अंधे स्वामी का आश्रय लेकर तुम लोग अधिक समय तक हमारा विरोध करने में सफल हो सकोगे या नहीं? यह बात उन लोभ में पड़े योद्धाओं की समझ में भी आ गई,

१. परन्तु किसी-किसी ख्यात में कुंभाजी का दुबारा मंडोर-विजय करने के लिये चढ़ाई करना और आगे वर्णन की गई राठोड़ों के गाड़ियों में बैठकर लड़ने को जानेवाली घटना का इस अवसर पर होना लिखा है।

२. ख्यातों में लिखा है कि एक बार वरजाँग के कुछ घोड़े, जो जंगल में चरा करते थे, रोहट से तलवाड़े की तरफ़ चले गए, और उन्हें जसोल के रावल बीदा के पुत्र ने पकड़ लिया। इसकी सूचना मिलने पर वरजाँग के आदमी उन्हें ले आने को वहां गए। परन्तु रावल के पुत्र ने उन्हें देने से साफ़ इनकार कर दिया। इस पर वरजाँग को तलवाड़े पर चढ़ाई करनी पड़ी। उस समय रावल बीदा कहीं बाहर गया हुआ था, इसमें वरजाँग का मुक़ाबला उसके पुत्र से हुआ। कुछ देर के युद्ध में कुँवर मारा गया, और विजयी वरजाँग अपने घोड़े लेकर वापस चला आया। परन्तु बाहर से लौटने पर जब बीदा को इस घटना की खबर मिली, तब उसने कुँवर का बदला लेने के लिये वरजाँग पर चढ़ाई की। रोहट के पास युद्ध होने पर बीदा भी मारा गया।

और उन्होंनें नरबद का साथ छोड़ जोधाजी के सैनिकों को क़िला सौंप देने में ही अपनी कुशल समझी। उनके इस विचार की सूचना मिलने पर नरबद स्वयं गुजरात को लौट गया। परन्तु वह लौटकर बादशाह के पास न पहुँच सका। मार्ग में ही उसका देहान्त हो गया। काँधल के वहाँ पहुँचने पर विना लड़े-भिड़े ही मंडोर का क़िला उसे सौंप दिया गया। इस पर वह भी वहाँ का प्रबंध अधिक विश्वास-योग्य पुरुषों को सौंप सोजत लौट आया।

इसके बाद जोधाजी ने मेवाड़ पर चढ़ाई की। ख्यातों में लिखा है कि इन्होंने रात के समय चित्तौड़ पर आक्रमण कर वहाँ के क़िले के द्वार को जला दिया[1]। मेवाड़ के गाँवों को लूट पीछोला तालाब (मेवाड़ की आधुनिक राजधानी उदयपुर के पास) तक धावा मारा[2], और लौटते हुए यह मेवाड़ के सेठ पद्मचंद को पकड़ लाए[3]।

इस घटना ने महाराना को राव जोधाजी पर चढ़ाई करने के लिये लाचार कर दिया। इसी से वह इस अपमान का बदला लेने के लिये दल-बल-सहित नारलाई (गोडवाड़-प्रांत) में पहुँचे। राव जोधाजी इसके लिये पहले से ही तैयार थे। इससे जैसे ही इन्हें कुंभाजी की चढ़ाई का समाचार मिला, वैसे ही इन्होंने, उनके मुकाबले के लिये, पाली में अपनी सेना इकट्ठी की, और सब प्रबंध हो जाने पर यह वहाँ से आगे बढ़ नाडोल (गोडवाड़-प्रांत) में जा पहुँचे। उस समय रावजी के साथ करीब बीस हज़ार रणबाँकुरे राठोड़ योद्धा थे। परन्तु इतने घोड़ों का प्रबंध न हो सकने के कारण उनमें से बहुत-से बैल-गाड़ियों पर बैठकर रण-क्षेत्र की तरफ़ गए थे[4]। इन्हें देख मेवाड़वालों को निश्चय हो गया कि ये राठोड़ वीर साधारण मार-काट मचाकर लौट जाने के इरादे से न आकर मरने-मारने का निश्चय करके ही आए हैं। यह देख साँखला नापा ने कुंभाजी को समझाया कि इस समय राव जोधाजी

१. 'चीतोड तणा चूंडाहरै किंमाडह परजालिया' (प्राचीन छप्पय)

२. 'जोधे जंगम आपरा पीछोले पाया।' (रामचंद्र ढाढी-कृत नीशांणी)

३. 'पद्मचंद सेठ लायौ पकड़ दाह मेवाड़ां उरदयौ।' (प्राचीन छप्पय) इस सेठ ने खैरवा पहुँचने पर बहुत-सा द्रव्य भेट कर अपना छुटकारा हासिल किया था। इसी धन से जोधपुर का क़िला बनवाना प्रारंभ किया गया, और सेठ की यादगार में क़िले के पास पद्मसर नामक तालाब बनवाया गया।

४. 'जोधातणी सांमुहे जातां गाडां मैहाथिया गया।' (प्राचीन गीत)

से विरोध बढ़ाना उचित न होकर मेल कर लेना ही अधिक उत्तम है। क्योंकि इधर यह अपने पिता का वैर लेने को तुले हुए हैं, और उधर मालवे के सुलतान से झगड़ा चल रहा है[1]। ऐसे समय राठोड़ों से संधि कर लेना ही उचित है। राठोड़ों के गाड़ियों में बैठकर रण-क्षेत्र में आने से यह तो निश्चय ही है कि वे मरने-मारने का इरादा करके आए हैं। ऐसी हालत में हम जीते भी, तो यह विजय बहुत महँगी पड़ेगी। इसके अलावा इस युद्ध में हमारे योद्धाओं के हताहत हो जाने से मालवे के सुलतान को मेवाड़ को विध्वंस करने का मौका मिल जायगा। यह बात महाराना कुंभाजी की समझ में भी आ गई। इससे उनके आज्ञानुसार राजकुमार ऊदा (उदयसिंह)जी और साँखला नापा ने राव जोधाजी के शिविर में पहुँच, बहुत-सी कहा-सुनी के बाद, संधि की शर्तें तय कर डालीं[2]। बाँवल (बबूल) के पेड़वाली पृथ्वी जोधाजी को सौंप दी गई, और आँवलवाली ज़मीन महाराना के अधिकार में रही[3]। इस प्रकार आपस में संधि हो जाने पर कुंभाजी लौट कर चित्तौड़ चले गऐं, और राव जोधाजी ने खैरवा पहुँच सींधल राठोड़ों पर सेना भेजी[4]। उसने शीघ्र ही उनके पाली-परगने के ३० गाँव छीन लिए।

इसके बाद सब झगड़ों से निपट जाने पर वि० सं० १५१५ (ई० सन् १४५८) में मंडोर के क़िले में राव जोधाजी का शास्त्रानुसार राज्याभिषेक किया गया, और

१. हि० सन् ८४६ (वि० सं० १५००=ई० सन् १४४३) और हि० सन् ८६१ (वि० सं० १५१३=ई० सन् १४५६) के बीच की सुलतान महमूद ख़िलजी की मेवाड़ पर की चढ़ाइयों से इसकी पुष्टि होती है।

२. ख्यातों में लिखा है कि संधि के समय महाराना कुम्भाजी ने अपने एक बंधु की कन्या का विवाह राव जोधाजी के साथ कर दिया था।

३. किसी-किसी ख्यात में इस घटना का समय वि०सं० १५१२ (ई०सन् १४५५) लिखा है।

४. 'राणा कुम्भा भजिगा, वीर खेत चलाया;
'नाडूलाई निहसिया, दम्मामावाया।'
(ढाढी रामचंद्र-कृत नीशांणी) इसमें कवि ने कुछ अतिशयोक्ति अवश्य कर दी है।

५. राव जोधाजी की मेवाड़ पर की चढ़ाई के समय इन्होंने साथ देने से इनकार कर दिया था। इसी से यह सेना भेजी गई थी। ख्यातों के अनुसार यह सेना वीसलपुर के स्वामी जसा पर गई थी।

ख्यातों में जोधाजी का जैतारण के सींधलों को हराकर उन्हीं को अपनी तरफ से वहां का अधिकार देना भी लिखा मिलता है।

जिन लोगों ने विपत्ति के समय सहायता दी थी, उन सबको यथायोग्य दान और मान से संतुष्ट किया गया। कहते हैं, इसी समय इन्होंने मंडोर के पास अपने नाम पर जोधेलाव-नामक तालाव बनवाया था।

वि० सं० १५१६ की ज्येष्ठ-सुदी ११ शनिवार (ई० सन् १४५९ की १२ मई) को राव जोधाजी ने मंडोर से ६ मील दक्षिण में नया क़िला बनवाना प्रारंभ किया[1], और उसी के पास अपने नाम पर जोधपुर-नगर आबाद किया।

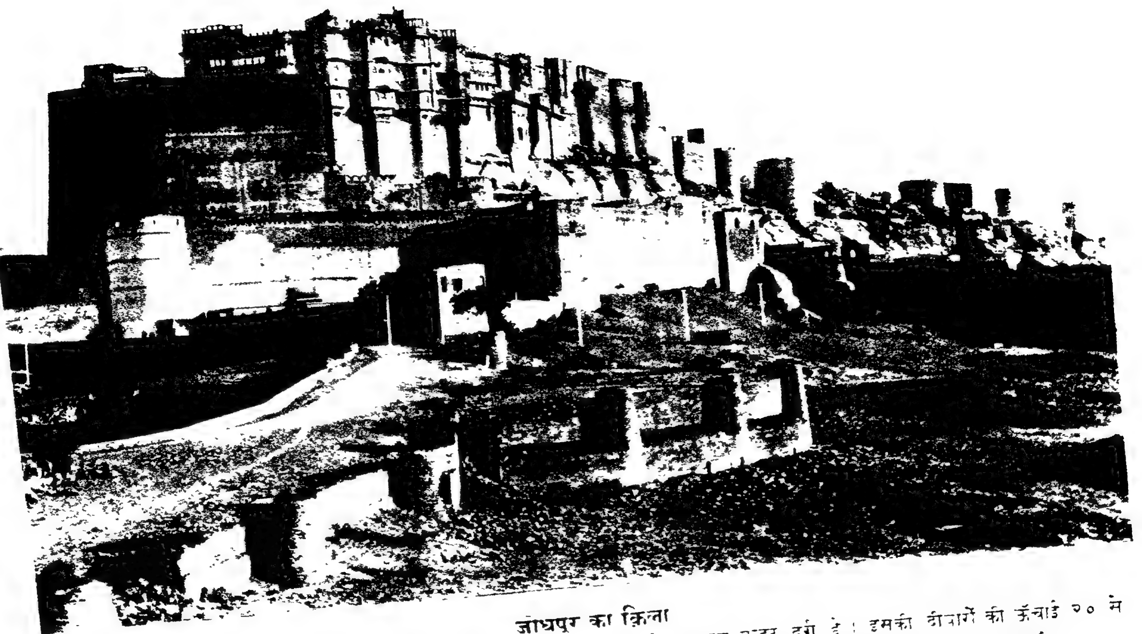
१. ख्यातों में लिखा है कि पहले जोधाजी का विचार मसूरिया-नामक पर्वत-शृंग पर क़िला बनाने का था। परंतु वहां आस-पास जल की कमी होने से यह विचार स्थगित करना पड़ा। उसी समय उस पर्वत-शृंग पर रहनेवाले एक फ़क़ीर ने इन्हें पचेटिया-नामक पर्वत-शृंग पर क़िला बनवाने की सलाह दी। यह बात रावजी को भी पसंद आ गई। कहते हैं, इसके एवज़ में उस फ़क़ीर ने रावजी से दो प्रार्थनाएँ की थीं। एक यह कि रामदेवजी के दर्शनार्थ रुणेचा जानेवाले वे यात्री, जो इधर से निकलें, पहले उसके आश्रम पर आवें, और दूसरी यह कि राज्य की तरफ़ से साल में दो बार उसके आश्रम में भेट भेजी जाय। रावजी ने उसकी ये दोनों प्रार्थनाएँ स्वीकार करलीं।

प्रचलित प्रथा के अनुसार जोधपुर के क़िले की दीवार के नीचे दो जीवित पुरुष गाड़े गए। ये जाति के चमार थे। इसकी एवज़ में उनकी संतान को कुछ ख़ास सुविधाएँ और भूमि दी गई। किसी किसी ख्यात में क़िले की दीवार के नीचे राजिया-नामक चमार का गाड़ा जाना लिखा है।

प्रसिद्धि है कि जिस पर्वत पर जोधपुर का क़िला बनवाया गया है, उस पर के झरने के पास चिड़ियानाथ नामक एक योगी रहा करता था। परंतु जब उसका आश्रम क़िले के भीतर ले लिया गया, तब वह आस-पास जल का अभाव रहने का शाप देकर वहां से नौ कोस अग्निकोण में स्थित पालासनी गांव में चला गया। वहीं पर उसकी समाधि बनी है। राव जोधाजी को जब योगी के इस प्रकार अप्रसन्न होकर जाने का समाचार मिला, तब इन्होंने (आधुनिक सरदार मारकैट के पास) उसके लिये एक मठ बनवाकर उसे वापस ले आने के लिये अपने आदमी भेजे। परंतु उसने कुछ दिन बाद आने का वादा कर उन्हें लौटा दिया। अंत में वह आकर कुछ दिन उस मठ में ठहरा, और उसी के पास उसने एक शिवालय बनवाया। उसी योगी के कहने से जोधाजी ने नित्य एक रोट बनवाकर किसी साधु-संन्यासी को देने की प्रथा प्रचलित की थी। (वि० सं० १६७१ [ई० सन् १६१४] में, राज्य की तरफ़ से, उस शिवालय का जीर्णोद्धार किया गया।)

जिस झरने के पास वह योगी रहा करता था, उसके निकट ही राव जोधाजी ने एक कुण्ड और एक छोटा-सा शिव का मंदिर बनवा दिया था। यद्यपि आजकल वह झरनेश्वर महादेव का स्थान बहुत कुछ सुन्दर बना दिया गया है, तथापि वहां के झरने का जल कम हो गया है।

ख्यातों में वि० सं० १५१५ की ज्येष्ठ-सुदी ८ को बलिदान देकर ज्येष्ठ-सुदी ११ को जोधपुर के क़िले का प्रारंभ करना और ज्येष्ठ सुदी १३ को उसके द्वार की प्रतिष्ठा करना लिखा मिलता है। परंतु यह श्रावणादि संवत् है। इसलिये उस समय चैत्रादि संवत् १५१६ था।



जोधपुर का क़िला

यह क़िला, जो पृथ्वीतल से ४०० फुट ऊँची पहाड़ी पर बना है, राजपूताने का एक सुन्दर दुर्ग है। इसकी दीवारों की ऊँचाई ७० से १२० फुट और मुटाई १२ से ७० फुट तक है। इस दुर्ग की लम्बाई ५०० गज़ और चौड़ाई २५० गज तक है।

इसी समय इनकी एक रानी हाडी जसमादेवी ने क़िले के पास 'रानीसागर'-नामक तालाब बनवाया[1], और दूसरी रानी सोनगरी (चौहान) चाँदकुँवरी ने एक बावली बनवाई । यह 'चाँदबावड़ी' (चौहान-बावड़ी) के नाम से प्रसिद्ध है ।

ख्यातों के अनुसार वि० सं० १५१६ की आषाढ़-सुदी ६ (ई० सन् १४५६ की ९ जून) को इस नवीन क़िले की प्रतिष्ठा की गई ।

इसके बाद राव जोधाजी ने अपने पुत्र सातल को फलोदी और नींबा को सोजत का प्रबंध करने के लिये भेजा ।

ख्यातों में यह भी लिखा है कि क़िले के द्वार की स्थापना का मुहूर्त निश्चित हो जाने पर, उपयुक्त शिला के समय पर न लाई जा सकने के कारण, वहीं पास में स्थित एक ऊँट चरानेवाले के बाड़े से द्वार की शिला लाकर स्थापित की गई थी । उस शिला में बाड़े के द्वार को बंद करने के लिये लगाए जानेवाले डंडों के छेद बने हैं ।

यह स्थान जोधाजी के फलसे के नाम से प्रसिद्ध है । घोड़े पर बैठकर क़िले में जानेवालों में से महाराज लोग लोहापोल के आगे की क़िलेदार की चौकी के आगे के प्यादबख्शियों के दालान के सामने, रावराजा लोग लोहापोल के पास, सिरायत (लाइन के सिरे पर बैठनेवाले) सरदार जोधाजी के फलसे के आगे (लाठ के पास ?), हाथके कुरब वाले जोधाजी के फलसे के भीतर, ताज़ीम और 'बांहपसाव' वाले, जिनका सामने की 'ओल' (लाइन) में बैठने और मरने पर रथी के आगे घोड़ा निकालने का अधिकार है, वे जोधाजी के फलसे के बाहर, अन्य ताज़ीम और बांहपसाव वाले चौहानों के दालान के पहले कौने के पास या इमरतीपोल के पास, दीवान और बख्शी के दरजे के मुत्सद्दी इमरती पौल की अगली महराब के नीचे और बाक़ी मुत्सद्दी इसके पीछे घोड़े से उतर जाते हैं । परन्तु महाराजा की इच्छानुसार इसमें परिवर्तन होता रहता है ।

किसी-किसी ख्यात में करनीजी नाम की चारणजाति की प्रसिद्ध महिला द्वारा क़िले का स्थान बताया जाना और उसी के द्वारा उसका शिलारोपण होना भी लिखा है ।

१. इस रानी ने एक कुआं भी खुदवाया था ।

---

(१) जिनके झुक कर अभिवादन करने पर महाराजा अपना हाथ अपने सीने तक लाकर अभिवादन ग्रहण करते हैं ।

(२) जिनका अभिवादन महाराजा खड़े होकर ग्रहण करें । इसके दो भेद हैं । इकहरी ताज़ीम वालों के आने के समय ही महाराजा खड़े होकर अभिवादन ग्रहण करते हैं और दुहेरी ताज़ीम वालों के आते और जाते दोनों समय महाराजा खड़े होते हैं ।

(३) जिनके झुक कर पैरों पर हाथ लगाने के समय महाराजा अपना हाथ उनके कंधे पर लगाते हैं ।

इसी वर्ष जिस समय जोधाजी साँखला नापाजी की सहायता[1] के लिये जांगलू की तरफ़ गए, उस समय इन्होंने अपनी माता के बनवाए 'कोडमदे-सर'-नामक तालाब की प्रतिष्ठा कर वहाँ पर एक कीर्ति-स्तंभ स्थापित किया[2], और वहाँ से लौटकर अपने कुल-पुरोहित को एक नया दानपत्र लिख दिया[3]।

१. कहते हैं, इस सहायता की आवश्यकता बल्लोचों के आक्रमण के कारण पड़ी थी।

२. यह तालाब इनकी माता कोडमदेवी ने बनवाया था। वह बीकूँपुर और पूँगल के स्वामी भाटी केल्हण की कन्या थी, और रणमल्लजी के मारे जाने की सूचना मिलने पर इसी तालाब के तट पर सती हुई थी। वहां पर स्थापित कीर्ति-स्तंभ में लिखा है:—

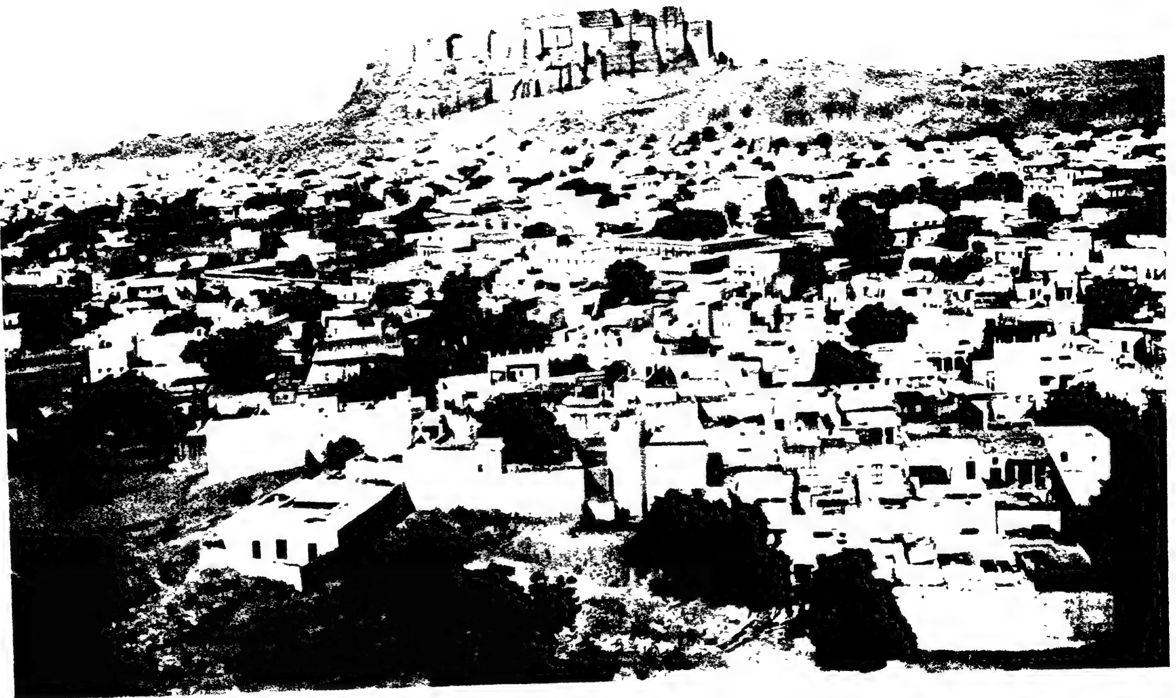
संवत् १५१६ [वर्षे] सा(शा)के १३८ [१]
प्रवर्तमानेः (ने) [महा] मांगल्य
भाद्रवा सु [दि] [६] सोमदिने
हस्त नि (न) [क्षत्रे] सुक [ल] (शुक्ल) जो
(यो) गे
[कौ] लव [करणे]······
राठ [ड] [म] हाधिराय श्री
रा [य श्री] जोधा
राय श्रीरिणमल सु [त] त [डा]
उ [ग] पत्रिस्टा(प्रतिष्ठा)कार (रि) ता। माता श्रीकोडमदे [नि] मिति (त्तं) की-
रति (र्त्ति) स्तंभ [:] था[पि]ताः (स्थापितः)
सु (शु)
भं भवतुः (तु) कल्यणं (ल्याण) म
स्त (स्तु)

(जर्नल बंगाल एशियाटिक सोसाइटी, भा० १३ [ई० सन् १६१७], पृष्ठ २१७-२१८)

ख्यातों में जोधाजी द्वारा राव रणमल्लजी के बारहवें दिन के कृत्य का भी इसी तालाब पर किया जाना लिखा है। इससे ज्ञात होता है कि यह तालाब उस समय के पूर्व ही बन चुका था।

कुछ ख्यातों में इस तालाब का भाटी सादा की स्त्री कोडमदेवी की यादगार में उसके श्वशुर द्वारा बनवाया जाना लिखा है। परंतु यदि वास्तव में ऐसा होता, तो राव जोधाजी को उसकी प्रतिष्ठा करवाकर वहाँ पर कीर्ति-स्तंभ स्थापित करवाने की आवश्यकता ही न होती।

३. यद्यपि यह ताम्रपत्र, जिस पर उपर्युक्त दानपत्र लिखवाया गया था, इस समय नष्ट हो चुका है, तथापि राजा उदयसिंहजी की सनद से ज्ञात होता है कि वि० सं० १६३५



जोधपुर-नगर का ऊपरी दृश्य

इस नगर की स्थापना राव जोधाजी ने वि० सं० १५१६ (ई० स० १४५९) में की थी।

वि० सं० १५१७ (ई० सन् १४६०) में इन्होंने मंडोर की चामुंडा[1] की मूर्ति को मँगवाकर जोधपुर के क़िले में स्थापित किया, और अगले वर्ष (वि० सं० १५१८=ई० सन् १४६१ में) अपने पुत्र वरसिंह और दूदा को मेड़ता नामक नगर पर अधिकार करने के लिये भेजा। उस समय यह नगर और प्रांत अजमेर के सूबेदार[2] के शासन में था। परन्तु दोनों भाइयों ने वहाँ पहुँच उक्त नगर के साथ ही उस प्रांत के ३६० गाँवों पर भी अधिकार कर लिया। इसके बाद प्राचीन बस्ती के दक्षिण में नया मेड़ता नगर बसाया[3] गया।

इस प्रकार राज्य के कामों से निबट कर इसी वर्ष (वि० सं० १५१८=ई० सन् १४६१ में) राव जोधाजी ने गया की यात्रा की। मार्ग में जिस समय यह आगरे पहुँचे, उस सयम बादशाह बहलोल लोदी के कृपापात्र राठोड़ कर्ण[4] ने इन्हें अपना

(ई० सन् १५७६) तक यह विद्यमान था। आगे एक पुरानी बही से इस दानपत्र की नक़ल उद्धृत की जाती है—

श्रीमहामायाजी श्रीरामजी

श्रीनागणेचीयांजी श्रीकीसनजी सही

महारावजी श्रीजोधाजी वचनायते तथा कनोज सुं सेवग लुंबरिसी जातरो सारसुत ओजो ल्होड सेवा लेने आयौ सु राठौड वंसरा सेवगऐ छै ठेटु कदीम सुं मुलगा यांरा सेवगपणां इणां रा है। पहली वंसरै माताजी श्रीआदपंखणीजी चक्रेश्वरांजी पछै रावजी श्रीधूहडजी नै वर दीधो नागरा रूप सुं दरसण दीधौ तरे नागणेचियां कहांणी सु धूहडजीरो तांबापत्र ओजा रिखबदेव श्रीपतरा बेटा कने थौ सु वाचनै मैं ही तांबापत्र करदीधौ उण मुजब राठौड़ वंसरे सेवग पणारो लवाजमो जायां परणियां नेग दापौ राजलोक रावलै करै सु वरत वढूलियौ सरबेत इणांरो नेग है ने राठौड वंस गोतमस गोत्र अकरूर साखारी लार इतरा जणा छै पीरोत सेवड ओजा सेवग लोड मथेरण रुदरदेवा सो देस परदेस मांहरी आल ओलाद पीडी दरपीडी ओजा रिखबदेव री आल ओलाद ने सेवग कर मानसी मांहरी आल ओलाद असलवंस होसी सु इणांनु दत देसी। लिखतं पं। हरीदास आईदासोत महारावजी रा हुकम सुं सं० १५१६ रा मीगसर सुद २ दुवै श्रीमुख परवानगी राठौड करमसी मुकाम सुखवास जोधपुर। सिलोक। सहदत परदत जे लोपंती वीसंधरा ते नरा नरग जावंती जबलग चंद दीवाकरा ॥ १ ॥ साख छै ॥ दुवो ॥ अखरज चांपो करमसी सको भायांरी साख, राव समप्यां रीत सुं उथपै तिकां तलाक ॥२॥

१. यह पड़िहारों की कुल-देवी थी। परंतु राठौड़ों ने भी मंडोर का राज्य प्राप्त कर इसकी उपासना प्रारंभ कर दी थी।

२. उस समय यह मांडू के बादशाह की तरफ़ से नियत था।

३. ख्यातों में इस घटना का समय वि० सं० १५१६ (ई० सन् १४६२) लिखा है।

४. यह क़न्नौज के राठोड़-घराने का था, और बहलोल लोदी ने इसे शम्साबाद (खोर) का सूबेदार बना दिया था (तारीख़-फ़रिश्ता, पृष्ठ १७४ और १७६)।

बंधु समझ हर तरह से इनका आदर सत्कार किया। उसी के द्वारा यह बादशाह से मिले, और समय पर सहायता देने का वादा कर इन्होंने यात्रियों पर लगनेवाला शाही कर माफ़ करवा दिया।

यहाँ से आगे बढ़ जब यह गया की तरफ़ चले, तब मार्ग में इनकी मुलाक़ात जौनपुर के बादशाह हुसैनशाह से हुई। बातचीत के सिलसिले में इन्होंने लौटते समय ग्वालियर के आस-पास के उपद्रवियों को दंड देने का वादा कर गया के यात्रियों पर लगनेवाला कर भी छुड़वा दिया[1]।

घोसूंडी (मेवाड़) से मिले महाराणा रायमल्ल के वि० सं० १५६१ (ई० सन् १५०४) के लेख[2] में लिखा है–

"श्रीयोधक्षितिपतिरुग्रखड्गधारा-
निर्घातप्रहतपठाणपारशीकः ॥ ५ ॥
पूर्वानताप्सीद्गयया विमुक्तया
काश्यां सुवर्णैर्विपुलैर्विपश्चितः।"

अर्थात्-जोधाजी की तलवार से अनेक पठान मारे गए। इन्होंने गया के यात्रियों पर लगनेवाले कर को छुड़वा कर अपने पूर्वजों को और काशी में सुवर्ण दान कर वहाँ के विद्वानों को संतुष्ट किया।

ख्यातों के अनुसार इन्होंने प्रयाग, काशी, गया और द्वारका आदि तीर्थों की यात्रा की, और लौटते हुए हुसैनशाह के शत्रुओं की गढ़ियों को नष्ट-भ्रष्ट कर अपनी प्रतिज्ञा निबाही।

इसी बीच भाद्राजन के सींधल आपमल ने राव जोधाजी के कुँवर शिवराज को सिवाना दिलवाने का बहाना कर वहाँ के स्वामी विजा को मार डाला, और सिवाने पर स्वयं अधिकार कर लिया। परन्तु जैसे ही इसकी सूचना विजा के पुत्र देवीदास को मिली, वैसे ही उसने जाकर फिर से सिवाना छीन लिया। जोधपुर लौटने पर

रामपुर (एटा-ज़िले में) की तवारीख़ में लिखा है कि १५ वीं शताब्दी में जब जौनपुर के बादशाह ने आठवें राजा कर्ण को शम्साबाद से निकाल दिया, तब वह उसेत (बदायूँ-ज़िले) में क़िला बनवाकर रहने लगा। वहां पर उसकी तीन पीढ़ी ने राज्य किया।

१. उस समय गया पर हुसैनशाह का अधिकार था।

२. जर्नल बंगाल एशियाटिक सोसाइटी, भा० ५६, अंक १, नं० २।

जब रावजी को इस झगड़े का हाल मालूम हुआ, तब यह आपमल से नाराज हो गए। यह देख देवीदास ने भाद्राजन पर चढ़ाई कर दी, और आपमल को मार पिता का बदला लिया।

वि० सं० १५२१ (ई० सन् १४६४) में (बीसलपुर का स्वामी) सींधल जैसा पाली के मवेशी पकड़ ले गया। इसकी सूचना मिलते ही कुँवर नींबा ने सोजत से उस पर चढ़ाई की, और मार्ग में (वटोवड़ा गाँव के पास) उसे जा पकड़ा। यद्यपि युद्ध में सींधल जैसा मारा गया, तथापि अधिक घायल होजाने के कारण पांच महीने बाद कुँवर नींबा का भी स्वर्गवास हो गया। इस घटना की सूचना से रावजी को बहुत दुःख हुआ। परन्तु अंत में इन्होंने ईश्वर की इच्छा ऐसी ही समझ धैर्य धारण किया, और कुँवर सूजाजी को फलोदी से बुलवाकर सोजत का प्रबंध करने के लिये भेज दिया।

इसी वर्ष छापर-द्रोणपुर के स्वामी मोहिल अजितसिंह ने अपने मंत्रियों के बहकाने में आकर[3] मारवाड़ में उपद्रव करना शुरू किया। कुछ दिन तक तो राव जोधाजी, उसे अपना दामाद समझ, चुप रहे। परन्तु जब मामला बढ़ता ही गया, तब लाचार हो इन्हें उपद्रव को दबाने के लिये सेना भेजनी पड़ी। गगराणे के पास मुक़ाबला होने पर अजितसिंह मारा गया, और उसका भतीजा बछराज छापर-द्रोणपुर का स्वामी हुआ।

१. सोजत का कोट इसी ने बनवाया था।

२. यह अपने बड़े भाई सातलजी के पास फलोदी में रहा करते थे।

३. ख्यातों में लिखा है कि वि० सं० १५२१ (ई० सन् १४६४) में अजितसिंह अपनी सुसराल जोधपुर आया। परंतु जब कई दिन हो जाने पर भी उसने लौटने का इरादा नहीं किया, तब उसके मंत्रियों ने उसे छापर-द्रोणपुर पर जाटों के हमला करने की झूठी खबर कह सुनाई। इस पर वह जोधाजी से मिले विना ही अपने राज्य की रक्षा के लिये तत्काल रवाना हो गया। परंतु जिस समय वह अपने राज्य के निकट पहुँचा, उस समय उन मंत्रियों ने अपनी जान बचाने के लिये उससे कहा कि राठोड़ों का विचार आपको मारकर आपके अधिकृत प्रदेश को ले लेने का था। इसी से, आपको उनके पंजे से बचाने के लिये, हम लोगों ने यह चाल चली थी। अजितसिंह ने उनके कहने को सच मान लिया और इसी का बदला लेने के लिये वह मारवाड़ में उपद्रव करने लगा।

वि० सं० १५२२ (ई० सन् १४६५) में राव जोधाजी के पुत्र बीकाजी अपने चचा काँधलजी आदि को साथ लेकर जांगलू की तरफ़ गए, और कुछ वर्ष बाद वहीं पर उन्होंने अपना नया राज्य क़ायम किया। इस समय वह बीकानेर राज्य के नाम से प्रसिद्ध है।

वि० सं० १५२३ (ई० सन् १४६६) में छापर-द्रोणपुर के स्वामी बछराज ने अपने चचा का बदला लेने के लिये मारवाड़ में लूटमार शुरू की। इस पर जोधाजी की आज्ञा से इनकी सेना ने बछराज को मारकर उसके राज्य पर अधिकार कर लिया। परन्तु कुछ मास बाद बछराज के पुत्र मेघा ने रावजी से मेल कर लिया। इससे प्रसन्न होकर इन्होंने उसका सारा प्रदेश उसे वापस लौटा दिया।

१. ख्यातों मे लिखा है कि एक रोज़ काँधल और बीकाजी दोनों दरबार मे बैठे बातें कर रहे थे। इतने मे राव जोधाजी वहां आ गए, और इनको बातों मे लगा देख हँसी मे कहने लगे कि क्या आज चचा-भतीजे मिलकर किसी नए प्रदेश को दबाने की सलाह कर रहे हैं? यह सुन कांधल ने उत्तर दिया कि यह कोई बड़ी बात नहीं है। ईश्वर चाहेगा, तो ऐसा ही होगा। हां, इसका निश्चय हो जाना ज़रूरी है कि यदि मैं युद्ध मे किसी के हाथ से मारा जाऊँ, तो उससे बदला लेने मे ढील न की जाय। यह बात जोधाजी ने स्वीकार कर ली।

इसके बाद सांखला नापा और जाट निकोदर की सलाह से ये लोग, कुछ चुने हुए वीरों के साथ, जांगलू की तरफ़ चले। उस समय उस प्रदेश का बहुत-सा हिस्सा जाटों के अधिकार में था, और वे आपस में एक दूसरे से लड़ा करते थे। मार्ग में मंडोर पहुँचने पर बीकाजी ने अपने इष्टदेव भैरव की मूर्ति को भी साथ ले लिया। इसके बाद यह देसणोक पहुचे। वहां पर करणीजी ने इन्हें सफलता होने का आशीर्वाद दिया। वहां से चलकर कुछ समय तक तो ये लोग चूंडासर में रहे, और फिर इन्होंने कोडमदे-सर में जाकर निवास किया। उसी स्थान पर वह भैरव की मूर्ति स्थापित की गई।

धीरे-धीरे करीब २० वर्ष के लगातार परिश्रम से इन लोगों ने आस-पास के जाटों, सांखलों और भाटियों को हराकर उनके बहुत-से प्रदेश पर अधिकार कर लिया। इसके बाद वि० सं० १५४२ (ई० सन् १४८५) में बीकाजी ने एक उचित स्थान चुनकर वहां पर नए क़िले का शिलारोपण किया, और उसी के पास अपने नाम पर बीकानेर-नगर बसाया। इस नगर की शहरपनाह वि० सं० १५४५ (ई० सन् १४८८) में बनाई गई थी।

२. किसी-किसी ख्यात में जोधाजी का अपने दामाद अजितसिंह को मारकर उसके राज्य पर अधिकार करने का इरादा होना लिखा है। परंतु यदि ऐसा होता, तो मेघा को वह प्रदेश क्यों सौंपा जाता।

वि० सं० १५२४ (ई० सन् १४६७) के क़रीब राव जोधाजी के पुत्र करमसी, रायपाल और वणवीर नागोर के शासक कायमखाँनी फ़तनखाँ के पास पहुँचे। उसने करमसी को खींवसर और रायपाल को आसोप जागीर में देकर अपने पास रख लिया। वणवीर अपने बड़े भाई करमसी के साथ रहा। परंतु जोधाजी को सूचना मिलने पर इन्होंने उन्हें फ़तनखाँ की दी हुई जागीरों को छोड़कर वापस चले आने की आज्ञा लिख भेजी। इसलिये तीनों भाई फ़तनखाँ का साथ छोड़ बीकाजी के पास चले गए। परंतु फ़तनखाँ ने इसमें अपना अपमान समझा, और इसीसे क्रुद्ध होकर वह रावजी की प्रजा पर अत्याचार करने लगा। यह देख रावजी ने नागोर पर चढ़ाई की। फ़तनखाँ हारकर झूँझनू की तरफ़ भागा, और रावजी ने नागोर पर अधिकार करने के बाद अपनी तरफ़ से, करमसी को, खींवसर और रायपाल को आसोप की जागीर दी।

वि० सं० १५२५ (ई० सन् १४६८) में, मेड़ते का प्रबंध ठीक हो जाने पर, वरसिंह तो वहां का शासक बना, और दूदा अपने भाई बीकाजी के पास चला गया।

इसी वर्ष महाराना कुम्भाजी के पुत्र ऊदाजी अपने पिता को मारकर मेवाड़ की गद्दी पर बैठे। परंतु उन्होंने सोचा कि जिस तरह रणमल्लजी ने आकर मोकलजी के हत्याकारियों से बदला लिया था, उसी तरह कहीं जोधाजी आकर कुम्भाजी की हत्या का बदला लेने का उद्योग करने लगे, तो मेवाड़ के सरदारों को, जो मुझसे पहले ही अप्रसन्न हो रहे हैं, और भी मौक़ा मिल जायगा। यह सोच उन्होंने जोधाजी को, शांत रखने के लिये, अजमेर और सांभर के प्रांत सौंप दिए।

छापर-द्रोणपुर के स्वामी मेघा के (वि० सं० १५३०=ई० सन् १४७३ में) मरने पर उसका पुत्र वैरसल वहां का स्वामी हुआ। परंतु वह एक निर्बल शासक था। इसी से उसके भाई-बंधु, स्वाधीन होकर, इधर-उधर लूट-मार करने लगे। यह देख वि० सं० १५३१ (ई० सन् १४७४) में जोधाजी ने उन पर चढ़ाई की। वैरसल

१. अजमेर के लिये मेवाड़ वालों और मुसलमानों के बीच सदा ही झगड़ा रहता था। संभव है, ऊदाजी ने इस झंझट से छूटने के लिये ही उसे जोधाजी को दे दिया हो। सांभर के चौहान शासक अजमेर वालों के अधीन थे। इससे शायद अजमेर के साथ ही वह प्रांत भी इनको मिल गया हो।

ख्यातों में लिखा है कि वरसिंह ने एक बार सांभर के चौहानों को हराया था।

और उसका छोटा भाई नरबद[1] भागकर फ़तनख़ाँ के पास फ़तेपुर[2] झूँझनू चले गए, और छापर-द्रोणपुर (जोधपुर-राज्य के लाडनू-प्रांत में) पर राव जोधाजी का अधिकार हो गया।

इसके बाद रावजी ने फ़तनख़ाँ पर चढ़ाई की। तीन दिन के भीषण युद्ध के बाद फ़तनख़ाँ हार गया, और फ़तेपुर जला दिया गया। यह देख वैरसल मेवाड़[3] होता हुआ दिल्ली के बादशाह बहलोल लोदी के पास पहुँचा, और नरबद जौनपुर के बादशाह हुसैनशाह से सहायता प्राप्त करने गया। कुछ ही दिनों में दोनों बादशाहों ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर कुछ फ़ौज उनके साथ कर दी। लौटने पर फ़तेपुर-झूँझनू के पास उनका जोधाजी से मुकाबला हुआ। इस अवसर पर बीकाजी भी अपनी सेना लेकर पिता की सहायता को आ पहुँचे थे। कई दिनों के भीषण युद्ध के बाद शाही सेनाओं को मैदान छोड़कर भागना पड़ा। यहां से लौटकर रावजी द्रोणपुर गए, और कुछ दिन बाद वहां का प्रबन्ध अपने द्वितीय पुत्र[4] जोगा को सौंप जोधपुर चले आए। परंतु जोगा से वहां का प्रबंध न हो सका[5], इसी से मोहिलों को वहां पर उपद्रव करने का मौक़ा मिल गया। जैसे ही इसकी सूचना राव जोधाजी को मिली, वैसे ही इन्होंने अपने पुत्र बीदा को वहां का प्रबंध करने के लिये भेज दिया[6]। उसने वहां पहुँच शीघ्र ही मोहिलों[7] के उपद्रव को दबा दिया।

वि० सं० १५३५ (ई० सन् १४७८) में जालोर के शासक उसमानख़ाँ और सिरोही के रावल लाखाजी ने मारवाड़ में लूट-मार शुरू की। इस पर जोधाजी ने

१. जोधाजी ने नरबद को, अपने भाई कांधल का दौहित्र समझ, कहलाया था कि यदि वह उनके पास आ जाय, तो उसे छापर का राज्य दिया जा सकता है। परंतु उसने यह बात स्वीकार नहीं की।

२. कहते हैं, फ़तनख़ाँ ने वि० सं० १५१० (ई० सन् १४५३=हि० सन् ८५७) में अपने नाम पर यह नगर बसाया था।

३. कहते हैं, वैरसल महाराना कुम्भाजी का दौहित्र था। इसी से वह सहायता प्राप्त करने को वहां गया। परंतु महाराना रायमलजी ने जोधाजी से विरोध करना अंगीकार नहीं किया।

४. रावजी के बड़े पुत्र नींबा का स्वर्गवास पहले ही हो चुका था।

५. ख्यातों में लिखा है कि रावजी को वहां का प्रबंध ठीक न हो सकने की सूचना पहले-पहल स्वयं उनकी पुत्र-वधू (जोगा की स्त्री) ने ही भिजवाई थी।

६. इसी से वह प्रदेश जो पहले मोहिलवाटी कहलाता था, बीदावाटी कहलाने लगा।

७. चौहानों की एक शाखा।

अपने चचेरे भाई वरजांग को उनके मुक़ाबले को भेजा। कुछ ही दिनों में बिहारियों और देवड़ों[1] को राठोड़ों से संधि करनी पड़ी।

वि० सं० १५४३ (ई० सन् १४८६) में आमेर-नरेश चंद्रसेनजी ने सांभर पर अधिकार करने के लिये सेना भेजी। परंतु राव जोधाजी के समय पर उसकी रक्षा का प्रबंध कर देने से वह सफल न हो सकी।

वि० सं० १५४४ (ई० सन् १४८७) में जोधाजी की आज्ञा से उनके पुत्र दूदा ने जैतारण के सींधल मेघा[2] पर चढ़ाई की। युद्ध होने पर मेघा मारा गया।

इसी वर्ष (जोधाजी का भाई) कांधल अपने भतीजे बीकाजी की तरफ़ से एक प्रदेश के बाद दूसरा प्रदेश विजय करता हुआ, हिसार तक जा पहुँचा। उस समय वहां पर बहलोल लोदी का अधिकार था, और उसकी तरफ़ से सारंगख़ाँ उस प्रदेश की देख-भाल करता था। कांधल की चढ़ाई के कारण जब वहां पर अराजकता फैलने लगी, तब सारंगख़ाँ ने एक रोज़ अचानक हमला कर उसे मार डाला। इसकी ख़बर मिलते ही जोधपुर से जोधाजी ने और बीकानेर से बीकाजी ने सारंगख़ाँ पर चढ़ाई की। यद्यपि युद्ध के समय उसकी तरफ़ से भी ख़ूब दृढ़ता से मुक़ाबला किया गया, तथापि अंत में उसके मारे जाने से उसकी फ़ौज को मैदान छोड़कर भागना पड़ा। इसके बाद लौटते[3] समय राव जोधाजी बीकानेर में ठहरे, और बीकाजी को बीकानेर का और बीदा को छापर-द्रोणपुर[4] का स्वतंत्र शासक बना दिया। साथ ही बीकाजी को

१. वि० सं० १५३८ (ई० सन् १४८१) में राव जोधाजी का पुत्र वर्णवीर अपनी सुसराल सिरोही गया था। परंतु उसी समय वहां पर शत्रु के हमला कर देने के कारण वह भी देवड़ों की तरफ़ से लड़ता हुआ युद्ध में मारा गया।

(इसकी मृत्यु के समय का सूचक एक लेख खींवसर के पूरासर तालाब पर लगा है।)

२. मेघा के पिता नरसिंह ने राव सत्ताजी के पुत्र (नरबद के भाई) आसकरन को मारा था। इसी का बदला लेने के लिये यह चढ़ाई की गई थी।

३. ख्यातों में लिखा है कि लौटते समय मार्ग में एक हकले और तुतले चमार को अपनी तारीफ़ करते देख जोधाजी ने उसे वहीं आस-पास की कुछ भूमि दे दी। इसके बाद उसी भूमि पर उस चमार ने जोधावास गांव बसाया, जो अब तक उसके वंशजों के अधिकार में है।

४. उस समय जोधाजी ने उस प्रांत के लाडनू-नामक नगर को जोधपुर राज्य के अंतर्गत कर लिया।

राव की पदवी देकर जोधपुर से उनके लिये छत्र, चँवर आदि राज-चिह्नों के भेजने का वादा किया।

इसी समय जैसलमेर नरेश रावल देवीदासजी की आज्ञा से उनकी सेना ने शिव पर अधिकार कर लिया। इसकी सूचना मिलते ही जोधाजी ने वरजांग को उसके मुक़ाबले को भेजा। उसने वहां पहुँच शीघ्र ही जैसलमेर वालों को भगा दिया, और उसके बाद आगे बढ़ जैसलमेर पर आक्रमण करने का विचार किया। परंतु इसी बीच भाटियों ने दंड के रूप में कुछ रुपए देकर राठोड़ों से सुलह कर ली।

वि० सं० १५४५ की वैशाख[1] सुदी ५ (ई० सन् १४८८ की १६ अप्रेल) को, ७३ वर्ष की अवस्था में, जोधपुर में, राव जोधाजी का स्वर्गवास हो गया।

राव जोधाजी बड़े उद्योगी, साहसी, वीर, दानी और बुद्धिमान् नरेश थे। अपनी ७३ वर्ष की अवस्था में से २३ वर्ष तक तो यह पिता की सेवा में रहे, १५ वर्ष तक इन्हें घोर विपत्तियों का सामना करना पड़ा और इसके बाद ३५ वर्ष तक यह अपने राज्य की उन्नति में लगे रहे। इनके समय से पूर्व ही दिल्ली की बादशाहत शिथिल हो चली थी। इसी से गुजरात, मालवा, जौनपुर, मुलतान आदि के सूबेदार स्वतंत्र होकर अपने अधिकार-विस्तार के लिये एक दूसरे से लड़ने लगे थे। उनके इसी गृह-कलह के कारण जोधाजी को भी अपने राज्य-विस्तार का अच्छा मौक़ा मिल गया। उस समय इनके अधिकार में मंडोर, जोधपुर, मेड़ता, फलोदी, पौकरन, महेवा, भाद्राजन, सोजत, गोडवाड़ का कुछ भाग, जैतारन, शिव, सिवाना, सांभर, अजमेर और

कर्नल टॉड ने लिखा है कि बीका का भाई बीदा भी कुछ आदमियों को साथ ले अपने लिये कोई नया प्रदेश प्राप्त करने को चला। पहले उसका विचार गोडवाड़-प्रांत को, जो उस समय मेवाड़वालों के अधिकार में था, हस्तगत करने का था। परंतु वहां पहुँचने पर उसका इतना आदर सत्कार किया गया कि उसे अपना वह इरादा छोड़ उत्तर की तरफ़ लौटना पड़ा। वहां पर उसने छापर के मोहिलों को धोका देकर मार डाला, और उनके क़िले पर अधिकार कर लिया। इसके बाद शीघ्र ही जोधपुर से और मदद पहुँच गई। इसी सहायता के एवज़ में बीदा ने लाडनू और उसके साथ के बारह गांव अपने पिता को सौंप दिए। ये अब तक जोधपुर-राज्य में सम्मिलित हैं (ऐनाल्स ऐंड ऐंटिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान, भा० २, पृष्ठ ११४४)। इसी बीदा के नाम पर उक्त प्रदेश बीदावाटी कहलाता है।

'तवारीख़ राज श्रीबीकानेर' में बीकाजी का अपने पिता को लाडनू भेट करना लिखा है। (पृष्ठ १०२–१०३)।

१. कहीं-कहीं वैशाख के बदले माघ लिखा मिलता है। परंतु वह ठीक नहीं है।

नागोर प्रांत का बहुत-सा भाग था। बीकानेर और छापर-द्रोणपुर इनके पुत्रों के अधिकार में थे। इस प्रकार इनके राज्य की पश्चिमी सीमा जैसलमेर तक, दक्षिणी सीमा अर्वली तक और उत्तरी सीमा हिसार तक पहुँच गई थी[1]।

रावजी ने अनेक गांव दान किए थे[2]।

राव जोधाजी के २० पुत्र थे—१ नींबा, २ जोगा, ३ सातल, ४ सूजा, ५ बीका[3], ६ बीदा, ७ वरसिंह[4], ८ दूदा[5], ९ करमसी, १० बणवीर, ११ जसवंत, १२ कूंपा, १३ चांदराव, १४ भारमल, १५ शिवराज, १६ रायपाल, १७ सांवतसी, १८ जगमाल, १९ लक्ष्मण[6] और २० रूपसिंह।

---

१. कर्नल टॉड ने इनके राज्य का विस्तार ८०,००० मील की लंबाई-चौड़ाई तक होना लिखा है। (ऐनाल्स ऐंड ऐंटिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान, भा० २, पृष्ठ ९५१)।

२. १ कँवलियां, २ खराड़ी (जेतारण परगने के), ३ रेपड़ावास (सोजत परगने का), ४ साकड़ावास (पाली परगने का), ५ मथाणिया ६ वेवटा ७ बडलिया (जोधपुर परगने के), ८ चांचलवा (शेरगढ़ परगने का) चारणों को, ९ जाटियावास कलां (बीलाड़ा परगने का), १० धोलेरिया (जालोर परगने का), ११ खारावेरा १२ बासणी १३ मोडी बड़ी १४ तोलेयासर १५ तिवरी १६ माडियाई खुर्द १७ बासणी रूपां १८ थोब (जोधपुर परगने के), १९ कोलू-पुरोहितों का वास (फलोदी परगने का) पुरोहितों को, २० खोडेचां (बीलाड़ा परगने का), २१ लूंडावास २२ बासणी नरसिंघ (सोजत परगने के) ब्राह्मणों को और २३ साटीका कलां (नागोर परगने का) माताजी के मंदिर को दिए थे।

३. इनका जन्म वि० सं० १४९७ की प्रथम सावन सुदि १५ (ई० स० १४४० की १४ जुलाई) को हुआ था। बीकानेर की ख्यातों मे इनका जन्म वि० सं० १४९५ (ई० स० १४३८) में होना लिखा मिलता है, परन्तु यह जोधपुर की ख्यातों आदि से सिद्ध नहीं होता।

४. इसके वंशज इस समय झाबुवा (मालवे में) के राजा हैं।

५. इसका जन्म वि० सं० १४९७ की आश्विन सुदि १५ को हुआ था। (कहीं-कहीं आषाढ लिखा मिलता है) इसी के पुत्र रत्नसिंह की कन्या प्रसिद्ध मीराबाई थी, जिसका विवाह महाराना सांगाजी (प्रथम) के पुत्र भोजराज से हुआ था।

६. लक्ष्मण और रूपसिंह शायद छोटी अवस्था मे ही मर गए थे।

१६. राव सातलजी

यह राव जोधाजी के तृतीय पुत्र थे और उनके बाद वि० सं० १५४५ की ज्येष्ठ सुदी ३ (ई० सन् १४८८ की १४ मई) को गद्दी पर बैठे[1]। इनका जन्म वि० सं० १४९२ (ई० सन् १४३५) में हुआ था। इनकी स्त्री कुंडल के स्वामी भाटी देवीदासजी की कन्या थी[2]। इसी से वि० सं० १५१४ (ई० सन् १४५७) के क़रीब जब देवीदासजी जैसलमेर के रावल हो गए, तब उन्होंने कुंडल[3] का प्रांत अपने दामाद सातलजी को सौंप दिया। इसकी पुष्टि वि० सं० १५१५ (ई० सन् १४५८) के कोलूं (फलोदी[4] परगने) से मिले लेख[5] से भी होती है।

---

१. राव जोधाजी के ज्येष्ठ पुत्र नींबा की मृत्यु उनके जीते-जी हो गई थी। दूसरा पुत्र जोगा, जिसका कुछ हाल पहले लिखा जा चुका है, बड़ा आलसी था। इसी से राज-तिलक का समय आ जाने पर भी वह नहाने-धाने से फ़ारिग न हो सका। अंत मे मुहूर्त को टलता देख सरदारों ने उसके छोटे भाई सातलजी को गद्दी बिठा दिया। इसलिये जोगा को बाद में (खेजड़ला परगने के) खारिया आदि कुछ गांव जागीर मे लेकर ही संतोष करना पड़ा। वहीं से मिले एक लेख से जोगा का वि० सं० १५७० (ई० सन् १५१३) मे स्वर्गवासी होना प्रकट होता है।

कहते हैं, राव सातलजी ने अपने राज्याभिषेक के समय (जोधपुर परगने का) लूणावा-चारणां नामक गांव एक चारण को दान दिया था।

२. राव सातलजी की भटियानी रानी फूलकुँवर ने (वि० सं० १५४७=ई० सन १४९० में) जोधपुर नगर का फुलेलाव-तालाब बनवाया था।

३. यह प्रदेश फलोदी के पास है। पोकरन के पोकरना राठोड़ों और भाटियों के बीच बराबर लड़ाइयां होती रहती थीं। इसी से तंग आकर देवीदासजी ने उक्त प्रदेश सातलजी को सौंप दिया।

४. वहां पर इस समय धांधल राठोड़ों का अधिकार है।

५. वि० सं० १२३६ (ई० सन् ११७९) के कल्याणरायजी के मंदिर से मिले लेख से उस समय फलोदी-नगर का नाम अजयपुर होना और वहां पर चौहान-नरेश पृथ्वीदेव का राज्य होना प्रकट होता है।

(जर्नल बंगाल एशियाटिक सोसाइटी, भा० १२, पृ० ९३)

६. यह लेख धांधल के पुत्र पाबू के मंदिर के कीर्तिस्तंभ पर खुदा है। उस पर एक तरफ़ तो वि० सं० १५१५ को भादों सुदी ११ (ई० सन् १४५८ की २० अगस्त) को उस कीर्ति-स्तंभ के स्थापन करने आदि का उल्लेख है, और दूसरी तरफ़ 'महाराय जोधासुत राय श्री सातल विजय राज्ये" लिखा है। (जर्नल बंगाल एशियाटिक सोसाइटी, भा० १२, पृ० १०८



१६ राव सातलजी

वि० सं० १५४६-१५४८ (ई० स० १४८६-१४६२)

राव सातलजी ने पुत्र न होने के कारण अपने भतीजे (सूजाजी के पुत्र) नरा[2] को गोद लेने के विचार से अपने पास रख लिया था[2]। कहते हैं, पौकरन के पास का सातलमेर शहर राव सातलजी ने ही अपने नाम पर बसाया था[3]।

वि० सं० १५४७ (ई० सन् १४९०) में अजमेर के हाकिम मल्लूखाँ[4] (मलिक यूसुफ़) ने राव सातलजी के भाई वरसिंह को अजमेर बुलवा कर धोके से पकड़ लिया[5]। इसकी सूचना मिलते ही जोधपुर से राव सातलजी ने और बीकानेर से राव बीकाजी[6] और दूदाजी ने अजमेर पर चढ़ाई की। इस पर मल्लूखाँ ने उस समय तो वरसिंह को छोड़ दिया, परन्तु शीघ्र ही तैयारी कर इसका बदला लेने के लिये

इसकी लिखावट से ज्ञात होता है कि सातलजी उस समय भी स्वतंत्र रूप से वहाँ का शासन करते थे।

१. कर्नल टॉड ने नरा को सूजा का पौत्र (और वीरमदेव का पुत्र) लिखा है। (ऐनाल्स ऐंड ऐंटिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान, भा० २, पृ० ९५२) परन्तु यह ठीक नहीं है।

२. वि० सं० १५३२ (ई० सन् १४७५) का एक लेख फलोदी के क़िले के तीसरे दरवाज़े पर खुदा है (जर्नल बंगाल एशियाटिक सोसाइटी, भा० १२, पृ० ९४)। इससे ज्ञात होता है कि (नरसिंह) नरा ने इसी वर्ष उस क़िले का जीर्णोद्धार करवा कर यह द्वार बनवाया था। इस लेख में नरा के पिता का नाम राय सूरजमल लिखा है। इससे प्रकट होता है कि राव सातलजी ने उसे उस समय तक भी गोद नहीं लिया था।

३. यह नगर इस समय बिलकुल उजड़ी हुई दशा में है। किसी-किसी ख्यात में इस नगर का नरा द्वारा सातलजी की यादगार में बसाया जाना भी लिखा मिलता है।

४. किसी-किसी ख्यात में इसका नाम सिरियाखाँ लिखा है।

५. ख्यातों में लिखा है कि उस वर्ष मारवाड़ में अकाल होने के कारण वरसिंह ने मेड़ते से जाकर साँभर को लूट लिया। इस पर जब वहाँ के चौहान शासक ने मल्लूखाँ के पास शिकायत लिख भेजी, तब उसने वरसिंह को अजमेर बुलवा कर क़ैद कर लिया। इससे यह भी ज्ञात होता है कि उस समय अजमेर पर मुसलमानों का अधिकार था, और साँभर के चौहान अजमेरवालों के अधीन थे।

६. मिस्टर एल० पी० टैसीटोरी ने एक पुराना गीत उद्धृत किया है। उसमें प्रकट होता है कि राव सातलजी ने, जैसलमेर रावल देवीदासजी और पूंगल के राव शेखा आदि के साथ मिल कर, राव बीकाजी के विरुद्ध चढ़ाई की थी। परन्तु उसमें यह सफल न हो सके (जर्नल बंगाल एशियाटिक सोसाइटी, भा० १३, पृ० २३५-२३६)। परन्तु इतिहास से इसकी पुष्टि नहीं होती।

मेड़ते पर चढ़ाई कर दी। यह देख वरसिंह जोधपुर चला आया। मल्लूखाँ भी मेड़ते को लूट जोधपुर की तरफ़ चला। जैसे ही उसके इस इरादे की खबर राव सातलजी के पास पहुँची, वैसे ही यह भी अपने भाई सूजाजी को साथ ले उसके मुक़ाबले को चले। मल्लूखाँ मार्ग में पीपाड़ को लूटता हुआ[2] कोसाना के पास पहुँचा। वहीं पर उसका और राव सातलजी का मुक़ाबला हो गया। उस समय तक रावजी का भाई दूदा[3] भी अपने योद्धाओं को लेकर वहाँ आ गया था। इसके बाद राठोड़-सरदारों ने सलाह कर[4] यवन-सेना पर नैश आक्रमण किया। इससे घबराकर वह मैदान से भाग चली, और इसी अचानक विपत्ति में पड़ स्वयं मल्लूखाँ को भी अजमेर की तरफ़ भागना पड़ा। यद्यपि इस युद्ध में विजय राव सातलजी के ही हाथ रही[5], तथापि

१. वरसिंह के मरने पर उसका पुत्र सीहा मेड़ते का स्वामी हुआ। परन्तु उसकी शिथिलता से लाभ उठा कर अजमेर के सूबेदार ने मेड़ते पर अधिकार कर लेने का इरादा किया। यह देख वि० सं० १५५२ (ई० सन् १४९५) में उस (सीहा) के चचा दूदा ने वहाँ का शासन अपने हाथ में ले लिया।

मेड़ते पर दूदा का क़ब्ज़ा हो जाने से सीहा रीयाँ चला गया। परन्तु फिर उसने वहाँ से अजमेर की तरफ़ जाकर वि० सं० १५५४ (ई० सन् १४९७) में भिनाय पर अधिकार कर लिया, और २५ वर्ष तक वह वहाँ का शासन करता रहा। इसी सीहा के चौथे वंशज केशवदासजी को बादशाह जहाँगीर ने वि० सं० १६६४ (ई० सन् १६०७) में झाबुआ जागीर में दिया था।

२. ख्यातों में लिखा है कि मल्लूखाँ जिस समय पीपाड़ पहुँचा, उस समय वहाँ की कई सुहागन स्त्रियाँ गौरी की पूजा करने को नगर के बाहर आई हुई थीं। इसलिये मुसलमानों ने उन्हें पकड़ लिया। परन्तु राव सातलजी ने कोसाने के पास रात को हमला कर उन्हें छुड़वा लिया।

३. इस युद्ध में दूदा ने बड़ी वीरता से शत्रु का मुकाबला किया था।

४. ख्यातों में लिखा है कि आक्रमण करने के पहले राव जोधाजी का चचेरा भाई वरजाँग स्वयं भेस बदलकर शत्रु-सैन्य का भेद जान आया था।

५. ऐसा प्रसिद्ध है कि जोधपुर में चैत्र-बदी ८ को जो 'घुड़ले' का मेला होता है, वह इस युद्ध में मारे गए एक यवन-सेनापति (घडूले) की यादगार में प्रचलित किया गया था। उस दिन औरतें कुम्हार के यहाँ से एक चारों तरफ़ छेदवाली मटकी लाकर और उसमें दीपक जलाकर गीत गाती हैं। चैत्र-सुदी ३ को वह मटकी तोड़ या पानी में डुबा दी जाती है। मटकी के छेदों से शायद घडूले के शरीर में लगे घावों का बोध करवाया जाता है और दीपक से उसकी जीवात्मा का।

अत्यधिक घायल हो जाने के कारण उसी रात को इनका स्वर्गवास हो गया। यह घटना वि० सं० १५४८ की चैत्र सुदी ३ (ई० सन् १४९१ की १३ मार्च) की है[2]।

१७. राव सूजाजी

यह राव सातलजी के छोटे भाई थे और उनके बाद वि० सं० १५४८ की वैशाख सुदी ३ (ई० सन् १४९१ की १२ अप्रेल) को, ५२ वर्ष की अवस्था में, उनके उत्तराधिकारी हुए। इनका जन्म वि० सं० १४९६ की भादों बदी ८ (ई० सन् १४३९ की २ अगस्त) को हुआ था। वि० सं० १५२१ (ई० सन् १४६४) में राव जोधाजी ने सोजत का प्रबन्ध इन्हें सौंप दिया था। इससे वि० सं० १५४५ (ई० सन् १४८८) में जब वहाँ पर मुसलमानों ने आक्रमण किया, तब इन्होंने बड़ी वीरता से उनका सामना कर उस प्रदेश की रक्षा की।

राव सातलजी ने इनके पुत्र नरा को गोद लेने के इरादे से अपने पास रख लिया था। परन्तु उन (सातलजी) की मृत्यु के बाद यह तो उनके उत्तराधिकारी के रूप में जोधपुर की गद्दी पर बैठे, और नरा को, समझाकर, फलोदी का प्रान्त जागीर में दे दिया। इसके बाद वि० सं० १५५५ (ई० सन् १४९८) में जब बाहड़मेर के राठोड़ों की सहायता से पौकरनों[3] राठोड़ों ने नरा को मार डाला, तब राव सूजाजी ने चढ़ाई कर बाहड़मेर, कोटड़ा आदि को लूट लिया।

---

१. कर्नल टॉड ने सातलजी का सहरिया (सराई) जाति के खाँ को मारकर मरना, इस घटना का वि० सं० १५७२ (ई० सन् १५१६) में राव सूजाजी के समय होना और इस युद्ध में उन (सूजाजी) का मारा जाना लिखा है (ऐनाल्स ऐंड ऐंटिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान, भा० २, पृ० ९५० और ९५२), परन्तु यह ठीक नहीं है।

२. जोधपुर-राज्य की तरफ़ से पहले चैत्र सुदी ३ को गौरी और ईश्वर दोनों की मूर्तियों का पूजन किया जाता था। परन्तु सातलजी के उस दिन स्वर्गवास करने के बाद से केवल गौरी की मूर्ति का ही पूजन होता है।

३. ख्यातों में लिखा है कि तुँवर अजमाल के पौत्र (रणसी के पुत्र) रामदेव ने तुँवरावाटी (जयपुर-राज्य) की तरफ़ से आकर पौकरन पर अधिकार कर लिया था। कुछ वर्ष बाद जब उसने अपनी भतीजी (या कन्या) का विवाह रावल मल्लिनाथजी के पौत्र (जगमाल के पुत्र) हम्मीर से किया, तब पौकरन उसे दहेज़ में दे दिया, और स्वयं वहाँ से ५ मील उत्तर रुणेचे में जा बसा। वहीं पर उसकी और उसके पूर्वजों की

ख्यातों से ज्ञात होता है कि राठोड़ भीम के पुत्र वरजाँग की साज़िश से बीकानेर के राव बीकाजी ने जोधपुर पर चढ़ाई की थी। परन्तु अन्त में, लोगों के समझाने से, दोनों भाइयों में मेल हो गया और बीकाजी बिना लड़े-भिड़े ही वापस लौट गए[1]।

इसके बाद राव सूजाजी की आज्ञा से इनके पुत्र शेखा ने रायपुर के सींधल[2] खंगार पर चढ़ाई की। यद्यपि शुरू में उसने भी बड़ी वीरता से शेखा का सामना किया, तथापि १८ वें दिन, रसद आदि के समाप्त हो जाने से, उसे हार माननी पड़ी, और उसने इस चढ़ाई का खर्च देकर रावजी की अधीनता स्वीकार कर ली। इस

समाधियां बनी हैं। उनमे से एक पर कुरान की आयत खुदी है। इसमे ईश्वर की सर्व-शक्तिमत्ता का वर्णन है। भादों सुदी ११ को वहाँ पर बड़ा मेला लगता है, और दूर-दूर से लोग यात्रार्थ आते हैं। यह रामदेव रामसापीर के नाम से प्रसिद्ध है, और उसके वंशज मरने पर जलाए जाने के बजाय गाड़े जाते हैं।

ऊपर जिस हम्मीर का उल्लेख किया गया है, उसके वंशज, पौकरन के शासक होने के कारण, पौकरना राठोड़ कहाए। वि० सं० १५५१ (ई० सन् १४६४) मे नरा ने अचानक जाकर पौकरन पर अधिकार कर लिया था। इसी से वि० सं० १५५५ (ई० सन् १४६८) में, बाहड़मेर के राठोड़ों की सहायता से, पौकरना राठोड़ खींवा और उसका पुत्र लूंका पौकरन के मवेशी पकड़ कर ले गए। इसकी सूचना मिलते ही नरा ने उनका पीछा किया, परन्तु मार्ग मे सामना होने पर नरा मारा गया। इसके बाद राव सूजाजी ने नरा के पुत्र गोविन्ददास को पौकरन और हम्मीर[1] को फलोदी जागीर में दी। इसके बाद इन्होंने (रावजी ने) खींवा और लूंका को भी कुछ गांव जागीर में देकर शान्त कर दिया।

वि० सं० १५७३ (ई० सन् १५१६) का एक लेख फलोदी के क़िले के बाहर के द्वार पर खुदा है। उससे वहाँ पर, उस समय, हम्मीर का अधिकार होना पाया जाता है। (जर्नल बंगाल एशियाटिक सोसाइटी, भा० १२, पृ० ६५)

१. ख्यातों से ज्ञात होता है कि राव जोधाजी ने जिस समय अपने पुत्र बीकाजी को राव की पदवी देकर बीकानेर का स्वतंत्र शासक बनाया था, उस समय उनके लिये जोधपुर से छत्र, चँवर आदि राज्य-चिह्न भेजने की प्रतिज्ञा की थी। इसी के अनुसार राव बीकाजी ने राव सूजाजी के समय उन वस्तुओं के ले आने को अपना आदमी भेजा। परन्तु सूजाजी के देने से इनकार करने पर उन्होंने जोधपुर पर चढ़ाई करदी। इसी बीच लोगों ने बीच-बचाव कर दोनों भाइयों मे मेल करवा दिया।

२. ख्यातों में लिखा है कि रायपुर के सींधलों ने राव सत्ताजी के पुत्र नरबद की मान-हानि की थी। इसका बदला लेना भी इस चढ़ाई का एक कारण था।

---

(१) हम्मीर की रानी ने फलोदी का रानीसर तालाव बनवाया था।



१७. राव सूजाजी

वि० सं० १५४६-१५७२ (ई० स० १४६२-१५१५)

युद्ध में चाणोद के सींधलों ने भी रायपुर वालों का साथ दिया था। इसी का बदला लेने के लिये वि० सं० १५६० (ई० सन् १५०३) में उनपर सेना भेजी गई। पाँच दिन तक तो चाणोदवालों ने भी उसका सामना किया, परन्तु छठे दिन उनका सरदार सूजा स्वयं आकर रावजी की सेना में उपस्थित हो गया, और उनके साथ ही जोधपुर चला आया। यह देख राव सूजाजी ने चाणोद की जागीर उसे ही लौटा दी।

राव सूजाजी के बड़े राजकुमार का नाम बाघाजी था। इनका जन्म वि० सं० १५१४ की वैशाख[1] बदी ३० (ई० सन् १४५७ की २३ अप्रेल) को हुआ था। वि० सं० १५६७ (ई० सन् १५१०) में जिस समय महाराना सांगाजी ने सोजत पर अधिकार करने के लिये सेना भेजी, उस समय रावजी की आज्ञा से बाघाजी ने उसे मार्ग से ही मार भगाया।

वि० सं० १५७१ की भादों सुदी १४ (ई० सन् १५१४ की ३ सितम्बर) को, युवराज अवस्था में ही, बाघाजी का स्वर्गवास हो गया। इससे राव सूजाजी के स्वास्थ्य को बड़ा धक्का लगा, और वि० सं० १५७२ की कार्तिक बदी ६ (ई० सन् १५१५ की २ अक्टोबर) को ७६ वर्ष की अवस्था में, यह भी स्वर्ग को सिधार गए[2]।

राव सूजाजी का अधिकार जोधपुर, फलोदी, पौकरन, सोजत और जैतारन के परगनों पर था[3]।

१. कहीं-कहीं पौष भी लिखा है।

२. कर्नल टॉड ने इनका ई० सन् १४६१ से १५१६ तक २७ वर्ष राज्य करके पीपाड़ के युद्ध में मारा जाना लिखा है (ऐनाल्स ऐंड ऐंटिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान, भाग २, पृ० ६५२)। परन्तु यह ठीक नहीं है। इनके समय का वि० सं० १५५२ (ई० सन् १४६५) का एक शिला-लेख आसोप से और वि० सं० १५६८ (चैत्रादि संवत् १५६६) की ज्येष्ठ-सुदी २, सोमवार (ई० सन् १५१२ की १७ मई) का दूसरा साथीण (बीलाड़ा परगने) से मिला है।

३. कहते हैं कि राव सूजाजी ने १ डोली-कांकाणी २ मोडी-मनाणा (जोधपुर परगने के), ३ बावड़ी-खुर्द और ४ बावड़ी-कलां (फलोदी परगने के) पुरोहितों को दान दिए थे।

इनके १० पुत्र थे[1] । १ बाघा[2], २ शेखा, ३ नरा, ४ देवीदास, ५ ऊदा[3], ६ प्रयागदास, ७ साँगा, ८ नापा, ९ पृथ्वीराज और १० तिलोकसी[4] ।

---

१. कर्नल-टॉड ने इनके पाँच पुत्रों के नाम इस प्रकार लिखे हैं—

१. बाघा, २ ऊदा, ३ सागा, ४ प्रयाग और ५ वीरमदेव (ऐनाल्स ऐंड ऐंटिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान, भा० २, पृ० ९५२) ।

२. इनके ७ पुत्र थे । १ वीरम, २ गांगाजी, ३ प्रताप, ४ भीम, ५ खेतसी, ६ सींगण और ७ जैतसी ।

ख्यातों में लिखा है कि जिस समय कुँवर बाघाजी सख्त बीमार हुए, और उनके बचने की आशा न रही, उस समय उन्होंने अपने पिता राव सूजाजी से अपने स्थान पर अपने पुत्र वीरम को राज्य का उत्तराधिकारी बनाने की प्रार्थना की थी, और सूजाजी ने बाघाजी के छोटे भ्राता शेखा की सम्मति से इसे स्वीकार कर लिया था । इसी के अनुसार समय आने पर सब सरदार वीरम का राज्याभिषेक करने को क़िले पर इकट्ठे हुए । मुहूर्त में देर होने से जब उनके साथ के लड़कों को, जो उत्सव देखने को क़िले पर आए थे, भूख लगी, तब सरदारों ने वीरम की माता से उनके लिये भोजन का प्रबन्ध करवा देने की प्रार्थना की । परन्तु उसने इसे स्वीकार करने से इनकार कर दिया । इसके बाद जैसे ही इसकी सूचना गाँगाजी की माता को मिली, वैसे ही उसने ताज़ा भोजन बनवाकर उन बालकों और सरदारों के लिये भिजवा दिया । इस पर सरदारों ने मुहूर्त के ठीक न होने का बहाना कर वीरम का राज्याभिषेक रोक दिया, और शीघ्र ही गाँगाजी को मेवाड़ से बुलवा कर जोधपुर की गद्दी पर बिठा दिया । इसके बाद वीरम को सोजत का परगना जागीर में मिला । उसी दिन से मारवाड़ में यह कहावत चली है—"रिड़मलां थापिया तिके राजा ।" अर्थात् रिड़मलजी के वंशज सरदारों ने जिसे गद्दी पर बिठा दिया, वही राजा हो गया ।

३. इसने राव सूजाजी के राज्य-समय सींधलों से जैतारण छीन लिया था ।

४. कहीं-कहीं इसके एवज़ में गोपीनाथ और जोगीदास नाम मिलते हैं ।

१८. राव गाँगाजी

यह राव सूजाजी के पौत्र और राजकुमार बाघाजी के द्वितीय पुत्र थे। इनका जन्म वि० सं० १५४० की वैशाख सुदी ११ (ई० सन् १४८३ की १८ अप्रैल) को हुआ था, और राव सूजाजी के बाद वि० सं० १५७२ की मँगसिर वदी ३ (ई० सन् १५१५ की २५ अक्टोबर) को यह जोधपुर की गद्दी पर बैठे[1]।

वि० सं० १५७४ (ई० सन् १५१७) में महाराणा साँगाजी की प्रार्थना पर[2] यह अपनी सेना लेकर उनकी सहायता को गए, और इन्होंने गुजरात के शासक मुजफ्फ़रशाह द्वितीय के प्रतिनिधिको भगाकर राव रायमलजी को ईडर की गद्दी दिलाने में उनकी सहायता की। इसके बाद वि० सं० १५७७ (ई० सन् १५२०) में

---

१. कहीं-कहीं इस घटना का समय मँगसिर सुदी १२ (१८ नवम्बर) लिखा मिलता है। ख्यातों में लिखा है कि उन दिनों महाराणा साँगाजी और गुजरात के सुलतान के बीच, ईडर के लिये, झगड़ा चल रहा था। इसीसे राव सूजाजी ने इन्हें (गाँगाजी को) अपनी सेना साथ देकर राणाजी की सहायता में मेवाड़ भेज दिया था। सरदारों के बुलाने पर वहीं से आकर यह जोधपुर की गद्दी पर बैठे।

२. कहीं-कहीं इस घटना का समय वि० सं० १५७३ (ई० स० १५१६) भी लिखा मिलता है। उस समय ईडर पर (राव सीहाजी के पुत्र) सोनगजी के वंशजों का अधिकार था। जिस समय ईडर-नरेश सूरजमलजी का देहान्त हुआ, उस समय उनके पुत्र रायमलजी गद्दी पर बैठे। परन्तु उनकी अवस्था छोटी होने के कारण उनके चचा भीमजी ने शीघ्र ही उन्हें हटा कर वहाँ पर अपना अधिकार कर लिया। यह देख रायमलजी महाराणा साँगाजी के पास चले गए। उन्होंने भी अपनी कन्या का विवाह उनके साथ करना निश्चित कर उन्हें अपने पास रख लिया। वि० सं० १५७१ (ई० स० १५१४) में जब राव भीमजी मर गए और उनके पुत्र भारमलजी गद्दी पर बैठे, तब राव रायमलजी ने महाराणा साँगाजी और जोधपुर वालों की सहायता से ईडर पर फिर अधिकार कर लिया। परन्तु अगले वर्ष गुजरात के सुलतान मुजफ्फ़रशाह द्वितीयने रायमलजी को हटाकर भारमल को वहाँ का अधिकार दिलवा दिया। इसीसे साँगाजी ने रायमलजी को फिर से ईडर का राज्य दिलवाने के लिये डूंगरसिंह को भेज कर राव गाँगाजी को भी अपनी सहायता में बुलवाया था। वि० संवत् १५७४ (ई० सन् १५१७) में दिल्ली के बादशाह इब्राहीम लोदी ने मेवाड़ पर चढ़ाई की थी, और उसमें उसे हार कर भागना पड़ा था। सम्भव है, वि० सं० १५७४ (ई० सन् १५१७) की उपर्युक्त घटना का इसी अवसर से सम्बन्ध हो।

जिस[1] समय महाराणा ने निज़ामुलमुल्क (मुबारिज़ुल मुल्क) को भगाकर ईडर का अधिकार फिर से राव रायमलजी को दिलवाया, उस समय भी राव गांगाजी ने ७,००० सवारों के साथ पहुँच उनका साथ दिया[2]।

वि० सं० १५८२ (ई० सन् १५२५) में जब सिकंदरख़ाँ जालोर की गद्दी पर बैठा, तब गज़नीख़ाँ ने राव गाँगाजी की सहायता प्राप्तकर जालोर पर चढ़ाई की[3]। परन्तु सिकंदरख़ाँ ने फ़ौज-ख़र्च के रुपये देकर जोधपुर की फ़ौज को वापस लौटा दिया।

वि० सं० १५८३-८४ (ई० सन् १५२७) में जिस समय महाराना साँगाजी और बाबर के बीच युद्ध हुआ, उस समय भी इन्होंने ४,००० सैनिकों से[4] महाराना की सहायता की थी[5]; परन्तु अनेक कारणों से इस युद्ध में सफलता न हो सकी।

वि० सं० १५८५ (ई० सन् १५२९) में (रावजी के चचा) शेखाने[6] नागोर के शासक खाँज़ादा दौलतख़ाँ की सहायता से जोधपुर पर चढ़ाई की। जैसे ही इसकी

---

१. किसी-किसी स्थान पर इस घटना का समय वि० सं० १५७६ (ई० स० १५१९) भी लिखा मिलता है।

२. महाराना सांगा, पृ० ७९।

३. तारीख पालनपुर, भा० १, पृ० ५६।

४. कहीं-कहीं ३,००० सैनिक लिखे हैं।

५. इस युद्ध में (राव जोधाजी का पौत्र और राव दूदा का पुत्र) राव वीरम भी मेड़ते से ४,००० सैनिक लेकर साँगाजी की सहायता को गया था। इसी में राव वीरम के भाई रायमल और रत्नसिंह बड़ी वीरता से लड़ कर मारे गए। ख्यातों में इन दोनों भाइयों (रायमल और रत्नसिंह) का राव गाँगाजी की सेना के साथ मेवाड़ जाना लिखा है।

कर्नल टॉड ने रायमल को मारवाड़ का राजकुमार (गाँगाजी का पौत्र) लिखा है (ऐनाल्स ऐंड ऐन्टिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान, भा० १, पृ० ३५७ और भा० २, पृ० ९५३)। इसी प्रकार श्रीयुत हरविलास सारडाने भी रायमल को एक स्थान पर जोधपुर का सेनापति और दूसरे स्थान पर राज्य का उत्तराधिकारी लिखा है (महाराना सांगा, पृ० १४४ और १४८)। परन्तु यह ठीक नहीं है। सम्भवतः दूसरे स्थान पर जिस रायमल का उल्लेख है, वह राव गाँगाजी का पौत्र और मालदेवजी का पुत्र रायमल हो। परन्तु जब स्वयं मालदेवजी का जन्म वि० सं० १५६८ (ई० सन् १५११) में हुआ था, तब वि० सं० १५८३—८४ (ई० सन् १५२७) के युद्ध में उनके पुत्रका सम्मुख रण में लड़ कर मारा जाना असम्भव ही है।

राव वीरम ने वि० सं० १५७४ (ई० सन् १५१७) की ईडर की चढ़ाई के समय भी महाराणा साँगाजी की सहायता की थी।

६. राजकुमार बाघाजी के इच्छानुसार उनके छोटे भाई शेखा ने अपना हक़ छोड़ अपने भतीजे (बाघाजी के ज्येष्ठ पुत्र) वीरम को राज्य का उत्तराधिकारी बनाने की अनुमति दी थी।



१८. राव गांगाजी

वि० सं० १५७२-१५८९ (ई० स० १५१५-१५३२)

सूचना गाँगाजी को मिली, वैसे ही इन्होंने सेवकी (गाँव) तक आगे बढ़ उसका सामना किया[1] । युद्ध होने पर शेखा मारा गया[2], और दौलतख़ाँ भागकर नागोर चला गया । इस युद्ध में बीकानेर नरेश राव जैतसीजी ने भी, जो अपनी कुलदेवी के दर्शनार्थ नागाने की तरफ़ गए हुए थे, राव गाँगाजी का पक्ष लिया था । यह घटना वि० सं० १५८६ (ई० सन् १५२९) की है ।

परन्तु सरदारोंने चुपचाप गांगाजी को गद्दी पर बिठा दिया । इसीसे शेखा राव गागाजी से नाराज़ था । दूसरा वीरम के पक्षवालों को जब जब मौक़ा मिलता था, तब-तब वे उसे राव गाँगाजी के विरुद्ध भड़काते रहते थे । किसी-किसी ख्यात में सिरोही के राव अखैराजजी की शिकायत पर शेखा की जागीर पीपाड़ के एक गांव के ज़ब्त किए जानेके कारण और किसी में ऊहड हरदास द्वारा उकसाए जाने के कारण इस युद्ध का होना लिखा है ।

१. ख्यातों में लिखा है कि युद्ध के आरम्भ में जब सरदारों ने राव गाँगाजी को तामजाम में ऊँघते हुए देखा, तब उन्होंने इनसे सचेत हो जाने की प्रार्थना की । इस पर रावजीने उन्हें आश्वासन देकर कहा कि हमने इस गृह-कलह में आप लोगों की सहानुभूति किसके पक्षमें है, यह जानने के लिये ही ऐसा अभिनय किया था । किन्तु अब हमें आप लोगों पर विश्वास हो गया है । इतना कहकर ये शीघ्र ही घोड़े पर सवार हो लिए और शत्रु के सामने पहुँच उससे युद्ध करने लगे । कुछ ही देर में इनके तीरसे ज़ख्मी होकर दौलत-ख़ाँ का एक हाथी भड़क गया, और उसकी सेनाको कुचलता हुआ मेड़ते की तरफ़ भाग चला । उसके वहां पहुँचने पर (दूदा के पुत्र) राव वीरम ने उसे पकड़वा कर अपने यहां रख लिया ।

राव गाँगाजी ने मेड़ते के राव वीरम को भी इस युद्ध में साथ देने के लिये बुलवाया था । परन्तु उसने इस गृह-कलह में भाग लेने से इनकार कर दिया । इससे राव गाँगाजी उससे अप्रसन्न हो गए । इसके बाद जब इन्हें रणक्षेत्र से भागे हुए दौलतख़ाँ के हाथी के मेड़ते पहुँचने का समाचार मिला, तब इन्होंने (गांगाजीने) उस हाथी को ले आने के लिये अपने आदमी वहां भेजे । परन्तु वीरमने उसके देने से इनकार कर दिया । इससे इनकी अप्रसन्नता और भी बढ़ गई । इसके कुछ दिन बाद, जिस समय राव गाँगाजी और राजकुमार मालदेवजी शिकार करते हुए मेड़ते की तरफ़ जा निकले, और वीरमने इन्हें अपने यहां चलकर भोजन करने के लिये कहा, उस समय भी कुँवर मालदेवजी ने उस हाथी के लिये बिना भोजन करना स्वीकार न किया । अन्तमें जब राव गांगाजी और राजकुमार मालदेवजी जोधपुर लौट आए, तब वीरम ने इस झगड़े को शान्त करने के लिये वह हाथी जोधपुर भेज दिया । परन्तु अभाग्यवश वह मार्ग में ही मर गया । इससे यद्यपि रावजी तो सन्तुष्ट हो गए, तथापि कुँवर मालदेवजी को इसमें राव वीरम के षड्यन्त्र का सन्देह हो जाने से वह उससे और भी अधिक नाराज़ हो गए ।

२. मरते समय शेखाने राव गाँगाजी से कहा था कि सूराचन्द के चौहानोंने मेरे एक आदमी को, उधर से जाते समय पकड़कर देवी की बलि चढ़ा दिया था । इसलिये हो सके, तो उनसे इसका बदला ले लेना । इसीके अनुसार कुछ दिन बाद, इन्होंने अपने आदमियों

ख्यातों से ज्ञात होता है कि राव गाँगाजी के और उनके बड़े भाई वीरमके[1] बीच बहुधा झगड़ा चलता रहता था। इसीसे रावजी ने उनकी (सोजत की) जागीर के कई गाँव छीन लिए, और धोलेराव आदि में अपनी चौकियाँ बिठा दीं।

वि० सं० १५८७ (ई० सन् १५३१) में होली के अवसर पर, जिस समय धोलेराव की चौकी के सरदार अपनी-अपनी जागीर के गाँवों में गए हुए थे, उस समय वीरम के पक्षवालों ने आक्रमण कर उस चौकी को लूट लिया। इसकी सूचना मिलने पर वि० सं० १५८८ (ई० सन् १५३१) में स्वयं राव गाँगाजी ने सोजत पर चढ़ाई की। युद्ध होने पर वीरम का प्रधान कर्मचारी मूता रायमल मारा गया, और सोजत पर रावजी का अधिकार हो गया[2]। इसके बाद इन्होंने वीरम को निर्वाह के लिये बाला नामक गाँव जागीर में देकर उसे वहाँ रहने के लिये भेज दिया। इस घटना के बाद राज्य में पूर्ण शान्ति हो गई।

को समझाकर देवी के मन्दिर की तरफ़ भेजा। यह देख वहां के चौहानोंने अपने कार्यकर्ताओं को उनके रहने आदि का प्रबन्ध कर देने की आज्ञा दी। परन्तु रावजी के भेजे हुए पुरुषोंने चौहानों के भेजे हुए उन (चौदह) आदमियों को मारकर शेखाके साथके वैरका बदला ले लिया।

किसी-किसी ख्यात में शेखाका युद्ध में हारकर मेवाड़ जाना और वहां पर महाराणा की तरफ़ से किसी युद्ध में लड़कर वीरगति प्राप्त करना भी लिखा मिलता है। परन्तु नहीं कह सकते, यह कहां तक ठीक है।

इस युद्ध में ऊहड हरदास भी मारा गया। यह राजकुमार मालदेवजी से नाराज़ होकर पहले वीरम के पास सोजत पहुँचा, और उसे राव गाँगाजी के विरुद्ध भड़काने लगा। बादमें इसीने शेखाके पास जाकर उसे रावजी से युद्ध करने के लिये तैयार किया।

१. राव गाँगाजी ने ख़याल किया कि जैता की बगड़ी की जागीर सोजत में होने से कहीं यह भी वीरमदेव से न मिल जाय; इसीलिये उसे बगड़ी छोड़कर पीपाड़ मे आ जाने की सलाह दी। इसपर उसके प्रधान रेडा ने रावजी का संदेह मिटाने के लिये वीरमदेव के प्रधान मूता रायमल को धोका देकर मारने का उद्योग किया। परन्तु इसमें उसे सफलता नहीं हुई, उलटा रायमल के हाथ से वह ख़ुद मारा गया।

इसके बाद राव गांगाजी ने जैताजी के मारफ़त कूँपाजी को भी जो वीरमजी की तरफ़ थे अपने पास बुलवा लिया। इससे वीरमदेव का बल बहुत घट गया।

२. ख्यातों में लिखा है कि वीरम की सहायता के लिये मेवाड़ से महाराणा रत्नसिंहजी (द्वितीय) ने भी सेना भेजी थी। परन्तु राव गाँगाजी ने उसे सारण (गाँव) के युद्ध में हरा दिया। इसके बाद रावजीने मेवाड़वालों से गोडवाड़ का बहुत-सा प्रदेश भी छीन लिया।

वि० सं० १५८८ की ज्येष्ठ सुदी ५ (ई० सन् १५३१ की २१ मई) को जिस समय राव गाँगाजी महल की एक खिड़की के पास बैठ शीतल वायु का सेवन कर रहे थे, उस समय कुछ तो अफ़ीम के सेवन के प्रभाव से और कुछ गरमी की मौसम में शीतल वायु के लगने से उन्हें झपकी आ गई, और उसी में वे खिड़की से नीचे गिर पड़े[1]। इससे उसी समय इनका देहान्त हो गया।

जोधपुर शहर का 'गाँगेलाव' तालाब और 'गाँगा की बावड़ी'[2] इन्होंने ही बनवाई थी। इनकी रानी पद्मावती[3] सिरोही के राव जगमाल की कन्या थी। उसी के कहने से राव गाँगाजी ने (वि० सं० १५७२=ई० सन् १५१५ में) विवाह के समय अपने श्वसुर से श्यामजी की मूर्ति माँग ली थी। यही मूर्ति जोधपुर में, गाँगाजी द्वारा लाई जाने के कारण, गँगश्याम के नाम से प्रसिद्ध हुई[4]।

राव गाँगाजी बड़े वीर और दानी थे। कहते हैं, इन्होंने कई गाँव दान किए थे[5]। इनके ६ पुत्र थे—१ मालदेव, २ वैरसल, ३ मानसिंह, ४ किशनसिंह, ५ सादूल और ६ कान्ह।

१. ख्यातों में इनका मालदेवजी के धक्के से गिरना भी लिखा मिलता है।

२. राव गाँगाजी की रानी नानकदेवी ने जोधपुर में अचलेश्वर महादेव का मन्दिर बनवाया था। यह बावड़ी इसी के पास है।

३. सिरोही के इतिहास (पृ० २०५) में लिखा है कि इसी पद्मावती ने जोधपुर का पदमलसर तालाव बनवाया था। परन्तु वास्तव मे यह तालाव मेवाड़ के सेठ पद्मचन्द के रुपये से बना था, जिसे राव जोधाजी ने मेवाड़ की चढ़ाई के समय पकड़ा था। सम्भव है, इस रानीने इसके घाट आदि बनवाए हों। परन्तु किसी-किसी ख्यात में इसका महाराणा साँगाजी (प्रथम) की कन्या पद्मावती–द्वारा बनवाया जाना भी लिखा मिलता है। सम्भव है, उसने भी इसमे कुछ सुधार किया हो।

४. कहते हैं कि इस मूर्ति के साथ ही इसके पुजारी भी आए थे। ये सेवग के नाम से प्रसिद्ध हैं। पहले पहल इस मूर्ति की स्थापना जोधपुर के किले मे की गई थी। परन्तु महाराजा जसवन्तसिंहजी (प्रथम) की मृत्यु के बाद जोधपुर पर औरंगजेब का अधिकार हो जाने से, उक्त सेवगोंने इसे अपने घर में छिपा रक्खा था। परन्तु महाराजा अजितसिंहजी ने, जोधपुर का शासन हाथ में लेते ही सेवगों के घरों के पास ही एक साथ ५ मन्दिर बनवा कर बीच के मुख्य मन्दिर मे इस मूर्ति की स्थापना की। इसके बाद महाराजा विजयसिंहजी ने वहीं पर की शाही ज़माने की बनी मसजिद को गिरवाकर उसी के स्थान पर (वि० सं० १८१८=ई स० १७६० में) एक विशाल मन्दिर बनवाया और उसी में इस मूर्ति को स्थापित किया।

५. १ चारवास २ तालका ३ धूड़ासणी (सोजत परगने के), ४ खारावेरा (जो पहले जोधाजी ने दिया था), ५ घेवड़ा ६ सुराणी आधी, ७ घटियाला (जोधपुर परगने के) पुरोहितों को,

१९. राव मालदेवजी

यह मारवाड़-नरेश राव गाँगाजी के ज्येष्ठ पुत्र थे, और उनके बाद वि० सं० १५८८ की आषाढ़ वदी ५ (ई० सन् १५३१ की ५ जून) को सोजत में गद्दी पर बैठे। इनका जन्म वि० सं० १५६८ की पौष वदी १ (ई० सन् १५११ की ५ दिसम्बर) को हुआ था। जिस समय यह गद्दी पर बैठे, उस समय इनका अधिकार केवल सोजत और जोधपुर के परगनों पर ही था। परन्तु उसी वर्ष इन्होंने भाद्राजन के सींधलों पर सेना भेजी। इस पर मेड़ते के स्वामी वीरमदेव ने भी अपनी सेना के साथ आकर इसमें योग दिया। कई दिनों के युद्ध के बाद भाद्राजन का स्वामी वीरा मारा गया और वहां पर मालदेवजी का अधिकार हो गया। इसके बाद इसी सेना ने रायपुर के सींधलों पर चढ़ाई की और वहां के शासक को मारकर उक्त प्रदेश पर भी अधिकार कर लिया।

वि० सं० १५८९ (ई० स० १५३२) में जिस समय गुजरात के सुलतान बहादुरशाह ने मेवाड़ पर चढ़ाई की, उस समय मालदेवजी ने भी अपनी राठोड़-वाहिनी को उसके मुकाबले में भेज कर राना विक्रमादित्य की अच्छी सहायता की।

८ चंगावडा (जोधपुर परगने का) चारणों को और ९ काकेलाव व्यासों का (जोधपुर परगने का), १० अनन्तवासणी (सोजत परगने का) ब्राह्मणों को। इसी प्रकार इनके अन्य गाँवों के दान का उल्लेख भी मिलता है। परन्तु इस विषय में निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकत।

१. उस समय जैतारण, पौकरण, फलोदी, बाहड़मेर, कोटड़ा, खेड़, महेवा, सिवाना और मेड़ता आदि के स्वामी, समय उपस्थित होने पर केवल सैन्य आदि से जोधपुर-नरेश की सहायता कर दिया करते थे। परन्तु अन्य सब प्रकार से वे अपने-अपने अधिकृत प्रदेशों के स्वतंत्र शासक थे।

इसके अलावा भाद्राजन आदि के सींधल तो पहले से ही मेवाड़वालों से सम्बन्ध रखने लगे थे। परन्तु इन दिनों मेड़तावालों का सम्बन्ध भी उनसे बढ़ गया था। अजमेर, जालोर और नागोर पर मुसलमानों का अधिकार था।

२. कहीं-कहीं पर इस सहायता का चित्तौड़ के 'दूसरे शाके' के समय अर्थात् वि० सं० १५९१ (ई० स० १५३४) में दिया जाना लिखा है।



१६. राव मालदेवजी

वि० सं० १५८९-१६१९ (ई० स० १५३२-१५६२)

इसके बाद जब नागोर के शासक दौलतख़ाँ ने मेड़ते पर अधिकार करने के इरादे से वीरमदेव पर चढ़ाई की, तब राव मालदेवजी ने सेना-सहित हीरावाड़ी में पहुँच, वहाँ पर अपना शिविर क़ायम किया और वहां से आगे बढ़ नागोर पर

१. जिस समय रावजी के विजयी सैनिकों ने नागोर विजय कर इधर-उधर के गाँवों को लूटना प्रारम्भ किया, उस समय हीराबाड़ी में सेनापति जैता का मुकाम होने से वहाँ पर किसी ने भी गड़बड़ नहीं की। इससे प्रसन्न होकर वहाँ के मुख्य पुरुषों ने अपनी कृतज्ञता के प्रदर्शनस्वरूप उक्त सेनापति को १५,००० रुपयों की एक थैली भेट की। इसी द्रव्य से रजलानी गाँव के समीप की बावली बनवाई गई थी। यह बावली इस समय भूतों की बावली के नाम से प्रसिद्ध है। इसमे इसकी समाप्ति के समय का वि० सं० १५६७ (ई० स० १५४०) का एक लेख लगा है।

इस लेख के पूर्व भाग में १७ श्लोक हैं; इनमें देवताओं आदि की स्तुति है। परन्तु दूसरे भाग में—

"इति श्री विक्रमायीत साके १४४० संवत् १५६७ व्रषे काती वदि १५ दिने रउबारे राज श्री मालदेवरा:राठड रा वारा वावडी रा कमठाण ऊधरता राजी श्री रिणमल राठवड़ गेत्ते (गोत्रे) तत् पुत्र राजी अखैराज, अखैराज सूतन राज श्री पंचायण पंचायण सूतन राजश्री जेताजी वावड रा कमट (ठा) ऊधंता--"

लिखकर आगे जैता के कुटुम्बियों के नाम दिये हैं।

इसके बाद की पंक्तियों से पता चलता है कि इस बावली के कार्य का प्रारम्भ वि० सं० १५६४ की मंगसिर वदी ५ रविवार को हुआ था। साथ ही यह भी ज्ञात होता है कि इसके बनाने मे १५१ कारीगरों के साथ-साथ १७१ पुरुष और २२१ स्त्रियाँ मज़दूरी का काम करती थीं।

इसी लेख में आगे उक्त बावली के बनवाने मे जो सामान लगा है, उसकी सूची दी है। उसे भी हम यहाँ पर उद्धृत कर देना उचित समझते हैं--

१५ मन सूत, ५२० मन लोहा (पाउओं--Clamps और गोलियों के लिये। ये गोलियाँ खोदनेवालों के हथौड़ों के मुँह पर लगाई जाती थीं। आज भी यहाँ पर यह रिवाज प्रचलित है। इससे हथौड़ा ख़राब नहीं होता;) साथ ही इस लोहे को आडावला (अर्वली) पहाड़ से उक्त स्थान तक लाने के लिये ३२१ गाड़ियों की ज़रूरत हुई थी; और २५ मन घी (सामान लानेवाली उक्त गाड़ियों के पहियों में देने के लिये) तथा १२१ मन सन (रस्से वगैरह के लिये) काम में लाया गया था। इनके अलावा २२१ मन पोस्त, ७२१ मन नमक, ११२१ मन घी, २५५५ मन गेहूँ, ११,१२१ मन दूसरा नाज और ५ मन अफ़ीम कारीगरों और मज़दूरों के खाने में ख़र्च हुई थी। इस लेख में शक सम्वत् १४४० अशुद्ध है। वास्तव मे श० सं० १४६२ होना चाहिए। इसी प्रकार कार्त्तिक वदि अमावास्या को रविवार न होकर शुक्रवार था। हाँ, कार्तिक सुदि १५ को रविवार अवश्य था। लेख में १५ का अंक भी पूर्णिमा का ही द्योतक है। आगे इसी लेख में वि० सं० १५६४ की मंगसिर वदी ५ को रविवार लिखा है। परन्तु वास्तव में उस रोज़ मंगलवार आता है। (लेख की छाप इस समय पास न होने से इस विषय में कुछ नहीं लिख सकते।)

अधिकार कर लिया। यह सूचना पा दौलतख़ाँ लौटकर इनके मुक़ाबले को आया। परन्तु अंत में उसे हारकर अजमेर की तरफ़ भागना पड़ा। यह घटना वि० सं० १५९१ (ई० सन् १५३४) के पूर्व की है।

इस प्रकार नागोर पर क़ब्ज़ा हो जाने के बाद शत्रु के आक्रमण से उसकी रक्षा करने के लिये उसके इर्द-गिर्द के प्रदेशों में थाने बिठला दिए गए। यद्यपि इसके कुछ दिन बाद दौलतख़ाँ ने एक बार नागोर विजय का मार्ग साफ़ करने के लिये भावँडा गांव के थाने पर हमला भी किया, तथापि हर समय सावधान रहनेवाली राठोड़-सेना के सम्मुख उसे सफलता नहीं मिली।

वि० सं० १५९१ (ई० स० १५३५) में वीरमदेव ने गुजरात के बादशाह बहादुरशाह की तरफ़ के हाकिम शमशेरुलमुल्क को हराकर अजमेर पर अधिकार कर लिया। जब इस बात की सूचना मालदेवजी को मिली, तब इन्होंने वीरमदेव से कहलाया कि तुम इस नगर को हमें सौंप दो। वरना यदि गुजरात के बादशाह की सेना ने इस पर दुबारा चढ़ाई की, तो तुम्हारे लिये इसकी रक्षा करना कठिन हो जायगा। परन्तु उसने इस बात को न माना। इससे रावजी अप्रसन्न हो गए और इन्होंने अपने सेनापति जैता और कूँपा की अध्यक्षता में मेड़ते पर सेना भेज दी।

इसी लेख में इस बावड़ी के बनवाने मे १,२१,१११ फदिए खर्च होना लिखा है और इतिहास में १५,००० रुपयों का उल्लेख है। इससे अनुमान होता है कि उस समय १ रुपये के क़रीब ८ फदिये आते थे। इस हिसाब से एक फदिया दो आने के क़रीब माना जा सकता है। परन्तु आजकल साधारणतः फदिए को एक आने के बराबर मानते हैं।

१. ख्यातों में लिखा है कि नीतिचतुर मालदेवजी ने स्वयं ही दौलतख़ाँ को उसके हाथी की याद दिलाकर वीरमदेव को दण्ड देने के लिये उकसाया था। (जब राव गाँगाजी के समय उनके और दौलतख़ाँ के बीच युद्ध हुआ था, तब दौलतख़ाँ की सेना का मुख्य हाथी भागकर मेड़ते चला गया था और वीरमदेव ने उसे पकड़ लिया था) परन्तु जब दौलतख़ाँ मेड़ते पर अधिकार करने की चेष्टा करने लगा, तब वीरम ने मालदेवजी से सहायता की प्रार्थना की और इसी से इन्होंने मौक़ा देख नागोर पर अधिकार कर लिया।

२. इस युद्ध में राठोड़ अखैराज का पौत्र (पंचायण का पुत्र) अचलसिंह मारा गया। यह बड़ा वीर था और नागोर-विजय के समय इसने वहाँ के क़िले के दरवाज़े उतरवाकर जोधपुर भेज दिए थे।

३. इसका जन्म वि० सं० १५३४ की मँगसिर सुदि १४ को हुआ था।

४. मुँहणोत नैणसी ने वीरमदेव का परमारों से अजमेर लेना लिखा है। वह ठीक नहीं प्रतीत होता।

५. इसका जन्म वि० सं० १५५६ की मँगसिर सुदी १२ को हुआ था।

यह देख वीरमदेव भी युद्ध के लिये तैयार हो गया। परन्तु अन्त में लोगों के समझाने से वह मेड़ता छोड़कर अजमेर चला गया और मेड़ते पर मालदेवजी का अधिकार हो गया।

उपर्युक्त घटना के अवसर पर रावजी ने राठोड़ वरसिंह के पौत्र सहसा[1] को रीयाँ की जागीर दी थी। इससे वीरम उससे असंतुष्ट था। एक रोज़ जिस समय वीरम वींटली (अजमेर) के क़िले पर खड़ा था, उस समय उसकी दृष्टि दूर से रीयाँ की पहाड़ी पर जा पड़ी और साथ ही पहले की घटना के याद आ जाने से उसके हृदय में प्रतीकार की आग धधक उठी। इसीसे उसने लोगों के समझाने पर कुछ भी ध्यान न देकर रीयाँ पर चढ़ाई कर दी। परन्तु जैसे ही यह समाचार नागोर में मालदेवजी को मिला, वैसे ही इन्होंने अपनी सेना को सहसा की सहायता के लिये भेज दिया। यद्यपि वीरम ने रीयाँ के पास पहुँच बड़ी वीरता से युद्ध किया, तथापि मालदेवजी की विशाल सेना के आ जाने से वह सफल न हो सका। सहसा सम्मुख रण में मारा गया और वीरम लौट कर अजमेर चला गया।

इस घटना के बाद मालदेवजी ने अपने सेनापति जैता और कूँपा को सेना लेकर अजमेर पर चढ़ जाने और वीरम को हटा कर वहाँ पर अधिकार कर लेने की आज्ञा दी। यद्यपि इन दोनों के वहाँ पहुँचने पर वीरम ने भी बड़ी वीरता से इनका सामना किया, तथापि अन्त में उसे अजमेर छोड़ना पड़ा और वहाँ पर राव मालदेवजी का अधिकार हो गया। ये सारी घटनाएँ भी वि० सं० १५९१ (ई० स० १५३५) में ही हुई थीं।

इस प्रकार अजमेर के भी हाथ से निकल जाने पर वीरम डीडवाने की तरफ़ चला गया। परन्तु रावजी की सेना ने फिर भी उसका पीछा किया। इससे दोनों के बीच फिर एक बार घोर युद्ध हुआ। अंत में डीडवाने पर भी राव मालदेवजी का अधिकार हो गया। इसके बाद वीरम फतैपुर-झूंझणूँ की तरफ़ रवाना हुआ। परन्तु मार्ग में जिस समय वह नराणा नामक गाँव में पहुँचा, उस समय वहाँ के सेखावत (कछवाहा) रायमल ने वीरम का बहुत कुछ आदर-सत्कार कर उसे अपने पास रख लिया। क़रीब एक वर्ष तक वीरम वहीं रहा। इसके बाद उसने बोयल और वणहड़ा नाम के गाँवों पर अधिकार कर वहाँ पर अपना निवास क़ायम किया।

१. वि० सं० १५७५ (ई० स० १५१८) का, इसके पिता तेजसी की मृत्यु के समय का एक लेख रीयाँ की गढ़ीवाली पहाड़ी के उत्तर में मिला है।

वि० सं० १५९३ (ई० स० १५३६) में मालदेवजी का विवाह जैसलमेर के रावल की कन्या से हुआ। यद्यपि इस अवसर पर रावल लूणकरणजी ने इनको मारने

१. इस रानी का नाम उमादे था। यह जैसलमेर के रावल लूणकरणजी की कन्या थी। विवाह की रात्रि को ही घटनावश यह रानी रावजी से रूठ गई और इनके बहुत कुछ अनुनय विनय करने पर भी इसने जीते जी अपना मान नहीं छोड़ा। वि० सं० १५९६ (ई० सन् १५३९) में अजमेर के डेरे पर एक बार रावजी की आज्ञा से बारठ ईश्वरदास के अत्यधिक अनुनय विनय करने पर उमादे का मान कुछ नरम हो गया था। परन्तु उसी अवसर पर रावजी को बीकानेर की चढ़ाई का प्रबन्ध करने के लिये जोधपुर आना पड़ा। अतः वह बात वहीं रुक गई। इसके बाद वि० सं० १५९९ (ई० स० १५४२) में जब रावजी को अपने विरुद्ध शेरशाह की चढ़ाई की सूचना मिली, तब इन्होंने ईश्वरदास को लिखा कि तुम उमादे को तो हिफ़ाज़त के साथ अजमेर से जोधपुर ले आओ और वहाँ के क़िले में शीघ्र ही युद्ध-सामग्री एकत्रित की जाने का प्रबंध करवा दो। यह समाचार सुन उमादे ने ईश्वरदास से कहा कि शत्रु का आगमन जान लेने के बाद मेरा क़िला छोड़ कर चला जाना बिलकुल अनुचित होगा। इससे मेरे दोनों कुलों अर्थात्-नैहर और सुसराल पर कलंक लगेगा। अतः आप रावजी को लिख दें कि वह यहाँ का सब प्रबंध मुझी पर छोड़ दें। वह यह भी विश्वास रक्खें कि शत्रु का आक्रमण होने पर मैं राना साँगा की रानी हाडी कर्मावती के समान अग्नि में प्रवेश न कर शत्रु को मार भगाऊँगी और यदि इसमें सफल न हुई तो वीर क्षत्रियाणी की तरह सम्मुख रण में प्रवृत्त होकर प्राण त्याग करूँगी। जब रावजी को पत्र द्वारा इस बात की सूचना मिली, तब इन्होंने ईश्वरदास को लिखा कि तुम हमारी तरफ़ से रानी को कह दो कि अजमेर में तो हम स्वयं शेरशाह से लड़ेंगे। इसलिये वहाँ का प्रबंध तो हमारे ही हाथ में रहना उचित होगा। हाँ, जोधपुर के क़िले का प्रबंध हम तुम्हें सौंपते हैं। अतः तुम शीघ्र ही यहाँ चली आओ। रानी ने भी अपने पति की इस आज्ञा को मान लिया और वह अजमेर का क़िला रावजी के सेनापतियों को सौंप जोधपुर की तरफ़ रवाना हो गई। परन्तु जैसे ही यह समाचार रावजी की अन्य रानियों को मिला, वैसे ही वे सौतिया डाह से घबरा गईं। अतः उन्होंने उसके जोधपुर आगमन में बाधा डालने के लिये बारठ आसा को रवाना किया। यह आसा बारठ ईश्वरदास का चचा था। रानियों ने इसे बहुत कुछ लालच देकर इस कार्य के लिये तैयार किया था।

इसके बाद जिस समय उमादे की सवारी जोधपुर से १५ कोस पूर्व के कोसाना गांव में पहुँची, उस समय आसा भी उसकी पीनस के पास जा पहुँचा। संयोगवश ईश्वरदास उस समय कहीं इधर-उधर गया हुआ था। इससे मौक़ा पाकर आसा ने यह दोहा ज़ोर से पढ़ा—

"माँन रखे तो पीव तज, पीव रखे तज माँन।
दोय गयंदन बंध ही, एकण खंभे ठाँण।"

का इरादा कर लिया था, तथापि किसी तरह यह बात लूणकरणजी की रानी को मालूम हो गई। अतः उसने अपने पुरोहित राघवदेव के द्वारा इसकी सूचना राव मालदेवजी के पास भिजवा दी। इससे यह सावधान हो गए और वहांवालों को इन पर घात करने का मौक़ा ही न मिला।

पहले लिखे अनुसार जिस समय मालदेवजी ने नागोर पर चढ़ाई की थी, उस समय सिवाना और मल्लानी के सरदारों को भी सहायतार्थ बुलवाया था। परंतु उन लोगों ने इस पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। इसीसे वि० सं० १५९५ (ई० सन् १५३८) में इन्होंने सिवाना गांव पर अधिकार करने के लिये एक सेना भेज दी।

यह सुन रानी ने कोसाने में ही डेरा डालने की आज्ञा दे दी और आगे जाने से साफ़ इनकार कर दिया। यद्यपि ईश्वरदास ने आकर फिर भी अनेक तरह से समझाया और शेरशाह की सेना का भय भी दिखलाया, परंतु मानवती और वीरपत्नी उमादे ने एक बात की भी परवा न की। इसके बाद उसने रावजी को कहलवा दिया कि मुझे यहीं रहने की आज्ञा दी जाय। साथ ही यदि कुछ सेना भी दे दी जाय, तो मैं यहीं से जोधपुर के क़िले की रक्षा का प्रबंध कर सकती हूँ। इस पर राव मालदेवजी ने जोधपुर के हाकिम को कुछ फ़ौज देकर वहां का प्रबंध करने के लिये भेज दिया। अंत में जब शेरशाह विजयी हुआ, तब युद्ध से लौटे हुए बहुत-से राठोड़ कोसाने में आकर जमा हो गए। कुछ दिन बाद जब ख़वासख़ाँ ने जोधपुर पर भी अधिकार कर लिया, तब वह कोसाने की तरफ़ चला। परंतु रानी उमादे के सरदारों के जमघट को देख उसकी युद्ध करने की हिम्मत न हुई। अंत में वि० सं० १६०० (ई० स० १५४३) में वह अपनी सेना के पड़ाव के स्थान पर ख़वासपुरा-नामक गांव बसाकर वापस लौट गया। यह गांव कोसाने से दो-तीन कोस के फ़ासले पर अब तक आबाद है। इस गांव को बसाने के पूर्व उसने रानी उमादे से भी इस विषय में सम्मति ले ली थी।

वि० सं० १६०४ (ई० स० १५४७) में यह रानी अपने बड़े पुत्र राम (यह मालदेवजी की कछवाहा-वंश की रानी के गर्भ से जन्मा था। परंतु उमादे इसे अपना दत्तक पुत्र समझती थी) के साथ गूँदोज चली गई और वहां से उसी के साथ केलवा जाकर वहीं रहने लगी। परंतु वि० सं० १६१९ (ई० स० १५६२) में जब इसे मालदेवजी के स्वर्गवास की सूचना मिली, तब इसने वहीं पर सती होकर पति का अनुगमन किया।

१. किसी-किसी ख्यात में इस बात का पहले पहल उमादे को मालूम होना और उसका राघवदेव के द्वारा राव मालदेवजी के पास सूचना भिजवाना लिखा है।

किसी-किसी ख्यात में इस रानी का कोसाने से रामसर जाकर कुछ दिन वहां रहना भी लिखा मिलता है। जैसलमेर की तवारीख में उमादे का जैसलमेर से ही राम के साथ मेवाड़ जाना लिखा है।

२. राव मालदेवजी जब विवाह कर सकुशल मारवाड़ को लौटे, तब अपने साथ इस राघवदेव को भी ले आए थे। इसका पुत्र चंडू ज्योतिषशास्त्र का अच्छा ज्ञाता था। उसका चलाया हुआ चांद्रपक्षीय चंडू-पंचांग अब तक मारवाड़ से प्रकाशित होता है और लोगों में आदर की दृष्टि से देखा जाता है।

वहां का राना डूँगरसी[1] भी बड़ा वीर था। अतः इस सेना को विशेष सफलता नहीं मिली। यह देख रावजी ने स्वयं ही उस (सिवाना) पर चढ़ाई की और वहां के क़िले को घेरकर उसका सारा बाहरी संबंध काट दिया। इससे जब क़िले का भीतरी सामान समाप्त हो गया, तब डूँगरसी को क़िला छोड़कर निकल जाना पड़ा और उस पर मालदेवजी का अधिकार हो गया। इसी विजय का सूचक एक लेख[2] उक्त क़िले में विद्यमान है।

वि० सं० १५९५ (ई० सन् १५३८) में जालोर के शासक बिहारी पठान सिकंदरख़ाँ ने, जिसे बलोचों ने हराकर भगा दिया था, राव मालदेवजी से सहायता की प्रार्थना की। इस पर इन्होंने उसे अपने पास बुलाकर दुनाड़ा नामक गांव जागीर में दे दिया। परंतु कुछ समय बाद ही सिकंदरख़ाँ को मालदेवजी की तरफ़ से संदेह हो गया, अतः उसने यहां से भागकर इधर-उधर उपद्रव मचाने का प्रबंध किया। इसकी सूचना पाते ही राव मालदेवजी ने अपनी सेना उसके पीछे भेज दी। सिकंदरख़ाँ के सहायक लोदी पठान तो गुजरात की तरफ़ भाग गए, परंतु सिकंदरख़ाँ पकड़ा जाकर क़ैद कर लिया गया और इसी क़ैद में उसकी मृत्यु हुई[3]।

वि० सं० १५९६ (ई० सन् १५३९) में जिस समय मालदेवजी बीकानेर पर चढ़ाई करने का प्रबंध कर रहे थे, उसी समय बंगाल में बादशाह हुमायूँ और शेरख़ाँ

१. यह जैतमाल राठोड़ था।

२. स्वति श्रे (श्री) गणेश प्रा (प्र) सादातु (त्) समतु (संवत्) १५९४ वर्षे आसा (षा) ढ वदि ८ दिने बुधवा (स) रे मह (हा) राज (जा) धिराज मह (हा) राय (ज) श्रीमालदे (व) विजै (जय) राजे (ज्ये) गढसि (-)

वणे (वाणो) लिये (यो) गढरि (री) कु (कूं) चि मं (मां) गलिये देवे भादाउतु (भदावत) रे हाथि (थ) दि (दी) नी

गढ थं (स्तं) भेराज पंचा (चो) ली अचल गदाधरे (गा) तु रावले वहीदार लिष (खि) तं सूत्रधार करमचंद परलिय

सूत्रधार केसव।

यद्यपि इस लेख में संवत् १५९४ लिखा है, तथापि इसको मारवाड़ का उस समय का प्रचलित श्रावणादि संवत् मान लेने से चैत्रादि संवत् १५९५ आता है। साथ ही लेख में यद्यपि अष्टमी तिथि ही पढ़ी जाती है, तथापि बुधवार सप्तमी को आता है।

३. तारीख़े पालनपुर, जिल्द १, पृ० ६२-६३।

के बीच झगड़ा उठ खड़ा हुआ। इस मौके से लाभ उठाने के लिये इन्होंने भी बीकानेर की चढ़ाई का ध्यान छोड़ पूर्व की तरफ़ के देश विजय करने का विचार किया। इसी के अनुसार यह अपनी सेना को सजाकर हिंदौन से आगे बढ़ गए और बयाने तक के प्रदेशों पर अपना अधिकार कर लिया।

पहले लिखा जा चुका है कि वीरम ने बोयल और बणाहड़े में अपना निवास क़ायम किया था। परंतु कुछ समय बाद जब वहां पर उसका प्रभाव बढ़ने लगा, तब मालदेवजी ने उसका अधिकृत प्रदेश छीन लेने के लिये अपनी सेना भेज दी। यह देख वीरम वि० सं० १५९७ (ई० स० १५४०) में मांडू के बादशाह सुलतान क़ादिर के पास चला गया और उसकी सलाह से आगे दिल्ली के बादशाह शेरशाह के पास जाने को रवाना हुआ। मार्ग में रणथंभोर के हाकिम से उसकी मित्रता हो गई। इससे उसी के साथ वह दिल्ली जा पहुँचा। वहां पर वि० सं० १५९८ (ई० स० १५४१) में इसकी मित्रता बीकानेर के स्वर्गवासी राव जैतसीजी के छोटे पुत्र भीम से हुई। अतः ये दोनों मिलकर शेरशाह को मालदेवजी के विरुद्ध भड़काने लगे।

रावजी की सेना ने भी वीरम के बोयल से भाग जाने पर टोंक और टोडे की तरफ़ के सोलंकियों पर चढ़ाई की और उनसे दंड लेकर आगे जौनपुर (मेवाड़) में अपनी चौकी क़ायम की। फिर वहां से पूरब की तरफ़ जाकर सांभर, कासली, फ़तेपुर, रेवासा, छोटा उदैपुर (जैपुर राज्य में), चाटसू, लवाण और मलारणा आदि पर अधिकार कर लिया और अनेक स्थानों पर रक्षा के लिये क़िले भी बनवा लिए। इन कार्यों से निपटकर इस सेना ने सांचोर के चौहानों को हराया और फिर गुजरात की तरफ़ राधनपुर और खाबड़ तक के प्रदेशों पर अधिकार कर नाबरा गांव को लूट लिया।

---

१. वी० ए० स्मिथ ने लिखा है कि ई० स० १५३९ के जून में शेरशाह ने हुमायूँ को गंगा के किनारे चौसा में (जो शाहाबाद ज़िले में है) हराकर भगा दिया था (ऑक्सफ़ोर्ड हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया, पृ० ३२६)।

२. इस प्राचीन छप्पय से इन विजयों की पुष्टि होती है–

जोधपुरे ऊठियै चढ़े सेना चतुरंगाँ।
समियाणौ घूघरोट अणी चाढियौ अलंगाँ।
भाद्राजण पाधरौ कियौ हय पाय उलंडे।
जालोरी साचोर धरात्रय खाबड खंडे।
मरुधराधीश भ्रम मालदे वैराई भाखर वले।
दीधा प्रथम भड मारकै कलह पांण नाबर कलै।

इसी बीच मेवाड़ के सरदारों ने दासीपुत्र वणवीर[1] से दूषित होते हुए चित्तौड़ के राजवंश को बचाने का इरादा किया और इसी के अनुसार महाराना विक्रमादित्य के छोटे भ्राता उदयसिंह को चित्तौड़ की राजगद्दी पर बिठाने का प्रबंध करने लगे। परंतु यह कार्य किसी बड़े पड़ोसी नरेश की सहायता के बिना असंभव था। अतः उन्होंने उस समय के प्रतापी नरेश राव मालदेवजी से इस कार्य में सहायता प्राप्त करने का विचार किया, और इसके लिये पाली के ठाकुर सोनगरा चौहान अखैराज[2] को उनसे प्रार्थना करने को भेजा। रावजी ने भी उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और अपने सेनापति कूँपा और खींवकरण को लिख दिया कि वे शीघ्र जाकर मेवाड़ की गद्दी प्राप्त करने में उदयसिंहजी की सहायता करें[3]। अंत में राठोड़ों और राजभक्त सीसोदियों की सहायता से वणवीर भाग गया, और महाराना उदयसिंह मेवाड़ की गद्दी के स्वामी हुए। इसके बाद जब महाराना उदयसिंहजी ने राठोड़ सरदारों[4] को बिदा किया, तब इस उपकार के बदले मालदेवजी की भेट के लिये ४०,००० फ़ीरोज़ी सिक्के और वसंतराय नामक एक हाथी भेजा। यह घटना वि० सं० १५९७ (ई० स० १५४०) की है।

राव मालदेवजी का एक विवाह खैरवे[5] के स्वामी झाला जैतसिंह की कन्या से हुआ था। इसीसे एक बार यह शिकार करते हुए अपनी सुसराल जा पहुँचे, और वहां पर इन्होंने अपनी छोटी साली के रूप और गुणों को देख उससे विवाह करने की इच्छा प्रकट की। इस पर इनके श्वसुर ने भी इसे अंगीकार कर लिया और इस कार्य की तैयारी के लिये दो मास की अवधि चाही। परंतु जब मालदेवजी लौटकर जोधपुर चले आए, तब उसने गुढे में जाकर चुपचाप उस कन्या का विवाह मेवाड़ के

---

१. यह महाराना रायमल के पुत्र पृथ्वीराज का उपस्त्री-पुत्र था।

२. यह मारवाड़-नरेश का सामंत था।

३. उस समय कूँपा और नींबाज ठाकुर खींवकरण २,५०० सवारों के साथ मदारिया के थाने पर थे। जिस समय वणवीर ने मेवाड़ की गद्दी दबाई थी, उस समय मालदेवजी ने अपनी सेना को भेजकर गोढवाड़, बदनोर, मदारिया, कोसीथल आदि मेवाड़ के बहुत-से स्थानों पर अधिकार कर लिया था, और उन्हीं की रक्षा के लिये मदारिये में राठोड़ों का प्रबल थाना रक्खा गया था।

४. मालदेवजी के सामंत सोनगरा अखैराज और जैताजी ने भी इस कार्य में मेवाड़वालों को सहायता दी थी।

५. मालदेवजी ने ही इसे खैरवे की जागीर दी थी।

महाराणा उदयसिंहजी के साथ कर दिया। इसकी सूचना पाकर मालदेवजी को बड़ा क्रोध आया और इन्होंने इसका बदला लेने के लिये अपनी सेना को खैरवे और कुंभलगढ़ पर आक्रमण करने की आज्ञा दी। यद्यपि कुंभलगढ़ ख़ास पर तो इनका अधिकार न हो सका, तथापि वहां तक का गोढवाड़ का सारा प्रदेश और खैरवा इनके अधिकार में आ गया।

वि० सं० १५९८ (ई० स० १५४१) में राव मालदेवजी ने २०,००० सैनिकों को साथ लेकर बीकानेर पर चढ़ाई की। इसकी सूचना पाकर वहां के राव जैतसीजी भी इनके मुक़ाबले को चले। मार्ग में जब दोनों सेनाएँ एक दूसरी के क़रीब पहुँचीं, तब पहली ने 'पही' नामक गांव में और दूसरी ने 'सूवा' में अपना डेरा डाल दिया। परंतु रात्रि में ही किसी आवश्यक कार्य के लिये जैतसीजी को बीकानेर लौटने की आवश्यकता प्रतीत हुई[1]। यद्यपि वह अपने दो-एक विश्वस्त सरदारों से प्रातःकाल तक लौट आने का वादा कर चुपचाप ही रवाना हुए थे, तथापि किसी तरह इस बात की ख़बर उनके अन्य सरदारों तक भी पहुँच गई। इस पर वे सब किसी भावी आशंका से घबरा गए और उनमें से बहुत-से अपने सैनिकों के साथ रात्रि में ही युद्धस्थल छोड़ इधर-उधर निकल गए। राव मालदेवजी के गुप्तचरों ने भी यथासमय इसकी सूचना अपने सेनानायकों के पास पहुँचा दी थी। अतः जैसे ही प्रातःकाल के अँधेरे में जैतसीजी लौटकर अपने शिविर 'सूवा' में पहुँचे, वैसे ही राव मालदेवजी की सेना ने आगे बढ़ उन्हें घेर लिया। थोड़ी देर के युद्ध में ही राव जैतसीजी तो वीरता से लड़-कर मारे गए और राव मालदेवजी ने बीकानेर की तरफ़ प्रयाण किया। इसकी सूचना पाते ही बीकानेर के क़िलेदार ने जैतसीजी के पुत्र कल्याणमलजी और भीमराज को मय उनके कुटुम्बवालों और २०० सैनिकों के सिरसे की तरफ़ भेज दिया। जोधपुर की सेना ने बीकानेर पहुँच वहां के क़िले को घेर लिया। तीन दिन तक तो क़िलेवाले क़िले में रहकर ही इनका सामना करते रहे। परंतु चौथे दिन वे लोग बाहर निकल सम्मुख युद्ध में प्रवृत्त हुए। अंत में उन सबके मारे जाने पर क़िला जोधपुरवालों के

१. ख्यातों में लिखा है कि राव जैतसीजी ने उन्हीं दिनों पठानों से २,००० घोड़े ख़रीदे थे। परंतु उनके रुपये अभी तक बाकी थे। अतः जब पठानों को जैतसीजी के युद्ध में जाने का समाचार मिला, तब वे वहां पहुँच उनसे उन रुपयों के बाबत आग्रह करने लगे। इसी झगड़े को तय करने के लिये राव जैतसीजी को बीकानेर लौटने और अपने कर्मचारियों से उनका हिसाब साफ़ करवा देने की आवश्यकता आ पड़ी थी।

हाथ आ गया। इसके बाद इन्होंने आगे बढ़ भूंभणू[1] पर भी अधिकार कर लिया। इस युद्ध में राठोड़ कूँपा ने खास तौर पर भाग लेकर वीरता दिखलाई थी। इससे प्रसन्न होकर राव मालदेवजी ने भूंभणू की जागीर के साथ ही बीकानेर के प्रबंध का अधिकार भी उसे ही दे दिया।

वि० सं० १५९९ (ई० स० १५४२) में हुमायूँ (सिन्ध की तरफ़ से उच्च होता हुआ) राव मालदेवजी से मदद प्राप्त करने की आशा से मारवाड़ की तरफ़ चला[2] और मार्ग में तीन दिन देरावर के क़िले में रहा[3]।

वहाँ से वह फलोदी होकर देईभर[4] नामक गाँव में पहुँचा और जोगीतीर्थ पर मुकाम किया। इस पर राव मालदेवजी ने भी अतिथि के योग्य ही ख़िलअत और मोहरें (अशरफ़ियां) आदि भेजकर उसका स्वागत किया, और हर प्रकार से मदद देने का वादा कर उसे बीकानेर का परगना ख़र्च के लिये सौंप देने की प्रतिज्ञा[5] की। इसी बीच शेरख़ाँ ने अपना वकील भेज मालदेवजी को अपनी तरफ़ मिलाने की कोशिश शुरू

१. यह शेखावाटी प्रान्त में है।

२. उस समय राव मालदेवजी का प्रताप बहुत ही बढ़ाचढ़ा था। 'तुज़ुक जहांगीरी' की भूमिका में लिखा है कि 'राव मालदेव एक बहुत बड़ा प्रभावशाली राजा था। उसकी सेना में ८०,००० सवार थे। यद्यपि राना सांगा, जो कि बाबर से लड़ा था, धन और साज-सामान में मालदेव की समानता करता था, तथापि राज्य के विस्तार और सेना की संख्या मे राव मालदेव उससे बढ़कर था। इसके अलावा जब-जब मालदेव के सैनिकों का राना सांगा से मुक़ाबला हुआ, तब-तब प्रत्येक बार विजय मालदेव के ही हाथ रही।'—(देखो पृ० ७)

'तबक़ाते अकबरी' में लिखा है कि बादशाह हुमायूँ लाचार होकर मालदेव की तरफ़, जो उस समय हिंदुस्थान के बड़े राजाओं में था और जिसकी ताक़त और फ़ौज की बराबरी दूसरा कोई राजा नहीं कर सकता था, रवाना हुआ।—(देखो पृ० २०५)

३. यह क़िला उस समय मारवाड़ और जैसलमेर की सरहद पर था और इस पर मालदेवजी का अधिकार था। हुमायूँ का आफ़ताबची जौहर अपनी 'तज़करे अल् वाक़यात'-नामक पुस्तक में लिखता है कि 'देरावर के क़िले को देखकर शेख़ अलीबेग़ ने बादशाह से पूछा कि क्या यह क़िला मैं लेलूँ? इस पर उसने जवाब दिया कि इस क़िले को लेने से तो मैं दुनिया का बादशाह न हो सकूँगा, पर राव मालदेव ज़रूर ही नाराज़ हो जायगा' (अंगरेज़ी अनुवाद पृ० ५३)।

४. यह गांव जोधपुर से ४ कोस ईशान कोण में है।

५. हुमायूँ की बहन गुलबदन बेगम-लिखित (हुमायूँ-नामा) इतिहास में इस घटना का उल्लेख है। (नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा प्रकाशित हिंदी-अनुवाद, पृ० १०२)।

की। इससे हुमायूँ को संदेह हो गया और वह फलोदी होता हुआ उमरकोट की तरफ़ चला गया।

१. फ़ारसी तवारीख़ों में लिखा है कि शेरशाह के प्रलोभनों से राव मालदेवजी ने हुमायूँ को पकड़कर उसके हाथ सौंप देने का इरादा कर लिया था और इसी से जब हुमायूँ उमरकोट की तरफ़ भागने लगा, तब इन्होंने उसको पकड़ने के लिये अपनी सेना उसके पीछे रवाना की। परंतु इसमें उसे असफल हो लौटना पड़ा।

मारवाड़ की हस्तलिखित ऐतिहासिक पुस्तकों में यह घटना इस प्रकार लिखी मिलती है—

शेरशाह से हारकर जब बादशाह हुमायूँ मालदेवजी से सहायता प्राप्त करने को जोधपुर के निकट आकर ठहरा, तब रावजी ने उसका बड़ा आदर-सत्कार किया। इसके बाद हुमायूँ ने जोधपुर के निकट रहना अनुचित समझ फलोदी में अपना मुक़ाम करने की इच्छा प्रकट की। इसे इन्होंने भी सहर्ष स्वीकार कर लिया। जब इसी के अनुसार वह देईझर से फलोदी को रवाना हुआ, तब मार्ग के ग्रामों में होनेवाले उपद्रव को रोकने के लिये इन्होंने अपने कुछ सैनिक भी उसके पीछे भेज दिए। परन्तु शाही लश्कर को इससे उलटा यह संदेह हो गया कि शायद ये लोग मार्ग में हमको मारकर शाही ख़ज़ाना लूटने को ही साथ हुए हैं।

इसके बाद एक दुर्घटना और हो गई। जिस समय हुमायूँ फलोदी पहुँचा, उस समय उसके कुछ सैनिकों ने मिलकर एक गाय को मार डाला। इससे रावजी की सेना में घोर असंतोष फैल गया। यह देख हुमायू का संदेह और भी बढ़ गया और वह फलोदी को छोड़ सिंध की तरफ़ चल पड़ा। परन्तु रावजी के सैनिकों ने समझा कि हिन्दुओं के धर्म का अपमान करने को ही शाही सैनिकों ने यह गोवध किया है। इसमें वे लोग उत्तेजित हो गए और उन्होंने जाते हुए बादशाह का पीछा किया। सातलमेर में पहुँचते-पहुँचते दोनों पक्षों के बीच मुठभेड़ हो गई। परन्तु अंत में अपने पुरुषों की संख्याधिकता के कारण हुमायूँ बचकर निकल गया और जैसलमेर होता हुआ उमरकोट जा पहुँचा।

हमारी समझ में मारवाड़ की ख्यातों का लेख ही अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होता है, क्योंकि यदि वास्तव में राव मालदेवजी शेरशाह से मिलकर बादशाह हुमायूँ को, जो कि अपने बिगड़े हुए समय में जोधपुर से ४ कोस के फ़ासले पर ठहरा हुआ था, पकड़ना चाहते, तो न तो मालदेवजी के ८०,००० सैनिकों के व्यूहसे बचकर उसका निकल भागना ही संभव होता, न उसके फलोदी जाने के समय वे इतने थोड़े सैनिक ही उसके पीछे भेजते कि जिससे सातलमेर में इतनी आसानी से वह बचकर निकल जाता। 'अकबरनामे' के अनुसार उस समय हुमायूँ के साथ केवल २० अमीर और कुछ थोड़े अनुचर तथा सैनिक थे। उसमें यह भी लिखा है कि मालदेव के विरोध का हाल मालूम होने पर हुमायूँ ने तरद्दुदी बेगख़ाँ और मुनअमख़ाँ को कुछ फ़ौज देकर हुक्म दिया कि वे लोग सामने जाकर मालदेव की सेना का मार्ग रोकें। परन्तु ये अमीर रास्ता भूलकर दूसरी तरफ़ निकल गए। इससे जैसे ही बादशाह फलोदी से चलकर सातलमेर के पास पहुँचा, वैसे ही उसे मालदेव की सेना दिखाई दी। इस पर बादशाह ने ज़नानी सवारियों को पैदल करके उनके घोड़े अपने सैनिकों को सवारी के लिये दे दिए और उनके ३ दल बनाकर फ़तेहअलीबेग को उसके ३-४ भाइयों के

पहले लिखा जा चुका है कि वीरमदेव और भीम नित्य ही शेरशाह को मालदेवजी के विरुद्ध भड़काते रहते थे। परन्तु इस हुमायूँ वाली घटना से उन्हें इसके लिये और भी अच्छा मौक़ा मिल गया। इस प्रकार उन के बहुत कुछ कहने-सुनने और प्रलोभन देने से वि० सं० १६०० (ई० सन् १५४३) में शेरशाह ने आगरे से मालदेवजी पर चढ़ाई करदी। इसकी सूचना पाते ही ये भी अपनी सेना तैयार कर अजमेर की तरफ़ आगे बढ़े और उसके आने की प्रतीक्षा करने लगे। उस समय रावजी के पास ८०,०००[1] वीर योद्धा थे। जब इनके इस प्रकार तैयार होकर सम्मुख रणांगण में प्रवृत्त होने का समाचार शेरशाह को मिला, तब उसका सारा उत्साह ठंडा पड़ गया और वह मार्ग से ही लौट जाने का विचार करने लगा। परन्तु वीरमदेव आदि ने

साथ शत्रुसेना के सामने भेजा। उसने भी तत्काल वहाँ पहुंच एक तंग जगह से निकलती हुई मालदेवजी की सेना पर हमला कर दिया। इससे थोड़ी ही देर के युद्ध में राजपूत सैनिक परास्त होकर भाग गए। इसके बाद बादशाह जैसलमेर की तरफ़ रवाना हुआ और उसके वहां पहुँचते-पहुँचते रास्ता भूले हुए वे अमीर भी लौटकर उससे आ मिले।

(देखो भाग १, पृ० १८१)

परन्तु 'तबक़ाते अकबरी' में मालदेवजी की सेना के मुक़ाबले में जानेवाले शाही सैनिकों की संख्या कुल २२ ही लिखी है। यहाँ पर 'तबक़ाते अकबरी' की एक घटना का उल्लेख कर देना और भी उचित समझते हैं। इससे राव मालदेवजी के वीर सैनिकों की वीरता का कुछ अनुमान हो जायगा:-

'जिस समय बादशाह हुमायूँ मालदेव के इलाके से उमरकोट की तरफ़ रवाना हुआ, उस समय राव के दो हिन्दू जासूस शाही सेना मे आए हुए थे। परन्तु जब वे पकड़े जाकर बादशाह के सामने लाए गए और बादशाह ने उनसे असली हाल जानने की कोशिश शुरू की, तब उन दोनों ने अपने को बंधन से छुड़वाकर पास में खड़े हुए दो मनुष्यों के कटार छीन लिए और तत्काल शाही सेना के १७ पुरुषों और बादशाह की सवारी के घोड़े के साथ कई अन्य घोड़ों को मारकर वे वीरगति को प्राप्त हुए।'

(देखो पृ० २०६)

गुलबदन वेगम के 'हुमायूँनामे' से भी इस बात की पुष्टि होती है।

(देखो पूर्वोक्त अनुवाद, पृ० १०३)

हुमायूँ के उमरकोट पहुँचने पर उसी की मदद से सोढा राजपूतों ने फिर से उमरकोट पर अधिकार कर लिया था।

१. 'तबक़ाते अकबरी' और 'तारीख़ फ़रिश्ता' में राव मालदेवजी की सेना में ५०,००० सैनिकों का होना लिखा है।

(देखो क्रमशः पृ० २३२ और जिल्द १, पृ० २२७)

उन सरदारों को भी, जिनके प्रदेशों पर मालदेवजी ने ज़बरदस्ती अधिकार कर लिया था, शेरशाह से मिलाया और हर तरह से उसका उत्साह बढ़ाकर उसे पीछे लौटने से रोक दिया। इसके बाद शेरशाह ने एक सुभीते के स्थान पर अपनी छावनी डाल दी और उसकी रक्षा के लिये रेत से भरे बोरों को चारों तरफ़ ऊपर-तले रखवाकर सुदृढ़ कोट-सा तैयार करवा लिया। क़रीब एक मास तक दोनों सेनाएँ मोरचे बाँधे एक दूसरे के सामने पड़ी रहीं। हाँ, समय-समय पर इन दोनों के बीच अनेक छोटे-बड़े युद्ध भी होते रहते थे, परन्तु राव मालदेवजी की वीर राठोड़वाहिनी के सामने शेरशाह की एक न चली। इससे हताश होकर वह एक बार फिर लौट जाने का विचार करने लगा। यह देख वीरम ने उसे बहुत कुछ समझाया। जब इस पर भी वह सम्मुख युद्ध में लोहा लेने की हिम्मत न कर सका, तब अंत में वीरम ने उसे यह भय दिखाया कि यदि आप इस प्रकार घबराकर लौटेंगे, तो रावजी की सेना पीठ पर आक्रमण कर आपके बल को आसानी से नष्ट कर डालेगी। परन्तु जब इतने पर भी शेरशाह युद्ध के लिये सहमत न हुआ, तब वीरमदेव ने एक कपटजाल रचा। उसने मालदेवजी के बड़े-बड़े सरदारों के नाम कुछ झूठे फ़रमान लिखवाकर रावजी की सेना में भिजवा दिए और साथ ही ऐसा प्रबंध करवा दिया कि वे सब फ़रमान उन सरदारों के पास न पहुँच कर रावजी के पास पहुँच गए¹। इससे रावजी को अपने सरदारों पर संदेह

१. मारवाड़ की ख्यातों में लिखा है कि इधर तो वीरम ने इन फ़रमानों को ढालों के अन्दर की गद्दियों में सिलवा कर उन्हें अपने गुप्तचरों द्वारा मालदेवजी के सरदारों के हाथ बिकवा दीं और उधर रावजी को सूचना दी कि यद्यपि आपने मेरे साथ बहुत ज़्यादती की है, तथापि मैं आपको सूचना दे देना अपना कर्तव्य समझता हूँ कि आपके सारे सरदार शेरशाह से मिल गए हैं। यदि आपको विश्वास न हो तो, उनकी नई ढालों की गद्दियाँ फड़वाकर स्वयं देख लें। इस पर रावजी ने जब वे ढालें मँगवा कर उनकी गद्दियाँ खुलवाईं, तब उनमें से वे जाली फ़रमान निकल आए।

मारवाड़ की तवारीख़ों में यह भी लिखा है कि जिस समय यह कपट रचा गया था, उस समय बादशाह का मुकाम सुमेल और मालदेवजी का गिररी में था।

'मुन्तख़िबुल्लुबाब' में लिखा है कि ये जाली पत्र चालाकी से राव के पास पहुँचा दिए गए थे। इनमें एक पत्र गोविंद (कूँपा) के नाम का भी था। इस गोविंद (कूँपा) ने राव के युद्धस्थल से हट जाने पर पठानों से ऐसी वीरता से युद्ध किया कि उनके हज़ारों आदमी मार डाले। साथ ही उसके हमलों से शेरशाह की फ़ौज के पैर उखड़ गए और वह युद्धस्थल से भाग ही चुकी थी कि इतने में नई फ़ौज के साथ जलालख़ाँ जलवानी एकाएक वहाँ आ पहुँचा। इससे पठान विजयी हो गए।

(देखो जिल्द १, पृ० १००-१०१)

हो गया। यद्यपि सरदारों ने हर तरह से अपने स्वामी का समाधान करने की चेष्टा की, तथापि उनका संदेह निवृत्त न होसका और यह रात्रि में ही पीछे लौट पड़े। यह देख इनके जैता, कूँपा आदि कई सरदारों ने गिररी (जैतारण परगने के गाँव) से पीछे हटने से इनकार कर दिया। उन्होंने निवेदन किया कि इसके आगे का प्रदेश तो स्वयं आपने ही विजय किया था, इसलिये यदि उसे छोड़ दिया जाय, तो हमें कोई आपत्ति नहीं होसकती। परन्तु यहाँ से पीछे का देश आपके और हमारे पूर्वजों का विजय किया हुआ है, इसलिये यहाँ से हटना हमें किसी प्रकार भी अंगीकार नहीं हो सकता। इस पर भी मालदेवजी का उनके कहने पर विश्वास नहीं हुआ और ये जोधपुर की तरफ़ रवाना हो गए। यह देख जैता, कूँपा आदि कुछ सरदार १२,००० सवारों के साथ पलट पड़े और रात्रि के अंधकार में ही शेरशाह की सेना पर हमला कर देने को रवाना हुए। परन्तु भाग्य की कुटिलता से ये लोग अंधकार में मार्ग भूल गए, अतः प्रातःकाल के समय इनमें से आधे के क़रीब योद्धा सुमेल के पास शेरशाह के मुक़ाबले पर पहुँचे। यद्यपि ऐसे समय ६,००० राजपूत सैनिकों[1] का ८०,००० पठान सैनिकों से भिड़ जाना बिलकुल ही अनुचित था, तथापि वीर राठोड़ों ने इसकी कुछ भी परवा नहीं की और अपनी मर्यादा की रक्षा के लिये शत्रुसेना में घुसकर वह तलवार बजाई कि एक बार तो पठानों के पैर ही उखड़ गए। शेरशाह भी अपनी इस पराजय से दुखित हो भागने को तैयार हो गया। परन्तु इतने ही में उसका एक सरदार जलालख़ाँ जलवानी एक बड़ी और ताज़ादम फ़ौज लेकर वहाँ आ पहुँचा। राठोड़ सरदार तो पहले से ही संख्या में अल्प थे और अब तक के युद्ध में उनकी संख्या और भी अल्पतर हो चुकी थी। इससे पासा पलट गया। सारे-के-सारे राठोड़ योद्धा अपने देश और मान की रक्षा के लिये सम्मुख रण

कहीं-कहीं पत्रों के साथ ही सामान ख़रीदने के बहाने रावजी की सेना में फ़ीरोज़ी सिक्कों के भिजवा देने का भी उल्लेख मिलता है।

१. 'तबक़ाते अकबरी' में २०,००० सैनिक लिखे हैं। परंतु उसमें यह भी लिखा है कि इन बीस हज़ार सवारों में से रात में रास्ता भूल जाने के कारण सिर्फ़ ५ या ६ हज़ार सवार शेरशाह की सेना के क़रीब पहुँचे। बड़ी घमसान लड़ाई हुई। यहां तक कि राजपूत घोड़ों से उतरकर शेरशाह की फ़ौज से चिमट गए और कटार तथा जमधर से ख़ूब लड़े। परंतु शेरशाही फ़ौज बहुत ज़्यादा थी। इसी से उसने चारों ओर से घेरकर बहुत-से राजपूतों को मार डाला। इस फ़तेह के पीछे, जो शेरशाह की ताक़त से बाहर थी, वह (शेरशाह) रणथंभोर की तरफ़ रवाना हुआ।–(देखो पृ० २३२)

में जूंझकर मर मिटे[1]। जब यह संवाद शेरशाह को मिला, तब इस पर पहले तो उसे विश्वास ही नहीं हुआ; परन्तु कुछ देर बाद उसके दिल का बोझ हलका हो जाने पर उसके मुँह से ये शब्द निकल पड़े[2]।

"ख़ुदा का शुक्र है कि किसी तरह फ़तह हासिल हो गई, वरना मैंने एक मुट्ठी बाजरे के लिये हिन्दुस्थान की बादशाहत ही खोई थी।"

जिस समय राव मालदेवजी को अपने सरदारों की इस वीरता और स्वामिभक्ति का सच्चा समाचार मिला, उस समय यह बहुत ही दुखी हुए। परन्तु समय हाथ से निकल चुका था। साथ ही प्रधान-प्रधान सरदार भी युद्ध में मारे जा चुके थे। अतः सिवा चुप रहने के और कोई मार्ग ही नहीं था। इससे वे सिवाने की तरफ़ चले गए।

इस प्रकार कपट और भाग्य की सहायता से विजयी होकर शेरशाह ने जोधपुर के क़िले को घेर लेने का प्रबंध किया। यद्यपि वहाँ के सरदारों ने भी बड़ी बहादुरी के साथ इसका मुक़ाबला किया, तथापि अंत में वे सब-के-सब मारे गए[3]। इस प्रकार वि० सं० १६०१ (ई० स० १५४४) में यह क़िला भी शेरशाह के अधिकार में चला गया। इसी अवसर पर उसने मेड़ता राव वीरमदेव को और बीकानेर राव कल्याणमलजी को लौटा दिया, तथा अपनी विजय की यादगार में जोधपुर में दो

१. इस युद्ध में राठोड़ जैतां[(१)], राठोड़ कूंपां[(२)], राठोड़ खींवकरण[(३)] ऊदावत, राठोड़ पंचायण[(४)] करमसोत, सोनगरा अखैराज[(५)] और जैसा भाटी नींबां[(६)] आदि अनेक राजपूत सरदार और वीर मारे गए थे।

२. इस युद्ध का हाल अधिकतर फ़ारसी तवारीख़ फ़रिश्ता और 'मुन्तख़िबुल्लुबाब' से ही लिया गया है।

(तवारीख़ फ़रिश्ता, भा० १, पृ० २२७-२२८ और मुन्तखिबुल्लुबाब, हिस्सा १, पृ० १००-१०१)

३. उस समय क़िले की रक्षा करने में जो सरदार मारे गए थे, उनमें के राठोड़ अचला शिवराजोत, राठोड़ तिलोकसी वरजांगोत, भाटी जैतमाल और भाटी शंकर सूरावत की छतरियाँ अब तक क़िले में विद्यमान हैं।

(१) यह बगड़ी का ठाकुर था।
(२) इसके वंशज आसोप आदि के ठाकुर हैं।
(३) इसके वंशज रायपुर वगैरा के ठाकुर हैं।
(४) इसके वंशज खींवसर वगैरा के स्वामी हैं।
(५) यह पाली का ठाकुर था।
(६) इसके वंशज लवेरे के स्वामी हैं।

मसजिदें बनवाने की आज्ञा दी । इनमें की एक तो क़िले पर और दूसरी फुलेलाव तालाब के पास बनवाई गई[1] थी । इसी प्रकार उसके सेनापति ने क़िले के उत्तर-पूर्व की तरफ़ से बाहर आने-जाने के लिये एक रास्ता भी निकाला था । इसके बाद चारों तरफ़ अपने थाने बिठाकर[2] और जोधपुर का प्रबंध ख़वासख़ाँ को सौंप[3] कर वह (अजमेर से) रणथंभोर की तरफ़ चला गया । परन्तु वि० सं० १६०२ (ई० सन् १५४५) में ही कालिंजर में उसकी मृत्यु हो गई ।

क़रीब डेढ़ वर्ष तक मारवाड़ में मुसलमानों का ही ज़ोर रहा । परन्तु इसके बाद राव मालदेवजी ने जालोर और परबतसर के परगनों से सेना संग्रह कर पाती-नामक गाँव (भाद्राजण के पास) में अपना निवास क़ायम किया और कुछ समय के भीतर सब प्रबंध ठीक हो जाने पर वि० सं० १६०३ (ई० स० १५४६) में भांगेसर (पाली परगने) के शाही थाने पर हमला कर दिया । कुछ ही देर के घमसान युद्ध के बाद पठान भाग गए । इस प्रकार वहाँ पर रावजी का अधिकार हो जाने पर इन्होंने जोधपुर से भी पठानों को मार भगाया ।

अगले वर्ष (वि० सं० १६०४=ई० सन् १५४७ में) इनकी सेना ने हम्मीर[4] से फलोदी छीन ली ।

इसी वर्ष राव मालदेवजी के और उनके ज्येष्ठ पुत्र रामसिंह के बीच मनोमालिन्य हो गया । इससे इन्होंने रामसिंह और उसकी माता (कछवाहीजी) को गूंदोज (पाली परगने) में भेज दिया[5] । भटियानी उमादे ने इस राम को अपना दत्तक पुत्र मान लिया था । इसलिये वह भी उसी के साथ वहाँ चली गई ।

---

१. पहली मसजिद का चिह्नस्वरूप एक छोटा-सा पीर का स्थान जैपोल से क़िले में घुसते ही दाहिने हाथ की तरफ़ अब तक मौजूद है और दूसरी का अवशिष्टांश शहर में फुलेलाव तालाब के दरवाजे के भीतर का पीर का ताक़ है ।

२. ख्यातों के अनुसार उसी समय नागोर पर भी शेरशाह का अधिकार हो गया था ।

३. इसकी क़बर आजकल शहर मे ख़वासख़ाँ (ख़ासगा) पीर की दरगाह के नाम से प्रसिद्ध है ।

४. यह राव सूजाजी का पौत्र और नरा का पुत्र था ।

५. कुछ दिन बाद महाराणा उदयसिंहजी ने अपने जामाता राम को मेवाड़ में बुलवा कर अपने पास रख लिया और बाद में उसे केलवा की जागीर दी । इस पर वह भी सकुटुम्ब वहीं जाकर रहने लगा ।

ख्यातों से ज्ञात होता है कि वि० सं० १६०५ (ई० सन् १५४८) में रावजी की आज्ञा से जैतावत राठोड़ पृथ्वीराज ने फिर मुसलमानों को भगाकर अजमेर पर अधिकार कर लिया था। यह देख महाराना उदयसिंहजी ने उसे इनसे छीन लेने के लिये अपनी सेना रवाना की। परन्तु युद्ध में हारकर उसे लौटना पड़ा।

वि० सं० १६०७ (ई० सन् १५५०) में मालदेवजी ने राठोड़ नगा और बीदा[1] को सेना देकर पौकरण पर अधिकार करने के लिये भेजा। उस समय वहाँ पर जैतमाल[2] का अधिकार था। यद्यपि उसने भी रावजी की सेना का सामना करने में कोई कसर उठा न रक्खी, तथापि अंत में वहाँ पर मालदेवजी का अधिकार हो गया और जैतमाल क़ैद कर लिया गया। परन्तु जब कुछ ही समय बाद उसे छुटकारा मिला, तब फिर उसने अपने श्वसुर जैसलमेर के रावल मालदेवजी की सहायता से फलोदी पर अधिकार कर लिया[3]। इसकी सूचना पाने पर स्वयं राव मालदेवजी ने फलोदी पर चढ़ाई की। यद्यपि जैतमाल के सहायक भाटियों ने फलोदी की रक्षा का बहुत कुछ उद्योग किया, तथापि राठोड़ वीरों के सामने उन्हें भागना पड़ा और वहाँ पर फिर मालदेवजी का अधिकार हो गया। जिस समय ये भागे हुए भाटी मार्ग में बाहड़मेर के पास पहुँचे, उस समय इनकी विशृंखलित दशा को देख वहाँ के रावत भीम ने इनके १,००० ऊँट पकड़ लिए। परन्तु रावजी की आज्ञा के अनुसार कुछ ही दिन बाद राठोड़ जैसा और जैतावत पृथ्वीराज ने आकर भीम से वे ऊँट छीन लिए। इस अवसर पर रावत भीम स्वयं भी पृथ्वीराज के हाथ से घायल होकर पकड़ा गया। परन्तु रावजी के पास लाए जाने पर इन्होंने उसे छोड़ दिया और पृथ्वीराज की वीरता से प्रसन्न होकर उसे अपने सेनापति का पद दिया।

परन्तु रावत भीम ने इस अपमान का बदला लेने के लिये बाहड़मेर पहुँचते ही मालदेवजी के राज्य में उपद्रव शुरू कर दिया। यह देख वि० सं० १६०९ (ई० सन् १५५२) में रावजी ने राठोड़ रतनसी और सिंघण को सेना देकर बाहड़मेर पर अधिकार कर लेने की आज्ञा दी। इसी के अनुसार उन्होंने वहाँ पहुँच बाहड़मेर और

---

१. ये बाला राठोड़ भारमल के पुत्र थे।

२. यह राव सूजाजी के पुत्र नरा का पौत्र और गोविंददास का पुत्र था। तथा समय-समय पर मालदेवजी के राज्य में लूटमार किया करता था। इसी से यह चढ़ाई की गई थी।

३. कहीं-कहीं पर पूंगल के भाटी जैसा का भी फलोदी पर चढ़ाई करना और हारकर लौटना लिखा मिलता है।

कोटड़े पर अधिकार कर लिया। रावत भीम हार कर जैसलमेर पहुँचा और उसने रावलजी से कहा कि बाहड़मेर और कोटड़ा जैसलमेर के द्वाररूप हैं। यदि वहाँ पर मालदेवजी के पैर जम गए, तो कुछ काल में ही वे जैसलमेर को भी दबा बैठेंगे। इसलिये आपको पुराना वैर भूल कर[1] मेरी सहायता करनी चाहिए। यह सुन रावल मालदेवजी ने अपने पुत्र हरराज को मय सेना के उसके साथ कर दिया। जब इसकी सूचना रावजी को मिली, तब इन्होंने भी रतनसी और सिंघण को उनका सामना करने की आज्ञा भेज दी। युद्ध होने पर कुछ समय तक तो भाटियों ने भी जमकर राठोड़ों का सामना किया; परन्तु अंत में उनके पैर उखड़ गए और भीम का सारा साज-सामान लूट लिया गया।

जैसलमेरवाले अब तक दो बार मालदेवजी के विरुद्ध सेना भेज चुके थे। अतः राव मालदेवजी ने उन्हें दंड देने का निश्चय किया। इसी के अनुसार जब सेना की तैयारी हो चुकी, तब इन्होंने चांपावत (भैरूँदास के पुत्र) जैसा और जैतावत पृथ्वीराज[2] को जैसलमेर पर चढ़ाई करने की आज्ञा दी। इन दोनों ने वहाँ पहुँच जैसलमेर को घेर लिया। इसके बाद कुछ ही दिनों के धावों में नगर पर राठोड़ों का अधिकार हो गया और रावलजी को क़िले में घुस कर बैठना पड़ा। अंत में रावलजी ने दण्ड के रूप में कुछ रुपये देकर राव मालदेवजी से सुलह करली।

वि० सं० १६१० (ई० सन् १५५३) में मालदेवजी ने वीरमदेव के पुत्र और मेड़ते के शासक जैमल[3] को जोधपुर में उपस्थित होने की आज्ञा भेजी[4]। परन्तु

१. यह पुराना वैर भागते हुए भाटियों से १,००० ऊँटों के छीन लेने का था। इसका उल्लेख ऊपर आ चुका है।

२. कहते हैं कि इस युद्ध में एक बार पृथ्वीराज एक बड़ के दरख्त की आड़ से शत्रुओं पर आक्रमण कर रहा था। यह देख शत्रुओं ने उस बड़ को ही काट डालने का इरादा किया। परंतु वीर पृथ्वीराज ने उन्हें सफल नहीं होने दिया। इसी से वह बड़ का वृक्ष 'पृथ्वीराज के बड़' के नाम से मशहूर हो गया।

३. इसका जन्म वि० सं० १५६४ की आश्विन सुदी ११ को हुआ था।

४. किसी-किसी ख्यात में मालदेवजी का वि० सं० १६०३ (ई० स० १५४६) में भी मेड़ते पर फ़ौज भेजना और उसी समय बीकानेरवालों का मेड़तेवालों की सहायता करना लिखा मिलता है। परंतु वि० सं० १६१० (ई० स० १५५३) की चढ़ाई के समय उक्त सहायता का उल्लेख छोड़ दिया गया है। इसी प्रकार राव वीरम की मृत्यु का समय भी कहीं पर वि० सं० १६०० और कहीं पर १६०४ लिखा मिलता है।

जब उसने इस पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया, तब रावजी ने क्रुद्ध होकर स्वयं मेड़ते पर चढ़ाई की और उक्त नगर को घेर लिया। यह देख जयमल भी युद्ध के लिये तैयार हुआ। इसी बीच उसने दूत द्वारा बीकानेर के राव कल्याणमलजी के पास भी सहायता के लिये सेना भेजने की प्रार्थना लिख भेजी। युद्ध होने पर यद्यपि एक बार तो नगर पर रावजी की सेना का अधिकार हो गया, तथापि बाद में बीकानेरवालों की सहायता पहुँच जाने से इन्हें वहाँ से लौट आना पड़ा। इस युद्ध में मालदेवजी का सेनापति पृथ्वीराज और भारमल का पुत्र राठोड़ नगा मारा गया था। अतः वीर देवीदास ने अपने भाई पृथ्वीराज का बदला लेने का विचार कर मालदेवजी से मेड़ते पर चढ़ाई करने की आज्ञा माँगी। इन्होंने भी उसकी प्रार्थना स्वीकार करली और अपने पुत्र चंद्रसेनजी को सेना देकर उसके साथ कर दिया। ये लोग मार्ग के गाँवों को लूटते हुए मेड़ते पहुँचे। यह देख जयमल भी युद्ध के लिये तैयार हो गया। इसी अवसर पर विवाह करने को बीकानेर जाते हुए महाराना उदयसिंहजी उधर आ निकले और उन्होंने इस गृहकलह को शांत करने के लिये समझा-बुझाकर देवीदास को तो जोधपुर की तरफ़ लौटा दिया और जयमल को अपने साथ लेलिया। इससे मेड़ते पर विना युद्ध के ही मालदेवजी का अधिकार हो गया।

पहले लिखा जा चुका है कि वि० सं० १५९५ (ई० सन् १५३८) के पूर्व ही जालोर पर बलोचों का अधिकार हो गया था और पठान भागकर गुजरात की तरफ़ चले गए थे। परन्तु वि० सं० १६०९ (ई० सन् १५५२) के क़रीब मलिक़ख़ाँ की अधीनता में पठानों ने जालोर पर प्रत्याक्रमण कर वहाँ के बहुत-से बलोचों को मार डाला। इस पर बलोचों के कामदार गंगादास ने सींधलों से मिलकर मालदेवजी से सहायता मांगी। इन्होंने भी अपनी सेना के द्वारा उन्हें क़िले से सही सलामत निकलवा कर पाटन (गुजरात में) पहुँचवा दिया और जालोर के क़िले पर अपना अधिकार कर लिया। परन्तु राठोड़ सेना उस क़िले में पूरी तौर से अपने पैर भी न जमाने पाई थी कि मलिक़ख़ाँ ने उस पर आक्रमण कर दिया। पठान लोग क़िले में रह चुकने के कारण वहाँ की हरएक बात से परिचित थे। इसलिये राठोड़ों को लाचार होकर क़िला छोड़ देना पड़ा। यह घटना वि० सं० १६१० (ई० सन् १५५३) की है। इसके कुछ काल बाद ही अगली पराजय का बदला लेने के लिये रावजी की सेना ने फिर जालोर पर चढ़ाई की। मलिक़ख़ाँ क़िला

छोड़ कर भाग गया, और वहाँ पर रावजी का अधिकार हो गया। परन्तु दो वर्ष बाद इधर-उधर के लोगों को जमा कर मलिकख़ाँ ने एक बार फिर क़िले पर चढ़ाई कर दी। यद्यपि इस अचानक होनेवाले आक्रमण से मालदेवजी की सेना क़िले में घिर गई, तथापि वह बराबर सात दिन तक शत्रु का सामना करती रही। परन्तु इसी बीच इधर तो रसद की कमी हो गई और उधर क़िले के कुछ अन्य निवासी विश्वास घात कर पठानों के प्रलोभनों में पड़ गए। इस पर लाचार हो राठोड़-सेना को क़िला छोड़ना पड़ा।

वि० सं० १६१३ (ई० सन् १५५६) में राव मालदेवजी ने बगड़ी के ठाकुर जैतावत देवीदास की अधीनता में हाजीख़ाँ पर सेना भेजी। यह देख उसने महाराना उदयसिंहजी से सहायता माँगी। उन्होंने भी इसे स्वीकार कर अपने सैनिक उसकी मदद में भेज दिए। राठोड़ सेनानायक ने पहले से ही अपनी सेना की संख्या कम होने और महाराना के हाजीख़ाँ से मिल जाने के कारण युद्ध करना उचित न समझा। इसी अवसर पर जैमल ने भी महाराना की मदद से मेड़ते पर फिर से अधिकार कर लिया। परन्तु इसके कुछ ही दिनों बाद महाराना उदयसिंहजी के और हाजीख़ाँ के बीच झगड़ा हो गया[3] और स्वयं महाराना ने बीकानेर के राव कल्याणमलजी और जयमल को साथ लेकर हाजीख़ाँ पर चढ़ाई कर दी। यह देख ख़ाँ ने मालदेवजी से सहायता चाही। इस पर रावजी ने पहले के अपमान का बदला लेने के लिये देवीदास की अधीनता में १,५०० सवार हाजीख़ाँ की मदद को भेज दिए। हरमाड़ा गाँव (अजमेर प्रांत) के पास पहुँचने पर रानाजी की सेना से इनका

१. तारीख़ पालनपुर, जिल्द १ पृ० ७३-७६।

२. वि० सं० १६१२ के श्रावण (ई० स० १५५५ की जुलाई) मे ईरान की सेना की मदद से हुमायूँ ने दिल्ली और आगरे पर फिर अधिकार कर लिया था। परंतु वि० सं० १६१२ के माघ (ई० स० १५५६ की जनवरी) में उसकी मृत्यु होगई और उसका पुत्र अकबर गद्दी पर बैठा। इस पर पठान हाजीख़ाँ ने जो शेरशाह का गुलाम था अलवर से आकर अजमेर और नागोर पर अधिकार करलिया। उस समय अजमेर रानाजी के अधिकार में था।

(ईलियट्स हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया, भा० ६, पृ० २१)

३. कहते हैं कि महाराना उदयसिंहजी ने मालदेवजी के विरुद्ध दी हुई मदद के बदले हाजीख़ाँ से रंगराय नामक नर्तकी को माँगा था। परन्तु हाजीख़ाँ के उसको देने से इनकार कर देने पर रानाजी नाराज़ हो गए और उस पर चढ़ाई कर दी।

मुक़ाबला हुआ। यद्यपि सीसोदिये सरदार भी बड़े बहादुर थे, तथापि वे राटोड़ों की तलवार का तेज न सह सके और कुछ ही देर बाद युद्ध से भाग खड़े हुए। इस युद्ध में रानाजी की तरफ़ के योद्धाओं में बालेचा सूजा भी मारा गया था। यह युद्ध वि० सं० १६१३ की फाल्गुन वदी ९ (ई० सन १५५७ की २४ जनवरी) को हुआ था।

इसी बीच रावजी ने मेड़ते पर भी एक सेना भेज दी थी। अतः जिस समय जयमल लौट कर मेड़ते पहुँचा, उस समय तक वहाँ पर मालदेवजी का अधिकार हो चुका था और राव मालदेवजी का पुत्र जैमल और वीरवर देवीदास वहाँ की रक्षा पर नियत थे। इससे उसे मेड़ते की आशा छोड़ कर महाराना के पास वापस लौट जाना पड़ा। इसपर उदयसिंहजी ने उसकी वीरता और सेवाओं का विचारकर उसे बदनोर की जागीर दे दी।

१. ख्यातों में लिखा है कि बालेचा सूजा मेवाड़ से आकर मालदेवजी की सेवा में रहने लगा था। परन्तु जिस समय इन्होंने वि० सं० १६०७ (ई० सन १५५०) के करीब कुंभलगढ़ पर चढ़ाई की, उस समय वह इनका साथ देने से इनकार कर मेवाड़ को वापस लौट गया। इस पर महाराना ने उसे फिर अपने पास रख लिया। जिस समय रावजी ने देवीदास को इस युद्ध में भेजा था, उस समय उसे सूजा से बदला लेने का खास तौर से आदेश दे दिया था। इसके बाद जब मेवाड़ की सेना को परास्त कर और सूजा को मारकर देवीदास वापस लौटा, तब रावजी ने उसकी वीरता की बड़ी प्रशंसा की और उसे मेड़ते की रक्षा के लिये भेज दिया।

२. इसी वर्ष (वि० सं० १६१३=हि० स० ९६४=ई० सन् १५५७ में) अकबर की आज्ञा से मुहम्मद कासिमखाँ नेशापुरी ने हाजीखाँ से अजमेर और नागोर छीन लिया।

(इलियट्स हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया, भा० ६, पृ० २२)

३. वि० सं० १६१५ (ई० स० १५५८) का एक शिलालेख इस (महाराज-कुमार) जैमल का मेड़ते परगने के रैंगा नामक गांव से मिला है। इसमें राव मालदेवजी के राज्य समय उक्त राजकुमार (जैमल) के द्वारा भूमिदान किए जाने का और साथ ही इस दान के जगमाल के द्वारा पालन किए जाने का उल्लेख है। इस लेख में का जगमाल मेड़तिया राठोड़ जयमल का छोटा भाई था और उसको मालदेवजी ने मेड़ते का आधा हिस्सा जागीर में दे दिया था। वि० सं० १६१८ (ई० स० १५६१) में जब बादशाह अकबर की सेना ने मेड़ता विजय करते समय मालकोट की दीवार को सुरंग से उड़ा दिया, उस समय यह जगमाल अपने कुटुम्बियों के साथ बाहर निकल गया था।

४. कहीं-कहीं वि० सं० १६११ के आश्विन (ई० स० १५५४ के सितम्बर) मास में इस जागीर का दिया जाना लिखा है। इससे ज्ञात होता है कि जिस समय देवीदास और

वि० सं० १६१४ (ई० सन् १५५७=हि० सन् ६६५) में कासिमख़ाँ (अजमेर के सूबेदार) की आज्ञा से सैयद मैहमूद बाराह और शाह कुलीख़ाँ ने जैतारण पर चढ़ाई की। इसपर वहाँ के स्वामी ऊदावत रतनसी ने मालदेवजी से सहायता माँगी। परन्तु रावजी ने उससे अप्रसन्न होने के कारण[1] इधर ध्यान ही नहीं दिया। इससे युद्ध में रतनसी मारा गया और जैतारण पर मुसलमानों का अधिकार हो गया[2]।

इसके बाद राव मालदेवजी ने मेड़ते में के वीरमदेव और जयमल के बनवाए हुए स्थानों को गिरवाकर वहाँ पर एक नया क़िला बनवाया और उसका नाम अपने नाम पर मालकोट रक्खा। साथ ही वहाँ के नगर को भी नए सिरे से बसाया।

ख्यातों से ज्ञात होता है कि वि० सं० १६१६ (ई० सन् १५५९) में जैतावत देवीदास को जालोर पर चढ़ाई करने की आज्ञा दी गई थी। इसी के अनुसार पहले तो उसने बिहारी पठानों से जालोर छीन लिया और इसके बाद बदनोर पर आक्रमण कर दिया। इससे जैमलजी को उक्त प्रदेश छोड़ देना पड़ा।

वि० सं० १६१८ (ई० सन् १५६१) में जिस समय अकबर बादशाह[3] अजमेर को आता हुआ मार्ग में सांभर में ठहर हुआ था, उस समय जयमल जाकर उससे मिला और अपना सारा वृत्तांत कह कर अपने पैतृक राज्य मेड़ते पर अधिकार करने में सहायता चाही। बादशाह ने भी आपस की फूट से अपने पिता का बदला

महाराजकुमार चंद्रसेनजी ने मेड़ते पर चढ़ाई की थी और महाराना उदयसिंहजी बीच बचावकर जयमल को अपने साथ बीकानेर ले गए थे, उस समय वहां से उदयपुर लौटने पर ही शायद यह जागीर उसे दी गई होगी।

१. वि० सं० १६१० (ई० स० १५५३) में मेड़ता विजय करते समय यद्यपि रतनसी राव मालदेवजी की तरफ़ से युद्ध में सम्मिलित हुआ था, तथापि लड़ाई के समय उसने जयमल के पक्ष के ऊदावत डूँगरसी को वार में आ जाने पर भी अपना कुटुम्बी समझ छोड़ दिया था। इसी से मालदेवजी उससे नाराज़ हो गए थे।

२. ईलियट्स हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया, भा० ६, पृ० २२ (अकबरनामा दफ़ा २, पृ० ६६)

मारवाड़ की ख्यातों मे इस घटना का कासिमख़ाँ द्वारा वि० सं० १६१६ (ई० स० १५५९) में होना लिखा है। परंतु यह ठीक प्रतीत नहीं होता।

३. 'तबकाते अकबरी' में लिखा है—

जब हि० स० ९६७ (वि० सं० १६१७=ई० स० १५६०) में बादशाह अकबर ख़ाँख़ानान् बेहरामख़ाँ से नाराज़ हो गया, तब उसको हज़ का बहाना करना पड़ा। परंतु जिस समय वह इस यात्रा के लिये गुजरात की तरफ़ चला, उस समय उसे ख़याल आया कि इस मार्ग में तो मेरा प्रबल

लेने का अवसर आया देख तत्काल ही मिरज़ा शरफ़ुद्दीन को मय सेना के उसके साथ कर दिया। इन लोगों ने मेड़ते पहुँच वहाँ के क़िले को घेर लिया। परन्तु कई दिन बीत जाने पर भी जब वे लोग राठोड़ों की वीरता के सामने सीधी तरह क़िले पर अधिकार न कर सके, तब उन्होंने सुरंग लगाकर क़िले का एक बुर्ज उड़ा दिया। इसके बाद शाही सैनिक इस रास्ते से अंदर घुसने का जी तोड़ प्रयत्न करने लगे। परन्तु मुट्ठी-भर राठोड़ वीरों ने वह बहादुरी दिखलाई कि शाही सेना को ठिठककर रुक जाना पड़ा। रात्रि में युद्ध बंद हो जाने पर क़िलेवालों ने बड़ी कोशिश के साथ वह बुर्ज फिर से खड़ा कर लिया, इससे शाही सेना का सब प्रयत्न विफल हो गया। परन्तु इसके कुछ दिन बाद जब क़िले की रसद बिलकुल ही समाप्त हो चुकी, तब बचे हुए राठोड़ों ने क़िला छोड़ कर बाहर निकल जाने का इरादा प्रकट किया। शाही सेना के अफ़सर तो इन वीरों की वीरता का लोहा पहले से ही मान चुके थे। अतः उन्होंने इसमें किसी प्रकार की आपत्ति नहीं की और वे क़िले के दरवाज़े से हटकर खड़े हो गए। इस पर जगमाल तो क़िले से निकल कर चला गया। परन्तु जिस समय देवीदास अपने ४०० सवारों-सहित शाही सेना के सामने से जाने लगा, उस समय लोगों के भड़काने से मिरज़ा ने अपनी प्रतिज्ञा तोड़[2] दी और उसके निकलने पर उसका पीछा किया। कुछ ही दूर जाने पर जब देवीदास को इस बात

शत्रु जोधपुर का राजा मालदेव निवास करता है, जिसके पास बहुत अधिक साज-सामान है। यह सोच उसने अपना रास्ता बदल लिया और वह नागोर से बीकानेर चला गया। वहां पर कल्याणमल और उनके पुत्र रायसिंह ने उसकी बड़ी मेहमानदारी की। इसलिये वहां पर कुछ दिन आराम कर वह पंजाब की तरफ़ चला गया। —(देखो पृ० २५२)

१. कहीं-कहीं यह भी लिखा है कि राव मालदेवजी ने अपने महाराजकुमार चंद्रसेनजी को सेना देकर मेड़तेवालों की सहायता के लिये भेज दिया था। परंतु वहां पहुँचने पर उनके साथ के सरदार अपने से कहीं बड़ी शाही सेना से सामना करना हानिकारक जान उन्हें जोधपुर वापस ले आए।

इसी प्रकार ख्यातों में यह भी लिखा है कि मेड़तेवालों की सहायता के लिये रीयां के राठोड़ साँवलदास ने भी अपनी सेना लेकर अचानक ही शाही फ़ौज पर हमला कर दिया था। परंतु युद्ध में घायल हो जाने के कारण उसे लौट जाना पड़ा। इसका बदला लेने को यवन सेना के एक भाग ने जाकर रीयां को घेर लिया। इन्हीं के साथ के युद्ध में साँवलदास मारा गया।

२. 'अकबरनामे' में लिखा है कि उस समय मेड़ते पर मालदेव का अधिकार था, जो उस समय के सब से बड़े राजाओं में से था और उसकी तरफ़ से वहां की रक्षा का भार एक

का पता चला, तब वह वीर राठोड़ वापिस लौटकर उससे भिड़ गया। यद्यपि उस समय राजपूतों ने बड़ी बहादुरी से मुगलों का सामना किया, तथापि संख्या की अधिकता के कारण विजय मुसलमानों के ही हाथ रही। वीर देवीदास युद्ध करता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ। यह युद्ध सोगावास और मेड़ते के बीच हुआ था।

इसके बाद शरफुद्दीन ने मेड़ते का अधिकार जयमल को सौंप दिया, परन्तु स्वयं उसे साथ लेकर नागोर पहुँचा। वहीं पर इन दोनों के बीच किसी बात पर झगड़ा हो गया। इस पर जयमल उसे छोड़कर चित्तौड़ चला गया। कुछ ही काल के भीतर बादशाह अकबर ने अजमेर के सूबे का प्रबंध कर मारवाड़ के परबतसर और

बड़े सरदार जगमाल को सौंपा हुआ था। साथ ही उसकी मदद के लिये ५०० सवारों के साथ वीरवर देवीदास भी नियत था।

(देखो भा० २, पृ० १६०)

'तबक़ाते अकबरी' में उस समय मेड़ते के क़िले का जैमल के अधिकार में होना लिखा है (देखो पृ० २५६)। यह ठीक नहीं है। उस समय के वहां के क़िलेदार का नाम जगमाल ही था।

'अकबरनामे' में यह भी लिखा है कि देवीदास संधि के विरुद्ध अपना साज सामान जलाकर क़िले से निकला था। इसीलिये शरफुद्दीन ने उसका पीछा किया। उसी पुस्तक में आगे लिखा है कि देवीदास ने युद्ध मे वह काम किया कि रुस्तम का नाम और निशान तक दुनिया से मिटा दिया। अंत मे युद्ध करता हुआ वह घोड़े से गिर पड़ा। इसी समय बहुत-से सैनिकों ने धावा कर उसे मार डाला (देखो भाग २, पृ० १६२)।

मारवाड़ की ख्यातों और फ़ारसी तवारीखों मे देवीदास का एक संन्यासी द्वारा बचाया जाना और कुछ वर्ष बाद चंद्रसेनजी के समय वि० सं० १६३३ (ई० स० १५७६) में वापिस लौटकर आना भी लिखा है।

'मुन्तख़िबुल लुबाब' नामक इतिहास मे लिखा है कि हि० स० ६६८ (वि० सं० १६१८) में बादशाह अकबर ने मिरज़ा शरफुद्दीन को मारवाड़ फ़तह करने के लिये मालदेव पर चढ़ाई करने की आज्ञा दी। इसपर उसने जोधपुर पहुँच वहाँ के क़िले को घेर लिया। कुछ दिन बाद मालदेव ने संधि का प्रस्ताव किया। इस पर यह तय हुआ कि मालदेव तो जाकर सिवाने के क़िले में रहे और उसका छोटा भाई ७ दिन में अपने परिवार को हटाने का प्रबन्ध करके साज-सामान-सहित क़िला शाही सैनिकों को सौंप दे। परंतु मालदेव के चले जाने पर उसके भाई और शरफुद्दीन के बीच किसी बात पर झगड़ा हो गया। इससे राव का भाई ५०० सवारों के साथ क़िले से निकलकर सम्मुख रण में मारा गया। (देखो पृष्ठ १५६-१६०)

हमारी समझ मे इस इतिहास के लेखक ने गलती से मेड़ते पर की चढ़ाई को जोधपुर की चढ़ाई लिख दिया है और देवीदासवाली घटना का सम्बन्ध मालदेवजी के भाई के साथ कर दिया है।

मेड़ते[1] के परगनों पर अधिकार कर लिया। इस पर समय का प्रभाव देख मालदेवजी ने शांति धारण कर ली। वि० सं० १६१६ की कार्त्तिक सुदी १२ (ई० स० १५६२ की ७ नवंबर) को इन प्रबल पराक्रमी नरेश राव मालदेवजी का स्वर्गवास हो गया।[2]

राव मालदेवजी बड़े वीर और प्रतापी थे। जिस समय यह राज्य के अधिकारी हुए, उस समय इनका प्रताप उदय होते हुए बाल रवि के समान अदूरव्यापी अर्थात्-केवल जोधपुर और सोजत प्रांतों तक ही फैला हुआ था। परन्तु होते-होते १० वर्षों के भीतर इनका वही बालप्रताप मध्याह्न के सूर्य के प्रखर तेज के समान समग्र राजस्थान को पारकर दिल्ली और आगरे के पास तक अर्थात्-हिंडौन, बयाना, फतैपुर, सीकरी और मेवात तक फैल गया था। इसी से हुमायूँ जैसे बादशाह को भी शेरशाह-रूपी अंधकार से त्राण पाने के लिये इन्हीं की शरण लेनी पड़ी थी। यदि मूर्ख शाही सैनिकों ने कुछ समझ से काम लिया होता और गोवध न कर क्षत्रिय राठोड़ वीरों का दिल न दुखाया होता तथा वीरमजी के और मालदेवजी के बीच फूट का बीज न उत्पन्न हुआ होता, तो उस समय का भारतीय इतिहास भी कुछ और ही दृश्य दिखलाता। परन्तु ईश्वर की माया-मरीचिका के प्रभाव से इन घटनाओं के हो जाने के कारण एकाएक पासा पलट गया और साथ ही वि० सं० १६०० (ई० स० १५४३) में

१. वि० सं० १६२० (हि० स० ६७१) मे बादशाह अकबर मिर्ज़ा शर्फुद्दीन से नाराज़ हो गया। इसी से उसने उसके स्थान पर हुसैन कुली को नियत कर दिया। इस पर हुसैन कुली ने मिर्ज़ा को भगाकर अजमेर, जालोर, नागोर और मेड़ते के परगने उससे छीन लिए। इसके बाद उसने बादशाह की आज्ञा से मेड़ता जयमल से लेकर जगमाल को दे दिया। यह देख जयमल मेवाड़ की तरफ़ चला गया और वि० सं० १६२४ (ई० सन् १५६७) मे महाराना उदयसिंहजी के क़िला छोड़कर पर्वतों में चले जाने पर चित्तौड़ के क़िले की रक्षा करता हुआ अकबर के हाथ से मारा गया। यद्यपि 'अकबरनामा' (भा० २, पृ० १६६) आदि फ़ारसी तवारीखों में जयमल से मेड़ता लेने का उल्लेख है, तथापि वास्तव में मेड़ता जयमल से न लिया जाकर शर्फुद्दीन से ही लिया गया था। जयमल तो शर्फुद्दीन से नाराज़ होकर पहले ही नागोर से मेवाड़ की तरफ़ चला गया था।

२. उस समय इनके पुत्र चंद्रसेनजी सिवाने में थे। अतः इनकी मृत्यु का समाचार पाते ही वह वहाँ से जोधपुर चले आए। कार्तिक सुदी १३ को मंडोर में रावजी की अंत्येष्टिक्रिया की गई। इनके पीछे १० रानियाँ सती हुई थीं।

शेरशाहरूपी राहु के संयोग से पूर्ण ग्रहण का योग आ उपस्थित हुआ। यद्यपि कुछ ही काल में राव मालदेवजी ने अपने को उसके ग्रास से बचाकर एकबार फिर तेज प्रकट किया, तथापि वह ढलते हुए सूर्य के समान ही रहा। उसमें वह प्रचंडता न आ सकी।

इन्होंने अपने राज्यकाल में कुल मिलाकर ५२ युद्ध किए थे और एक समय छोटे-बड़े ५८ परगनों पर इनका अधिकार रहा था। उनके नाम इसप्रकार लिखे मिलते हैं:—

१ सोजत, २ मेड़ता, ३ अजमेर[1], ४ सांभर[2], ५ बदनोर[3], ६ रायपुर[4], ७ भाद्राजण[5], ८ नागोर[6], ९ खाटू, १० लाडणू, ११ डीडवाना, १२ फतेपुर, १३ कासली, १४ रेवासा, १५ चाटसू, १६ जहाजपुर, १७ मदारियाँ, १८ टोंक, १९ टोडा, २० चित्तौड़ के पास के प्रदेश, २१ पाली, २२ वणावीरपुर, २३ सिवार्ना, (अणखला), २४ लोहगढ़, २५ नाडोल, २६ जोजावर, २७ कुंभलमेर (के पास का प्रदेश), २८ जालोर[10], २९ सांचोर[11], ३० भीनमाल, ३१ बीकानेर, ३२ पौकरन, ३३ फलोदी, ३४ चौहटन[12], ३५ पारकर[13], ३६ कोटड़ा[14], ३७ बाहडमेर[15], ३८ खाबड़[16], ३९ अमरसर[17], ४० उदयपुर (पंवारों का—छोटा), ४१ उमरकोट[18], ४२ छापर, ४३ झूँझणू, ४४ जेखल, ४५ जैतारण[19], ४६ जोधपुर, ४७ नारनौल, ४८ नराणा, ४९ बँवली (बोनली), ५० मल्हारणा, ५१ समईगाँव, ५२ सातलमेर, ५३ मालपुरा[20], ५४ कोसीथल[21], ५५ केकड़ी[22], ५६ पुरमांडल[23], ५७ लालसोट, ५८ राधनपुर[24]।

इनके अलावा किसी-किसी ख्यात में मालदेवजी का सिरोही के प्रांत को विजय कर वहाँ के रावल को वापस सौंप देना भी लिखा मिलता[25] है।

---

१. वीरमदेव से, २. बादशाही हाकिम से, ३. रानाजी से, ४. सींधल राठोड़ों से, ५. सींधल राठोड़ों से, ६. खानज़ादों से, ७. रानाजी से, ८. जैतमालोत राठोड़ों से, ९. रानाजी से, १०. बिहारी पठानों से, ११. चौहानों से, १२-१३. पवाँरों से, १४-१५ मल्लिनाथजी के वंशज राठोड़ों से, १६. पवाँरों से, १७. शेखावाटी के कछवाहों से, १८. सोढों से, १९. ऊदावत राठोड़ों से, २०. पवाँरों से, २१. रानाजी से, २२-२३. शाही हाकिम से और २४. पवाँरों से छीने थे। २५. इस विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता।

राव मालदेवजी ने अनेक क़िले आदि भी बनवाए थे। उनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है:—

पहले पहल जोधपुर के क़िले का विस्तार बढ़ाकर उसके पास के रानीसर नामक तालाव के इर्द-गिर्द कोट बनवाया। इससे युद्ध के समय क़िलेवालों को पानी का सुभीता हो गया। इसी प्रकार चिड़ियानाथ के झरने को भी कोट से घेरकर क़िले का एक भाग बना दिया। जोधपुर नगर के चारों तरफ़ शहर-पनाह बनवाई। कहते हैं कि इन सबके बनवाने में ९,००,००० फदिए (क़रीब १,१२,५०० रुपये) लगे थे।

इसके बाद वि० सं० १६०८ (ई० स० १५५१) में इन्होंने पौकरण का नया क़िला बनवाया। इसके बनवाने में सातलमेर के पुराने क़िले का सामान काम में लाया गया था। इसी प्रकार वि० सं० १६१४ (ई० स० १५५७) में मेड़ते में अपने नाम पर मालकोट-नामक क़िला बनवाना प्रारंभ किया। यह क़िला वि० सं० १६१६ (ई० सन् १५५९) में समाप्त हुआ था।

इनके अलावा सोजत, सारन, रायपुर (वहाँ के पहाड़ पर), पीपलोद, रीयाँ, फलोदी (यहाँ का क़िला नरा के पुत्र हम्मीर के, वि० सं० १५४५=ई० सन् १४८८ में, बनवाए क़िले पर ही बनवाया गया था।), चाटसू और बीकानेर आदि में भी क़िले बनवाए। भाद्राजण, सिवाना, और नाडोल में शहर-पनाहें बनवाईं। नागोर की शहरपनाह का जीर्णोद्धार करवाया। अजमेर के क़िले में बींटली का कोट और बुर्ज बनवाए और वहाँ से क़िले पर पानी चढ़ाने का प्रबंध किया। इनके अलावा गूँदोज, पीपाड़ और दूनाड़ा आदि में भी निवासस्थान बनवाए।

इनकी रानी झाली स्वरूपदेवी ने अपने नाम पर स्वरूपसागर नामक तालाब बनवाया था। यह आजकल बहूजी के तालाब के नाम से प्रसिद्ध है[1]।

राव मालदेवजी के २२ पुत्र थे।

---

१. यह तालाब कागे से मंडोर की तरफ़ जाते हुए बाएँ हाथ पर है।

१ रामे, २ रायमल, ३ रत्नसिंहे, ४ भोजराजे, ५ उदयसिंहजी, ६ चंद्रसेनजी, ७ भांण, ८ विक्रमादित्य, ९ आसकरण, १० गोपालदास, ११ जसवंतसिंह, १२ महेशदास, १३ तिलोकसी, १४ पृथ्वीराज, १५ डूंगरसी, १६ जैमल, १७ नेतसी, १८ लिखमीदास, १९ रूपसी, २० तेजसी, २१ ठाकुरसी, २२ कल्याणदास।

रावजी ने छोटे-बड़े अनेक गाँव दाने किए थे।

१. इसका जन्म वि० सं० १५८६ की फागुन सुदि १५ को हुआ था। परन्तु इसके तरुण होने पर राव मालदेवजी को इसके बागी होकर राज्य पर अधिकार कर लेने के विचार की सूचना मिलने से उन्होंने इसे मारवाड़ से बाहर चले जाने की आज्ञा देदी। इसने हि० स० ९८० (वि० सं० १६२९-ई० सन १५७२) में बादशाही सेना के साथ रहकर इब्राहीम हुसेन मिर्ज़ा को हराने में अच्छी वीरता दिखाई थी। (अकबरनामा, भा० ३, पृ० ३५ और तबक़ाते अकबरी, पृ० ३०१) इसी राम ने अथवा इसके वंशज ने अमभेरे (मालवे) में एक छोटे राज्य की स्थापना की थी। परन्तु वि० सं० १९१४ (ई० सन् १८५७) में वहाँ के शासक के बागियों के साथ मिल जाने से भारत सरकार के द्वारा वह राज्य सिंधिया के हवाले कर दिया गया।

२. इसका जन्म वि० सं० १५८६ की आश्विन सुदि ८ को हुआ था।

३. इसका जन्म वि० सं० १५९० की मँगसिर सुदि ८ को हुआ था।

४. १ बीकरलाई-आधी २ मोराई (जैतारण परगने के), ३ बाड़ा खुर्द (बीलाड़ा परगने का), ४ केलणकोट ५ सीतली (पचपदरा परगने के), ६ नैरवा (जालोर परगने का), ७ खेड़ापा ८ बीगवी ९ भैंसेर-कोटवाली १० भैंसेर-कुतडी ११ बासणी भाटियां १२ ढंढोरा (जोधपुर परगने के), १३ धोलेरिया-खुर्द १४ सूकरलाई (पाली-परगने के), १५ मालपुरिया कलां १६ रूपावास १७ बडियाला १८ तालका १९ चारवा (सोजत परगने के) पुरोहितों को; २० खिनावड़ी आधी (जैतारण परगने की), २१ जोधड़ावास (नागोर परगने का), २२ इकराणी २३ रीछोली २४ खाडा मया २५ खाडा-चारटां २६ मेडीवासणी (पचपदरा परगने के), २७ साकडावास (पाली परगने का), २८ आंबा खेड़ा २९ जोधड़ावास खुर्द आधा (मेड़ता परगने के), ३० खारी कलां चारणां ३१ चौपासणी चारणां ३२ रलावास ३३ लाखड़ थूंब (जोधपुर परगने के), ३४ ढीगारिया (डीडवाना परगने का) चारणों को; ३५ कानावास ३६ मालपुरिया खुर्द (सोजत परगने के), ३७ बीदासणी ३८ लांरडी-डोलियावास ३९ सूरजवासणी (जोधपुर परगने के), ४० कारोलिया (जैतारण परगने का) ब्राह्मणों को।

फ़ारसी तवारीखों से राव मालदेवजी के प्रभाव, पराक्रम और ऐश्वर्य के विषय के कुछ अवतरण।

मालदेव, जो उसकी १६वीं पुश्त में है, बहुत बढ़ा-चढ़ा है। क़रीब था शेरख़ाँ का भी उसके मुक़ाबले में काम तमाम हो जाता। वैसे तो इस मुल्क में बहुतसे क़िले हैं; लेकिन उनमें अजमेर, जोधपुर, बीकानेर, जैसलमेर, उमरकोट, आबूगढ़ और जालौर के क़िले ख़ास हैं।

(आईने अकबरी, दफ्तर २, पे० ५०८)

हि० सन् ६६६, साल जुलूस ७, में बादशाह (अकबर) ने मिर्ज़ा शर्फुद्दीन हुसैन को मेड़ते का परगना और क़िला फतेह करने के लिये भेजा और उसकी मदद के लिये बहुतसे बड़े-बड़े शाही अमीर साथ किए गए। यह मेड़ते का क़िला उस समय राव मालदेव के अधिकार में था, जो तमाम दूसरे रायों और राजाओं से हिंदुस्तान के रिवाजों और नाम में बढ़ा हुआ था। तथा शान शौक़त में भी बढ़कर था।

(अकबरनामा, जिल्द २, पे० १६०)

मेड़ते पर कब्जा कर लेने के बाद जब हि० सन् ६७१, साल जलूस ८, में बादशाह (अकबर) मिर्ज़ा शर्फुद्दीन की तरफ़ से फारिग़ हो गया, तो क़िले जोधपुर के, जो उस मुल्क के मज़बूत क़िलों में से है, फतेह करने का इरादा किया। यह क़िला राव मालदेव की, जो हिंदुस्तान के बड़े राजाओं में दरजा, इज्ज़त, फ़ौज और मुल्क की अधिकता में सबसे बढ़कर था, राजधानी था।

(अकबरनामा, जिल्द २, पे० १६७)

बादशाह हुमायूँ आख़िरकार मालदेव की तरफ़, जो हिंदुस्तान के मौतबिर जमींदारों में से था और उस ज़माने में हिन्दू-रईसों में ताक़त और फ़ौज में उसके बराबरी का कोई न था, रवाना हुआ।

(तबकाते अकबरी, पे० २०५)

मालदेव कि जो नागोर और जोधपुर का मालिक था, हिन्दुस्तान के राजाओं में फ़ौज और ठाट (हशमत) में सबसे बढ़कर था। उसके झंडे के नीचे ५०,००० राजपूत थे।

(तबकाते अकबरी, पे० २३१-२३२)

पहले-पहल मालदेव पर कि जो नागोर और जोधपुर के मुल्क का मालिक था और हिंदुस्थान के राजाओं में फ़ौज और ठाट की अधिकता में बढ़कर था तथा ५०,००० सवार के क़रीब उसके झंडे के नीचे जमा थे, गया।

(फरिश्ता, जिल्द १, पे० २२७)

जो (मालदेव) बड़े राजाओं में दबदबेवाला था और उसकी फ़ौज में ८०,००० सिपाही थे। हालांकि राना सांगा, जो कि हुमायूँ से लड़ा था, दौलत और ठाट में मालदेव के बराबर था, मगर मुल्क की और फ़ौज की ज़्यादती में राव मालदेव उससे बड़ा था। कई बार मालदेव के फ़ौजी अफ़सरों को राना सांगा[1] से लड़ाई करनी पड़ी थी। मगर हरबार जीत मालदेव की ही तरफ़ रही।

(तुज़ुक जहाँगीरी, दीबाचा, पे० ७)

यह लाल (जिसकी क़ीमत ६०,००० रुपये की गई है) पहले राव मालदेव के पास था, जो राठोड़ों का सरदार और हिन्दुस्तान के बहुत बड़े राजाओं में से था।

(तुज़ुक जहाँगीरी, पे० १४१)

मालदेव हिंदुस्थान के बड़े ज़मींदारों में से था। राना की बराबरी करनेवाला ज़मींदार वही था, बल्कि एक लड़ाई में उसने राना पर फ़तेह भी पाई थी। उसका हाल अकबरनामे में तफ़सील से लिखा है।

(तुज़ुक जहाँगीरी, पृ० २८०)

इसके बाद शर्फ़ुद्दीन हुसैन को राजा मालदेव को सजा देने और उसके मुल्क को फ़तेह करने के लिये भेजा। यह (मालदेव) जसवंत के बाप-दादाओं में था, जो क़दीम ज़माने से हिंदुस्तान के मशहूर राजाओं में गिने जाते थे और दिल्ली के

१. महाराना सांगाजी का समय वि० सं० १५६६ (ई० सन् १५०६) से १५८४ (ई० स० १५२८) तक था और राव मालदेवजी वि० सं० १५८८ (ई० स० १५३१) मे गद्दी पर बैठे थे। इसलिये इस घटना का संबंध ठीक प्रतीत नहीं होता। हाँ, इस घटना का संबंध उस (राना) के छोटे पुत्र विक्रमादित्य और उसके उत्तराधिकारियों से हो सकता है। अथवा यह भी संभव है कि मालदेवजी के समय के कुछ सेनानायक, जो इनके पूर्व से ही मारवाड़ की सेना का संचालन करते आए थे, उससे लड़े हों। उद्धृत पंक्तियों में भी सेनापतियों का ही उल्लेख है।

बादशाहों की मातहती नहीं करते थे। साथ ही जोधपुर, मेड़ता और सिवाना के से मज़बूत क़िलों के भरोसे पर मग़रूर सरकशों में मशहूर थे।

(मुन्तखबुल्लुबाब, हिस्सा १, पे० १५६)

मारवाड़ का ज़मींदार राय मालदेव हिंदुस्थान के बड़े राजाओं में से था और अपने साज-सामान और फ़ौज के लिये मशहूर था। मारवाड़ अजमेर के सूबे का एक इलाक़ा है, जो १०० कोस लंबा और ६० कोस चौड़ा है। अजमेर, जोधपुर, सिरोही, नागोर और बीकानेर इसमें दाख़िल हैं।

(मआसिरुल उमरा, भा० २, पृ० १७६)

इन विरोधी, विधर्मी और विदेशी लेखकों के लिखे इतिहासों के अवतरणों से भी प्रकट होता है कि वास्तव में राव मालदेवजी अपने समय के सर्वश्रेष्ठ और प्रबल पराक्रमी राजा थे।

कर्नल टॉड ने अपने राजस्थान के इतिहास में लिखा है कि वि० सं० १६२५ (ई० सन् १५६६) में जिस समय अकबर अजमेर में था, उस समय मालदेव ने अपने द्वितीय पुत्र चंद्रसेन को नज़राने के साथ उसके पास भेजा था। परन्तु उसका यह लिखना बिलकुल सत्य से परे है, क्योंकि राव मालदेवजी तो इस समय से क़रीब ६ वर्ष पूर्व अर्थात्-वि० सं० १६१६ (ई० सन् १५६२) में ही इस असार संसार को छोड़ चुके थे।

१. ऐनाल्स ऐन्ड ऐंटिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान (डब्ल्यू क्रुक संपादित), भा० २, पृ० ६५८।

२०. राव चन्द्रसेनजी

यह मारवाड़ नरेश राव मालदेवजी के छठे पुत्र थे। इनका जन्म वि० सं० १५९८ की सावन-वदि ८ (ई० सन् १५४१ की १६ जुलाई) को हुआ था।

राव मालदेवजी के देहांत के बाद उन्हीं की इच्छानुसार वि० सं० १६१९ की मंगसिर-वदि १ (ई० स० १५६२ की ११ नवंबर) को यह जोधपुर की गद्दी पर बैठे। इनके राज्य पर बैठने के कुछ दिन बाद ही एक साधारणसी घटना के कारण कुछ सरदार इनसे अप्रसन्न हो गए और उन्होंने राव चन्द्रसेनजी के तीनों बड़े भाइयों[3] के पास गुप्त पत्र भेज कर उन्हें जोधपुर-राज्य पर अधिकार करने को उकसाना प्रारंभ किया। इससे इनके सबसे बड़े भाई राम ने सोजत और दूसरे भाई रायमल्ल ने दूनाडा-प्रांत में उपद्रव शुरू किया, तथा तीसरे भाई उदयसिंहजी ने अचानक आकर गांगाणी और बावड़ी पर अधिकार कर लिया। यह सूचना पाते ही राव चन्द्रसेनजी ने उदयसिंहजी पर चढ़ाई की। इस पर उदयसिंहजी नवाधिकृत प्रदेश को छोड़ फलोदी की तरफ़ लौट चले। परन्तु लोहावट में पहुँचते-पहुँचते दोनों सेनाओं का सामना हो गया और वहाँ के युद्ध में चन्द्रसेनजी की तलवार से उदयसिंहजी के घायल हो जाने के कारण विजय चन्द्रसेनजी के ही हाथ रही। इसके बाद एक बार तो चन्द्रसेनजी जोधपुर चले आए, परन्तु फिर शीघ्र ही इन्होंने सेना लेकर फलोदी पर

१. वि० सं० १६०० (ई० स० १५४३) मे ही राव मालदेवजी ने इन्हें बीसलपुर और सिवाना जागीर मे दे दिया था। इसलिये बड़े होने पर यह अधिकतर वहीं रहा करते थे। पिता के देहान्त की सूचना पाते ही यह वहां से दूसरे दिन जोधपुर पहुँच गए और पिता की इच्छानुसार राज्याधिकार प्राप्त कर लेने पर इन्होंने अपनी सिवाने की जागीर अपने बड़े भाई रायमल्ल को दे दी। यह रायमल्ल मालदेवजी का द्वितीय पुत्र था।

२. एक बार राव चंद्रसेनजी का एक अपराधी दास भागकर (जैसा के पुत्र) जैतमाल के पास चला गया था। परंतु रावजी ने अपने आदमी भेजकर उसको पकड़वा मँगवाया। इस पर जैतमाल ने कहलाया कि आप इसे जहां तक हो, प्राणदंड न देकर अन्य किसी प्रकार के दंड की आज्ञा दें। इस हस्तक्षेप से राव चंद्रसेनजी और भी नाराज़ हो गए और उस दास को तत्काल प्राणदंड देने की आज्ञा दे दी। इसी से जैतमाल और उससे मेल रखनेवाले कुछ अन्य सरदार इनसे अप्रसन्न हो गए थे।

३. उस समय राव चंद्रसेनजी के तीनों बड़े भाइयों मे सबसे बड़ा भाई राम अपनी जागीर गूँदोच में, दूसरा रायमल्ल सिवाने में और तीसरा उदयसिंह फलोदी में था।



२०. राव चन्द्रसेनजी

वि० सं० १६१६-१६३७ (ई० स० १५६२-१५८१)

चढ़ाई करदी। उस समय मुगल-सम्राट् अकबर का बल बहुत बढ़ रहा था। इसी से मारवाड़ के कुछ समझदार सरदारों ने, इस प्रकार आपस के कलह से राठोड़ों के बल की हानि देख, दोनों को भली भाँति समझा दिया। इस पर चंद्रसेनजी ने चढ़ाई का विचार त्याग दिया।

ख्यातों में लिखा है कि इसके बाद वि० सं० १६२० (ई० सन् १५६३) में राव चन्द्रसेनजी ने अपने भाई राम पर चढ़ाई की। इसकी सूचना पाते ही पहले तो राम ने भी नाडोल में आकर इनकी सेना का सामना किया, परन्तु अंत में विजय की आशा न देख वह नागोर के शाही हाकिम हुसेनकुली बेग के पास चला गया और राव मालदेवजी का ज्येष्ठ पुत्र होने के कारण जोधपुर पर अपना हक़ बतलाकर इस कार्य में उससे सहायता मांगने लगा। इस पर उसने भी इसप्रकार के आपस के कलह से लाभ उठाने की आशा से अचानक चढ़ाई कर जोधपुर को घेर लिया। कई दिनों के युद्ध के बाद रसद आदि की कमी के कारण राव चन्द्रसेनजी ने सोजत का परगना रामसिंह को, और सेना का खर्च हुसेनकुली को देने का वादा कर आपस में संधि करली[2]। इससे चन्द्रसेनजी का अधिकार केवल जोधपुर, जैतारण, पौकरण और सिवाने के परगनों पर ही रह गया। परन्तु हुसेनकुली के लौट जाने पर रावजी की ओर से इस संधि की शर्त का, राव राम की इच्छानुसार, पूरा-पूरा पालन न हो सका। इस पर वि० सं० १६२१ (ई० सन् १५६४) में राव राम ने बादशाह अकबर के पास जाकर सहायता माँगी। बादशाह ने भी अपने बाप का बदला लेने

१. कहीं कहीं यह भी लिखा मिलता है कि राव राम ने ही, महाराणा उदयसिंहजी की सहायता पाकर, मारवाड़ पर अधिकार करने की इच्छा से पहले चढ़ाई की थी।

२. तारीख़े पालनपुर (जिल्द १, पृ० ७७) में बादशाह अकबर से बाग़ी होकर मिरज़ा शर्फ़ुद्दीन का मालदेवजी के मरने पर मेड़ते पर चढ़ाई करना और चंद्रसेनजी का उससे संधि कर मेड़ते की रक्षा करना लिखा है, तथा इस घटना का समय वि० स० १६१५ (ई० स० १५५६) दिया है। यह भ्रम-पूर्ण है; क्योंकि मेड़ता तो शर्फ़ुद्दीन ने मालदेवजी के समय ही जयमल्ल को सौंप दिया था। परन्तु शीघ्र ही जयमल्ल नाराज़ होकर मेवाड़ चला गया। इसके बाद जब शर्फ़ुद्दीन बाग़ी हुआ, तब अकबर ने मेड़ता शर्फ़ुद्दीन से लेकर जगमाल को दे दिया था। शर्फ़ुद्दीन वि० सं० १६२० (हि० स० ९७१=ई० स० १५६३) में बाग़ी हुआ था और मालदेवजी का स्वर्गवास वि० स० १६१९ में हुआ था।

का अच्छा मौक़ा मिला देख, मारवाड़-राज्य को पददलित करने के लिये, राम की प्रार्थना स्वीकार करली और मुज़फ़्फ़रखाँ को सेना देकर उसके साथ कर दिया। साथ ही उसने हुसेनकुली को भी लिख दिया कि राव चन्द्रसेन से जोधपुर का क़िला छीन लो और राव राम को सोजत का परगना दिलवा दो। इस आज्ञा के पहुँचते ही हुसेनकुली ने आकर फिर जोधपुर को घेर लिया। राव चन्द्रसेनजी भी क़िले का आश्रय लेकर मुग़ल-सेना का सामना करने लगे। कहते हैं, जब शाही सेनानायकों ने क़िले पर किसी प्रकार भी अपना अधिकार होता न देखा, तो रानीसर[2] की तरफ़ के मार्ग से क़िले में घुसने का प्रयत्न करने लगे। परन्तु इसमें भी उन्हें सफलता नहीं मिली। अंत में जब कई महीनों के घेरे से क़िले में का खाने-पीने का सब सामान समाप्त हो चला, तब मुख्य-मुख्य सरदारों ने रावजी को क़िला छोड़कर चले जाने के लिये बाध्य किया। इस पर इच्छा न होते हुए भी राव चन्द्रसेनजी तो अपने परिवार-सहित भाद्राजण की तरफ़ चले गए[3] और जो सरदार क़िले के रक्षार्थ पीछे रह गए थे, वे मुसलमानों से सम्मुख रण में जूझ कर वीरगति को प्राप्त हुए। इस प्रकार क़िले पर शाही सेना का अधिकार हो गया। इसका समाचार पातेही चन्द्रसेनजी ने इधर-उधर आक्रमण कर धन-जन एकत्रित करना और समय-समय पर मुसलमानों को तंग करना शुरू किया।

अकबर नामे में लिखा है।

"चन्द्रसेन के गद्दी बैठने पर हुसेनकुली बेग और बादशाही फ़ौज ने आकर जोधपुर के क़िले को घेर लिया। यह समाचार पाकर राव मालदेव का बड़ा पुत्र राम भी आकर शाही सेना के साथ हो गया। इस पर सेना के अमीरों ने उसे बादशाह के पास भेज दिया। वहाँ पहुँचने पर अकबर ने उसके साथ बड़ा अच्छा बर्ताव

१. जिस समय हुमायूँ, शेरशाह के विरुद्ध राव मालदेवजी से सहायता मांगने आया था, उस समय उसके सैनिकों ने मारवाड़-राज्य मे गोवध कर डाला था। इसी से अप्रसन्न होकर मालदेवजी ने उसकी सहायता करने से हाथ खींच लिया और हुमायूँ को निराश हो लौटना पड़ा। यही इस वैर का कारण था।

२. इसी तालाब से क़िले में पानी पहुँचाने का एक मार्ग था। यह मार्ग अभी तक विद्यमान है।

३. ख्यातों में इस घटना का समय वि० सं० १६२२ की मंगसिर वदि १२ (ई० स० १५६५ की १६ नवंबर) लिखा है।

४. देखो, भाग २, पृ० १६७।

किया और मुईनुद्दीन अहमदख़ाँ आदि सरदारों के साथ, एक फ़ौज देकर, उसे भी हुसेनकुली बेग की सहायता में जोधपुर भेज दिया । कुछ ही समय में शाही सेना ने क़िला विजय कर लिया ।"

इसके बाद वि० सं० १६२७ (हि० सन् ९७८=ई० सन् १५७०) में जब बादशाह अकबर अजमेर होता हुआ नागोर पहुँचा, तब राजस्थान के कई रईस उससे मिलने को वहाँ गए । यह देख राव चन्द्रसेनजी भी शाही रंग-ढंग का पता लगाने को नागोर पहुँचे । बादशाह ने इनका बड़ा आदर-सत्कार किया । बादशाह की हार्दिक इच्छा थी कि यदि यह नाममात्र को भी उसकी अधीनता स्वीकार करलें, तो जोधपुर का राज्य इन्हें सौंप दिया जाय । परन्तु अपनी स्वाधीन प्रकृति के कारण यह किसी प्रकार भी बादशाही अधीनता स्वीकार करने को उद्यत न हुए और नागोर से लौट कर भाद्राजण चले गए ।

मारवाड़ की ख्यातों में लिखा है कि इसके बाद ही बादशाही सेना ने भाद्राजण को घेर लिया । यद्यपि देशकालानुसार राव चन्द्रसेनजी ने भी उसका सामना करने में कसर नहीं की, तथापि कुछ ही दिनों में खाद्य सामग्री का अभाव हो जाने के कारण इनको सिवाने की तरफ़ चला जाना पड़ा ।

वि० सं० १६२९ (ई० सन् १५७२) में जिस समय सेना-संग्रह करते हुए चन्द्रसेनजी का डेरा काणूजा में पड़ा, उस समय आसरलाई का स्वामी (खींवा का पुत्र) रत्नसिंह मुसलमानों से मिल जाने के कारण रावजी के बुलाने पर भी उपस्थित नहीं हुआ । इससे क्रुद्ध होकर चन्द्रसेनजी ने आसरलाई पहुँच उस गाँव को ही नष्ट-भ्रष्ट कर डाला ।

१. यहीं पर मालदेवजी के तृतीय पुत्र उदयसिंहजी, बीकानेर के राव कल्याणमलजी और महाराजकुमार रायसिंहजी आदि आकर बादशाह से मिले थे । बादशाह ने उदयसिंहजी को तो समावली के गूजरों को दबाने के लिये भेज दिया और रायसिंहजी को अपने पास रख लिया । इसके बाद ही जोधपुर का प्रबन्ध भी इन्हीं रायसिंहजी के अधिकार में दे दिया गया । राव मालदेवजी का ज्येष्ठ पुत्र राम भी जोधपुर में नियत हुआ और उधर से गुजरात को जानेवाले मार्ग की रक्षा के कार्य में शरीक किया गया ।

'तबक़ाते-अकबरी' में अकबर का हि० स० ९७७ की १६ जमादिउलआख़िर (वि० सं० १६२६ की पौष वदि ३=ई० स० १५६९ की २६ नवंबर) को नागोर पहुँचना लिखा है । वह वहां पर ५० दिन तक रहा था । (देखो, पृ० ८९)

अगले वर्ष (वि० सं० १६३०=ई० सन् १५७३ में) अजमेर-प्रांत के भिनाय नामक गाँव की प्रजा ने मादलिया नामक भील के उपद्रव से तंग आकर चन्द्रसेनजी से सहायता चाही। इन्होंने भी मौक़ा देख उस पर चढ़ाई कर दी। जिस समय यह वहाँ पहुँचे, उस समय मादलिया के यहाँ उत्सव होने के कारण बहुत से आसपास के भील भी वहाँ एकत्रित थे। इसलिये उन सबने शस्त्र सम्हालकर इनका सामना किया। परन्तु कुछ काल में ही मादलिया के मारे जाने पर सारे भील भाग खड़े हुए और वहाँ पर चन्द्रसेनजी का अधिकार हो गया।

इसी वर्ष (वि० सं० १६३०=हि० सन् ९८१ में) अकबर ने सिवाने पर भी एक मज़बूत सेना भेज दी। इसमें शाहकुलीख़ाँ आदि मुसलमान सेनानायकों के साथ ही बीकानेर के राव रायसिंहजी, केशवदास मेड़तिया (जयमल का पुत्र), जगतराय आदि हिन्दू-नरेश और सामंत भी थे। बादशाह की बड़ी इच्छा थी कि किसी तरह राव चन्द्रसेन शाही अधीनता स्वीकार करले। इसी से उसने अपने सेनानायकों को समझा दिया था कि यदि हो सके, तो बादशाही कृपा का प्रलोभन दिखलाकर चन्द्रसेन को वश में करने की कोशिश की जाय। यह सेना पहले पहल सोजत की तरफ़ गई और वहाँ पर इसने चन्द्रसेनजी के भतीजे (राव मालदेवजी के पौत्र) कल्ला

परंतु अकबरनामे मे इस घटना का हि० स० ९७८ (ई० स० १५७०) मे होना लिखा है। (देखो, भा० २, पृ० ३५७-३५८)

१. उसी दिन से मारवाड़ मे यह कहावत चली है—

"मादलियो मारियो ने गोठ बीखरी"

अर्थात्—सरदार (मादलिया) को मारते ही उत्सव में एकत्रित हुए लोग भाग खड़े हुए।

अभी तक भिनाय मे चंद्रसेनजी के वंशजों का अधिकार है।

'चीफ़्स् एंड लीडिंग फ़ेमीलीज़ इन राजपूताना' मे लिखा है कि इस प्रकार मादलिया भील को मारकर उसका उपद्रव शांत कर देने से अकबर चंद्रसेनजी से बहुत प्रसन्न हुआ और उसने सात परगनों सहित भिनाय का प्रांत इन्हीं को दे दिया।

परंतु यह लेख भ्रम-पूर्ण है; क्योंकि चंद्रसेनजी के बादशाही अधीनता स्वीकार न करने के कारण ही शाही सेना उनके पीछे लगी रहती थी।

'तारीख़े पालनपुर' में मादलिया भील को चंद्रसेनजी का सहायक लिखा है।

उसमें यह भी लिखा है कि चंद्रसेनजी के पौत्र कर्मसेन ने मादलिया को मारकर भिनाय पर अधिकार किया था। (देखो, जिल्द १, पृ० ७६)

२. अकबरनामा, भा० ३, पृ० ८०-८१

को हरायां।[1] इसके बाद उसके बंधु केशवदास, महेशदास और राठोड़ पृथ्वीराज को साथ लेकर इसने सिवाने की तरफ़ प्रयाण किया। जिस समय यह विशाल शाही सेना सिवाने के आसपास के प्रदेश को लूटती और सामना करनेवालों को परास्त करती हुई सिवाने के पास पहुँची[2], उस समय वहाँ के दुर्ग-रक्षकों ने चंद्रसेनजी से पास के पहाड़ों का आश्रय लेकर समय की प्रतीक्षा करने की प्रार्थना की। इस पर यह सेनापति राठोड़ पत्ता को क़िले की रक्षा का भार सौंप पास के पहाड़ों में चले गए और क़िले को घेरनेवाली शाही सेना के पार्श्वों और पृष्ठ पर ज़ोर-शोर से आक्रमण कर उसे तंग करने लगे। क़िलेवालों ने भी बड़ी वीरता से दुर्ग घेरनेवाली शाही सेना का सामना किया। यद्यपि बादशाही सेना का बल बहुत बढ़ा-चढ़ा था, तथापि न तो चंद्रसेनजी ने ही और न इनके दुर्ग-रक्षक पत्ता ने ही हिम्मत हारी। राठोड़ वीर मौक़ा पाते ही शाही सैन्य पर आक्रमण कर उसे नष्ट करने में नहीं चूकते थे। इससे घबराकर बीकानेर के राव रायसिंहजी, जो चंद्रसेनजी से विरोध कर अकबर से मिल गए थे, वि० सं० १६३१ (हि० सन् ९८२) में सिवाने से अजमेर आए और उन्होंने बादशाह अकबर को सूचित किया कि आपने जो सेना सिवाने की तरफ़ भेजी है, वह चन्द्रसेन को दबाने में असमर्थ[3] है। इसलिये हो सके, तो कुछ सेना और भी उस तरफ़ भेजी जाय। इस पर बादशाह ने तय्यबख़ाँ, सैयदबेग तोकबाई, सुभानकुलीख़ाँ तुर्क, खुर्रम, अज़मतख़ाँ, शिवदास आदि अपने अन्य कई अमीरों को भी एक बड़ी

---

१. पहले तो कल्ला ने बड़ी वीरता से अकबर की सेना का सामना किया। परन्तु अंत में शाही सेना के संख्याधिक्य के कारण उसे सोजत का क़िला छोड़ सिरियारी के क़िले का आश्रय लेना पड़ा। परन्तु वहाँ पर भी शाही सेना ने उसका पीछा न छोड़ा और जब क़िले की दुर्गमता के कारण वह उस पर अधिकार करने मे समर्थ न हुई, तब उसने उस दुर्ग के चारों तरफ़ लकड़ियाँ चुनकर उसमें आग लगा दी। इस पर कल्ला वहाँ से निकल कोरने चला गया। परन्तु जब पीछे लगी हुई सेना ने वहाँ भी उसका पीछा न छोड़ा, तब लाचार हो उसे शाही सेनानायकों से संधि करनी पड़ी और इसके बाद यद्यपि वह स्वयं तो बहाना कर शाही सेना मे सम्मिलित होने से बच गया, तथापि उसे अपने बंधुओं को उक्त सेना के साथ भेजना पड़ा।

२. मार्ग में चन्द्रसेनजी की तरफ़ के रावल मेघ (सुख) राज, सूजा और देवीदास ने मिलकर लूट मचाने को निकले हुए शाही सेना के सैनिकों के साथ बड़ी वीरता से युद्ध किया।

(अकबरनामा, भा० ३, पृ० ८१)।

३. अकबरनामा, भा० ३, पृ० ११०-१११

सेना के साथ चन्द्रसेनजी के मुक़ाबले को रवाना किया। इस प्रकार शाही सेना का बल दुगना हो जाने के कारण, अपने सरदारों की सलाह से, चन्द्रसेनजी रामपुरे की तरफ़ से होकर विकट पहाड़ों में घुस गए। इस पर पहले तो शाही सेना ने बड़ी उमंग के साथ इनका पीछा किया। परन्तु अंत में जब सफलता होती न देखी, तो उसे वापस लौटना पड़ा। चन्द्रसेनजी के इस प्रकार बचकर निकल जाने और अपनी सेना के इस प्रकार असफल होने से अकबर को बड़ी निराशा हुई और उसने इसके लिये अपने अमीरों को डाँट-फटकार भी दी।

इसके बाद वि० सं० १६३२ (हि० सन् ९८३) में चन्द्रसेनजी को दबाने के लिये जलालख़ाँ को सिवाने की तरफ़ जाने की आज्ञा दी गई, और उसके साथ सैयद अहमद, सैयद हाशिम, शिमालख़ाँ आदि अमीर भी भेजे गए। इतने दिनों से चन्द्रसेनजी का पीछा करते रहने पर भी सफलता न होने से शाही सैनिक हतोत्साह हो गए थे, इससे उनकी हालत और भी ख़राब हो गई। साथ ही उस पहाड़ी प्रदेश में भटकने और घास-दाने का पूरा प्रबंध न होने के कारण उनके घोड़े भी दुर्बल हो गए। इसी से बादशाह ने इन्हें वहाँ पहुँच अगली सेना को लौटा देने की आज्ञा भी दी। इसके बाद ये लोग अपनी-अपनी जागीरों में जाकर चढ़ाई की तैयारी करने लगे। जिस समय जलालख़ाँ मार्ग में मेड़ते पहुँचा, उस समय उसे सिवाने की सेना के सरदार रामसिंह, सुलतानसिंह[3] और अलीकुली आदि की तरफ़ से सूचना मिली कि यद्यपि वे लोग बादशाह की आज्ञानुसार चंद्रसेन को दबाने का प्रयत्न कर रहे हैं, तथापि वह अपनी और अपने सरदारों की वीरता और पहाड़ों के आश्रय के कारण अजेय हो रहा है। इसलिये यदि जलालख़ाँ भी शीघ्र ही उनकी मदद पर आ जाय, तो संभव है, कुछ सफलता मिल जाय। यह समाचार पाते ही वह तत्काल सिवाने की तरफ़ चल पड़ा। यथासमय इसकी सूचना चन्द्रसेनजी को भी मिल गई इसीसे यह मार्ग में ही अचानक आक्रमण कर उसके बल को नष्ट करने का मौक़ा ढूँढने लगे। परन्तु किसी प्रकार इनकी गति-विधि का पता शत्रुदल को भी मिल गया। अतः उसने स्वयं ही आगे बढ़ इन पर आक्रमण कर दिया। इस एकाएक होनेवाले हमले से

१. अकबरनामा, भा० ३, पृ० १५८

२. अकबरनामा, भा० ३, पृ० १६७

३. ये दोनों बीकानेर-नरेश राव रायसिंहजी के छोटे भ्राता थे।

चन्द्रसेनजी का सारा प्रबंध उलट गया। इस पर भी कुछ समय तक तो यह पहाड़ों से निकल कर शाही सेना का सामना करते रहे[1]; परन्तु विशाल शत्रुदल से टक्कर लेने में अपने मुट्ठी-भर वीरों की अधिक हानि होती देख अंत में इन्हें फिर पहाड़ों में घुस जाना पड़ा। शाही सेना पहाड़ों में ऐसे वीरों का पीछा कर एक बार असफल हो चुकी थी। इसलिये वह रामगढ़ के क़िले में जाकर ठहर गई, और जी तोड़ परिश्रम के साथ राव चन्द्रसेनजी के निवासस्थान का पता लगाने तथा इन्हें परास्त करने की कोशिश करने लगी। परन्तु शाही सेना के चलाए कुछ पता न चला। इसी बीच बगड़ी ठाकुर देवीदास[2] नामक एक व्यक्ति ने आकर शाही सेना को सूचना दी कि आजकल चन्द्रसेन अपने भतीजे कल्ला के पास है। यदि उसको पकड़ना चाहते हो, तो उधर चलो। शाही सैनिक तो पहले से ही चन्द्रसेनजी की तलाश में थे, अतः इस सूचना के पाते ही तत्काल वहाँ जा पहुँचे। परन्तु कल्ला ने चन्द्रसेनजी के वहाँ होने का स्पष्ट तौर से प्रतिवाद किया। इस पर शाही सेना को वहाँ से निराश होकर लौटना पड़ा। इससे शिमालख़ाँ देवीदास से चिढ़ गया और उसने एक दिन बहाने से उसे अपने यहाँ बुलाकर क़ैद कर लेने का प्रबंध किया। परन्तु जब समय आया, तब देवीदास अपनी वीरता से उसके पंजे से बचकर निकल गया और शिमालख़ाँ मुँह ताकता रह गया। इसके बाद देवीदास अपना शाही लशकर में रहना आपत्ति-जनक समझ वहाँ से कल्ला के पास चला गया। परन्तु उसने शिमालख़ाँ से बदला लेने का दृढ़ निश्चय कर लिया था। इसीसे एक दिन मौक़ा पाकर देवीदास और राव चन्द्रसेनजी ने एकाएक बादशाही सेना पर आक्रमण कर दिया। यद्यपि देवीदास

१. अकबरनामा, भा० ३, पृ० १५८-१५९

२. इस पुरुष ने रामगढ़ में आकर कहा कि मैं वही राठोड़ देवीदास हूँ, जिसको लोगों ने मिरज़ा शर्फुद्दीन के साथ मेड़ते की लड़ाई में मरा हुआ समझ लिया था। वास्तव में जिस समय मैं अधिक घायल हो जाने के कारण रणक्षेत्र में बेहोश पड़ा था, उस समय एक संन्यासी वहाँ आ पहुँचा और मुझे रणक्षेत्र से उठाकर अपने स्थान पर ले गया। उसके इलाज से जब मैं बिलकुल अच्छा हो गया, तब कई दिनों तक तो उसी के साथ फिरता रहा और अब उसकी आज्ञा लेकर इधर आ गया हूँ। इसके साथ ही उसने बादशाही सेवा कर ख्याति प्रकट करने की इच्छा से उस सेना में सम्मिलित होना भी स्वीकार कर लिया। शाही सैनिकों में से कुछ ने उसकी कही इस कथा को सच्ची और कुछ ने झूठी समझा।

(अकबरनामा, भा० ३, पृ० १५९)

इस मौक़े से लाभ उठाकर अपने बैरी शिमालखाँ को मारना चाहता था, तथापि जल्दी में उसके बदले जलालखाँ के डेरे पर ही मारकाट शुरू हो गई। इसी में जलालखाँ मारा गया। इसके बाद ये लोग शिमालखाँ के डेरे की तरफ़ बढ़े। परन्तु इसी बीच बहुत-से शाही सैनिकों के साथ जयमल[1] वहाँ आ पहुँचा। यह देख चन्द्रसेनजी और देवीदास अपने दलबल के साथ शाही सेना से निकल वापस लौट गए।

इस घटना से शाही सेना का बल और भी टूट गया। यह देख वीरवर कल्ला देवकोर[2] के क़िले में चला आया और आसपास के राजपूतों को एकत्रित कर शाही सेना से एक बार फिर युद्ध करने की तैयारी करने लगा। इससे उस सेना के मार्ग में एक नवीन बाधा उठ खड़ी हुई और वह लाचारी के कारण सिवाने की तरफ़ का ध्यान छोड़ देवकोर के क़िले पर आक्रमण करने में लग गई।

जैसे ही यह वृत्तांत अकबर को मिला, वैसे ही उसने अपनी प्रतिष्ठा को इस प्रकार संकट में पड़ी देख शाहबाज़खाँ को उस तरफ़ की अराजकता मिटाने के लिये रवाना किया। देवकोर के पास पहुँचने पर उसने देखा कि वहाँ की शाही सेना क़िले को घेर कर असफल आक्रमणों में लगी हुई है, अतः शाहबाज़ ने आगे बढ़ एकाएक क़िले पर चढ़ाई करदी। इससे शाही सेना का बल बहुत बढ़ गया। वीर कल्ला के अल्पसंख्यक थके-माँदे योद्धा कब तक उसका मुक़ाबला कर सकते थे। अंत में क़िला मुग़लों के हाथ लगा। इस प्रकार देवकोर से निपट कर शाहबाज़ ने क़िले की रक्षा के लिये थोड़ी-सी सेना के साथ कुछ बाराह के सैय्यदों को वहां छोड़ा और बाक़ी फ़ौज को लेकर सिवाने की तरफ़ प्रयाण किया। वहाँ से आगे बढ़ने पर ये लोग दूनाडा में पहुँचे। वहाँ के क़िले[3] में भी कुछ राठोड़ वीर एकत्रित थे। अतः मुग़ल सेनापति ने इनसे शाही सेवा अंगीकार करने का प्रस्ताव किया। परन्तु वीर राठोड़ों ने स्वाधीनता छोड़ने के बजाय प्राण दे देना ही उचित समझा और इस प्रस्ताव को मानने से साफ़ इनकार कर दिया। इस पर दोनों तरफ़ से युद्ध आरंभ हो गया। वीर योद्धा एक दूसरे से आगे बढ़-बढ़ कर वीरता दिखाने लगे। परन्तु कुछ ही काल

१. अकबरनामे (भा० ३, पृ० १५६) में जयमल और किसी-किसी ख्यात में मेड़तिया जगमाल लिखा है।

२. अकबरनामा, भा० ३, पृ० १६७; परन्तु देवकोर के क़िले का कुछ पता नहीं चलता।

३. दूनाडे में इस समय क़िला विद्यमान नहीं है।

में राठोड़ों की संख्या अल्प से अल्पतर हो गई और क़िले पर शाही सेना का अधिकार हो गया। इसके बाद शाहबाज़ख़ाँ ने आगे बढ़ सिवाने के क़िले पर घेरा डाला और बादशाह की आज्ञानुसार पहलेवाली शाही सेना को वहाँ से वापस लौटा दिया। जब कुछ दिनों के परिश्रम से यह प्रकट हो गया कि सम्मुख रण में प्रवृत्त होकर वीर राठोड़ों से क़िला छुड़वा लेना असंभव है, तब उसने अनेक तरह के छल कपट कर क़िलेवालों को तंग करना शुरू किया और जहाँ तक हो सका, बाहर से रसद आदि का आना भी एकदम बंद कर दिया। इस पर जब सिवाय क़िला ख़ाली कर देने के अन्य कोई उपाय न रहा, तब क़िले के रक्षक ने यह प्रस्ताव यवन-सेनापति के पास भेज दिया। उसने भी इसमें अधिक गड़बड़ करने से हानि समझ शीघ्र ही इसे स्वीकार कर लिया। इस प्रकार वि० सं० १६३३ (हि० सन् ९८४) में अनेक कठिनाइयों के बाद यह क़िला अकबर के अधिकार में आया। क़िले के बचे हुए राठोड़ चन्द्रसेनजी के पास पीपलोद के पहाड़ों में चले गए और वहीं से मौक़ा पाकर समय-समय पर मुग़लसेना को तंग करने लगे।

राव चन्द्रसेनजी को इस प्रकार अकबर के साथ युद्ध में उलझा हुआ देख इसी वर्ष के कार्त्तिक (ई० सन् १५७६ के अक्टोबर) में जैसलमेर के रावल हरराजजी ने पौकरण पर चढ़ाई कर दी। उस समय वहाँ पर चन्द्रसेनजी की तरफ़ से पंचोली (कायस्थ) आनन्दराम क़िलेदार था। अतः उसने क़िले में बैठकर चार मास तक बराबर रावलजी का सामना किया। परन्तु जब दोनों तरफ़ विजय की आशा नहीं दिखाई दी, तब व्यर्थ का नर-संहार अनुचित समझ दोनों पक्षों ने इस शर्त पर संधि करना निश्चित किया कि पौकरण तो रावलजी को सौंप दिया जाय और वह इसके एवज़ में १,००,००० फदिए (क़रीब १२,५०० रुपये) राव चन्द्रसेनजी को कर्ज़ के तौर पर दें। परन्तु जिस समय रावजी यह द्रव्य उन्हें लौटा दें, उस समय रावलजी पौकरन उनको सौंप दें। इसके बाद युद्ध स्थगित कर दिया गया और ये शर्तें राव चन्द्रसेनजी की सम्मति के लिये इनके पास भेज दी गईं। उस समय रावजी सम्राट् अकबर जैसे शत्रु से उलझे हुए थे और इसी से इनको द्रव्य की बड़ी आवश्यकता थी। इसलिये इन्होंने ये प्रस्ताव मान लिए और इनके अनुसार शीघ्र ही संधि हो गई।

जब पीपलोद के पहाड़ों में भी शाही सेना ने चन्द्रसेनजी का पीछा न छोड़ा, तब कुछ दिन तक तो यह सयम-समय पर उससे युद्ध करते रहे। परन्तु इसके बाद

कुछ दिन के लिये यह सिरोही[1], डूँगरपुर[2] और बाँसबाड़े की तरफ़ घूमते रहे। इन्हीं दिनों राव राम का पुत्र कल्ला मुसलमानों के हाथ से मारा गया और इससे सोजत पर भी मुग़लों का अधिकार हो गया। यह देख कूँपावत सादूल (महेशदास के पुत्र) और जैतावत आसकरण (देवीदास के पुत्र) आदि सरदारों ने राव चन्द्रसेनजी से मारवाड़ में आकर देश की रक्षा करने का आग्रह किया। इससे यह मेवाड़ की तरफ़ से लौटकर अपनी मातृभूमि मारवाड़ में चले आए और शीघ्र ही इन्होंने सरवाड़ के बादशाही थाने को लूट कर वहाँ पर अपना अधिकार कर लिया। यह घटना वि० सं० १६३६ (ई० सन् १५७९) की है। इसके बाद इन्होंने अजमेर-प्रांत को लूटना शुरू किया। यह समाचार पाते ही बादशाह[3] ने पायंदा मोहम्मदख़ाँ आदि के साथ बहुत-से अमीरों को इनके मुक़ाबले को जाने की आज्ञा दी। इस पर एक बार चन्द्रसेनजी ने भी दिल खोल कर इनका सामना किया, परन्तु अंत में इतने बड़े सम्मिलित शाही दल के सम्मुख रण में प्रवृत्त होना हानिकारक जान यह पहाड़ों में घुस गए। यह घटना वि० सं० १६३७ (हि० सन् ९८८) की है।

इसके कुछ दिन बाद ही राव चन्द्रसेनजी ने फिर इधर-उधर से कुछ सेना एकत्र कर इसी वर्ष की श्रावण-वदि ११ (ई० स० १५८० की ७ जुलाई) को सोजत पर हमला कर दिया और वहाँ पर अधिकार हो जाने पर सारण के पर्वतों में अपना निवास क़ायम किया। परन्तु यहीं पर वि० सं० १६३७ की माघ सुदी ७ (ई० सन् १५८१ की ११ जनवरी) को इनका अचानक स्वर्गवास हो गया।

१. ख्यातों मे लिखा है कि रावजी यहाँ पर क़रीब डेढ़ वर्ष रहे थे।

२. ख्यातों मे लिखा है कि वहाँ के रावल और उनके पुत्र के बीच में विरोध होने के कारण वहां के क़िले पर इन्होंने अधिकार कर लिया था। परन्तु शाही सेना के आगमन के कारण इन्हें वहाँ से हट जाना पड़ा।

३. अकबरनामे मे लिखा है कि हि० स० ९८८ (वि० सं० १६३७) में सूचना मिली कि राव चन्द्रसेन मालदेव का बेटा, जो पहले बादशाह के दरबार मे हाज़िर हो चुका था बाग़ी हो गया और शाही फ़ौज के डर से छिप कर मौक़ा देखता था। पर आजकल मौक़ा पाकर अजमेर के इलाके मे लूट-मार करने लगा है।

(अकबरनामा, भा० ३, पृ० ३१८)

परन्तु चन्द्रसेनजी केवल वि० सं० १६२७ (ई० स० १५७०) में एक बार ही नागोर में बादशाह से मिले थे। उसके बाद इनका बादशाह से दुबारा मिलना न तो फ़ारसी तवारीख़ों से ही और न ख्यातों से ही सिद्ध होता है। अतः अकबरनामे का यह लेख उसी घटना को दुहराता है।

४. मारवाड़ की ख्यातों में लिखा है कि जिस समय राव चन्द्रसेनजी सोजत पर अधिकार

राव चन्द्रसेनजी का स्वर्गवास सचियार्य में हुआ था और सारन में जिस स्थान पर इनकी दाहक्रिया की गई थी, उस जगह इनकी संगमरमर की एक पुतली[2] अब तक विद्यमान है।

राव चन्द्रसेनजी ही अकबर-कालीन-राजस्थान के सर्व प्रथम मनस्वी वीर और स्वतंत्र प्रकृति के नरेश थे और महाराणा प्रताप ने इन्हीं के दिखलाए मार्ग का करीब १० वर्ष बाद अनुसरण किया था। यद्यपि चन्द्रसेनजी ने जोधपुर के-से राज्य को छोड़कर रात-दिन पहाड़ों में घूमना और आयुपर्यन्त यवनवाहिनी से लड़ते रहना अंगीकार कर लिया, तथापि बादशाह की अधीनता नाममात्र को भी स्वीकार नहीं की। अकबरनामे के लेख से भी ज्ञात होता है कि अकबर की प्रबल इच्छा थी कि अन्य नरेशों की तरह राव चन्द्रसेनजी भी, किसी तरह, उसकी अधीनता स्वीकार करलें। इसी से वह इनके विरुद्ध भेजे जाने वाले शाही अमीरों को समझा देता था कि हो सके, तो शाही प्रसन्नता के लाभ समझाकर वे राव को वश में करने की कोशिश करें। परन्तु उसकी यह इच्छा अंत तक किसी प्रकार भी पूर्ण न होसकी।

कर सारण के पर्वतों में रहने लगे थे, उस समय इधर-उधर के बहुत-से राठोड़ सरदार उनकी सेवा में चले आए थे। परन्तु राठोड़ वैरसल और कूँपावत उदयसिंह ने गर्व के कारण इस तरफ़ ध्यान नहीं दिया। इस पर रावजी ने वैरसल की जागीर के गाँव दूदोड़ पर चढ़ाई की। परन्तु जिस समय यह मार्ग में ही थे, उस समय राठोड़ (देवीदास के पुत्र) आसकरन ने वैरसल को समझाकर सेवा में ले आने का वादा किया। इससे इधर तो चन्द्रसेनजी ने अपनी चढ़ाई रोक दी और उधर आसकरन ने जाकर वैरसल को सब तरह से समझा दिया। परन्तु वैरसल ने यह शर्त पेश की कि यदि रावजी एक बार स्वयं आकर मेरे स्थान पर भोजन करलें, तो मुझे विश्वास हो जाय और मैं उनकी सेवा में उपस्थित हो जाऊँ। आसकरन की प्रार्थना पर रावजी ने यह बात मान ली और इसके अनुसार एक दिन यह उसके स्थान पर भोजन करने चले गए। परन्तु जैसे ही रावजी वैरसल के यहाँ से भोजन करके लौटे, वैसे ही इनका स्वर्गवास हो गया। इससे अनुमान होता है कि वैरसल ने विश्वासघात कर रावजी को विष दे दिया होगा।

१. यह सारन के पास (सोजत प्रान्त में) है।

२. उक्त पुतली में राव चन्द्रसेनजी की घोड़े पर सवार प्रतिमा बनी है और उसके आगे ५ स्त्रियाँ खड़ी हैं। इससे प्रकट होता है कि उनके पीछे ५ सतियाँ हुई थीं। यह बात उक्त पुतली के नीचे खुदे लेख से भी सिद्ध होती है। उसमें लिखा है—

"श्रीगणेशाय नमः। संवत् १६३७ शाके १५[०]२ माघ मासे सू(शु)क्लपक्षे सतिव (सप्तमी) दिने राय श्रीचन्द्रसेणजी देवीकुला सती पंच हुई।"

वास्तव में उस समय राजपूताने में महाराणा प्रताप और राव चन्द्रसेन, यही दो स्वाभिमानी वीर अकबर की आंखों के कांटे बने थे। राजस्थान की प्रचलित दंतकथा के अनुसार इनमें से पहले वीर ने तो एक बार अपने कुटुम्ब के महान् दुःख को देख कंधा डाल देने का विचार भी कर लिया था। परन्तु दूसरा वीर तो सुख-दुःख की कुछ भी परवा न कर अन्त तक बराबर अपने व्रत का निर्वाह करता रहा। किसी कवि ने क्या ही यथार्थ कहा है—

अणदगिया तुरी ऊजला असमर, चाकर रहण न डिगियो चीत।
सारे हिन्दुस्तान तणै सिर पातल नै चन्द्रसेण प्रवीत।

अर्थात्—उस समय सारे हिन्दुस्तान में महाराणा प्रताप और राव चन्द्रसेन, यही दो ऐसे वीर थे, जिन्होंने न तो अकबर की अधीनता ही स्वीकार की और न अपने घोड़ों पर शाही दाग ही लगने दिया, तथा जिनके शस्त्र हमेशा ही यवन-सम्राट् के विरुद्ध चमकते रहे।

राव चन्द्रसेनजी ने सांगा नामक ब्राह्मण को अरटनडी नामक एक गांव दान दिया था।

इन रावजी के तीन पुत्र थे—

(१) रायसिंह, (२) उग्रसेन और (३) आसकरन।

१. कहते हैं, महाराणा ने एक बार अपने परिवार के कष्टों को देखकर अकबर की अधीनता स्वीकार करने का विचार कर लिया था। परन्तु बीकानेर-नरेश के छोटे भाई पृथ्वीराज के उपदेश से वह फिर सम्हल गए।

राव चन्द्रसेन और महाराणा प्रताप पर एक तुलनात्मक दृष्टि।

आगे दोनों नरेशों के विषय की कुछ समान घटनाओं का उल्लेख किया जाता है। यद्यपि इनमें से कोई-कोई एक दूसरी से संपूर्णतः नहीं भी मिलती हैं, तथापि उनका एक भाग अवश्य ही आपस में समानता रखता है—

१—वैसे तो मारवाड़ और मेवाड़ के नरेशों से मुसलमान बादशाहों का वैर पहले से ही चला आता था, परन्तु वि० सं० १६२१ (ई० स० १५६४) में राव चन्द्रसेनजी ने व्यक्तिगत रूप से अकबर की अधीनता स्वीकार करने से इनकार किया था, और वि० सं० १६३० (ई० स० १५७३) में महाराणा प्रताप का जयपुर के कुँअर मानसिंह से विरोध हो जाने से उन पर अकबर के आक्रमण प्रारंभ हुए थे।

वि० सं० १६२८ से १६३७ (ई० स० १५७१ से १५८०) तक ये दोनों नरेश अकबर की आंखों के कांटे बने रहे। परंतु इसी वर्ष राव चन्द्रसेनजी का स्वर्गवास हो गया।

२—उधर महाराणा प्रताप यद्यपि महाराणा उदयसिंहजी द्वितीय के ज्येष्ठ पुत्र थे, तथापि उनके पिता ने उनके छोटे भाई जगमाल को राज्य का उत्तराधिकारी नियत कर दिया था। अतः पिता की मृत्यु के बाद यह भाई के विरुद्ध होकर मेवाड़ की गद्दी पर बैठे और इसी से दोनों भाइयों में विरोध हो गया। इस पर जगमाल जहाज़पुर होता हुआ अजमेर के सूबेदार की सलाह से अकबर की सेवा में चला गया और उससे जहाज़पुर का परगना जागीर में पाया। कुछ दिन बाद इनका दूसरा भाई सगर भी इनसे नाराज होकर अकबर के पास चला गया। इधर राव चन्द्रसेनजी के पाँच बड़े भाइयों के होते हुए भी इनके पिता ने इन्हीं को राज्याधिकारी चुना और इसी के कारण इनका बड़ा भाई राम इनसे अप्रसन्न होकर हुसेनकुली की सलाह से अकबर के पास चला गया, तथा ख्यातों के अनुसार बादशाह ने उसको सोजत का प्रांत जागीर में दिलवा दिया। वि० सं० १६२७ (ई० स० १५७०) में राव चन्द्रसेनजी के दूसरे भाई उदयसिंहजी भी बादशाही पक्ष में चले गए।

३—महाराणा प्रताप के राज्यासन पर बैठते समय जिस प्रकार मेवाड़ के चित्तौड़, मांडलगढ़ आदि प्रदेशों पर यवनों का शासन था, उसी प्रकार राव चन्द्रसेनजी के राज्यारोहण के समय भी मारवाड़ के अजमेर, मेड़ता आदि प्रदेश यवनों के अधिकार में थे।

४–जिस प्रकार महाराणा प्रताप के गद्दी पर बैठने के पूर्व ही बाबर आदि यवनों के साथ के युद्धों में मेवाड़ के बड़े-बड़े वीर मारे जा चुके थे, उसी प्रकार राव चन्द्रसेनजी के सिंहासनारूढ़ होने के पूर्व भी शेरशाह आदि यवनों के साथ के युद्धों में मारवाड़ के वीर-योद्धा वीरगति पा चुके थे।

५–जिस प्रकार महाराणा प्रताप ने अपनी स्वाधीनता की रक्षा और देशोद्धार के लिये गोगूँदा और खमणोर के बीच की पर्वत-श्रेणी का आश्रय लेकर विशाल यवन-सेना का सामना किया था, उसी प्रकार राव चन्द्रसेनजी ने भी सिवाने के पहाड़ों का आश्रय लेकर यवनवाहिनी को हैरान किया।

६–जिस प्रकार यवनवाहिनी के लगातार आक्रमणों के कारण एक वार महाराणा प्रताप को बाँसवाड़े की तरफ़ जाना पड़ा था और दूसरी बार छप्पन के पहाड़ों का आश्रय लेना पड़ा था, उसी प्रकार राव चन्द्रसेनजी को भी डूँगरपुर, बाँसवाड़े आदि की तरफ़ जाना पड़ा था और सिवाने की तरफ़ के छप्पन के पहाड़ तो बहुत समय तक इनके मुख्य आश्रय रहे थे।

७–जिस प्रकार अंत समय तक महाराणा प्रताप अन्य खोए हुए प्रदेशों पर अधिकार कर लेने पर भी चित्तौड़ पर अधिकार न कर सके थे, उसी प्रकार राव चन्द्रसेनजी भी सोजत का प्रदेश ले लेने पर भी पुनः जोधपुर अधिकृत न कर सके।

८–अबुलफ़ज़ल ने अपने अकबरनामे[१] में लिखा है:–

"सन् ९७८ हिजरी साल, १५ वें जुलूस में जब अकबर नागोर आया, तो चन्द्रसेन मालदेव का लड़का जो हिन्दुस्तान के बड़े ज़मीदारों में है, हाज़िर होकर शाही इनायत में हुआ।"

परन्तु घटनाक्रम से ज्ञात होता है कि यद्यपि वास्तव में ही बादशाह अकबर राव चन्द्रसेनजी पर कृपा दिखलाना चाहता था, तथापि इन्होंने उसकी अधीनता स्वीकार करने से इनकार कर दिया। यह बात उक्त पुस्तक[३] के इस लेख से भी सिद्ध होती है:–

"सन् ९८१ हिजरी शुरू साल १९ जुलूस में जब बादशाह अजमेर आया, तो सुना कि चन्द्रसेन राजा मालदेव के लड़के ने बग़ावत इख़्तियार करली है और

१. अकबरनामा, भा० ३, पृ० २३८
२. अकबरनामा, भा० २, पृ० ३५७-३५८
३. अकबरनामा, भा० ३, पृ० ८०-८१

सिवाने के क़िले की, जो अजमेर के सूबे के क़िलों में निहायत मज़बूत है, मरम्मत करके उसमें मुक़ाम कर लिया है। इस ख़बर के सुनने से बादशाह को रैयत पर रहम आया और उसने शाहकुलीख़ाँ मरहम, राव रायसिंह, शिमालख़ाँ (जयमल मेड़ते वाले के लड़के) केशोदास, और (धनचन्द के लड़के) जगतराय को मय बहादुर तजुर्बेकार फ़ौज के उसकी चश्मनुमाई पर मुक़र्रर किया। साथ ही यह नसीहत भी की कि अगर वह अपने किए हुए पर पछतावे, तो वे उसे शाही मेहरबानियों का उम्मेदवार बनावें।"

अकबरनामे में हिजरी सन् ९७८ के चन्द्रसेनजी के उपर्युक्त उल्लेख के बाद पहले-पहल हिजरी सन् ९८१ वाला यही उल्लेख मिलता है। ऐसी हालत में यदि वास्तव में अबुलफ़ज़ल के कथनानुसार नागोर में चन्द्रसेनजी शाही इनायत हासिल कर चुके थे, तो फिर उनकी इस अकारण बग़ावत का क्या कारण उपस्थित हुआ? इसके अलावा इतिहास में भी बादशाह की इनायत का कहीं कुछ भी विवरण नहीं मिलता है।

अकबरनामे में आगे फिर लिखा है:—

"सन् ९८८ हिजरी, जूलूस २५ में चन्द्रसेन ने बावजूद इसके कि बादशाही दरबार में हाज़िर हो चुका था, अपनी बदबख़्ती से फिर बग़ावत इख़्तियार की, जैसा कि बयान कर चुके हैं।"

परन्तु उक्त इतिहास में चन्द्रसेनजी के केवल नागोर में अकबर से मिलने के सिवाय ऐसी घटना का कहीं उल्लेख नहीं मिलता है। अतः यह घटना नागोर वाली घटना को ही दुहराती है।

इसी प्रकार उसी अकबरनामे में महाराणा प्रताप के विषय में लिखा है:—

"वहाँ से बमूजिब हुक्म शाही (मानसिंह मय अमीरों के) उदयपुर पहुँचा। राणा ने पेशवाई करके शाही ख़िलअत बहुत अदब से पहना और मानसिंह को मेहमान करके अपने घर ले गया। बदज़ाती से माफ़ी माँगी। अमीरों ने मंजूर नहीं की। राना ने वादा करके मानसिंह को रुख़सत किया और नरमी इख़्तियार की।"

---

१. अकबरनामा, भा० ३, पृ० ३१८

२. अकबरनामा, भा० ३, पृ० ४०

"सन् ९८१ हिजरी, जुलूस १८ में राजा भगवंतदास, शाहकुलीख़ाँ और लश्करख़ाँ को एक बड़ी फ़ौज देकर हुक्म दिया कि ईडर होते हुए राना की सरहद में जाओ और उधर के तमाम सरदारों को ताबे करो। जो सरकशी करे, उसको सज़ा दो।"[1]

"पूरा महीना भी नहीं गुज़रा था कि राजा भगवंतदास मय लश्कर के राना प्रताप के बेटे को साथ लेकर दरबार में हाज़िर हुआ। इसकी तफ़सील इस तरह है:-

जब शाही लश्कर राना के रहने की जगह गोगूँदे में पहुँचा, तब राना, गुज़रे हुए ज़माने में जो क़सूर किए थे उनके लिये शर्मिन्दगी और अफ़सोस ज़ाहिर करके, राजा भगवंतदास से आकर मिला और उससे शाही दरबार में सिफ़ारिश चाही। साथ ही उसने मानसिंह को अपने घर लेजाकर मेहमानदारी की और अपने लड़के को उसके साथ कर दिया। उसने यह भी कहा कि बदक़िस्मती से पहले मेरे दिल में घबराहट थी। मगर अब आपके ज़रिए से बादशाह से इल्तिजा करता हूँ और अपने लड़के को ख़िदमत में भेजता हूँ। कुछ दिनों में अपने दिल को तसल्ली देकर ख़ुद भी हाज़िर हो जाऊँगा।"[2]

राजपूताने की ख्यातों आदि से मिलान करने पर यह सब अबुलफ़ज़ल की कपोलकल्पना ही प्रतीत होती है। परन्तु फिर भी शाही दरबार के इतिहास-लेखक ने तो राव चन्द्रसेन और महाराणा प्रताप को अपनी तरफ़ से एक एक बार शाही अधीनता में सौंप ही दिया है। परन्तु ये घटनाएँ सत्य से बिलकुल परे हैं।

१-अकबरनामे में लिखा[3] है:-

"बादशाह ने कुतुबुद्दीनख़ाँ, राजा भगवंतदास और कुँअर मानसिंह को मय थोड़े-से शाही बहादुरों के रवाना कर हुक्म दिया कि पहाड़ों में जाकर राना को तलाश करें। मगर जब उसका पता न चला तब वे गोगूँदे चले गए।

"चूँकि राजा भगवंतदास और कुतुबुद्दीनख़ाँ बग़ैर शाही हुक्म के लौट आए थे, इसलिये बादशाह ने गुस्से होकर उनकी डेवढ़ी बंद कर दी। लेकिन जब उन्होंने अपनी ग़लती से शर्मिन्दा होकर माफ़ी माँगी, तो फिर हाज़िर होने की इजाज़त दे[4] दी।"

१. अकबरनामा, भा० ३, पृ० ६४
२. अकबरनामा, भा० ३, पृ० ६६-६७
३. अकबरनामा, भा० ३, पृ० १९१
४. अकबरनामा, भा० ३, पृ० १९५

उसी इतिहास में राव चन्द्रसेनजी की बाबत लिखा है:—

"सन् ९८२ हिजरी में जब बादशाह अकबर अजमेर आया, तो सिवाने से अकेले राव रायसिंह ने आकर अर्ज़ की कि राव मालदेव के लड़के चन्द्रसेन ने जोधपुर की हद में निहायत सर उठा रक्खा है और जो लश्कर सिवाने को घेरे हुए है, वह उसको दफ़ा नहीं कर सकता। अगर और बहादुर फ़ौज भेजी जाय तो काम बन सकता है। बादशाह ने मेहरबानी फ़रमा कर यह अर्ज़ क़बूल की और तैयबख़ाँ, सैयदबेग तोक़बाई, तुर्क सुभानकुली, खुर्रम, अज़मतख़ाँ और शिवदास को, मय चंद बहादुरों के साथ करके इस ख़िदमत पर भेजा। चन्द्रसेन रामपुरे की हद में होता हुआ पहाड़ों में घुस गया। शाही फ़ौज पहाड़ों की तरफ़ चली। कितने ही ताबे और कितने ही तबाह हो गए। चन्द्रसेन मुक़ाबला न कर सका। बादशाही अमीर उसके पहाड़ों में घुस जाने को नासमझी से लड़ाई की जीत ख़याल करके वापस लौट गए। बादशाह ने जब यह सुना तो नाराज़ हुआ।"

अबुलफ़ज़ल के उपर्युक्त दोनों लेख समान घटनाओं के द्योतक ही प्रतीत होते हैं। मुन्तख़बुत्तवारीख़ में लिखा है:—

"लेकिन राना का पीछा नहीं किया और वह ज़िन्दा निकल गया। यह बादशाह को बुरा मालूम हुआ।"

यह घटना राव चन्द्रसेनजी के साथ की घटना से और भी मिलती जुलती है।

विशेष घटनाएँ

एक बार अपने कुटुम्ब की तकलीफ़ को देख महाराणा प्रताप का जी भर आया और उनके चित्त में शाही अधीनता स्वीकार करने का विचार उत्पन्न होने लगा। जब अकबर द्वारा इसकी सूचना बीकानेर-नरेश रायसिंहजी के छोटे भ्राता पृथ्वीराजजी को मिली, तब उन्होंने महाराणा को लिखा:—

पटकूँ मूँछाँ पाण, के पटकूँ निज तन करद ;
दीजे लिख दीवाण, इण दो महली बात इक।

१. अकबरनामा, भा० ३, पृ० ११०-१११
२. मुन्तख़बुत्तवारीख़, भा० २, पृ० २३५

इस पर महाराना ने फिर दृढ़ता धारण करली और उत्तर में उन्हें लिख भेजा—

खुशी हूँत पीथल कमध, पटको मूँछाँ पाण ;
पछटण है जेतै पतो, कलमाँ सिर केवाण ।

परन्तु राव चन्द्रसेनजी के विषय में ऐसी कोई जनश्रुति नहीं सुनी जाती है ।

विस्मृति का कारण

ऐसे ही इन प्रातःस्मरणीय राठोड़-वीर राव चन्द्रसेनजी का नाम और इतिहास इस प्रकार विस्मृति में कैसे विलीन हो गया ? इसका मुख्य कारण यही प्रतीत होता है कि महाराणा प्रताप के पीछे तो उनके पुत्र-पौत्रादि गद्दी पर बैठते रहे । परन्तु राव चन्द्रसेनजी के पीछे वि० सं० १६४० (ई० सन् १५८३) में मारवाड़ का राज्य उनके भ्राता राजा उदयसिंहजी के अधिकार में चला गया । उनके और राव चन्द्रसेनजी के बीच विरोध चला आता था । इसी से उस समय के कवियों और ऐतिहासिकों ने लाभ की आशा न देख इनकी वीर-गाथाओं के कीर्तन की तरफ़ विशेष ध्यान नहीं दिया । इसके अलावा उन्हें इनके स्वाधीनता-प्रेम का गान करने में राजस्थान के तत्कालीन नरेशों के अप्रसन्न होने का भय भी रहा होगा ।

२१. राव रायसिंहजी

यह मारवाड़-नरेश राव चन्द्रसेनजी के ज्येष्ठ पुत्र थे[1]। इनका जन्म वि० सं० १६१४ की भादों सुदी १३ (ई० सन् १५५७ की ६ सितम्बर) को हुआ था। जिस समय इनके पिता की मृत्यु हुई, उस समय यह अकबर की आज्ञा से शाही सेना के साथ काबुल गए हुए थे। परन्तु जब इनके छोटे भ्राता उग्रसेनजी और आसकरनजी दोनों ही चौसर खेलते हुए मारे गए, और मारवाड़ के सरदारों ने इन्हें देश में आकर अपने पैतृक राज्य को सँभालने के लिये लिखा, तब इन्होंने यह सारा हाल बादशाह

१. 'राजपूताने के इतिहास' में इन्हें चन्द्रसेनजी का तीसरा पुत्र लिखा है (पृ० ७३७, टिप्पणी १)। यही बात 'सिरोही के इतिहास' में भी लिखी है (पृ० २२६)। परन्तु यह ठीक नहीं है।

(२१) राव आसकरनजी और उग्रसेनजी

२. ये दोनों भी चन्द्रसेनजी के पुत्र थे। उग्रसेनजी का जन्म वि० सं० १६१६ की भादों बदी १४ (ई० सन् १५५६ की २ अगस्त) को और आसकरनजी का वि० सं० १६१७ की श्रावण वदी १ (ई० सन् १५६० की ८ जुलाई) को हुआ था। (परन्तु एक स्थान पर वि० सं० १६२७ की आश्विन सुदी १४ भी लिखी मिलती है?) जिस समय (वि० सं० १६३७=ई० सन् १५८१ मे) राव चन्द्रसेनजी की मृत्यु हुई, उस समय रायसिंहजी काबुल में और उग्रसेनजी बूँदी मे थे। इसलिये मारवाड़ के सरदारों ने रावजी के पीछे उनके सबसे छोटे पुत्र आसकरनजी को गद्दी पर बिठला दिया। इसकी सूचना मिलने पर उग्रसेनजी बूँदी से मेड़ते चले आए, और मुग़ल सेनापतियों से मिलकर मारवाड़ का अधिकार प्राप्त करने की चेष्टा करने लगे। यह देख राठोड़ सरदारों ने उन्हें समझाया कि देश की दशा को देखते हुए उस समय गद्दी का ख़ाली रखना हानिकारक था। इसी से हमने आसकरनजी को गद्दी पर बिठा दिया था। यदि ऐसा न किया जाता, तो एकत्रित सरदार मालिक के न रहने से इधर-उधर चले जाते, और सोजत का प्रांत फिर मुग़लों के अधिकार मे हो जाता। फिर भी यदि आप आपस के मनोमालिन्य को छोड़कर यहाँ चले आवें, तो सोजत का आधा प्रांत आपको दिया जा सकता है। इस पर उग्रसेनजी मुसलमानों का साथ छोड़ मेड़ते से सारन (सोजत-प्रांत मे) चले आए।

एक रोज़ जिस समय उग्रसेनजी और आसकरनजी दोनों भाई चौसर खेल रहे थे, उस समय दोनों के बीच हार-जीत के विषय में झगड़ा हो गया। इससे क्रुद्ध होकर उग्रसेनजी ने अपनी कटार आसकरनजी की छाती में घुसेड़ दी। परन्तु राव आसकरनजी के सरदार (शंकर के पुत्र) शेखा ने, जो वहीं बैठा था, जब अपने स्वामी की यह दशा देखी, तब वही कटार उनकी छाती से निकाल उग्रसेनजी के हृदय में घुसेड़ दी। इस प्रकार दोनों भाई एक ही दिन स्वर्ग को सिधारे। यह घटना वि० सं० १६३८ की चैत्र सुदी १ (ई० सन् १५८१ की ६ मार्च) की है।

को लिख भेजा। इस पर उसने इन्हें राव का ख़िताब और सोजत का परगना जागीर में देकर मारवाड़ की तरफ़ जाने की अनुमति दे दी। इसलिये वि० सं० १६३९ (ई० सन् १५८२) में यह सोजत पहुँच वहाँ की गद्दी पर बैठे। इसके बाद वि० सं० १६४० (ई० सन् १५८३) में ही यह लौटकर बादशाह के पास चले गए।

इस घटना के पूर्व ही मेवाड़ के प्रसिद्ध महाराना प्रतापसिंहजी का भाई जगमाल बादशाह अकबर की सेवा स्वीकार कर उसके पास पहुँच चुका था, और कूटनीतिज्ञ अकबर ने उसे सिरोही का आधा राज्य दिलवा दिया था। परन्तु कुछ दिन बाद वहाँ के महाराव सुरतान से अनबन होजाने के कारण वह लौटकर फिर बादशाह के पास पहुँचा। इस पर अकबर ने देवड़ा सुरतान को हटाने और सिरोही का अधिकार जगमाल को दिलवाने के लिये, वि० सं० १६४० (ई० सन् १५८३) में, एक सेना भेजी, और उसके साथ राव रायसिंहजी भी नियत किए गए। इससे एक बार तो सिरोही पर फिर से जगमाल का अधिकार हो गया, और सुरतान भागकर आबू के पहाड़ों में चला गया। परन्तु कुछ दिन बाद ही जब बहुत-सी शाही सेना गुजरात की तरफ़ चली गई, तब सुरतान ने, एक रात को, बची हुई शाही सेना पर अचानक हमला करदिया। उस समय जगमाल और राव रायसिंहजी दोनों दताणी गांव के मुक़ाम पर बेख़बर सोए हुए थे, इसलिये जैसे ही इस हल्ले से उनकी निद्रा भंग हुई, वैसे

(ख्यातों में लिखा है कि चौसर खेलते समय दोनों भाइयों के बीच १० सेर मिसरी की शर्त ठहरी थी, और मौक़े पर उग्रसेनजी ने मिसरी ले आने के बहाने से आसकरनजी के सेवकों को वहाँ से हटा दिया था। परन्तु एक अफ़ीमची वहाँ पर रह गया था। अपने स्वामी का कराहना सुन वह चौंक पड़ा, और उसी ने आसकरनजी की छाती से कटार निकालकर उग्रसेनजी की छाती में घुसेड़ दी।)

वि० सं० १६३७ (८) शक संवत् १५०३ का एक शिला-लेख सारन से मिला है। इससे आसकरनजी के पीछे उनकी एक रानी का सती होना प्रकट होता है। शिला-लेख की प्रतिलिपिः-

"श्रीगणेशाय नमः। संवत् १६३७ (८) वर्षे शाके १५०३ (चैत्र) मासे सु(शु)क्ल पक्षे पडिवा १ राय श्री आसकरणजि (जी) देवलोक पधारा (रि) या तत् समये सती एक हुई।"

इस लेख का संवत् श्रावण से प्रारंभ होनेवाला मारवाड़ी संवत् है। इससे चैत्रादि संवत् १६३८ आता है। इसकी पुष्टि उसी में के आगे लिखे श० सं० १५०३ से भी होती है; क्योंकि विक्रम और शक संवत् के बीच १३५ का अंतर रहता है।

आसकरनजी के तीन पुत्र थे—कर्मसेन, कल्याणदास और कान्ह।

१. तबकाते अकबरी, पृ० ३५५।

ही ये इसके कारण की जाँच करने को शिविर से बाहर चले आए। परन्तु इसी बीच शत्रुओं ने वहाँ पहुँच इन्हें चारों तरफ़ से घेर लिया। अंत में ये दोनों विना शस्त्र होने के कारण शीघ्र ही सम्मुख रण में मारे गए¹। यह घटना वि० सं० १६४० की कार्तिक शुक्ला ११ (ई० सन् १५८३ की १७ अक्टोबर) की है।

१. अकबरनामा, भाग ३, पृ० ४१३।

महामहोपाध्याय पं० गौरीशंकरजी ओझा ने अपने 'सिरोही के इतिहास' (पृ० २३१) और 'राजपूताने के इतिहास' (पृ० ७३७) में सुरतान के नैश-आक्रमण का उल्लेख न कर लिखा है कि जिस समय जगमाल के साथ के कुछ योद्धा 'भीतरट' पर अधिकार करने को चले गए, उस समय मौक़ा पाकर सुरतान ने रायसिंह आदि पर हमला कर दिया। परन्तु अकबरनामे और मारवाड़ की ख्यातों में स्पष्ट तौर से सुरतान के नैश-आक्रमण का उल्लेख मिलता है। उनमें यह भी लिखा है कि जगमाल और रायसिंह दोनों उस समय निःशस्त्र होने पर भी बड़ी वीरता से शत्रु का सामना कर मारे गए।

कहीं-कहीं इस युद्ध में राव रायसिंहजी की तरफ़ के २८४ योद्धाओं का मारा जाना भी लिखा है।

२२. राजा उदयसिंहजी

यह राव मालदेवजी के पाँचवें पुत्र थे। इनका जन्म विक्रम संवत् १५९४ की माघ सुदी १३ (ई० स० १५३८ की १४ जनवरी) को हुआ था। राव मालदेवजी ने अपने जीते-जी ही इन्हें फलोदी का परगना जागीर में देकर वहां भेज दिया था। इसी से यह वहाँ रहकर अपनी जागीर का प्रबन्ध किया करते थे। वि० संवत् १६१९ (ई० स० १५६२) में जिस समय राव मालदेवजी का स्वर्गवास हुआ और उनकी इच्छा के अनुसार राव चन्द्रसेनजी जोधपुर की गद्दी पर बैठे, उस समय कुछ सरदारों के आग्रह से इन्होंने गाँगाणी आदि स्थानों पर अधिकार कर लिया था। इसी से राव चन्द्रसेनजी के और इनके बीच लोहावट में युद्ध हुआ। परन्तु अन्त में सरदारों ने बीच में पड़ दोनों भाइयों में मेल करवा दिया।

'तबक़ाते अकबरी' में लिखा है कि बादशाह अकबर के सातवें राज्य-वर्ष (हि० स० ९६९=वि० सं० १६१९=ई० स० १५६२) में उस (बादशाह) ने अबदुल्लाख़ाँ को मालवे की सूबेदारी दी। इससे उसने शाही सेना के साथ वहाँ पहुँच बाज़बहादुर को भगा दिया। इस पर वह (बाज़बहादुर) कुछ दिनों तक इधर-उधर भटक कर उदयसिंह की शरण में चला आया और अन्त में यहां से गुजरात की तरफ़ चला गया।

वि० संवत् १६२७ में जिस समय बादशाह अकबर अजमेर से लौटकर नागौर आया, उस समय बीकानेर आदि देशी राज्यों के अनेक नरेश उससे मिलने और उसका अनुग्रह प्राप्त करने के लिये वहाँ आपहुँचे। यह देख उदयसिंहजी भी वहाँ जाकर उससे मिले। इसी अवसर पर राव चन्द्रसेनजी के बादशाही अधीनता अस्वीकार कर देने से बादशाह उनसे नाराज़ होगया, और उसने उनके वंश में विरोध उत्पन्न करने के लिये उनके बड़े भ्राता उदयसिंहजी को अपने साथ ले लिया।

इसके बाद शीघ्र ही उदयसिंहजी गूजरों के उपद्रव को दबाने के लिये समावली की तरफ़ भेजे गए। वहाँ के उपद्रव को शान्त करने में अच्छी सफलता प्राप्त करने के कारण बादशाह अकबर इनसे और भी प्रसन्न हो गया। अगले वर्ष खीचीवाड़े के उपद्रव को भी इन्होंने बड़ी योग्यता से दबादिया।

---

१. कहीं वदि १३ भी लिखा है ?

२. यह राव मालदेवजी के छठे पुत्र थे।

३. देखो पृ० २५७। परन्तु अकबरनामे में बाज़बहादुर का राना उदयसिंह के पास जाना लिखा है। यही ठीक प्रतीत होता है। (देखो भा० २, पृ० १६६)।



२२. राजा उदयसिंहजी

वि० सं० १६४०-१६५२ (ई० स० १५८३-१५६५)

उस समय सिंध और थट्टे का मार्ग बीकमपुर (जैसलमेर-राज्य में) होकर जाता था। इसलिये मालके आवागमन के कारण भाटियों को अच्छी आमदनी हो जाती थी। यह देखकर उदयसिंहजी ने व्यापारियों के उस मार्ग से आने-जाने में रुकावट डालना और उन्हें फलोदी की तरफ़ से आने-जाने को बाध्य करना शुरू किया। इससे वि० संवत् १६२९ (ई० स० १५७२) में भाटियों के और इनके बीच झगड़ा हो गया। इस युद्ध में भाटियों के नायक के मारे जाने के कारण विजय उदयसिंहजी के हाथ रही। इसका बदला लेने के लिये, वि० संवत् १६३१ (ई० स० १५७४) में, भाटियों ने फलोदी पर एकाएक चढ़ाई कर दी। जैसे ही इसकी सूचना उदयसिंहजी को मिली, वैसे ही यह अपने उपस्थित वीरों को लेकर उनका सामना करने को चले। मार्ग में हम्मीरसर (कुण्डल के पास) में पहुँचने पर दोनों का सामना हो गया। यहां के युद्ध में यद्यपि एक बार तो राठोड़ों ने भाटियों को दबा लिया, तथापि अन्त में संख्याधिक्य के कारण खेत भाटियों के ही हाथ रहा।

वि० संवत् १६३४ (ई० स० १५७७) में जिस समय बादशाह की तरफ़ से सादिक़ख़ाँ ओड़छा और बुन्देलखंड के शासक मधुकरशाह बुन्देले को दबाने के लिये भेजा गया, उस समय उदयसिंहजी भी उसके साथ गए थे[1]। वहाँ के युद्ध में इन्होंने अच्छी वीरता दिखलाई। ख़ास कर नरवर का क़िला तो इन्हीं की बहादुरी से विजय हुआ था। इससे कुछ समय बाद ही बादशाह अकबर ने इन्हें राजा की पदवी देकर जोधपुर का अधिकार सौंप देने का वादा भी किया। इनका शरीर स्थूल होने के कारण यह शाही दरबार में 'मोटा राजा' के नाम से प्रसिद्ध थे[2]।

१. 'मआसिरुल उमरा' में इस घटना का अकबर के २३ वें राज्य-वर्ष में होना लिखा है (देखो भा० २, पृ० १८१)। परन्तु अकबरनामे में २२ वां राज्य-वर्ष लिखा है (देखो भाग ३, पृ० २१०)।

२. वि० सं० १६३५ का लिखा हुआ इनका एक 'ख़ास रुक्का' मिला है। इससे प्रकट होता है कि जोधाजी ने हरा नामक ब्राह्मण के पूर्वजों को कन्नौज से अपनी कुलदेवी की मूर्ति ले आने के कारण जो ताम्रपत्र लिख दिया था, वह उस समय तक विद्यमान था। इस ताम्रपत्र का उल्लेख यथास्थान जोधाजी के इतिहास में किया जा चुका है। यहाँ पर उदयसिंहजी के उक्त पत्र की नक़ल दी जाती है–

"श्री नागणेचियाँ

महाराजाधिराज श्री उदेसिंघजी वचनायतं सेवग हरो सदावंद कदीम सुं छै, राठोड़ वंसरो सेवगपणो कदीम सुं ईयारै छै, तीणारो हथेरण सांमत १५१६ रो तांबापतर मुजब परवाणो करदीनो

इसके बाद वि० सं० १६४० में राजा उदयसिंहजी पुष्कर की तरफ़ होते हुए जोधपुर चले आए और भादों बदी १२ (ई० स० १५८३ की ४ अगस्त) को जोधपुर की गद्दी पर बैठे।

विक्रम संवत् १६४० के माघ में जिस समय मिरज़ाखाँ (अब्दुलरहीम ख़ाँनख़ाँ-नान्) मुज़फ़्फ़र गुजराती के उपद्रव को शान्त करने के लिये भेजा गया, उस समय मोटा राजा उदयसिंहजी भी उसके साथ थे। राजपीपला की लड़ाई में मुज़फ़्फ़र को हार कर भागना पड़ा।

इन दिनों भाद्राजन का हरराजिया नामक मीणा इधर-उधर लूट-मार कर बड़ा उपद्रव करने लगा था। इसलिये राजा उदयसिंहजी ने राठोड़ (खींवा के पुत्र) सूरजमल को उसे पकड़ने की आज्ञा दी। इसी के अनुसार उसने एक रात्रि को कुछ आदमियों के साथ अचानक पहुँच उसे पकड़ लिया। अन्त में हरराजिया के अपराधों पर विचार कर राजा उदयसिंहजी ने उसे मार डालने की आज्ञा दे दी। इससे दूसरे मीणे भी डर गए।

छै, गऊतमस गोतर, अक्कुर साष (ख), तीन परवर, कुलदेवी ....रछे द ? राठोड़ वंस गोत्रारा लार ईतरा जण छै, प्रो। सेवड सेवग ओजा लोड जातरा सारसुत भीरामण ६ ॥ पु॥ राठोड़ वासरा पुज पुजापारा। श्री देवकारजरा पीत्र कारजे लोड ओजरे हथ बीन उपजे नहीं सु इणरे हाथ सुं हुसी सं॥ १६३५ रा माह सुद ५।

ईतरा नेघ फेर ईनायत किना १ जनम असटमी, २ आंवली ईगीयारस, ३ वीरपुड़ी, ४ महालष(च)मी, ५ असासो, ६ जाया परणीयारी, ७ रीष पांचम, ८ अरती पुषणीयां वीवपु.........ईतरानेग आल ओलाद पायं जासी, कोई उथापण पावे नहीं सं॥..........आ॥ स्द दुवे परवानगी राठोड़........"

१. वि० सं० १६४० की सावन बदी १ (ई० सन् १५८३ की २६ जून) को उदयसिंहजी ने पुष्कर में अपना एक राजगुरु नियत कर उसको एक ताम्रपत्र लिख दिया था। उसमें इनकी उपाधि 'महाराजाधिराज महाराजा' लिखी है।

इसी वर्ष इन्होंने जोधपुर के मुसलमानों को जुमे की नमाज़ पढ़ाने के लिये एक क़ाज़ी को दो सनदें दी थीं। इनमें से एक वि० सं० १६४० की श्रावण सुदी १२ (ई० सन् १५८३ की २१ जुलाई) की है, और दूसरी का संवत् कागज़ फट जाने से पढ़ा नहीं जाता। इनमें इनकी उपाधि 'महाराजाधिराज' लिखी है।

२. 'अकबरनामे' के दफ़्तर ३, पृ० ४२३-४२४ में इस घटना का हि० सन् ६६२ में होना लिखा है, और 'तबक़ाते अकबरी', पृ० ३५७-३५८ में मुज़फ़्फ़र के साथ के युद्ध का १३ मोहर्रम शुक्रवार को होना लिखा है। (परन्तु शायद इस तारीख़ को गुरुवार आता है)

विक्रम संवत् १६४१ (ई० स० १५८४) में बादशाहने सोजत का प्रान्त भी उदयसिंहजी को देदिया[1]।

इसी वर्ष सैयद दौलतख़ाँ ने खंभात पर अधिकार कर लिया। इस पर अकबर की आज्ञा से अनेक सरदारों और अमीरों ने मिलकर उस पर चढ़ाई की। उस समय मोटा-राजा उदयसिंहजी भी उनके साथ थे। इन्होंने वहाँ पर सैयद को दबाने में बड़ी वीरता दिखलाई[2]।

विक्रम संवत् १६४३ (ई० स० १५८६) में राजा उदयसिंहजी ने सींधल-वाटी (जालोर–प्रान्त में) पर चढ़ाई की, और वहाँ के सींधल राठोड़ों को हराकर उनके गांवों को लूट लिया[3]।

---

१. यह प्रान्त पहले राव रायसिंहजी के अधिकार में था, और उनकी मृत्यु के बाद वहाँ पर उनके परिजन रहा करते थे। परन्तु जब यह परगना उदयसिंहजी को सौंप दिया गया, तब वे सब जोधपुर चले आए।

२. अकबरनामा, दफ्तर ३, पृ० ४३६-४३७। मारवाड़ की ख्यातों में लिखा है कि इसी वर्ष इन्होंने सीसोदिया जगमाल और राव रायसिंह का बदला लेने के लिये शाही सेना के साथ सिरोही पर भी चढ़ाई की थी। परन्तु राव सुरतान ने दण्ड के रुपये देकर इन लोगों से क्षमा मांग ली।

इस चढ़ाई का वर्णन 'सिरोही के इतिहास' में नहीं दिया गया है।

३. ख्यातों में लिखा है कि जिस समय सोजत पर राव मालदेवजी के पुत्र राम और पौत्र कल्ला (कल्याण) का अधिकार था, उस समय उन्होंने उस प्रान्त के कई गाँव चारणों को दान में दिए थे। परन्तु वहाँ पर राजा उदयसिंहजी का अधिकार हो जाने के बाद एक बार जब इनकी रानियाँ सिवाने की तरफ़ गईं, तब मार्ग में चारणों के बाड़े के पास पहुँचने पर उनके रथ के बैल थक गए। यह देख साथ के मनुष्यों ने एक चारण के बैल पकड़ कर रथ में जोत लिए। इसपर उस चारण ने बड़ा उपद्रव मचाया और रथ के साथ वालों के मना करने पर भी अपने बैल खोल कर ले गया। इस घटना का हाल सुन कर राजा उदयसिंहजी चारणों से नाराज़ हो गए। इसलिये विक्रम संवत् १६४३ (ई० सन् १५८६) में इन्होंने चारणों के कई गाँव ज़ब्त कर लिए। इस पर पहले तो उन लोगों ने मिल कर महाराज से बहुत कुछ अनुनय-विनय की। परन्तु जब इससे काम नहीं चला, तब उन्होंने जोधपुर में एकत्रित होकर अनशन व्रत ले लिया। यह बात महाराज को और भी बुरी लगी। इससे इन्होंने उन लोगों को जोधपुर से निकलवा दिया। इस प्रकार खदेड़ दिए जाने पर वे लोग पाली के ठाकुर चाँपावत गोपालदास के पास पहुँचे और उसे अपना सारा हाल सुनाकर महाराज को समझाने के लिये भेजा।

अगले वर्ष (वि० सं० १६४४ में) मोटा-राजा उदयसिंहजी अपने राजकुमार शूरसिंहजी को साथ लेकर लाहौर गए। वहीं पर बादशाह अकबर की इच्छानुसार उन (युवराज शूरसिंहजी) का विवाह कछवाहा दुरजनसाल की कन्या से कर दिया गया।

ख्यातों में लिखा है कि इसी वर्ष बादशाह ने महाराज को सिरोही के राव सुरतान को दण्ड देकर देवड़ा हरराज के पुत्र विजा को वहाँ की गद्दी पर बिठा देने की आज्ञा दी। इन्होंने भी इस अवसर पर अपने भतीजे राव रायसिंहजी की मृत्यु का बदला लेने का निश्चय कर तत्काल सिरोही पर चढ़ाई कर दी। परन्तु इनसे सम्मुख रण में लड़ना हानिकारक समझ सुरतान आबू के पहाड़ों में चला गया। इस पर उदयसिंहजी ने इधर-उधर के गांवों को लूट नीतोड़ा नामक गाँव में अपनी छावनी डाल दी। यद्यपि एक महीने तक तो राव सुरतान पहाड़ों में छिपा रह कर इन पर आक्रमण करने का मौक़ा ढूंढ़ता रहा, तथापि अन्त में उसे लाचार हो अपने कुछ सरदारों को, बगड़ी के ठाकुर (पृथ्वीराज के पुत्र) वैरसल के मारफ़त, उदयसिंहजी के पास भेज कर बादशाह से क्षमा दिलवाने की प्रार्थना करनी पड़ी। परन्तु महाराज अपने भतीजे रायसिंहजी का सुरतान-द्वारा धोखे से मारा जाना अभी तक नहीं भूले थे। इससे इन्होंने रत्नसिंह के पुत्र राम को आज्ञा देकर सिरोही के उन सरदारों को मरवा डाला। यह बात वैरसल को बुरी लगी। इसी से उसने राम को मार कर स्वयं[1] भी आत्महत्या कर ली।

इसके बाद स्वयं विजा ने शाही सेनापति जामबेग को साथ लेकर 'वास्थानजी' के मार्ग से सुरतान पर चढ़ाई की। परन्तु युद्ध होने पर विजा मारा गया। इसकी

परन्तु जब राजा उदयसिंहजी का क्रोध इससे भी शान्त न हुआ, तब चारणों ने आउवा गाँव में दो दिन अनशन व्रत करने के बाद तीसरे दिन सूर्योदय के समय अपने-अपने गले में कटार घुसेड़कर आत्महत्या कर ली। इसके बाद आढ़ा दुरसा आदि एक-दो चारण जो अपने गले में कटार घुसेड़ लेने पर भी बच गए थे, सिरोही की तरफ़ चले गए।

इस आत्महत्या के कार्य में कुछ पुरोहितों ने भी, चारणों के साथ समवेदना प्रकट करने के लिये, उनका साथ दिया। साथ ही इस कार्य में चारणों की सहायता करने के कारण चांपावत गोपालदास को भी मारवाड़ छोड़ कर जाना पड़ा।

१. इस पर जो चबूतरा बनाया गया था वह नीतोड़े में अब तक विद्यमान है।

सूचना पाते ही राजा उदयसिंहजी ने देवड़ा कल्ला को सिरोही की गद्दी पर बिठा दिया, और कुछ दिनों में वहां का प्रबन्ध ठीक कर यह मारवाड़ में लौट आए।

इसके बाद (इसी वर्ष वि० सं० १६४४=ई० सन् १५८७ में) उदयसिंहजी ने सिवाने पर चढ़ाई कर वहाँ के क़िले को घेर लिया। कई दिनों तक दोनों पक्षों के बीच बराबर युद्ध होता रहा। बादशाही और महाराज की सेनाओं के खुले स्थान में और राव कल्ला की सेना के क़िले में होने से बाहरवाली सेना की अधिक क्षति होने लगी। इस पर शाही सेना के सेनापतियों ने क़िले के एक नाई को लालच देकर अपनी तरफ़ मिलाया, और उसी के द्वारा क़िले के अरक्षित भाग का पता लगाकर रस्सियों-द्वारा उधर से अन्दर घुसने का प्रबन्ध कर लिया। जब इस प्रकार सब प्रबन्ध ठीक हो गया, तब रात्रि के समय शाही सेना के साथ ही महाराज की सेना भी चुप-चाप क़िले में प्रविष्ट होगई। यह देख क़िले में की राजपूत-रमणियाँ तो जौहर (अग्नि-प्रवेश) कर अपने वीर-पतियों के पूर्वही इस लोक से बिदा होगईं, और उनके वीर-पति सम्मुख रण में शत्रु से भिड़कर स्वर्ग को सिधारे। इस युद्ध में वीरवर कल्ला ने भी अच्छी वीरता दिखाई थी। परन्तु अन्त में वह खीची गणेशदास के हाथ से मारा गया[२]। इससे सिवाने पर बादशाह का अधिकार

---

१. अकबर नामे में लिखा है कि सने जुलूस ३८=हि० सन् १००१ (वि० सं० १६५०=ई० सन् १५६३) मे बादशाह ने 'मोटा राजा' को सिरोही के राव (सुरतान) को दण्ड देने की आज्ञा दी। इससे अनुमान होता है कि या तो मारवाड़ की ख्यातों और 'अकबरनामा' इन दोनों में से किसी एक मे संवत् गलत लिखा गया है, या फिर वि० सं० १६५० मे भी उदयसिंहजी ने सिरोही पर दुबारा चढ़ाई की होगी। (देखो अकबरनामा, दफ़्तर ३, पृ० ६४१) परन्तु 'सिरोही के इतिहास' मे भी इस घटना का वि० सं० १६४५ (ई० सन् १५८८) के प्रारम्भ के क़रीब होना ही लिखा है। (देखो पृ० २३४-२३५)।

२. परन्तु इसका उल्लेख फ़ारसी तवारीख़ों मे नहीं मिलता है। ख्यातों मे यह भी लिखा है कि रायमल का पुत्र (मालदेवजी का पौत्र) कल्ला (कल्याणमल्ल) सिवाने का स्वामी था। जिस समय वह शाही सेना के साथ लाहौर में था, उस समय उसके और एक शाही मनसबदार के बीच झगड़ा हो गया। इस पर वह उस शाही मनसबदार को मार कर सिवाने चला आया। इसकी सूचना पाते ही बादशाह ने उस पर सेना भेज दी। परन्तु कल्ला की वीरता और सिवाने के दुर्ग की दुर्गमता के कारण उसे सफलता नहीं हुई। यह देख बादशाह ने 'मोटाराजा' को उस पर चढ़ाई करने की आज्ञा दी।

होगया[1]। यह घटना विक्रम संवत् १६४५ (ई० सन् १५८८) की है।

बादशाह अकबर राजा उदयसिंहजी को बहुधा अपने साथ ही रखता था। विक्रम संवत् १६४९ (हि० सन् १०००=ई० सन् १५९२) में जब वह लाहौर से काश्मीर गया, तब उसने कुलिचख़ाँ के साथ ही महाराज को भी वहां (लाहौर) के प्रबन्ध के लिये नियत करदिया[2]।

विक्रम संवत् १६५० (ई० सन् १५९३) में महाराज ने जसोल के रावल वीरमदेव पर चढ़ाई[3] की। यद्यपि पहले तो रावल ने भी बड़ी वीरता से इनका सामना किया, तथापि अन्त में उसे हारकर भागना पड़ा। इससे जसोल पर महाराज का अधिकार हो गया।

इसी वर्ष (हि० सन् १००२ में) राजा उदयसिंहजी को दक्षिण के युद्ध में भाग लेने के लिये शाहजादे दानियाल के साथ जाना पड़ा[4]। वहाँ से लौटने पर कुछ दिन तो यह मारवाड़ में रहे, परन्तु बाद में लाहौर के प्रबन्ध की देखभाल के लिये

परन्तु इन्होंने कल्ला पर स्वयं चढ़कर जाना अनुचित जान राजकुमार भोपतसिंह और भंडारी मना को कुछ सेना देकर उधर भेज दिया। यद्यपि इस राठोड़-वाहिनी ने सिवाने के क़िले को घेर कर कुछ दिन के लिये उसका बाहरी संबन्ध काट दिया, तथापि एक रात को मौक़ा पाकर वीर कल्ला एकाएक क़िले से निकल इस सेना पर टूट पड़ा। इस अचानक के आक्रमण से बाहर की राठोड़-सेना के साथ ही शाही सेना के भी बहुत से वीर मारे गए। इससे बची हुई सेनाओं को क़िले का घेरा हटा लेना पड़ा। इस समाचार को सुन बादशाह अकबर को बड़ा दुःख हुआ, और उसने इन दो बार की पराजयों का बदला लेने के लिये राजा उदयसिंहजी को स्वयं सिवाने पर चढ़ाई करने की आज्ञा दी। इसी कारण इनको स्वयं कल्ला के विरुद्ध सिवाने पर चढ़ाई करनी पड़ी थी।

१. उसी समय से किसी नाई को सिवाने के क़िले में नहीं जाने दिया जाता।

कहते हैं कि तब से ही कल्ला के वंश के सरदार (लाडनू वग़ैरा के ठाकुर) भी उस क़िले में नहीं जाते हैं।

२. तबक़ाते अकबरी (पृ० ३७६)।

३. वि० सं० १६५० की आषाढ़ सुदी ६ के लेख से उस समय फलोदी पर बीकानेर नरेश रायसिंहजी का अधिकार होना प्रकट होता है।

४. तबक़ाते अकबरी (पृ० ३७९) मे हि० सन् १००१ की २१ मुहर्रम (वि० सं० १६४९ की कार्तिक बदी ८=ई० सन् १५९२ की १८ अक्टोबर) को इनका दक्षिण की तरफ़ भेजा जाना लिखा है।

उधर चले गए[1]। विक्रम संवत् १६५२ की आषाढ़ सुदी १२ (ई० सन् १५९५ की ८ जुलाई) को वहीं पर दमे की बीमारी से इनका स्वर्गवास होगया[2]। इसके बाद जिस समय रावी के किनारे इनका दाहकर्म किया गया, उस समय स्वयं बादशाह अकबर ने नाव-द्वारा वहाँ आकर राजकुमार शूरसिंहजी के साथ समवेदना प्रकट[3] की।

मारवाड़ के नरेशों में पहले पहल इन्होंने ही बादशाही 'मनसब' अंगीकार किया था। एक तो उस समय राजस्थान की परिस्थिति ही ऐसी हो रही थी कि आंबेर और बीकानेर आदि के नरेश अकबर जैसे प्रतापी बादशाह का दिया 'मनसब' स्वीकार कर या उसकी कृपादृष्टि प्राप्त कर अपने को सुरक्षित और बलवान् समझने लगे थे। दूसरा स्वयं राजा उदयसिंहजी के सामने ही मारवाड़ का राज्य उनके छोटे भाई को दे दिया गया था और घटना-विशेष से राव मालदेवजी के हुमायूँ को सहायता न दे सकने के कारण उस (मारवाड़-राज्य) पर बादशाह अकबर का अधिकार हो चुका था। इन परिस्थितियों में पड़ कर ही उदयसिंहजी को बादशाही सहारा लेना पड़ा। नहीं कह सकते कि इस प्रकार की परिस्थिति के अभाव में उदयसिंहजी अपनी वंश-क्रमागत स्वाधीनता को छोड़ने को उद्यत होते या नहीं। इससे मिलती हुई परिस्थिति में पड़कर ही मेवाड़ के प्रसिद्ध महाराना प्रतापसिंहजी के भाई जगमल को भी अकबर की शरण लेनी पड़ी थी। परन्तु उस (जगमाल) के शीघ्र ही विक्रम संवत् १६४० (ई० सन् १५८३) में मर जाने से वह सफल न हो सका। जिस समय उदयसिंहजी को राजा की पदवी और मारवाड़ का अधिकार प्राप्त हुआ था, उसी समय शायद इन्हें डेढ़हज़ारी मनसब भी मिला था[4]।

१. अकबरनामा, दफ़्तर ३ पृ० ६६२। वि० सं० १६५१ (चैत्रादि सं० १६५२) की प्रथम जेठ सुदी १ (ई० सन् १५६५ की ३० अप्रेल) को जिस समय महाराज लाहौर में थे, उस समय इन्होंने क़ाज़ी सैयद फ़ीरोज़ को जोधपुर का क़ाज़ी नियत कर एक सनद कर दी थी। उसमें भी इनकी उपाधि 'महाराजाधिराज महाराजा' लिखी है।

२. कहीं कहीं इस घटना की तिथि आषाढ़ सुदी १५ (११ जुलाई) भी लिखी मिलती है।

३. 'अकबरनामे' में लिखा है कि मोटा राजा हि० सन् १००३ की ३० तीर को मर गया। इसपर उसके साथ ४ रानियां सती हुईं (देखो दफ़्तर ३, पृ० ६६६)।

४. 'तबक़ाते अकबरी' में इनका 'मनसब' डेढ़हज़ारी दिया है (देखो पृ० ३८६)। परन्तु 'मआसिरे आलमगीरी' में इनका 'मनसब' एकहज़ारी ही लिखा है (देखो भा० २, पृ० १८१)।

इन्होंने मारवाड़ का अधिकार प्राप्त होने पर अनेक गांव दान दिये थे[1]।

इनके १६ पुत्र थे। १ भगवानदास[2], २ नरहरदास[3], ३ कीर्तिसिंह[4], ४ दलपत[5],

---

१. बेराई (शेरगढ़ परगने का), २ खुडाला (नागोर परगने का), ३ रामासणी (सोजत परगने का), ४ मोतीसरा (जालोर परगने का), ५ नगवाड़ा-खुर्द (परबतसर परगने का), ६ खाटावास, ७ तांबड़िया-खुर्द ८ बासणी-चारणां ९ पीथासणी १० मीडोली-चारणां (जोधपुर परगने के), ११ जोधावास (जैतारण परगने का) चारणों को; १२ सारण (सोजत परगने का) स्वामियों को; १३ कानावासिया (बीलाड़ा परगने का) रणछोड़जी के मन्दिर को; १४ बांजडा (बीलाड़ा परगने का) भाटों को; १५ मोडी-सूतडां १६ बासणी-भाटियां (जोधपुर परगने के), १७ तालकिया (जैतारण परगने का) पुरोहितों को और १८ मोडी-जोशियां (जोधपुर परगने का) ब्राह्मणों को।

२. इसका जन्म वि० सं० १६१४ की आश्विन वदि १४ को हुआ था।

३. इसका जन्म वि० सं० १६१४ की कार्तिक वदि २ को हुआ था।

४. इसका जन्म वि० सं० १६२४ की पौष सुदि १४ को हुआ था।

५. दलपत का जन्म वि० सं० १६२५ की सावन वदि ६ को हुआ था। इस को राजा उदयसिंहजी ने जालोर का प्रांत जागीर में दिया था। इसके पुत्र महेशदास (जन्म वि० सं० १६५३ की माघ वदि ३) की वीरता से प्रसन्न होकर बादशाह शाहजहाँ ने उसे अपना मनसबदार बनाया था। इसी के साथ इसे एक बड़ी जागीर भी दी गई थी। इसके ८४ गाँव तो फूलिया के परगने में और ३२५ गांव जहाज़पुर के परगने में थे।

'बादशाहनामे' (के भा० २ के पृ० ५५४) में लिखा है कि बलख़ के युद्ध में विजय प्राप्त करने पर, वि० सं० १७०३ (ई० सन् १६४६) में, बादशाह ने इसका मनसब बढ़ाकर ३,००० ज़ात और २,५०० सवारों का कर दिया था। उसी इतिहास (के भा० २, पृ० ६३५) में लिखा है कि वि० सं० १७०४ (ई० स० १६४७) में राठोड़ दलपत का पुत्र और शूरसिंहजी का भतीजा मर गया। यह बड़ा विश्वासपात्र, अनुभवी योद्धा और कुशल व्यक्ति था। बादशाह को इससे बहुत शोक हुआ और उसने कहा कि ऐसे व्यक्ति का सम्मुख रण में शत्रुओं को मारकर वीरगति प्राप्त करना ही अधिक उचित होता।

बादशाह को इस पर इतना भरोसा था कि दरबार के समय वह शाही तख़्त के पीछे केवल १० गज़ के फ़ासले पर रक्खी हुई उस चन्दन की बनी चौकी के पास खड़ा रहता था, जिस पर बादशाह की तलवार और तीर-कमान रक्खे रहते थे। इसी प्रकार शाही सवारी के समय भी वह बादशाह से १० गज़ के फ़ासले पर चलता था।

महेशदास के मरने पर बादशाह ने उसके ज्येष्ठ पुत्र रत्नसिंहजी (जन्म वि० सं० १६७५ की चैत्र वदि ३०) का मनसब बढ़ाकर १,५०० ज़ात और १,५०० सवारों का कर दिया। उस समय भी जालोर उनकी जागीर में रहा।

कहते हैं महेशदास अपने द्वितीय पुत्र कल्याणदास को अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहता था। इसकी सूचना मिलने पर रत्नसिंहजी नाराज़ होकर बादशाह की सहायता प्राप्त करने के लिये दिल्ली

५ भोपतसिंह[१], ६ शूरसिंह, ७ माधवसिंह[२], ८ कृष्णसिंह[३],

चले गए। इसके बाद एक रोज़ एक मस्त हाथी शाही दरबार की तरफ़ चला आया। यह देख इन्हों ने तत्काल अपनी कटार खींच ली और उससे उस मस्त हाथी के मस्तक पर इस ज़ोर से वार किया कि वह मार्ग छोड़ चिंघाड़ता हुआ जिधर से आया था उधर ही को भाग चला।

इनकी इस फुर्ती और, पराक्रम को देख बादशाह शाहजहां मुग्ध हो गया, और उसने उसी समय इन्हें अपना कृपापात्र बना लिया[१]। यह समाचार सुन इनके पिता को भी अपना विचार बदल इन्हीं को अपना उत्तराधिकारी मानना पड़ा।

इसके बाद रत्नसिंहजी ने शाही सेना के साथ रह कर बलख़ आदि में अच्छी वीरता दिखलाई। इससे प्रसन्न होकर बादशाह ने इन्हें मालवे में एक बड़ी जागीर दी। वहीं पर इन्होंने बाद मे अपने रतलाम-राज्य की स्थापना की। इनके पौत्र केशवदासजी के समय वि० सं० १७५२ (ई० स० १६९५) मे बादशाही अमीने जज़िया के रतलाम-राज्य में मारे जाने के कारण बादशाह औरङ्गज़ेब उनसे नाराज़ हो गया। इसीसे उसने उनसे रतलाम का राज्य ज़ब्त कर शाहज़ादे आज़म को जागीर मे दे दिया। परन्तु कुछ काल बाद वहां का अधिकार शाहज़ादे से वापिस लिया जाकर केशवदास के चचा छत्रसालजी को दे दिया गया। अन्त मे केशवदासजी के निर्दोष सिद्ध होने और शाही सेना के साथ रह कर युद्धों में वीरता दिखलाने के कारण औरङ्गज़ेब इनसे फिर प्रसन्न हो गया, और उसने वि० सं० १७५८ (ई० स० १७०१) मे इन्हें तीतरोद का प्रान्त जागीर में दिया। इसके बाद वहीं पर इन्होंने अपने सीतामऊ के नवीन राज्य की स्थापना की।

उपर्युक्त (रतलाम नरेश) छत्रसालजी के पौत्र मानसिंहजी के छोटे भ्राता जयसिंहजी ने वि० सं० १७८७ (ई० स० १७३०) में अपनी जागीर रावटी में अपना स्वतन्त्र राज्य कायम किया। इसके बाद वि० सं० १७९३ (ई० स० १७३६) में उन्हीं जयसिंहजी ने नवीन राजधानी सैलाना की भी स्थापना की।

१. इसका जन्म वि० सं० १६२५ की कार्तिक सुदि ६ को हुआ था।

२. माधवसिंह का जन्म वि० सं० १६३८ की कार्तिक वदि ५ को हुआ था। इसके वंशज पिशांगण और जूनिया (अजमेर प्रान्त) में हैं। पिशांगण के शासक नाथूसिंह ने मारवाड़ नरेश महाराजा मानसिंहजी के उदयपुर की राजकुमारी कृष्णाकुमारी के साथ के विवाह के मामले में बहुत कुछ उद्योग किया था। इसी से प्रसन्न होकर महाराज मानसिंहजी ने, वि० सं० १८६३ (ई० स० १८०६) में, उसे राजा की पदवी दी। वि० सं० १९३४ (ई० स० १८७७) में भारत सरकार ने भी उसे नाथूसिंह के वंशज प्रतापसिंह के लिये व्यक्तिगतरूप से स्वीकार कर लिया था। (देखो—चीफ़्स एण्ड लीडिंग फ़ेमिलीज़ इन राजपूताना (ई० स० १९१६ में प्रकाशित) पृ० १०१)।

३. कृष्णसिंहजी का जन्म वि० सं० १६३९ की जेठ वदि २ को हुआ था और अपने पिता के मरने पर यह शाहज़ादे सलीम के पास चले गए थे। अकबर के मरने पर जब शाहज़ादा

(१) बारहट कुम्भकर्ण रचित 'रतनरासा' से भी इसकी पुष्टि होती है।

९ शक्तिसिंह[1], १० मोहनदास, ११ अखैराज, १२ जैतसी[2], १३ जसवंतसिंह, १४ करणमल्ल, १५ केशवदास और १६ रामसिंह ।

सलीम बादशाह जहांगीर के नाम से दिल्ली के तख्त पर बैठा, तब वि० सं० १६६४ की कार्तिक सुदि ४ (ई० स० १६०७ की १४ अक्टोबर) को उसने कृष्णसिंहजी को १,००० ज़ात और ५०० सवारों का मनसब दिया (देखो-'तुज़ुकजहांगीरी', पृष्ठ ६२) । इसके बाद इसमें वृद्धि होते होते वि० सं० १६७१ की चैत्र वदि १ (ई० स० १६१५ की ६ मार्च) को इनका मनसब ३,००० ज़ात और १,५०० सवारों का हो गया (देखो-'तुज़ुकजहांगीरी', पृष्ठ १३९) ।

इन्हें बादशाह की तरफ़ से सोठेलाव, आदि कुछ परगने और भी जागीर में मिले थे । वि० सं० १६६८ (ई० स० १६११) में इसी सोठेलाव के पूर्व में इन्होंने अपने नाम पर किशनगढ़ नगर बसाकर उक्त राज्य की स्थापना की ।

१. शक्तिसिंह एक वीरप्रकृति का पुरुष था । इसकी वीरता से प्रसन्न होकर बादशाह अकबर ने इसे राव की पदवी के साथ ही सोजत, फूलिया और केकड़ी के परगने जागीर में दिए थे । क़रीब एक वर्ष तक तो सोजत इसी के अधिकार में रहा । परन्तु इसके बाद वहाँ का शासन शूरसिंहजी को दे दिया गया और इसके एवज़ में इसे जैतारण का प्रान्त मिला ।

'चीफ्स एण्ड लीडिंग फ़ेमिलीज़ इन राजपूताना' (ई० सन् १९१६ में प्रकाशित के पृ० १०२) में लिखा है कि एक बार शक्तिसिंह ने बादशाह अकबर को डूबने से बचाया था । इसी से प्रसन्न होकर उसने उसे १५ गाँव जागीर में दिए थे । इसके बाद वि० सं० १९३४ (ई० सन् १८७७) में इसके वंशज माधवसिंह को भारत सरकार ने फिर से राव की पदवी दी । खरवा (अजमेर-प्रान्त में) के राव इसी शक्तिसिंह के वंशज हैं ।

२. जैतसिंह के वंशज दुगोली, लोटोती आदि में हैं ।

२३. सवाई राजा शूरसिंहजी

यह मारवाड़ नरेश राजा उदयसिंहजी के पुत्र थे[1]। इनका जन्म वि० सं० १६२७ की वैशाख बदी ३० (ई० सन् १५७० की ५ अप्रैल) को हुआ था।

वि० सं० १६४८ (ई० सन् १५९१) में बादशाह अकबर ने पहले पहल इन्हें लाहौर की शाही सेना के एक भाग का प्रबंध सौंपा। इससे कुछ दिन वहाँ रहकर यह उक्त कार्य करते रहे। परन्तु इसके बाद लौटकर जोधपुर चले आए।

वि० सं० १६५२ (ई० सन् १५९५) में जिस समय बादशाह के बुलाने पर राजा उदयसिंहजी लौटकर लाहौर गए उस समय यह भी उनके साथ थे। इससे वहाँ पर महाराज का स्वर्गवास हो जाने से, उन्हीं की इच्छा के अनुसार, वि० सं० १६५२ की सावन बदी १२ (ई० सन् १५९५ की २३ जुलाई) को, बादशाह ने इन्हें राजा की पदवी देकर मारवाड़-राज्य का उत्तराधिकारी बना दिया।

ख्यातों में लिखा है कि इसी अवसर पर बादशाह ने इन्हें दो हजारी जात और सवा हजार सवारों का मनसब दिया था।

इसके कुछ मास बाद यह लौटकर जोधपुर चले आए। यहाँ पर वि० सं० १६५२ की माघ सुदी ५ (ई० सन् १५९६ की २४ जनवरी) को चिर-प्रचलित प्रथा के अनुसार यथा-नियम इनका राज्याभिषेक किया गया।

वि० सं० १६५३ (ई० सन् १५९६) में बादशाह ने सुल्तान मुराद को, जो अब तक गुजरात के सूबे की देखभाल पर नियत था, बदल कर दक्षिण की तरफ़ के उपद्रवों को शांत करने के लिये भेजा और वहाँ (गुजरात) की रक्षा का भार राजा शूरसिंहजी को सौंपा[2]। इस पर महाराज भी मारवाड़ का शासन-प्रबंध

---

१. ख्यातों के अनुसार यह (शूरसिंहजी) राजा उदयसिंहजी के छठे पुत्र थे।

२. अकबरनामा, भा० ३, पृ० ६६७।

भाटी गोविंददास[1] को देकर शीघ्र ही उधर को रवाना हो गए। मार्ग में जिस समय यह सिरोही के क़रीब पहुँचे, उस समय इन्हें वहाँ पर राव रायसिंहजी[2] के धोके से मारे जाने का ख़याल आ गया। इससे उस घटना का बदला लेने के लिये इन्होंने अपने सैनिकों को उस राज्य के गाँवों को लूटने की आज्ञा देदी। यह देख वहाँ का राव सुरतान घबरा गया और उसने संधि करने की इच्छा से बहुत सा रुपया महाराज की भेंट किया। यहाँ से चल कर कुछ ही दिनों में यह गुजरात पहुँच गए और वहाँ पर ख़ाँ आज़म से मिल कर मुज़फ़्फ़र के उपद्रव को दबाने का प्रयत्न करने लगे।

अगले वर्ष मुज़फ़्फ़र के ज्येष्ठ पुत्र बहादुर ने कुछ लोगों को लेकर गुजरात के प्रदेशों में लूटमार शुरू की। यह देख महाराज भी उसे दण्ड देने के लिये अहमदाबाद[3] से रवाना हुए। परन्तु इनको दलबल-सहित अपनी तरफ़ आते देख कर बहादुर की हिम्मत टूट गई। इसी से थोड़ीसी मुठभेड़ के बाद वह मैदान से भाग गया[4]।

इधर महाराज को अपने अधिकांश योद्धाओं के साथ गुजरात की तरफ़ गया जान कर पीछे से बीकानेर वाले गाँगाणी नामक (मारवाड़ के) गाँव में घुस आए

१. पहले मारवाड़ के राठोड़ नरेशों और उनके वंश के जागीरदारों के बीच भाई–बिरादरी का-सा बर्ताव चला आता था। परंतु भाटी गोविंददास ने इस ढंग को बदल कर, राज्य का सारा प्रबंध बादशाही ढंग पर कर दिया। इससे मारवाड़ नरेशों और उनके सरदारों का संबंध स्वामी सेवक का-सा हो गया और राज्य-परिवार मे होनेवाली शादी ग़मी के अवसर पर ठकुरानियों के राजकीय अंतःपुर मे उपस्थित होने की प्रथा उठ गई। दरबार के समय राव रणमल्लजी के वंश के जागीरदारों के लिये दाईं तरफ़ का और राव जोधाजी के वंश के जागीरदारों के लिये बाईं तरफ़ का स्थान नियत किया गया। राजकार्य के लिये दीवान, बख़्शी, ख़ानसामाँ, हाकिम, कारकुन, दफ़्तरी, दारोगा, पोतेदार, वाक़या-नवीस आदि पद नियत किए गए।

ख़वास पासवानों आदि को भी अलग अलग काम सौंपे गए। महाराज की ढाल और तलवार रखने का काम खीचियों को, चँवर और मोरछल रखने का काम धांधलों को, जलूसी पंखा और ख़ास मोहर रखने का काम गहलोतों को, डेवढी के प्रबंध का काम सोभावतों को और महाराज के हाथी की सवारी करने पर महावत का काम आसायचों को सौंपा गया। इसी प्रकार दूसरे कार्यों के लिये भी अन्य ख़ास ख़ास वंश के राजपूत नियत किए गए।

२. यह मारवाड़ नरेश राव चंद्रसेनजी के पुत्र थे और इन्हें सिरोही के राव सुरतान ने रात्रि मे अचानक आक्रमण कर मारा था।

३. यहीं से वि० सं० १६५४ में इन्होंने नापावस गांव के दान की आज्ञा दी थी।

४. अकबरनामा, भा० ३, पृ० ७२५।



२३. सवाई राजा शूरसिंहजी

वि॰ सं॰ १६५२-१६७६ (ई॰ स॰ १५९५-१६१९)

और वहाँ से कुछ राजकीय ऊँटों को पकड़ कर अपने देश को ले चले। परन्तु इसकी खबर मिलते ही मांगलिया सूरा और राठोड़ (महेशदास के पुत्र) हरदास ने उनका पीछा कर वे ऊँट उनसे छीन लिए।

इसी प्रकार महाराज को मारवाड़ में अनुपस्थित देख जैसलमेर-रावल भीमराजजी के कुछ सैनिक भी कोरणे की तरफ़ पहुँच इधर उधर लूटमार करने लगे थे। यह देख ऊहड़ गोपालदास ने उन पर चढ़ाई की। युद्ध होने पर गोपालदास मारा गया। परन्तु भाटियों को भी शीघ्र ही जैसलमेर लौट जाना पड़ा।

वि० सं० १६५६ (ई० सन् १५९९) में सुल्तान मुराद मर गया। इस पर पहले तो बादशाह अकबर ने खुद दक्षिण पर चढ़ाई की। परन्तु अगले वर्ष वहाँ की सूबेदारी शाहज़ादे दानियाल को दी गई और उसकी मदद के लिये राजा शूरसिंहजी नियत किए गए[1]।

उस समय यह गुजरात में थे। इससे वहाँ से दक्षिण की तरफ़ जाते हुए कुछ दिन के लिये सोजत (मारवाड़) में ठहर गए। यह बात बादशाह को बुरी लगी। इसलिये उसने महाराज के भाई शक्तिसिंह को राव की पदवी देकर सोजत जागीर में दे दिया[2]। महाराज भी उस समय विरोध करना अनुचित समझ दक्षिण की तरफ़ चले गए। वहाँ पर कुछ ही दिनों में इन्होंने (सआदतख़ाँ के प्रधान) राजू के साथ के युद्धों में ऐसी वीरता दिखलाई कि उसका हाल सुन बादशाह आप ही आप इनसे प्रसन्न हो गया। इसी अवसर पर महाराज के मंत्री भाटी गोविन्ददास और राठोड़ (रत्नसिंह के पुत्र) राम ने उसे महाराज को सोजत का प्रांत लौटा देने के लिये समझाया। इससे अकबर ने वह प्रांत फिर से इन्हीं को लौटा दिया[3]।

अकबरनामे में अबुलफ़ज़ल लिखता है[4]:—

वि० सं० १६५७ (ई० सन् १६००) में अहमदनगर वालों से नासिक छीन लिया गया। इस पर पहले तो सआदतख़ाँ ने बादशाह की अधीनता स्वीकार कर ली। परन्तु शीघ्र ही अपने गुलाम राजू के बहकाने से वह फिर बाग़ी होगया। यह देख

१. मआसिरुल उमरा, भा० २, पृ० १८२।

२. शक्तिसिंह का अधिकार सोजत पर क़रीब एक वर्ष तक रहा था।

३. फ़ारसी तवारीख़ों में इस बात का उल्लेख नहीं है।

४. अकबरनामा, भा० ३, पृ० ७७२।

बादशाह ने शाहज़ादे को उसे दण्ड देने के लिये जाने की आज्ञा दी। उस समय राजा शूरसिंहजी भी उसके साथ थे।

वि० सं० १६५८ (ई० सन् १६०१) में महाराज फिर शाही सेना और अबुलफ़ज़ल के साथ राजू को दण्ड देने और अहमदनगर को विजय करने के लिये भेजे गए[1]। इन दोनों बार के युद्धों में इन्होंने बड़ी वीरता दिखाई थी।

इन्हीं दिनों हब्शी खुदावंदखाँ ने पाथरी और पालम के प्रांतों में उपद्रव शुरू कर दिया था। जब इसकी सूचना ख़ाँन-ख़ाँनान् को मिली तब उसने राजा शूरसिंहजी को शाही सेना देकर उसको दबाने के लिये रवाना किया। इस पर महाराज ने खुदावंदख़ाँ को हराकर वहाँ पर फिर से शांति स्थापित की[2]।

वहाँ से लौटकर यह निज़ामुलमुल्क के सेनापति अम्बरचम्पू के मुक़ाबले को चले। यह देख वह कंधार की तरफ़ बढ़ने लगा। उसी अवसर पर हब्शी फ़रहाद भी अपने दो-तीन हज़ार सवारों को लेकर उससे आ मिला। उस समय राजा शूरसिंहजी शाही सेना के अग्रभाग (हरावल) में थे। इसलिये इनके अंबर की सेना के सामने पहुंचते ही पहले तो उसने बड़ी बहादुरी से इनका सामना किया। परन्तु फिर शीघ्र ही उसके पैर उखड़ गए और उसे रणस्थल से भागकर अपनी जान बचानी पड़ी। यह घटना वि० सं० १६५९ (ई० सन् १६०२) की है।

अबुलफ़ज़ल ने इस विषय में लिखा है कि:—

इस युद्ध में जैसी वीरता बादशाही सेना के अग्रभाग और मध्यभाग वालों ने दिखलाई थी वैसी ही वीरता अगर वाम और दक्षिण भाग वाले भी दिखलाते तो अंबर और फ़रहाद का भागना असम्भव हो जाता और वे पकड़ लिए जाते[3]।

इस युद्ध में के महाराज के वीरता-पूर्ण कार्यों को देख कर स्वयं शाहज़ादा दानियाल इतना प्रसन्न हुआ कि उसने बादशाह को भी पत्र द्वारा इसकी सूचना लिख भेजी[4]। इसपर बादशाह ने इन्हें एक शाही नक़्क़ारा उपहार में दिया[5]। साथ

१. अकबरनामा, भा० ३, पृ० ८०१।
२. अकबरनामा, भा० ३, पृ० ८०६।
३. अकबरनामा, भा० ३, पृ० ८०७।
४. मआसिरुल उमरा, भा० २ पृ० १८२।
५. अकबरनामा, भा० ३, पृ० ८१६।

ही उसने शाहज़ादे को लिखा कि राजा शूरसिंहजी बहुत समय से शाही कार्यों में लगे रहने के कारण अपने देश को नहीं जा सके हैं, इसलिये उनको यहाँ भेज दो और उनके प्रधान मंत्री भाटी गोविंददास को राठोड़ों की सेना के साथ अपने पास रहने दो[1]। इसी के अनुसार यह वि० सं० १६६१ (ई० सन् १६०४) में बादशाह से मिलकर[2] जोधपुर चले आए।

मारवाड़ की ख्यातों से प्रकट होता है कि इसी अवसर पर बादशाह ने इन्हें 'सवाई राजा' के ख़िताब के साथ मेड़ते का आधा प्रांत[3] और जैतारन जागीर में दिए थे।

गुजरात प्रांत के और दक्षिण के युद्धों में महाराज को बहुत-सा द्रव्य मिला था। इससे जोधपुर पहुँच कर इन्होंने एक बड़ा यज्ञ किया। इसके बाद इनकी आज्ञा से भंडारी मना ने राजकीय सेना के साथ जाकर मेड़ते और जैतारन पर अधिकार कर लिया। इसी अवसर पर जैतारन के चारों तरफ़ शहर पनाह बनवाई गई और वहाँ का बहुत-सा प्रांत महाराज की तरफ़ से ऊदावतों को दे दिया गया।

वि० सं० १६६२ (ई० सन् १६०५) में बादशाह अकबर मर गया और उसका पुत्र जहाँगीर के नाम से हिन्दुस्तान के तख़्त पर बैठा। इसी समय गुजरात में फिर उपद्रव उठ खड़ा हुआ। इससे अन्य बादशाही अमीरों के साथ सवाई राजा शूरसिंहजी को भी उधर जाना पड़ा। वहाँ पर भी इन्होंने उपद्रव को दबाने में अच्छी वीरता दिखलाई[4]।

---

१. अकबरनामा, भा० ३, पृ० ८२०।

२. इसी वर्ष राजा शूरसिंहजी ने बादशाह के कहने से मीर सदर मोइम्माई के पुत्र को पकड़ कर पाटन (गुजरात) में मुर्तज़ा अली के हवाले कर दिया, जहाँ से वह अकबर की राज्य सीमा से बाहर निकाल दिया गया। (अकबरनामा, भा० ३, पृ० ८३१)।

३. मेड़ते का आधा प्रांत तो मेड़तिया जगन्नाथसिंह से लेकर बादशाह ने पहले ही इन्हें दे दिया था। इस अवसर पर बाकी का आधा प्रांत भी किशनदास से लेकर महाराज को दे दिया।

४. ख्यातों मे लिखा है कि अकबर के मरते ही गुजरात के कोलियों ने उपद्रव उठाया। इस पर जहाँगीर ने राजा शूरसिंहजी को उनके उपद्रव को दबाने के लिये भेजा। इन्होंने मांडवी के पास पहुँच अपनी सेना के दो विभाग किए। एक का सेनापति भाटी गोविंददास और दूसरे का राठोड़ सूरजमल बनाया गया। इसके बाद महाराज की आज्ञा से इन दोनों ने मिलकर कोलियों पर आगे और पीछे दोनों तरफ़ से हमला कर दिया। कुछ

वि० सं० १६६३ की कार्तिक[1] सुदी ७ (ई० सन् १६०६ की २७ अक्टोबर) को यह जोधपुर आए और वि० सं० १६६५ (ई० सन् १६०८) के वैशाख में आगरे पहुँच बादशाह जहाँगीर से मिले[2]। इसी वर्ष की मँगसिर बदी २ (१३ नवम्बर) को बादशाह ने इनका मनसव ३,००० ज़ात और २,००० सवारों का करके इनको ख़ाँनख़ाँनान् के साथ दक्षिण की तरफ़ भेजा[3]। इसके बाद इनके कार्यों से प्रसन्न होकर

ही देर के युद्ध में बहुत से कोली मारे गए और बचे हुए जंगल की तरफ़ भाग चले। यह देख राठोड़ सवारों ने उनका पीछा किया। यद्यपि राठोड़ गोपालदास ने उनको इस कार्य से रोकना चाहा, तथापि विजय मे उन्मत्त हुए योद्धाओं ने इस पर विशेष ध्यान नहीं दिया। राठोड़ों को अपने पीछे लगा देख कोली भी जल्दी से जंगल और पहाड़ की आड़ लेकर पलट पड़े और जैसे ही राठोड़ सवार उनकी मार के भीतर पहुँचे, वैसे ही उन्होंने उनपर तीरों की वर्षा शुरू करदी। एक तो वैसे ही राठोड़ घोड़ों पर सवार होने से सघन बन और पथरीली ज़मीन मे उनका पीछा नहीं कर सकते थे, दूसरे जंगली मार्गों से भी वे बिलकुल अपरिचित थे। इससे उन्हें बड़ी क्षति सहनी पड़ी। उनके साथ के राठोड़ सूरजमल, राठोड़ गोपालदास, मेड़तिया हरिसिंह और जसवंत कलावत आदि बहुत से सरदार मारे गए। यह देख महाराज को बड़ा दुःख हुआ और यह लौटकर अहमदाबाद चले गए। वहाँ से कुछ दिन बाद जोधपुर आने पर महाराज ने माँडवी के युद्ध में मारे गए सरदारों के कुटुम्बों के साथ बड़ी समवेदना प्रकट की।

फ़ारसी तवारीख़ों में इस युद्ध का उल्लेख नहीं है। परन्तु 'बांबे गज़ेटियर' में लिखा है कि ई० सन् १६०६ में राजा शूरसिंह और राजा टोडरमल का पुत्र राय गोपीनाथ मालवा, सूरत और बड़ोदा के मार्ग से गुजरात भेजे गए। वहाँ पहुँच इन्होंने बेलापुर के शासक कल्याण को हराकर क़ैद करलिया। परन्तु माँडव के शासक के साथ के युद्ध में ये असफल होकर अहमदाबाद को लौट गए। (देखो भा० १, खण्ड १, पृ० २७३)।

१. ख्यातों में कार्तिक के स्थान पर फागुन भी लिखा मिलता है। इसके अनुसार ई० सन् १६०७ की २३ फरवरी को इनका आना सिद्ध होता है।

२. तुज़ुकजहाँगीरी, पृ० ६८। ख्यातों में लिखा है कि (मोटा राजा उदयसिंहजी का पुत्र) भगवानदास बुंदेला दला के हाथ से मारा गया था। इससे भगवानदास के पुत्र गोविंददास ने इसका बदला लेने के लिये महाराज से सहायता की प्रार्थना की। इस पर इन्होंने (सादूल के पुत्र) मुकुंददास को कुछ चुने हुए योद्धा देकर उसके साथ करदिया। इन लोगों ने बुंदेलखंड में पहुँच दला को मार डाला।

३. तुज़ुकजहाँगीरी, पृ० ७४।

बादशाह ने अपने चौथे राज्य-वर्ष में इनका मनसब बढ़ा कर चार हज़ारी ज़ात और दो हज़ार सवारों का कर दिया[1]।

इसी वर्ष अबदुल्लाख़ाँ ने सोजत का परगना महाराज कुमार गजसिंहजी को लौटा दिया और इसकी एवज़ में उनसे नाडोल के थाने का प्रबंध करने का आग्रह किया[2]।

१. मआसिरुल उमरा, भा० २, पृ० १८२। यह मनसब-वृद्धि जहाँगीर के चौथे राज्य-वर्ष (वि० सं० १६६६=ई० स० १६०९) मे हुई थी।

२. वि० सं० १६६५ (ई० सन् १६०८) में जहाँगीर की आज्ञा से महाबतख़ाँ ने मेवाड़ पर चढ़ाई की। जिस समय इसका कैंप मोही मे था उस समय उसे सूचना मिली कि महाराना अमरसिंहजी का कुटुम्ब सोजत में छिपा हुआ है और राजा शूरसिंहजी के कुछ सरदार उन्हें गुप्तरूप से सहायता देते हैं। इस पर उसने शाही दरबार से आज्ञा प्राप्त कर उक्त प्रांत को महाराज के शासन से निकाल लिया और वहाँ का अधिकार राव चन्द्रसेनजी के पौत्र (उग्रसेन के पुत्र) कर्मसेन को दे दिया।

जब इसकी सूचना महाराज को मिली तब इन्होंने अपने मंत्री गोविंददास को महाबतख़ाँ को समझाने के लिये भेजा। परन्तु उस समय इस कार्य मे सफलता नहीं हुई।

इसके बाद महाबतख़ाँ के मेवाड़ की चढ़ाई मे असफल होने के कारण उसके स्थान पर अब्दुल्लाख़ाँ नियत किया गया। इसने कर्मसेन से सोजत का अधिकार छीन लेना चाहा। इस पर कर्मसेन ने भी अब्दुल्लाख़ाँ का बड़ी वीरता से सामना किया। परन्तु अन्त में उसके वीर सेनापति सोलंकी कुंभा के मारे जाने और उसका बल क्षीण होजाने से वह (कर्मसेन) सोजत का क़िला छोड़ कर निकल गया। उपर्युक्त सोलंकी कुंभा की स्त्री के, जो अपने पति के साथ सती हुई थी, हाथ का चिह्न क़िले के भीतरी दरवाज़े पर अब तक विद्यमान है।

इसके बाद ही नाडोल के थाने का प्रबंध करने की शर्त पर सोजत का शासन पीछा मारवाड़ नरेश के अधिकार में दे दिया गया। नाडोल के थाने का समुचित प्रबंध हो जाने से आगरे और गुजरात के बीच के मार्ग की लूट खसोट बंद हो गई।

'राजपूताने के इतिहास' के भा० ३, पृ० ७६६ के फुटनोट ३ मे ओझाजी ने वि० सं० १६६७ के वैशाख (ई० सन् १६१० के अप्रेल) मे इस घटना का होना मान कर दक्षिण जाते हुए शूरसिंहजी का भाटी गोविंददास को महाबतख़ाँ के पास भेजना लिखा है। परन्तु एक तो 'तुज़ुकजहाँगीरी' (पृ० ७४) मे शूरसिंहजी का वि० सं० १६६५ (ई० सन् १६०८) मे ख़ाँनख़ाँनान् के साथ दक्षिण की तरफ़ जाना लिखा है। दूसरा 'राजपूताने के इतिहास' के ही पृ० ७६५ पर स्वयं ओझाजी ने हि० सन् १०१८ के रबिउल आख़िर (वि० सं० १६६६ के श्रावण=ई० सन् १६०९ के जून) में महाबतख़ाँ के स्थान पर अब्दुल्लाख़ाँ का नियत किया जाना लिखा है। ऐसी हालत में वि० सं० १६६७ के वैशाख में सोजत पर कर्मसेन का अधिकार होने के कुछ समय बाद शूरसिंहजी का गोविंददास को महाबतख़ाँ के पास भेजना कैसे संभव हो सकता है। नवलकिशोर प्रेस की छपी 'तुज़ुकजहाँगीरी' में हि० स० १०१८ की १९ रबिउल अव्वल दोशंबा (वि० सं० १६६६ की

इस पर वह अपनी राठोड़ सेना के कुछ चुने हुए वीरों को लेकर वहाँ जा पहुँचे। इससे उधर की मेवाड़ वालों की लूटमार बिलकुल बंद हो गई[1]।

उस समय महाराज के दक्षिण में होने से जोधपुर का सारा प्रबंध महाराज कुमार गजसिंहजी और भाटी गोविंददास के हाथ में था। वि० सं० १६६८ (ई० सन् १६११) में महाराना अमरसिंहजी के योद्धाओं ने अहमदाबाद से आगरे को जाते हुए व्यापारियों के एक संघ[2] का (मारवाड़ राज्य के) दूनाड़ा नामक गाँव तक पीछा किया। परन्तु देर हो जाने के कारण व्यापारियों के बहुत आगे बढ़ जाने से वे उसे लूट न सके। इसके बाद जिस समय वे लोग वापिस लौटे उस समय इसकी सूचना पाकर मालगढ़ और भाद्राजन के करीब भाटी गोविंददास[3] ने इन पर हमला कर दिया। यह अचानक आक्रमण देख कुछ देर तक तो मेवाड़ वालों ने भी उसका सामना किया। परन्तु अंत में अपने बहुत से वीरों के मारे जाने के कारण उन्हें युद्ध स्थल से भाग जाना पड़ा। इस युद्ध में राठोड़ों की तरफ़ के भाटी गोपालदास, राठोड़ खींवा और ख़िदमतगार मान बड़ी वीरता से लड़कर मारे गए[4]। अगले वर्ष जब बादशाह

आषाढ़ बदी ५=ई० सन् १६०६ की १२ जून सोमवार) को महाबतखाँ के स्थान में अब्दुल्लाखाँ का नियत किया जाना लिखा है। (देखो पृ० ७५)। गणना से 'राजपूताने के इतिहास' के पृष्ठ ७६५ पर लिखी रबिउल आख़िर की उस (१६) तारीख़ को दोशंबा नहीं आता। इसी के साथ 'तुज़ुक जहाँगीरी' में यह भी लिखा है कि इसी वर्ष की १४ रजब (वि० सं० १६६६ की आश्विन सुदी १५=ई० सन् १६०६ की ३ अक्टोबर) को अब्दुल्लाखाँ की विजय के समाचार बादशाह के पास पहुँचे। (देखो पृ० ७६)।

१. इससे पहले उक्त थाने का प्रबंध ग़ज़नीखाँ के हाथ में था। नीलकंठ महादेव के मन्दिर के पीछे लगे वि० सं० १६६६ की ज्येष्ठ सुदी १५ (ई० सन् १६०६ की ७ जून) के लेख से प्रकट होता है कि जहाँगीर के राज्य समय ग़ज़नीखाँ ने वहाँ के थाने के चारों तरफ़ कोट बनवाकर उक्त नगर का नाम नूरपुर रक्खा था।

'गुणरूपक' में लिखा है कि राजकुमार गजसिंहजी ने इस अवसर पर नाडोल, जोजावर, चॉमलौद ? (चाँणोद), खोड़, सादड़ी, कुंभलमेर आदि में विजय प्राप्त कर सोलंकी, बालेसा, सींधल और सीसोदियों को दबाया और नाडोल के थाने की रक्षा का प्रबंध किया। (देखो गुणरूपक, पृ० ६-१०)।

२. 'वीरविनोद' में कुँवर कर्णसिंह आदि का शाही ख़ज़ाने का पीछा करना लिखा है।

३. उस समय गोविददास नाडोल के थाने पर था।

४. 'गुणरूपक' में लिखा है कि गजसिंहजी के बढ़ते हुए प्रताप को देख महाराना ने एक सेना मारवाड़ में उपद्रव करने के लिये रवाना की। परन्तु गजसिंहजी और गोविंददास ने

के बुलवाने पर राजा शूरसिंहजी दक्षिण से लौटते हुए सिरोही के गाँव पाडीव में पहुँचे, तब वहाँ के राव राजसिंहजी ने इनका प्रभाव और बल देखकर इनसे मित्रता कर लेने का विचार किया। इसी के अनुसार उन्होंने अपने विश्वस्त पुरुषों—देवड़ा पृथ्वीराज और भैरूँदास को महाराज के पास भेजकर कहलवाया कि यदि आप पुराना (रायसिंहजी की मृत्यु का) वैर छोड़कर मेरी मदद करना स्वीकार करलें, तो मैं अपने छोटे भाई शूरसिंह की कन्या राजकुमार गजसिंहजी को ब्याहने को तैयार हूँ। भाटी गोविंददास के कहने से महाराज ने यह बात मान ली। परन्तु इसी के साथ नीचे लिखी दो बातें और भी तय की गईं:—

१—जिस दिन राजकुमार गजसिंहजी को कन्या ब्याही जावे, उसी दिन राव रायसिंहजी के साथ मारे गए अन्य २१ राठोड़ों के कुटुम्ब वालों के साथ भी चौहानों की अन्य २१ कन्याएँ ब्याही जायँ।

२—देवड़ा बीजा का जड़ाऊ कटार, स्वर्गवासी राव रायसिंहजी का नक्कारा और उनके शिविर का लूटा हुआ सामान राजकुमार और महाराज को भेट के रूप में दिया जाय।

इस प्रकार सारी बातें तय हो जाने पर वि० सं० १६६९ की फागुन बदी ६ (ई० सन् १६१३ की ३१ जनवरी) को दोनों पक्षों के बीच एक अहदनामा लिखा गया[1]।

उसके मुक़ाबले में पहुँच उन्होंने और महाराना अमरसिंहजी के राजकुमारों को मार भगाया। (देखो पृ० १०)।

१. 'सिरोही के इतिहास' (के पृ० २४५) में पं० गौरीशंकरजी ओझा ने लिखा है कि सिरोही के राव के विरुद्ध अपना पक्ष प्रबल करने के लिये ही यह अहदनामा उसके छोटे भाई शूरसिंह ने लिखा था। परन्तु ओझाजी स्वयं वहीं पर देवड़ा पृथ्वीराज को महाराव राजसिंह का विश्वस्त पुरुष लिखते हैं और उस अहदनामे पर देवड़ा भैरूँदास के साथ ही इस पृथ्वीराज के भी हस्ताक्षर मौजूद हैं। ऐसी हालत में आप का लिखना कहाँ तक मान्य कहा जा सकता है?।

जोधपुर नरेश की तरफ़ से इस पर हस्ताक्षर करनेवाले पुष्करना ब्राह्मण कल्याणदास और बारहठ दुरसा थे।

'गुणरूपक' में लिखा है कि पुराने वैर का बदला लेने के लिये गजसिंहजी ने आबू और सिरोही के देवड़ों (चौहानों) को हराकर उनका प्रसिद्ध कटार छीन लिया (देखो पृष्ठ १०-११)।

वि० सं० १६७० (ई० सन् १६१३) में महाराज अजमेर गए। उस समय बादशाह जहाँगीर का निवास वहीं था। कुछ ही दिनों बाद उसने महाराज को शाहज़ादे खुर्रम (शाहजहाँ) की सहायता के लिये मेवाड़ की तरफ़ भेज दिया। शाहज़ादे ने भी इनकी सलाह से मेवाड़ के चारों तरफ़ अपनी सेना के थाने डलवा दिए। इनमें से सादड़ी का थाना राजकुमार गजसिंहजी को सौंपा गया। इस प्रकार चारों तरफ़ से घिर जाने के कारण वि० सं० १६७१ (ई० सन् १६१४) में महाराना अमरसिंहजी ने युद्ध में सफलता का होना असंभव देख शाहज़ादे के पास संधि का प्रस्ताव भेज दिया। इस पर बादशाह की स्वीकृति मिल जाने और अन्य सब बातों के तय हो जाने पर, जिस समय महाराना स्वयं अपने परिजनों के साथ शाहज़ादे से मिलने के लिये गोगूँदे आए, उस समय महाराज भी शाही अमीरों को साथ लेकर महाराना के पास पहुँचे। साथ ही इन्होंने मामले के तय करने में भी उन्हें सहायता दी[3]।

१. बादशाहनामा, भा० १, पृष्ठ १६६। 'मआसिरुल उमरा', (भा० २, पृष्ठ १८२) में इनका जहांगीर के राज्य के आठवें वर्ष शाहज़ादे ख़ुर्रम के साथ मेवाड़ पर चढ़ाई करना और बाद में उसी के साथ दक्षिण की तरफ़ जाना लिखा है। जहांगीर का आठवां राज्यवर्ष वि० सं० १६६६ की चैत्र वदि ३० (ई० स० १६१३ की ११ मार्च) को प्रारंभ हुआ था। 'तुज़ुक जहांगीरी' में मेवाड़ पर की चढ़ाई का समय वि० सं० १६७० (ई० स० १६१३) और दक्षिण की तरफ़ जाने का वि० सं० १६७३ (ई० स० १६१६) लिखा है। (देखो क्रमशः पृ० १२६ और १६७)।

२. बादशाहनामा, भा० १, पृ० १७१-१७२। यह घटना फागुन बदी २ (ई० स० १६१५ की ५ फ़रवरी) की है।

३. संधि के समय महाराना अमरसिंहजी ने एक लाल बादशाह को भेट किया। उसका तोल ८ टांक और कीमत ६०,००० रुपए थी। 'तुज़ुकजहांगीरी' में लिखा है कि यह लाल पहले राव मालदेव के पास थी। मालदेव राठोड़ों का सरदार और उमदा (श्रेष्ठ) राजाओं में था। उसके बाद यह (लाल) उसके पुत्र राव चन्द्रसेन के हाथ आया। उसी ने राज्य छूट जाने पर इसे कीमत लेकर राना उदयसिंह को दे दिया (देखो पृ० १४१)।

'गुणरूपक' में लिखा है कि बादशाह जहांगीर एक बड़ी सेना लेकर मेवाड़ का दमन करने के लिये अजमेर गया। परंतु जब महाराना अमरसिंहजी ने वीरता के साथ शाही सेना का मुकाबला किया, तब उसने राजा शूरसिंहजी को वहां आने को लिखा। इस पर महाराज ने मेवाड़ पहुँच महाराना को संधि करने के लिये तैयार किया। इसी बीच पिता के बुलाने से राजकुमार गजसिंहजी भी भाटी

इसके बाद महाराज जोधपुर चले आए। इन्हीं दिनों राठोड़ वीरम स्वतंत्र होने का प्रयत्न करने लगा। इस पर महाराज ने अपनी एक सेना को उस पर चढ़ाई करने की आज्ञा दी। कुछ दिन तक तो वीरम ने उसका सामना किया, परन्तु अंत में उसने फिर महाराज की अधीनता स्वीकार करली। इस पर महाराज ने प्रसन्न होकर उसे रावल की पदवी और महेवे का प्रांत दे दिया[1]।

वि० सं० १६७२ (ई० सन् १६१५) में राजा शूरसिंहजी लौट कर बादशाह के पास अजमेर चले गए। वहाँ पर इन्होंने ४५ हज़ार रुपए, १०० मुहरें और ६ हाथी बादशाह को भेट किए[2]। इनमें के एक प्रसिद्ध हाथी का नाम 'रणरावत' था। इसके कुछ दिन बाद इन्होंने 'फ़ौज सिनगार' नामक एक हाथी और भी बादशाह को दिया[3]। इस पर बादशाह ने भी महाराज को एक ख़ासा हाथी दिया और शीघ्र ही उनका मनसब बढ़ाकर पाँच[4] हज़ारी ज़ात और तीन हज़ार सवारों का कर दिया।

गोविंददास को लेकर वहां पहुँच गए थे। महाराज की मारफ़त संधि की बातचीत तय हो जाने पर शाहज़ादा ख़ुर्रम और महाराना का ज्येष्ठ पुत्र करण दोनों गोगूँदे में मिले। इसके बाद ये दोनों अजमेर में बादशाह के पास पहुँचे। वहां पर भी राजकुमार करण का यथोचित सत्कार किया गया। (देखो पृ० ११-१३)।

१. भाटी गोविंददास ने महाराज से कह सुन कर इस मामले में वीरम को सहायता दी थी और इसकी एवज़ में वीरम ने अपनी कन्या को उसके किसी कुटुम्बी के साथ व्याह देने का प्रतिज्ञापत्र लिख दिया था। यह प्रतिज्ञापत्र वि० सं० १६७१ में नाहनेड़ स्थान पर लिखा गया था।

२. 'तुजुकजहांगीरी', पृ० १३६-१४०, १४३।

३. 'तुजुक जहांगीरी' में बादशाह लिखता है कि "यह हाथी भी अच्छा होने से ख़ास हाथियों में दाख़िल किया गया है। परंतु पहला हाथी (रणरावत) अपूर्व वस्तु है और दुनिया की आश्चर्योत्पादक वस्तुओं में गिना जा सकता है। उसकी कीमत २०,००० रुपये हैं। मैंने भी उसकी एवज़ में १०,००० रुपये की कीमत का एक ख़ासा हाथी सूरजसिंह को दिया" (देखो पृ० १४३)।

४. 'तुजुकजहाँगीरी', पृ० १४२। बादशाह अकबर और उसके उत्तराधिकारी जहाँगीर के राज्य में पाँच हज़ारी बहुत बड़ा मनसब समझा जाता था। साधारणतया इससे बड़ा मनसब केवल शाहज़ादों को ही मिलता था। हाँ, कभी कभी कोई बड़ा अमीर सात (हफ़्त) हज़ारी तक भी पहुँच जाता था। परंतु शाहजहाँ के समय दस हज़ारी तक के मनसब अमीरों को मिलने लगे थे और शाहज़ादों के मनसब ४० या ५० हज़ारी

इस मनसब वृद्धि के साथ इन्हें फलोदी का परगना जागीर में मिला। यह पहले बीकानेर के राव रायसिंहजी और उनके पुत्र सूरजसिंहजी के अधिकार में रह चुका था।

अभी महाराज बादशाह के साथ अजमेर में ही थे कि, इसी वर्ष की ज्येष्ठ सुदी ९ (ई० सन् १६१५ की २६ मई) की रात को इनके भ्राता राजा किशनसिंहजी ने भाटी गोविंददास के मकान पर अचानक आक्रमण कर उसे मार डाला। जैसे ही इस हल्ले से पास के मकान में सोते हुए महाराज की आँख खुली, वैसे ही यह स्वयं खड्ग लेकर बाहर निकल आए। इसी बीच इनके योद्धा भी सजग हो गए और उन्होंने आक्रमणकारियों को चारों तरफ़ से घेर कर मार डाला। इस युद्ध में राजा

तक पहुँच गए थे। परन्तु पीछे से इन मनसबों का महत्त्व बहुत कुछ घट गया। बादशाह मोहम्मदशाह के समय में फ़र्रुख़ाबाद के नवाब का मनसब ५२ हज़ारी तक पहुँचा था। अकबर के समय पाँच हज़ारी मनसबदार का वेतन २६ हज़ार था। उसे १६८ हाथी, २७२ घोड़े, १०८ ऊँट और २०७ गाड़ियाँ रखनी पड़ती थीं।

१. फलोदी हकूमत के कोट की बुर्ज मे वि० सं० १६५० की आषाढ़ सुदी ९ का एक लेख लगा है। उससे उस समय वहाँ पर रायसिंहजी का राज्य होना पाया जाता है।

२. किशनसिंहजी के इस प्रकार अचानक आक्रमण कर भाटी गोविंददास को मारने का कारण उनके भतीजे गोपालदास का उसके हाथ से मारा जाना था।

उस घटना का हाल इस प्रकार लिखा मिलता है:-एक बार राठोड़ सुंदरदास, जोधा (रामदास के पुत्र) शूरसिंह और (कल्ला के पुत्र) नरसिंह ने मिल कर राठोड़ भगवानदास के पुत्र गोपालदास पर हमला किया। उस समय भाटी गोविंददास के भाई (लवेरा के स्वामी) सुरतान ने गोपालदास का पक्ष लिया। युद्ध होने पर सुरतान मारा गया। परन्तु उसने मरने के पूर्व ही नरसिंह को मार लिया। उस समय तक गोपालदास भी अच्छी तरह से ज़ख्मी हो चुका था। इसलिये वह अपने को बचे हुए दो शत्रुओं का सामना करने में असमर्थ जान युद्धस्थल से भाग खड़ा हुआ। यह समाचार सुन भाटी गोविंददास ने सोचा कि मेरे भाई ने तो गोपालदास के लिये युद्ध में अपने प्राण दिए। परन्तु उसके मरने पर वह (गोपालदास) स्वयं अपने प्राणों के मोह से युद्ध छोड़ कर भाग गया। यह बात गोविंददास को अच्छी न लगी। इस पर उसने अपने भाई का बदला लेने के लिये गोपालदास का पीछा किया और काकडखी गांव के पास पहुँचते पहुँचते उसे मार डाला।

इस घटना का समाचार सुन राजा किशनसिंहजी गोविंददास से नाराज़ हो गए। उनका ख़याल था कि राजा शूरसिंहजी स्वयं ही उससे अपने भतीजे का बदला लेने का प्रबंध करेंगे। परन्तु जब महाराज ने उधर कुछ भी ध्यान नहीं दिया, तब उन्होंने इस प्रकार नैश आक्रमण कर गोविंददास को मार डाला। परन्तु इसी में उन्हें भी अपने प्राण देने पड़े।

किशनसिंहजी भी अपने भतीजे कर्ण के साथ मारे गए[1]। जब महाराज को अपने भाई, भतीजे और प्रधान मंत्री के मारे जाने का हाल मालूम हुआ, तब इन्हें बड़ा दुख हुआ।

कुछ दिन बाद बादशाह ने इन्हें एक जोड़ी मोती और बहुत क़ीमती ख़ासा देकर दक्षिण की तरफ़ भेजने की इच्छा प्रकट की[2]। इस पर यह दो मास के लिये जोधपुर चले आए। यहाँ पर सूरसागर के बग़ीचे में इन्होंने सोने और चाँदी से तुलादान किया। इसके बाद राज्य का प्रबंध कर यह अपने राजकुमार गजसिंहजी

१. 'तुज़ुक जहाँगीरी' में लिखा है कि गोविददास के मकान पर हमला करते समय स्वयं राजा किशनसिंहजी घोड़े से उतर कर उसके मकान में घुस गए थे। इसी में वह मारे गए (देखो पृ० १४४-१४५)। परन्तु मारवाड़ की ख्यातों में लिखा है कि राजा किशनसिंहजी महाराज के सजग होने के पहले ही गोविंददास को मारकर चल दिए थे। यह देख महाराज ने अपने पुत्र गजसिंहजी को उनका पीछा करने की आज्ञा दी। इसी के अनुसार उन्होंने कुछ चुने हुए वीरों को साथ लेकर किशनसिंहजी का पीछा किया। मार्ग में दोनों पक्षों के बीच युद्ध होने पर किशनसिंहजी मारे गए।

'मुंतखिबुल् लुबाब' नामक इतिहास में लिखा है कि किशनसिंहजी का शोर सुनते ही सूरजसिंह तलवार लेकर बाहर चला आया और उसने किशनसिंह और करन को मार डाला। इसके बाद किशनसिंह के साथ के लोग राजा की हवेली से निकलकर लड़ते-भिड़ते बादशाह के महल की तरफ़ भागे। राजा सूरजसिंह भी उनका पीछा करता हुआ बादशाही दौलतखाने के दरवाज़े तक जा पहुँचा। (देखो जिल्द १, पृ० २८१-२८२)।

'गुणरूपक' में लिखा है कि मेवाड़-विजय के बाद बादशाह को राठोड़ों का बढ़ता हुआ बल खटकने लगा। उसने सोचा कि राजा शूरसिंह, राजकुमार गजसिंह, केहरि (किशनसिंह), करमसेन, करन और भाटी गोविददास बड़े बलवान हो रहे हैं। इससे इनको आपस में ही लड़ाकर निर्बल कर देना चाहिए। इसी के अनुसार उसने एक रोज़ दरबार के समय राजकुमार गजसिंहजी के सामने ही केहरि (किशनसिंहजी) को गोविददास को मार डालने के लिये उकसाया। यह देख गजसिंहजी को भी क्रोध आ गया। अंत में बहुत कुछ कहा सुनी के बाद दोनों अपने अपने निवास-स्थान को चले गए। इसके बाद किशनसिंहजी ने एक दिन पिछली रात को गोविददास के मकान पर चढ़ाई कर उसे मार डाला। इसकी सूचना पाते ही गजसिंहजी शत्रु के मुकाबले के लिये आ पहुँचे। युद्ध होने पर केहरि (किशनसिंहजी) और करन मारे गए। परन्तु करमसेन भाग निकला। (देखो पृ० १३-१७)।

कर्नल टाड ने इस घटना का राजा गजसिंहजी के समय में होना और शाहज़ादे खुर्रम के कहने से राजा किशनसिंहजी का भाटी गोविददास को मारना लिखा है।

ऐनाल्स ऐन्ड ऐंटिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान (क्रुक संपादित), पृ० ९७४।

२. तुज़ुक जहाँगीरी, पृ० १४५।

के साथ बादशाह के पास अजमेर चले गए। इसी समय बादशाह ने इनके सवारों में ३०० की वृद्धि कर इनका मनसब पाँच हजारी ज़ात और तेंतीस सौ सवारों[1] का कर दिया। साथ ही उसने इन्हें एक खिलअत और एक घोड़ा भी दिया[2]। इसके बाद यह दक्षिण पहुंचे[3] खाँनजहाँ लोदी आदि शाही सेनानायकों के साथ वहाँ के उपद्रवों को दबाने और शत्रुओं को परास्त कर उनके प्रदेशों को विजय करने में लग गए।

'तारीखे पालनपुर' में लिखा है कि वि० सं० १६७४ (ई० सन् १६१७) में बादशाह जहाँगीर ने जालोर के शासक पहाड़खाँ को मरवा कर उक्त प्रदेश को शाहजादे खुर्रम की जागीर में मिला दिया। परन्तु वहाँ का प्रबंध ठीक न हो सकने के कारण बाद में वह प्रांत राजा शूरसिंहजी को दे दिया[4]। इस पर महाराज की

१. तुजुक जहाँगीरी, पृ० १४६।

२. तुजुक जहाँगीरी, पृ० १४८।

३. 'मआसिरुल-उमरा' (भा० २, पृ० १८२) में भी इस घटना का समय जहाँगीर का १० वाँ राज्य वर्ष लिखा है। यह वि० सं० १६७१ की चैत्र बदी ६ (ई० सन् १६१५ की १० मार्च) से प्रारंभ हुआ था।

ख्यातों में लिखा है कि दक्षिण की तरफ़ जाते हुए महाराज ने मार्ग में पिसागण में राजकुमार गजसिंहजी, आसोप ठाकुर (खींवाँ के पुत्र) राजसिंह, व्यास नाथा और भंडारी लूणा को मारवाड़ की देख भाल के लिये जोधपुर भेज दिया था।

४. कर्नल टाड के लिखे राजस्थान के इतिहास में लिखा है कि अकबर की मृत्यु के बाद जब राजा शूरसिंहजी राजकुमार गजसिंहजी को लेकर शाही दरबार में गए, तब जहाँगीर ने जालोर को विजय करने में अद्भुत वीरता दिखाने के कारण गजसिंहजी को अपने हाथ से एक तलवार भेट की।

जालोर विजय का हाल कर्नल टाड ने इस प्रकार लिखा है:-

जालोर उस समय गुजरात के बादशाहों के अधीन था। परन्तु जैसे ही राजकुमार गजसिंहजी को जालोर-विजय के लिये कहा गया, वैसे ही उन्होंने सेना लेकर बिहारी पठानों पर चढ़ाई करदी। जिस जालोर दुर्ग को फ़तह करने में अलाउद्दीन को कई वर्ष लग गए थे, उसी को उन्होंने केवल तीन मास में विजय कर लिया[1]।

यद्यपि इस युद्ध में बहुत से राठोड़ वीर मारे गए, तथापि राजकुमार गजसिंहजी बिना किसी हिचकिचाहट के तलवार हाथ में लेकर काठ की सीढ़ी के ज़रिये क़िले पर चढ़ गए। वहां पर के युद्ध में ७,००० पठान मारे गए। इसके बाद क़िले पर उनका अधिकार हो गया। (देखो ऐनाल्स एण्ड एण्टिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान (क्रुक संपादित), भा० २, पृ० ६७०)। परंतु जालोर पर

(१) बारे बरस अलाउदी, खपछूटो पतशाह।
चढ़ियाँ घोड़ाँ सोनगढ़, तैं लीनौ गजशाह॥



जालोर का क़िला

यह क़िला पृथ्वीतल से १,२०० फुट ऊँची पहाड़ी पर बना है। इसकी लम्बाई ८०० गज़ और चौड़ाई ४०० गज़ है। इसमें जाने के लिये ३ मील लम्बी पत्थर की सड़क बनी है।

आज्ञा से राजकुमार गजसिंहजी ने अपनी सेना के साथ पहुँच एकाएक वहाँ के क़िले पर चढ़ाई करदी। कुछ समय तक तो दोनों पक्षों के बीच भीषण संग्राम होता रहा, परन्तु अन्त में वहाँ के नारायणदास काबा की सहायता से यह एक टूटे हुए बुर्ज की तरफ़ से क़िले में घुस गए। राठोड़-सेना को इस प्रकार एकाएक क़िले में घुसी देख शत्रुओं ने शस्त्र रख दिए। इससे क़िले पर राजकुमार का अधिकार हो गया। दूसरे दिन वहाँ के बिहारी पठानों ने एकत्रित होकर फिर शहर के द्वार पर राठोड़-सेना का बड़ी वीरता से सामना किया। परन्तु (डोडियाली के ठाकुर) पूँजा और कीरतसिंह देवड़ा आदि के बिहारियों को मदद देने से इनकार कर देने के कारण वे सारे के सारे पठान युद्ध में मारे गए। इस प्रकार जब जालोर पर राजकुमार गजसिंहजी का अधिकार हो गया, तब वहाँ के शासक पहाड़ख़ाँ का दीवान मेहता मोकलसी बची हुई बिहारियों की सेना को लेकर भीनमाल की तरफ़ चला गया। परन्तु राठोड़ों ने उसका पीछा न छोड़ा और उसके भीनमाल पहुँचते ही तत्काल उस नगर को चारों तरफ़ से घेर लिया। वहाँ के युद्ध में शत्रुओं की तरफ़ के मोकलसी आदि कुछ मुख्य पुरुष मारे गए और बचे हुए पठान भागकर वि० सं० १६७५ (ई० सन् १६१८) में (पालनपुर इलाके के) कुरझाँ गाँव में चले गए। परन्तु इसके बाद भी वे मौक़ा पाते ही, अर्वली पर्वत की सूँधा आदि की घाटियों का आश्रय लेकर, जालोर के आस-पास लूट-मार करने में नहीं चूकते थे[२]।

जो उस समय गुजरात वालों का अधिकार होना लिखा है, यह ठीक प्रतीत नहीं होता; क्योंकि गुजरात उस समय मुग़लों के ही अधिकार में होने से वहां का कोई स्वतंत्र बादशाह नहीं था। इसी प्रकार की और भी अनेक बातें कर्नल टॉड के राजस्थान में लिखी मिलती हैं; जो फ़ारसी तवारीख़ों आदि से सिद्ध नहीं होतीं। हमारी समझ में बादशाह ने शूरसिंहजी के दक्षिण जाने के पूर्व जिस समय उनके सवारों में ३०० की वृद्धि की थी, उसी समय शायद जालोर भी उनके मनसब मे दे दिया होगा।

१. 'गुणरूपक', पृ० १६-२६। उक्त काव्य में इस विजय का भादों में होना लिखा है। उसमें यह भी लिखा है कि इस घटना के बाद गजसिंहजी ने उग्रसेन के पुत्र कर्मसेन पर चढ़ाई की। इसकी सूचना पाते ही वह लाडणू से भागकर पहले तो थली (निर्जल-स्थल) की तरफ़ गया और फिर वहां से बला पहाड़ की तरफ़ चला गया। महाराज-कुमार गजसिंहजी भी उसके पीछे लगे हुए थे। इससे शीघ्र ही उन्होंने सोजत पहुँच विजयादशमी के दिन फिर कर्मसेन पर चढ़ाई की। यह देख वह मेरों की शरण में चला गया। परंतु जब गजसिंहजी ने मेरों को दण्ड देना शुरू किया, तब उस (कर्मसेन) को भागकर हाडोती में घुस जाना पड़ा। (देखो पृ० ३०-३१)।

२. 'तारीख़े पालनपुर', जिल्द १, पृ० १०१-१०६।

ख्यातों में लिखा है कि एक बार जिस समय सवाई राजा शूरसिंहजी शाहज़ादे खुर्रम और नवाब ख़ाँख़ाँनान् के साथ दक्षिण में महकर के थाने पर थे, उस समय शत्रुओंने आकर उस नगर को घेर लिया। इस प्रकार घेरे जाने से शाही सेना का संबन्ध बाहर से बिलकुल टूट गया और उसे रसद का मिलना बंद हो गया। इस पर कुछ दिन तक तो किसी तरह काम चलता रहा, परन्तु अन्त में नाज की कमी के कारण उसकी दर बहुत चढ़ गई। यह देख राठोड़-सरदारों ने जैतावत कुम्भकर्ण को भेजकर महाराज को इस बात की सूचना दी। परन्तु महाराज ने उसे अपनी पाकशाला के सुवर्ण के बर्तन देकर समझा दिया कि अभी तो इनको बेचकर कुछ दिन के लिये नाज का प्रबंध करलो, तब तक कुछ न कुछ उपाय हो ही जायगा। परन्तु जब कुछ ही दिनों बाद फिर वही कठिनता उपस्थित हुई और शाही अमीरों के किए कुछ भी प्रबन्ध न हो सका, तब कुम्भकर्ण ने महाराज की सेवा में उपस्थित होकर शत्रुओं पर आक्रमण करने की आज्ञा चाही. इसपर महाराज ने ख़ाँख़ाँनान् से भी सम्मति ले लेना उचित समझा। परन्तु उसने बादशाह की इच्छा के विरुद्ध शत्रु से युद्ध छेड़ देने से साफ़ इनकार कर दिया। कुम्भकर्ण को इस प्रकार निश्चेष्ट होकर शत्रुओं के बीच घिरा रहना असह्य हो रहा था। इसलिये ख़ाँख़ाँनान् के इनकार कर देने पर भी उसने केवल अपने योद्धाओं को लेकर बीजापुरवालों पर हमला कर दिया। यद्यपि इसमें उसके कई वीर मारे गए और वह स्वयं भी बहुत ज़खमी हुआ, तथापि उसने दक्षिणियों के झंडे को छीन कर (सादा के पुत्र) कामा के साथ महाराज के पास भेज दिया। यह देख महाराज भी युद्ध के लिये उत्सुक हो उठे और इन्होंने बादशाही आज्ञा की प्रतीक्षा में बैठे हुए ख़ाँख़ाँनान् को ज़बरदस्ती तैयार कर शत्रुओं पर हमला कर दिया। घोर युद्ध के बाद शत्रु भाग खड़े हुए और मैदान शाही सैनिकों के हाथ रहा। इसके बाद ख़ाँख़ाँनान् ने कुम्भकर्ण के लिये एक पालकी भेजकर उसे रणस्थल से अपने डेरे पर बुलवाया और उसकी चिकित्सा का पूरा-पूरा प्रबंध किया। इससे कुछ दिनों में उसके सारे घाव भर गए।

इसके बाद जब ख़ाँख़ाँनान् ने गढ़–पिंडारा विजय किया, तब वहाँ पर उसे चतुर्भुज विष्णु की एक सुंदर मूर्ति हाथ लगी। इसे उसने प्रेमोपहार के रूप में महाराज को भेट कर दिया। यह मूर्ति अब तक जोधपुर के क़िले में विद्यमान है।

वि० सं० १६७६ की भादों सुदी ८ (ई० सन् १६१६ की १८ सितम्बर) को वहीं दक्षिण में, महकर के थाने में, सवाई राजा शूरसिंहजी का स्वर्गवास हो गया[1]।

यह महाराजा बड़े ही प्रतापी, बुद्धिमान् और दाता थे[2]। राव मालदेवजी के बाद इन्होंने ही मारवाड़ राज्य की वास्तविक उन्नति की। इनके शासन में मारवाड़ के सिवाय, ५ परगने गुजरात के, १ मालवे का और १ दक्षिण का भी था। ये परगने इन्हें बादशाह की तरफ़ से मनसब में मिले थे। इनका अधिक समय गुजरात और दक्षिण के युद्धों में ही व्यतीत हुआ; और वहाँ पर इन्होंने समय-समय पर वीरता के अद्भुत कार्य भी कर दिखाए।

पहले लिखा जा चुका है कि इनके समय इनके प्रधान मन्त्री भाटी गोविन्ददास ने राज्य का सारा प्रबन्ध बदल कर उस समय की प्रचलित शाही शैली के अनुसार कर दिया था। वही प्रबन्ध आज से करीब ५० वर्ष पूर्व तक चला आता था। परन्तु भारत-सरकार के संबन्ध से आजकल उसमें थोड़ा बहुत परिवर्तन करके उसे नवीन रूप दे दिया गया है।

१. 'तुज़ुकजहांगीरी' में जहाँगीर ने लिखा है कि हि० स० १०२८ में दक्षिण से राजा शूरसिंह की मृत्यु का समाचार मिला। यह उस राव मालदेव का पोता था, जो हिंदुस्तान के प्रतिष्ठित ज़मींदारों में से था। राना की बराबरी करने वाला ज़मींदार वही था। उसने एक लड़ाई में राना पर भी विजय पाई थी। राजा शूरसिंह ने, मेरे पिता अकबर का और मेरे कृपापात्र होने से, बड़े दरजे और मनसब को प्राप्त किया था। उसका देश और राज्य उसके बाप और दादा के देश और राज्य से बढ़ गया था। (देखो पृ० २८०)।

'गुणरूपक' में लिखा है कि महाराजा शूरसिंहजी २४ वर्ष राज्य कर ४६ वर्ष की अवस्था में, वि० सं० १६७६ की भादों सुदी में, महकर में स्वर्ग को सिधारे। इनके पीछे तीन रानियां दक्षिण में और एक जोधपुर में सती हुई (देखो पृ० ३१)।

२. कहते हैं कि सवाई राजा शूरसिंहजी ने निम्नलिखित गांव दान दिए थे:—

१ नापावास २ रैहनडी ३ बीजलियावास (सोजत परगने के), ४ सिंगला (जैतारण परगने का), ५ गैमावास ६ उंचियारडा-कलां ७ बछवास ८ भीलावास (मेड़ता परगने के), ६ बसी (पाली परगने का), १० तिगरिया ११ बेह १२ लोलासणी १३ छली १४ छींडिया (जोधपुर परगने के), १५ खासीसर (डीडवाने परगने का), १६ हरलायां (फलोदी परगने का) चारणों को; १७ हडबू बासनी (बासनी व्यासों की) (मेड़ता परगने का), १८ गैलावसिया (जोधपुर परगने का) ब्राह्मणों को; १६ मोगास (मेड़ता परगने का) भाटों को और २० बीगवी (जोधपुर परगने का) पुरोहितों को।

वि० सं० १६६३ (ई० सन् १६०६) में सवाई राजा शूरसिंहजी ने ही जोधपुर नगर के चाँदपोल दरवाज़े से एक मील वायु-कोण में स्थित पर्वत-श्रेणी के पास अपने नाम पर सूरसागर नामक तालाब बनवा कर उसके तट पर सुंदर बग़ीचा, संगमरमर की एक बारादरी और महल बनवाए थे। चाँदपोल दरवाज़े के बाहर का रामेश्वर महादेव का मंदिर, सूरजकुंड नामक बावली और शहर के बीच के तलहटी के महल भी इन्हीं के बनवाए हुए हैं।

इनकी कछवाही रानी सौभाग्यदेवी ने दहीजर गाँव में सोभाग-सागर नामक तालाब बनवाया था। इसी रानी के गर्भ से राजकुमार गजसिंहजी का जन्म हुआ।

शूरसिंहजी के २ पुत्र थे, गजसिंहजी और सबलसिंह[1]।

---

१. इनका जन्म वि० सं० १६६४ की भादों सुदी ३ को हुआ था।

२४. राजा गजसिंहजी

यह सवाई राजा शूरसिंहजी के ज्येष्ठ पुत्र थे। इनका जन्म वि० सं० १६५२ की कार्तिक सुदी ८ (ई० स० १५९५ की ३० अक्टोबर) को हुआ था। यह भी अपने पिता के समान ही वीर और बुद्धिमान थे। इन्होंने सवाई राजा शूरसिंहजी के जीवन काल में ही अनेक युद्धों में सफलता पूर्वक भाग लिया था[1], और उन्होंने भी इनकी योग्यता से प्रसन्न होकर इन्हें अपना युवराज नियत कर लिया था। इसीसे उनकी अनुपस्थिति में मारवाड़ का सारा प्रबंध इन्हीं की देख भाल में होता था[2]।

वि० सं० १६७६ (ई० सन् १६१९) में जैसे ही इन्हें सवाई राजा शूरसिंहजी के मेहकर में बीमार होने की सूचना मिली, वैसे ही यह जोधपुर का प्रबंध अपने विश्वासपात्र सरदारों को सौंप तत्काल मेहकर की तरफ़ रवाना हो गए। पिता की मृत्यु के बाद इसी वर्ष की आसोज (क्वाँर) सुदी १० (ई० सन् १६१९ की ८ अक्टोबर) को बुरहानपुर में इनका राज्याभिषेक[3] हुआ। उस समय ख़ाँनख़ाँनान् के पुत्र दौराबख़ाँ ने बादशाह की तरफ़ से इनकी कमर में तलवार बाँधी। बादशाह ने भी इनकी योग्यता देख कर इन्हें तीन हजारी ज़ात और दो हज़ार सवारों का मनसब, झंडा और राजा का ख़िताब दिया[4]।

१. 'मआसिरुल उमरा' के लेखानुसार जहाँगीर के राज्य के दशवें वर्ष (वि० सं० १६७२; ई० स० १६१५) से ही यह बादशाही कार्यों मे भाग लेने लगे थे। (देखो भा० २, पृ० २२४)।

२. 'गुणभाषाचित्र', पृ० ६, दोहा ४।

३. ख्यातों मे लिखा है कि जहाँगीर ने, राजा शूरसिंहजी के मरने पर, गजसिंहजी को बुरहान पुर जाने के लिये लिखा था। उसी के अनुसार यह वहां पहुँच कर गद्दी पर बैठे। ख्यातों मे इनका क्वाँर सुदि ८ को गद्दी पर बैठना लिखा है।

४. 'तुज़ुक जहांगीरी', पृ० २८०। वहीं पर यह भी लिखा है कि इसी समय इनके छोटे भाई सबलसिंहजी को ५०० ज़ात और २५० सवारों का मनसब (और फलोदी का प्रांत जागीर में) दिया गया था।

कर्नल टाड ने अपने राजस्थान[1] के इतिहास में लिखा है कि इस अवसर पर इनको मारवाड़ के अधिकार के साथ ही गुजरात के सात परगने, झिलाय (ढूँढाड़ का) और मसूदा (अजमेर का) की जागीर और दक्षिण की सूबेदारी[2] दी गई थी। इनके अलावा इनके घोड़े भी शाही दाग़ से बरी करदिए गए थे। इसके बाद यह महकर के[3] थाने पर पहुँच दक्षिणवालों के उपद्रवों को शांत करने में लग गए। अहमद नगर के बादशाह का मंत्री हबशी अंबर चंपू एक वीर योद्धा था। ख्यातों से ज्ञात होता है कि एक बार उसने, अचानक आकर, शाही सेना को घेर लिया। तीन महीने तक दोनों तरफ़ से छोटी बड़ी अनेक लड़ाइयाँ होती रहीं। अंत में गजसिंहजी की वीरता से शत्रु को घिराव उठा कर भागना पड़ा।

वि० सं० १६७८ में भी दक्षिणियों के साथ के युद्ध में महाराज की वीरता से ही शाही सेना को विजय प्राप्त हुई, और मलिक अंबर ने आक्रमण करने के बदले आक्रांत होकर बादशाह की अधीनता स्वीकार करली। इससे प्रसन्न होकर बादशाह जहाँगीर ने महाराज का मनसब बढ़ा कर चार हज़ारी ज़ात और तीन हज़ार सवारों का कर दिया[4]। साथ ही इन्हें 'दलथंभन' (फ़ौज का रोकने वाला) का ख़िताब देकर जालोर का परगना मनसब की जागीर में दिया[5]।

---

१. 'ऐनाल्स ऐंड ऐंटिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान' (क्रुक संपादित), भा० २, पृ० ६७२।

२. उस समय दक्षिण का सूबेदार ख़ानख़ानाँ था। इसलिये कर्नल टाड के लेखानुसार महाराज को दक्षिण की सूबेदारी का दिया जाना ठीक प्रतीत नहीं होता।

३. महकर में मुग़ल-राज्य की सरहदी चौकी थी, और यहां से आगे अहमदनगर वालों का राज्य प्रारंभ होता था। उन दिनों इन्हीं अहमदनगर वालों से युद्ध होते रहते थे।

४. 'तुज़ुक जहाँगीरी', पृ० ३४१।

५. ख्यातों में लिखा है कि उस समय वहाँ पर शाहज़ादे ख़ुर्रम का अधिकार था। उसके सैनिकों ने महाराज के आदमियों को क़िला सौंपने से इनकार करदिया। इसके बाद जिस समय बादशाह ने शाहज़ादे ख़ुर्रम को दक्षिण से माँडू की तरफ़ जाकर वहाँ के उपद्रव को शांत करने की आज्ञा दी, उस समय राजा गजसिंहजी को भी उसकी सहायता के लिये वहा जाने को लिखा। इसके अनुसार जब महाराज शाहज़ादे के पास बुरहानपुर पहुँचे, तब उसने इनको प्रसन्न करने के लिये जालोर के साथ ही साँचोर का परगना भी इन्हें दे दिया। परन्तु फ़ारसी इतिहासों से इसकी पुष्टि नहीं होती।



२४. राजा गजसिंहजी

वि० सं० १६७६-१६९५ (ई० स० १६१९-१६३८)

इस युद्ध में इन्होंने मलिक अंबर (चंपू) का लाल झंडा छीन लिया था। इस घटना की यादगार के उपलक्ष में उसी दिन से जोधपुर के राजकीय झंडे में लाल रंग की पट्टी लगाई जाने लगी।

बादशाह ने महाराज की दक्षिण की इन वीरताओं से प्रसन्न होकर वि० सं० १६७९ की चैत्र सुदि ९ (ई० सन् १६२२ की ११ मार्च) को इन्हें एक नक्कारा उपहार में दिया।[1]

वि० सं० १६८० (ई० सन् १६२३) में महाराज दक्षिण से लौट कर जोधपुर आए और कुछ दिन यहाँ रह कर देश के प्रबंध की देख भाल करते रहे।

---

१. 'तुजुक जहाँगीरी', पृ० ३५१।

'गुणरूपक' में महाराज की गद्दीनशीनी से लेकर इस घटना तक का हाल इस प्रकार लिखा है:-

राजा शूरसिंहजी के स्वर्गवास के बाद राजा गजसिंहजी (२४ वर्ष की अवस्था मे) वि० सं० १६७६ की विजया-दशमी के दिन बुरहानपुर में गद्दी पर बैठे। इन्होंने दक्षिण की तरफ़ जाते समय जोधपुर के क़िले की रक्षा का भार कूँपावत राजसिंह को सौंपा था। जिस समय यह दक्षिण में थे उस समय कंधार से भी एक बड़ी सेना दक्षिण वालों की मदद में आई थी। कर्णाटक, विजयनगर, गोलकुंडा और बराड़ आदि के युद्धों में राजा गजसिंहजी सदाही अपनी सेना के साथ शाही सेना के अग्रभाग (हरावल) मे रहा करते थे। इसी प्रकार महकर के युद्ध मे भी; जिसमे शत्रु के ८,००० घुड़ सवारों ने भागलिया था, महाराज अपनी राठोड़ सेना के साथ शाही सेना के अग्रभाग में थे। इस युद्ध मे शत्रुओं के ५०० सवार मारे गए और महाराज की वीरता से ही शाही सेना को विजय प्राप्त हुई। गजसिंहजी ने बुरहानपुर के युद्ध में दक्षिणियों को परास्त करने मे बड़ी वीरता दिखाई थी। शाहज़ादा खुर्रम भी उस समय वहीं था। इस कार्य से प्रसन्न होकर बादशाह ने इनका मनसब ५,००० ज़ात का करदिया और इसी के साथ इन्हें नक्कारा, तोग़, सुनहरी साज़ के घोड़े और जालोर तथा साँचोर के परगने दिए। इसके बाद महाराज ने मलकापुर, रोहिणखेड़ा, बालापुर, महकर, निरोह, खिड़की, दौलताबाद, मग्गी पट्टन, खानदेश, महाराष्ट्र और बराड़ के युद्धों में दक्षिण वालों की सेनाओं पर विजय प्राप्त की। दक्षिण के पाँच खास युद्धों में तो, जो (१) महकर, (२) मेहाना, (३) बालापुर, (४) बुरहानपुर और (५) दक्षिण के पिछले प्रान्त में हुए थे, इन्होंने ख़ास वीरता दिखलाई थी। कुछ दिन बाद जब खुर्रम माँडू आया, तब उसने महाराज को अपने पास बुलवाया और इनकी वीरता की प्रशंसा कर इन्हें अपने देश जाने की आज्ञा दी। इसी के अनुसार यह जोधपुर आकर ६ मास तक यहाँ के प्रबन्ध की देखभाल करते रहे। (देखो पृ० ३२-६६)।

इसके बाद इसी वर्ष के वैशाख में यह लौट कर बादशाह के पास चले गए[1]। इन दिनों शाहज़ादा ख़ुर्रम नूरजहाँ बेगम के प्रपंच से नाराज़ होकर बाग़ी हो रहा था। मौक़ा पाकर उसने दिल्ली पर अधिकार करने की तैयारी की। जैसे ही इसकी सूचना बादशाह जहाँगीर को मिली, वैसे ही उसने शाहज़ादे परवेज़ को उसे दंड देने के लिये रवाना किया। उसके साथ महाबतख़ाँ और राजा[2] गजसिंहजी को भी उधर जाने की आज्ञा दी गई। उस समय जहाँगीर ने महाराज का मनसब बढ़ा कर पाँच हज़ारी ज़ात और चार हज़ार सवारों का कर[3] दिया, और इसके साथ फलोदी का प्रांत जागीर में दिया। मालवे मे पहुँचने पर ख़ुर्रम का और शाही सेना का सामना हुआ[4]। परन्तु शीघ्रही ख़ुर्रम को परास्त होकर दक्षिण की तरफ़ भागना पड़ा। इसके बाद शाहज़ादा परवेज़ अपने सहायकों को साथ लेकर बुरहानपुर चला गया और उसने इस युद्ध के समय की महाराज की वीरता से प्रसन्न होकर मेड़ते का[5] परगना इन्हें उपहार में दे दिया।

१. तुजुक जहाँगीरी, पृ० ३६८।

२. नवलकिशोर प्रेस की छपी 'तुजुक जहांगीरी' के पृष्ठ ३६६ पर गजसिंहजी के नाम के आगे महाराज की उपाधि लगी होने से अनुमान होता है कि शायद इस अवसर पर इनको यह पदवी दी गई हो?

३. 'तुजुक जहाँगीरी', पृ० ३६६।

४. अंग्रेज़ी इतिहासों में इस युद्ध का बल्लोचपुर में होना लिखा है। विंसेंट स्मिथ के लेखानुसार यह दिल्ली के दक्षिण में था ('ऑक्सफ़ोर्ड हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया', पृ० ३८६)।

५. ख्यातों में लिखा है कि बादशाह ने इस अवसर पर अजमेर का सूबा शाहज़ादे परवेज़ को जागीर में दे दिया। इस पर उसने मेड़ता सैयदों को सौंप देने का विचार किया। परन्तु राजा गजसिंहजी ने कूँपावत राजसिंह को भेज कर महाबतखाँ से इसकी शिकायत की। उसने भी उस समय महाराज को अप्रसन्न करना उचित न जान शाहज़ादे को ऐसा करने से रोक दिया। परन्तु उन्हीं ख्यातों में लिखा है कि वि० सं० १६७६ (ई० सन् १६२२) में मेर जाति के जंगली लोगों ने मेड़ता प्रांत के पशुओं को पकड़ने का उद्योग किया। यह देख वहाँ के शाही शासक ने उन पर चढ़ाई की। मार्ग में जिस समय वह नंदवाणा नामक गाँव में पहुँचा, उस समय वहाँ के ब्राह्मणों (नंदवाणे बोहरों) की संपत्ति को देख उसने उनके बहुत से मुखियाओं को पकड़ लिया। इसकी सूचना पाते ही बलूँदे के ठाकुर मेड़तिया श्यामसिंह और जैतारन के हाकिम पंचोली राघोदास आदि ने उसका पीछा किया। मुँगदड़ा गाँव के पास पहुँचते पहुँचते दोनों का सामना हो गया। इससे थोड़ी देर के युद्ध में ही उक्त शाही शासक ब्राह्मणों को छोड़ कर भाग गया।

अगले वर्ष शाहज़ादे खुर्रम ने उड़ीसा और बिहार फ़तह कर फिर से दिल्ली के तख़्त पर अधिकार करने के लिये चढ़ाई की। परन्तु बनारस के पास टोंस नदी के किनारे उसे शाहज़ादे परवेज़ की सेना से परास्त होकर भागना पड़ा। इस युद्ध का श्रेय भी राजा गजसिंहजी की अद्भुत वीरता को ही दिया जाता है। इसका वर्णन इस प्रकार लिखा मिलता है।

वि० सं० १६८१ (ई० सन् १६२४) में जिस समय शाहज़ादा खुर्रम फिर से बादशाहत पर अधिकार करने की नीयत से सेना भेज कर रवाना हुआ, उस समय उसकी सेना के अग्रभाग का संचालक महाराना अमरसिंह का पुत्र भीम था। इसकी सूचना पाते ही शाहज़ादा परवेज भी उसके मुक़ाबले को चला। जब दोनों सेनाओं का सामना हुआ, तब परवेज ने जयपुर महाराज जयसिंहजी के पास अधिक सेना देख कर उन्हें अपनी सेना के अग्रभाग का मुखिया बना दिया। हमेशा से राठोड़ नरेशों के ही शाही सेना के अग्रभाग में रहने का रिवाज होने से यह बात राजा गजसिंहजी को अच्छी न लगी। इससे यह अपनी सेना के साथ नदी की बाईं तरफ़ परवेज की सेना से कुछ हट कर खड़े हो गए। युद्ध होने पर कुछ ही देर में जिस समय परवेज की सेना के पैर उखड़ गए, उस समय शाहज़ादे खुर्रम ने भीम को एक तर्फ़ खड़ी हुई राजा गजसिंहजी की सेना पर आक्रमण कर उसे भगा देने का इशारा किया। इस पर तत्काल भीम और गजसिंहजी की सेनाओं के बीच युद्ध छिड़ गया। यद्यपि विजय से

इससे प्रगट होता है कि पहले मेड़ते पर बादशाह का ही अधिकार था, परन्तु इस अवसर पर महाराज की वीरताओं के उपलक्ष में वह नगर इनके शासन में दे दिया गया होगा।

१. भीम मेवाड़ की उस सेना का सेनापति था, जो उस समय महाराणा करणसिंहजी की तरफ़ से बादशाही सेवा में रहा करती थी। जहाँगीर ने भीम को राजा की पदवी, और टोडे की जागीर दी थी। कुछ समय बाद ही बादशाह की कृपा से वह पाँच हज़ारी मनसब तक पहुँच गया था।

इसके बाद वह शाहज़ादे खुर्रम से मिल गया, और उसने खुर्रम की आज्ञा से पटना विजय कर लिया।

२. मारवाड़ की ख्यातों में इस युद्ध का पटने के पास, 'मुंतख़िबुल्लुबाब' में बंगाल की सरहद में, और 'तुजुक जहाँगीरी' में बनारस के पास होना लिखा है। कहीं कहीं इस युद्ध का भूसी के पास होना भी लिखा मिलता है।

३. फ़ारसी तवारीख़ों में इस युद्ध में जयसिंहजी के सम्मिलित होने का पता नहीं चलता। परन्तु साथ ही उनमें कई अन्य नरेशों के नाम भी नहीं दिए हैं।

उन्मत्त सीसोदियों और खुर्रम के अन्य सैनिकों ने राठोड़ों को मार भगाने का बड़ा प्रयत्न किया, तथापि वीर राठोड़ अपने स्थान से ज़रा भी न हटे। उलटा कुछ देर के युद्ध के बाद ही सेनापति भीम के मारे जाने से सीसोदियों का उत्साह शिथिल पड़ गया, और खुर्रम की विजय पराजय में बदल गई। इनकी इस वीरता से प्रसन्न होकर जहाँगीर ने इनके सवारों में १,००० की वृद्धि करने[1] के साथ ही इनका मनसब पाँच हज़ारी ज़ात और पाँच हज़ार सवारों का करदिया[2]। इसके बाद महाराज ने प्रयाग पहुँच चाँदी से तुलादान किया और वहाँ से यह दक्षिण की तरफ़ चले गए।

जिस समय महाराज दक्षिण में थे, उस समय एक बार शाहज़ादे खुर्रम ने अचानक पहुँच बुरहानपुर को घेर लिया[3]। इस अवसर पर भी राजा गजसिंहजी ने भाद्राजन के ठाकुर मुकुंददास आदि को साथ लेकर शाहज़ादे की सेना को भगाने में बड़ी वीरता दिखलाई[4]।

१. ख्यातों में लिखा है कि इसके साथ बराड़ प्रांत का जलगाँव इन्हें जागीर में दिया गया था।

२. इसका उल्लेख मारवाड़ की ख्यातों में है, और इसकी पुष्टि 'बादशाहनामा' के लेख से भी होती है। (देखो पृष्ठ १५८)।

३. इस समय मलिक अंबर भी खुर्रम के साथ था।

४. 'गुणरूपक' में लिखा है:-

जिस समय बादशाह काश्मीर में था, उस समय खुर्रम ने माँडू पहुँच बगावत का झंडा उठाया। इसकी सूचना पाते ही उधर तो बादशाह घबरा कर दिल्ली की तरफ़ चला और इधर खुर्रम अजमेर, साँभर, टोडा और रणथंभोर होता हुआ दिल्ली के तख्त पर अधिकार करने की नीयत से रवाना हुआ। उस समय सीसोदिया भीम मेड़ते में था। खुर्रम ने उसे अजमेर पर अधिकार करने की आज्ञा दी। इस पर उसने सादूल को हराकर वहाँ पर अधिकार करलिया। इसके बाद खुर्रम सीकर होता हुआ दिल्ली के निकट पहुँचा। इसी बीच बादशाह भी ससैन्य वहाँ आगया। इससे दोनों सेनाओं के बीच युद्ध छिड़ गया। परन्तु युद्ध का रंग अपने लिये फीका देख बादशाह ने वज़ीर के कहने से राजा गजसिंहजी को मदद के लिये बुलवाया। इससे महाराज भी कूँपावत राजसिंह आदि वीर-सामंतों को लेकर चैत्र सुदि ११ को जोधपुर से रवाना हुए। इनके बादशाह के पास पहुँचने पर उसने युद्ध का सारा भार इन्हीं को सौंप दिया। इसके बाद महाराज शाही सेना के साथ, खुर्रम का पीछा करने को प्रयाग, काशी और गया की यात्रा करते हुए टूस नदी के उस पार कोरटा में पहुँच ठहर गए। उस समय खुर्रम का पड़ाव खैरागढ़ में था। इससे दोनों की सेनाओं के बीच केवल दो कोस का फ़ासला रह गया। इसके बाद खुर्रम की सेना के अग्रभाग में तो महाराना अमरसिंह का पुत्र सीसोदिया

वि० सं० १६८२ (ई० सन् १६२५) में नूरजहाँ बेगम महाबतख़ाँ से नाराज़ हो गई। इसी से उसने बादशाह से कह कर उसे दक्षिण से बंगाल की तरफ़ चले जाने या दरबार में हाज़िर होने की आज्ञा भिजवा दी। इस पर वह दक्षिण में उपस्थित अधिकांश सरदारों को साथ लेकर बंगाल की तरफ़ जाने का प्रयत्न करने लगा। परन्तु महाराज ने उनमें से बहुतों को बादशाह की आज्ञा का मर्म समझा कर वहीं रोकलियाँ। इससे दक्षिण का जीता हुआ प्रदेश शत्रुओं के हाथों में जाने से बच गया।

वि० सं० १६८४ की कार्तिक बदी ३० (ई० सन् १६२७ की २६ अक्टोबर) को बादशाह जहाँगीर का स्वर्गवास हो गया, और आपस की फूट के कारण बादशाहत का प्रबंध शिथिल पड़ गया। यह देख दक्षिण का सूबेदार ख़ाँजहाँ लोदी बालाघाट का प्रांत निज़ामुलमुल्क को सौंप कर माँडू पर अधिकार करने के लिये रवाना हुआ। राजा गजसिंहजी और जयपुर के मिरज़ा राजा जयसिंहजी भी (दक्षिण से) उसके

भीम नियत हुआ और शाही सेना के अग्रभाग में शाहज़ादे परवेज़ और महाबतख़ाँ की सलाह से राजा गजसिंहजी रक्खे गए। उस समय बादशाही सेना में आँबेर के राजा जयसिंहजी, बीकानेर नरेश सूरजसिंहजी, बुंदेला वरसिंहदेव, सारंगदेव, बहलोलख़ाँ, आलमख़ाँ, आदि अनेक सरदार थे। अन्तिम युद्ध में सीसोदिया भीम और राजा गजसिंहजी का सामना हुआ। परन्तु भीम के मारे जाते ही खुर्रम और उसकी सेना मैदान छोड़ कर भाग खड़े हुए।

यह युद्ध वि० सं० १६८१ की कार्तिक सुदि १५ को हुआ था। (देखो पृ० ६७-१३४)।

(यहाँ पर कवि ने अनेक घटनाओं को एक में मिला कर बड़ी गड़बड़ करदी है)।

ख्यातों में लिखा है कि खुर्रम से आसेर का क़िला छीनने में भी राजा गजसिंहजी ने बड़ी वीरता दिखलाई थी।

१. बादशाह उसको शाहज़ादे परवेज़ से दूर करना चाहता था। इसीसे उसे वहाँ से हटाना आवश्यक था। महाराज के समझाने पर भी करीब ५,००० राजपूत सैनिक उसके साथ होलिए। इन्हीं की सहायता से उसने कुछ दिन बाद बंगाल से लौटने पर बादशाह जहाँगीर को, जो उस समय झेलम पार कर काबुल जाने के लिये उद्यत था, पकड़ कर कुछ दिन के लिये अपनी क़ैद में ले लिया। यह घटना वि० सं० १६८३ (ई० सन् १६२६) की है।

२. 'तुज़ुक जहाँगीरी', पृ० ४३४, । उक्त इतिहास में उस रोज़ 'एक शंबा' रविवार का होना लिखा है। परन्तु इण्डियन एफ़ेमेरिस के अनुसार उस दिन सोमवार आता है। (देखो भा० ६, पृ० ५७)।

साथ हो लिए। परन्तु फिर मार्ग से ही ये दोनों उसका साथ छोड़ अपनी अपनी राजधानियों की तरफ़ चले आए।

वि० सं० १६८४ की माघ सुदि १० (ई० सन् १६२८ की ४ फ़रवरी) को शाहजहाँ आगरे पहुँच कर तख़्त पर बैठा। इस पर फागुन बदी ४ (१३ फ़रवरी) को राजा गजसिंहजी भी जोधपुर से आगरे जा पहुँचे। यद्यपि इन्होंने बादशाह जहाँगीर के कहने से परवेज़ के साथ जाकर दो बार ख़ुर्रम (शाहजहाँ) को सम्मुख रण से भागने पर बाध्य किया था, तथापि इनकी वीरता और साहस का विचार कर उसने इस अवसर पर इनका बड़ा आदर सत्कार किया, और ख़ासा ख़िलअत, जड़ाऊ खंजर, फूलकटार, जड़ाऊ तलवार, ख़ासे अस्तबल का सुनहरी ज़ीनवाला घोड़ा, ख़ासा हाथी, नक्क़ारा और निशान देकर बादशाह जहाँगीर के समय का इनका पाँच हज़ारी ज़ात और पाँच हज़ार सवारों का मनसब यथानियम स्वीकार कर लिया।

इसके बाद राजा गजसिंहजी ने शाहजहाँ की इच्छानुसार सीसोदरी (फ़तहपुर सिकरी के निकट) के क़िले पर चढ़ाई कर वहाँ के बाग़ियों को सर किया।

वि० सं० १६८६ की चैत वदी ७ (ई० सन् १६३० की २३ फ़रवरी) को शाहजहाँ ने निज़ामुलमुल्क और ख़ाँजहाँ लोदी को दंड देने के लिये तीन सेनाएं बालाघाट की तरफ़ रवाना कीं। इनमें से एक सेना के सेनापति राजा गजसिंहजी बनाए गए। इन्होने इस वार भी शत्रुओं का दमन करने में अच्छी वीरता दिखाई। इसके बाद वि० सं० १६८७ के सावन (ई० सन् १६३० की जुलाई) में बादशाह ने इन्हें अपने

१. 'बादशाहनामा', भा० १, पृ० ७६।

२. 'क्रॉनॉलॉजी ऑफ़ मॉडर्न इंडिया' में उस दिन फ़रवरी की १४ तारीख़ होना लिखा है। यह चिंत्य है (देखो पृ० ८३)।

३. 'बादशाहनामा', जिल्द १, पृ० ८७।

४. 'बादशाहनामा', भा० १, पृ० १५८-१५६।

५. 'गुणभाषाचित्र' में लिखा है कि बुंदेला वरसिंह का पुत्र जोगराज बाग़ी हो गया था। जब बादशाह ने उसे दंड देने के लिये चढ़ाई की, तब महाराज गजसिंहजी भी उसके साथ थे। वहाँ पर के युद्ध में इन्होंने अच्छी वीरता दिखाई। इससे जोगराज को परास्त होना पड़ा (देखो पृ० ७७)।

६. इस सेना में हिन्दू और मुसलमान, कुल मिला कर करीब २७ शाही मनसबदार और अमीर तथा १५,००० सवार थे। 'बादशाहनामा' भा० १, पृ० २६४।

पास बुला लिया[1]। इसके बाद इसी वर्ष की आश्विन सुदि (अक्टोबर) में बादशाह ने इनको जड़ाऊ पट्टेवाली एक खासी तलवार देकर[2] दक्षिण की तरफ़ भेजा। वहाँ पर भी महाराज की राठोड़-सेना ने बड़ी वीरता दिखलाई। वि० सं० १६८८ के पौष (ई० सन् १६३१ के दिसम्बर) में महाराज यमीनुद्दौला (आसफ़खाँ) के साथ मोहम्मद आदिलखाँ को दंड देने के लिये फिर बालाघाट की तरफ़ भेजे गए। हमेशा की तरह इस बार भी यह शाही सेना के अग्रभाग के सेनापति बनाए गए[3]। इसके कुछ दिन बाद महाराज जोधपुर चले आए और यहाँ पर राज्यकार्य की देख-भाल करने लगे। वि० सं० १६९० के वैशाख (ई० सन् १६३३ के मार्च) में यह फिर जोधपुर से लौट कर आगरे पहुँचे। इस पर बादशाह ने एक खिलअत और एक सुनहरी ज़ीन वाला घोड़ा देकर इनका सत्कार किया। इसके बाद यह फिर दक्षिणियों के उपद्रव को दबाने के लिये उधर चले गए[4]। वि० सं० १६९२ की फागुन सुदि १४ (ई० सन् १६३६ की १० मार्च) को दौलताबाद के मुक़ाम पर बादशाह शाहजहाँ ने इनकी वीरता से प्रसन्न होकर इन्हें सुनहरी ज़ीन सहित एक खासा घोड़ा दिया[5]। इसके बाद वि० सं० १६९३ के पौष (ई० सन् १६३६ के दिसम्बर) में यह बादशाह के साथ दक्षिण से लौटे। मार्ग में जब बादशाह अजमेर से आगरे को चला, तब जोगी तालाब के पास उसने महाराज को, एक खासा खिलअत, एक हाथी और सुनहरी ज़ीन वाला खासा घोड़ा उपहार में देकर[6], जोधपुर को विदा किया। यहाँ पर यह क़रीब डेढ़ वर्ष तक अपने राजकाज की जाँच में लगे रहे। इसके

१. बादशाहनामा, भा० १, पृ० ३०८। उसमें लिखा है कि इसी वर्ष नसीरखाँ ने, जो गजसिंहजी की सेना में नियत था, बादशाह से तिलंगाना और कंधार की विजय का कार्य अपने ज़िम्मे किए जाने की प्रार्थना की। इससे वह कार्य उसको सौंपा गया और महाराज को वापिस बुला लिया गया।

२. 'बादशाहनामा', भा० १, पृ० ३१५।

३. बादशाहनामा, भा० १, हिस्सा १, पृ० ४०४-४०५।

४. इस अवसर पर इन्होंने १ हाथी कुछ जवाहिरात, और हथियार बादशाह की भेंट किए थे। ('बादशाहनामा', भा० १, पृ० ४७४)।

५. इस सत्कार और यात्रा का उल्लेख फ़ारसी तवारीखों में नहीं है। यह ख्यातों से लिया गया है।

६. 'बादशाहनामा', भा० १, हिस्सा २, पृ० १४१-१४२।

७. बादशाहनामा, भा० १, हिस्सा २, पृ० २३३।

बाद वि० सं० १६९४ की पौष बदी ४ (ई० स० १६३७ की २५ नवम्बर) को यह अपने द्वितीय महाराज-कुमार जसवंतसिंहजी को साथ लेकर बादशाह के पास आगरे पँहुँचे। वहाँ पर माघ के महीने (ई० सन् १६३८ की जनवरी) में बादशाह ने इन्हें फिर एक खिलअत देकर इनका सत्कार किया[1]।

वि० सं० १६९५ की जेठ सुदि ३ (ई० सन् १६३८ की ६ मई) को आगरे में ही राजा गजसिंहजी का देहान्त हो गया[3]। इसीसे वहां पर यमुना के किनारे इनका अंत्येष्टि संस्कार कर उक्त स्थान पर एक छतरी बनाई गई।

राजा गजसिंहजी बड़े वीर और दानी थे। ख्यातों के अनुसार इन्होंने छोटे बड़े ५२ युद्धों में भाग लिया था, और इनमें के प्रत्येक युद्ध में यह सेना के अग्रभाग के सेनापति रहे थे। इनकी वीरता के कार्यों का उल्लेख पहले किया जा चुका है। बादशाही दरबार में इनका बड़ा मान था और स्वयं बादशाह ने इन्हें 'दलथंभन' की उपाधि से भूषित कर इनके घोड़ों को शाही दाग से मुक्त कर दिया था। महाराज के साथ हर समय सजे सजाए पाँच हज़ार सवार रहा करते थे और यह अपनी इस सेना की देखभाल स्वयं ही किया करते थे। ख्यातों से ज्ञात होता है कि इन्होंने १४ कवियों को जुदा-जुदा 'लाख पसाव[4]' दिए थे। वास्तव में देखा जाय तो इनके

१. 'बादशाहनामा', भा० २, पृ० ८।

२. बादशाहनामा, भा० २, पृ० ११।

३. बादशाहनामा, भा० २, पृ० ९७। मारवाड़ की ख्यातों में लिखा है कि जिस समय महाराज आगरे में बीमार हुए, उस समय स्वयं बादशाह शाहजहाँ इन से मिलने के लिये आया। इसी अवसर पर महाराज ने, बातचीत के सिलसिले में, उससे अपने द्वितीय पुत्र जसवंतसिंहजी को जोधपुर का राज्य और बड़े पुत्र अमरसिंहजी को अलग मनसब देने की प्रतिज्ञा करवा ली। इसी प्रकार इन्होंने अपने सामंतों से भी अपने पीछे जसवंतसिंहजी को गद्दी पर बिठाने का वचन ले लिया था।

वि० सं० १६८६ के दो लेख फलोदी में मिले हैं। इन में महाराज गजसिंहजी का और उनके बड़े पुत्र महाराज कुमार अमरसिंहजी का उल्लेख है। ('जर्नल बंगाल एशियाटिक सोसाइटी' (१९१६) पृ० ९७-९८। डाक्टर जेम्स बर्जेज़ ने अपनी बनाई 'क्रॅनॉलॉजी ऑफ़ मॉडर्न इंडिया' (पृ० ९१) में राजा गजसिंहजी का वि० सं० १६९४ में गुजरात में मारा जाना लिखा है। यह ठीक नहीं है।

४. राजपूताने में चारणों, आदि को 'लाख पसाव' देने का यह नियम था कि जिसको यह पुरस्कार देना होता था उसको कुछ वस्त्र, आभूषण, हाथी अथवा घोड़ा और कम से कम एक हज़ार रुपये सालाना की जागीर दी जाती थी।

खजाने का रुपया वीरों और कवियों को पुरस्कार देने में ही ख़र्च होता था। महाराजा को हाथियों और घोड़ों का भी बड़ा शौक़ था। साथ ही यह समय-समय पर अपने मित्रों और अनुयायियों को भी अच्छे-अच्छे हाथी और घोड़े भेंट या पुरस्कार रूप में देते रहते थे।

राजा गजसिंहजी के बनवाए हुए स्थान:—जोधपुर के क़िले में—तोरनपोल, उसके आगे का सभामंडप, दीवानखाना, बीच की पौल, कोठार, रसोईघर, और आनन्दघनजी का मन्दिर; तलहटी के महलों में अनेक नए महल; सूरसागर में कूँआ, बगीचा और महल।

राजा गजसिंहजी के दो पुत्र थे। अमरसिंहजी और जसवंतसिंहजी।

राजा गजसिंहजी के दिए गांवों में से कुछ के नाम यहां दिए जाते हैं:—

१ सोभड़ावास २ पांचेटिया ३ राजगियावास खुर्द ४ रैंदड़ी (सोजत परगने के), ५ झाली-वाड़ा खुर्द (बीलाड़ा परगने का), ६ सूरपालिया (नागोर परगने का), ७ धरमसर (पचपदरा परगने का), ८ कोटडा (जालोर परगने का), ९ रूपावास (पाली परगने का), १० भाटेलाई का चारणों का वास (जोधपुर परगने का) चारणों को; ११ पलाया (जालोर परगने का) पुरोहितों को और १२ दागड़ा (मेड़ता परगने का), १३ रेवड़िया (सोजत परगने का) भाटों को।

१. आज कल इन स्थानों का पूरी तौर से पता लगना कठिन है, क्योंकि इनमें के कुछ तो गिरा दिए गए हैं और कुछ के रूप बदल गए हैं।

२५. महाराजा जसवंतसिंहजी (प्रथम)

यह राजा गजसिंहजी के द्वितीय पुत्र थे। इनका जन्म वि० सं० १६८३ की माघ वदि ४ (ता० २६ दिसम्बर, १६२६) को बुरहानपुर (दक्षिण) में हुआ था। राजा गजसिंहजी का विचार इन्हीं को अपना उत्तराधिकारी बनाने का था। इससे वि० सं० १६९५ की जेठ सुदि ३ (ई० स० १६३८ की ६ मई) को, जिस समय आगरे में उनकी मृत्यु हुई, उस समय बादशाह शाहजहाँ ने इन (जसवंतसिंहजी) को ख़िलअत, जड़ाऊ जमधर (कटार), ४ हज़ारी ज़ात और ४ हज़ार सवारों का मनसब, राजा का ख़िताब, निशान, नक़ारा, सुनहरी ज़ीन का घोड़ा और हाथी देकर राजा की पदवी से भूषित कर दिया[1]।

इसके बाद वि० सं० १६९५ की आषाढ वदि ७ (ई० स० १६३८ की २५ मई) को आगरे में ही इनका राजतिलक हुआ। प्रथम श्रावण सुदि १२ (१२ जुलाई) को बादशाह ने इन्हें फिर ख़िलअत देकर सम्मानित किया[2]। उस समय महाराज की अवस्था क़रीब ११ वर्ष की थी। इसी से बादशाह ने मारवाड़ के राजकार्य की देख-भाल के लिये कूँपावत राजसिंह[3] को इनका प्रधान नियत कर

---

१. इस पर महाराज ने भी १,००० मुहरें, १२ हाथी और कुछ जड़ाऊ शस्त्र बादशाह को भेट किए।

बादशाहनामा, जिल्द २, पृ० ९७।

ख्यातों में लिखा है कि उस समय जसवंतसिंहजी विवाहार्थ बूँदी गए हुए थे। परन्तु पिता की मृत्यु का समाचार पाते ही यह आगरे जा पहुँचे। बादशाह की आज्ञा से पहले सुलतान मुराद ने इनके मकान पर आकर मातमपुरसी की और इसके बाद बादशाह शाहजहाँ ने स्वयं अपने हाथ से इनका राजतिलक किया।

२. इसके क़रीब २४ दिन बाद महाराज ने भी बादशाह को ६ हाथी भेट में दिए।

बादशाहनामा, जिल्द २, पृ० १०२-१०३।

३. इसका जन्म वि० सं० १६४३ की वैशाख सुदि २ को हुआ था।



२५. महाराजा जसवन्तसिंहजी (प्रथम)

वि० सं० १६६५-१७३५ (ई० स० १६३८-१६७८)

दिया[1] और महाराज को अपने खास तबेले से सुनहरी ज़ीन-सहित एक घोड़ा सवारी के लिये दिया[2]।

इसके बाद जिस समय बादशाह शाहजहाँ लाहौर की तरफ़ गया, उस समय महाराज भी उसके साथ रवाना हुए। परन्तु मार्ग में कुछ दिन के लिये यह दिल्ली में ठहर गए और जब बादशाह बाकरवाड़े (पालम परगने में) पहुँचा, तो जाकर उसके साथ हो गए[3]। इख़्तयारपुर पहुँचने पर बादशाह ने इन्हें फिर ख़ासा ख़िलअत और सुनहरी ज़ीन का ख़ासा घोड़ा देकर इनका मान बढ़ाया[4]। इसके बाद सरदी का मौसम आ जाने के कारण उसने महाराज के पहनने के लिये एक पोस्तीन, जिसके ऊपर ज़री और नीचे संभूर के बाल लगे थे, भेजा[5]।

माघ वदि ४ (ई० स० १६३६ की १३ जनवरी) को महाराज का मनसब पाँच-हज़ारी ज़ात और पाँच हज़ार सवारों का कर दिया गया[6]। ख्यातों से ज्ञात होता है कि इसी के साथ इन्हें जैतारन का परगना भी जागीर में मिला था। इसके तीन मास बाद बादशाह ने इन्हें फिर एक ख़ासा हाथी देकर इनका सत्कार किया[7]।

---

१. यह पहले राजा गजसिंहजी का भी प्रधान-मंत्री रह चुका था और उसके बाद शाहजहां ने इसको वि सं० १६६५ की भादों वदि २ (ई० स० १६३८ की १६ अगस्त) को एकहज़ारी ज़ात और चार सौ सवारों का मनसब देकर शाही अमीरों में ले लिया था।

बादशाहनामा, जिल्द २, पृ० १०५।

२. बादशाहनामा, जिल्द २, पृ० ११०। इस घटना का समय भादों वदि ४ (१८ अगस्त) लिखा है।

३. बादशाहनामा, जिल्द २, पृ० ११३। इस घटना का समय आश्विन वदि १२ (२४ सितम्बर) लिखा है।

४. बादशाहनामा, जिल्द २, पृ० ११४-११५। यह घटना आश्विन सुदि ६ (६ अक्टोबर) को हुई थी।

५. बादशाहनामा, जिल्द २ पृ० १२८। यह घटना पौष वदि २ (१२ दिसम्बर) की है।

६. बादशाहनामा, जिल्द २, पृ० १३३। उस समय अमीरों को अधिकतर ऊँचे-से-ऊँचा यही मनसब मिला करता था और इसके साथ की जागीर की आमदनी शायद पच्चीस लाख वार्षिक के क़रीब होती थी?

७. बादशाहनामा, जिल्द २, पृ० १४४। यह घटना वि० सं० १६९६ की चैत्र सुदि ११ (ई० सन् १६३९ की ४ अप्रैल) की है।

वि० सं० १६९६ की वैशाख सुदि २ (ई० स० १६३९ की २५ अप्रैल) को जब बादशाह लाहौर से आगे बढ़ पेशावर से जमरूद की तरफ़ रवाना हुआ, तब मार्ग की तंगी के कारण अन्य कई शाही अमीरों के साथ ही महाराज भी पेशावर में ठहर गए। परन्तु चौथे रोज़ अली-मसजिद के मुक़ाम पर फिर बादशाह से जा मिले[1]। आश्विन सुदि ९ (२५ सितम्बर) को भी बादशाह ने इन्हें खिलअत और सुनहरी ज़ीन का एक घोड़ा दिया[2]।

इसके बाद इसी साल की फागुन सुदि ९ (ई० स० १६४० की २१ फ़रवरी) को जिस समय महाराजा अपने देश की तरफ़ रवाना हुए, उस समय भी बादशाह ने इन्हें खिलअत और सुनहरी ज़ीन का खासा घोड़ा देकर विदा किया[3]। इस पर यह हरद्वार होते हुए वि० सं० १६९७ की ज्येष्ठ सुदि (ई० स० १६४० की मई) में जोधपुर पहुँचे। चिरप्रचलित प्रथा के अनुसार यहाँ पर क़िले में फिर से महाराज के राजतिलक का उत्सव मनाया गया और इस शुभ अवसर पर मारवाड़ के सब उपस्थित सरदारों ने नज़र और निछावर के द्वारा अपने स्वामी का अभिनन्दन कर इनकी अधीनता स्वीकार की। इसके बाद स्वयं महाराजा अपने विश्वास-पात्र सरदारों की सलाह से राज्य का प्रबन्ध देखने लगे[4]। बहुधा यह वेश बदलकर रात्रि में, गुप्त रीति से, नगर-निवासियों के हाल-चाल का निरीक्षण करने को भी निकला करते थे[5]।

वि० सं० १६९७ की पौष वदि ५ (ई० स० १६४० की २३ नवम्बर) को इनका प्रधानामात्य कूंपावत राजसिंह मर गया। इस पर उसका काम चांपावत

१. बादशाहनामा, जिल्द २, पृ० १४६। उस दिन तिथि 'सल्ख, ज़िलहिज हि० सन् १०४८' लिखी है। सल्ख में चंद्रदर्शन की तिथि का तात्पर्य होने से ही ऊपर द्वितीया ली गई है।

२. बादशाहनामा, जिल्द २, पृ० १६२।

३. बादशाहनामा, जिल्द २, पृ० १८१। इसी समय बादशाह ने इनके प्रधान मंत्री कूंपावत राजसिंह को भी एक खिलअत और जड़ाऊ जमधर देकर इनके साथ बिदा किया। ख्यातों में इनका चैत्र वदि ५ को दिल्ली से रवाना होना लिखा है।

४. इनके समय का वि० सं० १६९६ की आषाढ़ सुदि २ (ई० सन् १६३९ की २२ जून) का एक लेख फलोदी से मिला है।

जर्नल बंगाल एशियाटिक सोसाइटी, (१९१६) पृ० ९९।

५. ख्यातों में लिखा है कि जिस समय महाराज अर्धरात्रि के क़रीब नगर में गश्त लगाते हुए तापी बावली के पास पहुँचे, उस समय इन्हें सामने से एक परिचित राज्यकर्मचारी

महेशदास को सौंपा गया। अनन्तर वि० सं० १६९८ की वैशाख वदि ३ (ई० स० १६४१ की १९ मार्च) को महाराज लौटकर आगरे चले गए। शाहजहाँ ने भी वहाँ पर ख़िलअत और जड़ाऊ धोप[3] देकर इनका सत्कार किया[4]।

वैशाख शुक्ल १२ (१२ अप्रैल) को महाराज के मनसब के सवारों में के एक हज़ार सवार दुअस्पा[5] और सेअस्पा[6] कर दिए गए[7]। प्रथम ज्येष्ठ (मई) के महीने

आता दिखाई दिया। यह देख यह अपने को छिपाने के लिये उक्त बावली के अंदर चले गए। परन्तु वहाँ पर महाराज के शरीर में ब्रह्मराक्षस का आवेश हो गया और यह मूर्छित होकर गिर पड़े। इस पर साथ के लोग इन्हें उसी अवस्था में किले पर ले आए। वहाँ पर मंत्र-शास्त्रियों के उपचार से उस ब्रह्मराक्षस ने कहा कि यदि महाराज के समान अधिकारवाला ही कोई व्यक्ति महाराज के बदले जीवनोत्सर्ग करने को तैयार हो, तो मैं इनके प्राण छोड़ सकता हूँ। इस पर इनके प्रधानामात्य राजसिंह ने इन पर से वारा हुआ जल पीकर अपना जीवनोत्सर्ग कर दिया। इससे महाराज तत्काल स्वस्थ हो गए। वहीं पर यह भी लिखा है कि मरते समय राजसिंह ने अपने वंशजों को उपदेश दिया था कि यदि तुममें भी इसी प्रकार के स्वार्थ-त्याग की सामर्थ्य हो तो राज्य का मंत्रित्व स्वीकार करना, अन्यथा नहीं। इसीसे उसके वंशज अब तक इस पद को स्वीकार नहीं करते हैं।

इस घटना की वास्तविकता के विषय में पूरी तौर से कुछ नहीं कहा जासकता।

१. 'बादशाहनामे' (की जिल्द २, पृ० १५१) में लिखा है कि संवत् १६९६ के आषाढ़ (ई० सन् १६३९ के जून) में काबुल के मुकाम पर बादशाह ने इसे, महाराज के प्रधान पुरुषों में होने के कारण, एक घोड़ा इनायत किया था। उसी में यह भी लिखा है कि बादशाह ने पहले पहल वि० सं० १६९५ की कार्त्तिक सुदि (ई० सन् १६३८ की नवम्बर) में महेशदास को, जो पहले गजसिंहजी और जसवंतसिंहजी की सेवा में रह चुका था, ८०० ज़ात और ३०० सवारों का मनसब देकर शाही मनसबदार बनाया था।

बादशाहनामा, भा० २, पृ० १२२।

२. बादशाहनामा, जिल्द २, पृ० २२७।

३. किरच या सीधी तलवार।

४. इस घटना की तिथि वैशाख वदि १४ (३० मार्च) लिखी है। इस के चौथे दिन बादशाह ने भी अपनी तरफ़ से राठोड़ महेशदास को घोड़ा और ख़िलअत देकर राजा जसवंतसिंहजी का प्रधान मंत्री नियत किया था।

बादशाहनामा, जिल्द २, पृ० २२९।

५. दो घोड़ों की तनख़्वाह पानेवाला सवार दुअस्पा कहलाता था।

६. तीन घोड़ों की तनख़्वाह पानेवाला सवार सेअस्पा कहलाता था।

७. बादशाहनामा, जिल्द २, पृ० २३०।

में बादशाह ने इनके लिये एक खासा हाथी और आषाढ़ (जुलाई) में सुनहरी ज़ीन का एक ख़ासा घोड़ा भेजा। इसी बीच बादशाह ने बसरे से अरबी घोड़े मँगवाए थे। वे बड़े ही ख़ूबसूरत और क़ीमती थे। उनके आने पर आश्विन (अक्टोबर) में उनमें का एक घोड़ा मय सुनहरी ज़ीन के महाराज की सवारी के लिये भेजा गया। उस समय महाराज शाहजहाँ के साथ लाहौर में थे। इसलिये इन्होंने भी वहां पर ३ हाथी और २२ घोड़े अपने सरदारों को इनाम में और चारणों को दान में देकर अपनी महत्ता प्रकट की।

इन्हीं दिनों (वि० सं० १६९९ में) ईरान के बादशाह शाह सफ़ी ने, कंधार[3] पर चढ़ाई करने का विचार कर, अपने सेनापतियों को नेसापुर में पहुँचने की आज्ञा दी। इस समाचार के ज्ञात होते ही शाहजहाँ ने राजा जसवंतसिंहजी आदि नरेशों को मय शाही सेना के शाहज़ादे दाराशिकोह के साथ कंधार की रक्षा के लिये रवाना किया। इस अवसर पर भी उसने इन्हें प्रसन्न रखने के लिये ख़ासा ख़िलअत, जड़ाऊ जमधर, फूलकटार, सुनहरी साज़वाला ख़ासा घोड़ा और ख़ासा हाथी उपहार में दिये। परन्तु ईरान का बादशाह कंधार पहुँचने के पूर्व मार्ग (काशान) में ही मर गया। इससे वह झगड़ा अपने आप शांत हो गया और यह गज़नी से ही वापस लौट आए। इसके बाद वि० सं० १७०० की आषाढ़ सुदि १४ (ई० स० १६४३ की २० जून) को महाराज मारवाड़ की तरफ़ रवाना हुए। बादशाह ने भी ख़ासा ख़िलअत देकर इन्हें बिदा किया। बादशाही मनसबदार होने के कारण उन दिनों महेशदास को अधिकतर शाही दरबार में ही रहना पड़ता था। इसीसे महाराज ने जोधपुर पहुँच प्रधान-मंत्री का पद मेड़तिया गोपालदास को सौंप दिया और मुहणोत नैणसी को सेना देकर पहाड़ी प्रदेश के मेरों के उपद्रव को शांत करने की आज्ञा दी। उसने वहाँ

१. बादशाहनामा, जिल्द २, पृ० २३२ और २३५।

२. बादशाहनामा, जिल्द २, पृ० २४६।

३. यह प्रांत बादशाह जहाँगीर के समय ईरान-नरेश के अधिकार मे चला गया था; परन्तु शाहजहा के समय इस पर फिर से मुग़लों का अधिकार हो गया।

ऑक्सफ़ोर्ड हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया, पृ० ४०१।

४. बादशाहनामा, जिल्द २, पृ० २६३-२६४।

५. बादशाहनामा, जिल्द २, पृ० ३३५-३३६।

६. यह रीयाँ का ठाकुर था।

जाकर उनके १५ गांव जला दिए और बाग़ियों के मुखियाओं को मारकर मेरों के उपद्रव को शांत कर दिया।

इसी साल राढ़धड़े के महेचा राठोड़ महेशदास ने बग़ावत का झंडा उठाया। इस पर मुहणोत जयमल राजकीय सेना को लेकर वहाँ जा पहुँचा और महेशदास को भगाकर राढ़धड़े को लूट लिया। इससे कुछ दिन बाद ही महाराज ने उक्त प्रदेश (महेवे के रावल तेजसी के पुत्र) जगमाल को जागीर में दे दिया। इसके बाद जब बादशाह शाहजहाँ ज़ियारत के लिये अजमेर आया, तब यह भी मँगसिर सुदि ९ (१० दिसंबर) को वहाँ पहुँच उससे मिले और सात दिन के बाद जिस समय वह अकबराबाद (आगरे) की तरफ़ रवाना हुआ, उस समय लौटकर जोधपुर चले आए। बिदाई के समय बादशाह ने खिलअत देकर इनका सम्मान किया[1]। इसके बाद कई दिनों तक तो महाराज अपनी राजधानी में रहकर राज्य-कार्य की देखभाल करते रहे, परन्तु फिर बादशाह के बुलाने पर रूपावास के डेरे पर पहुँच उससे मिले[2]।

वि० सं० १७०१ की माघ सुदि २ (ई० स० १६४५ की १९ जनवरी) को जब बादशाह लाहौर की तरफ़ रवाना हुआ, तब उसने इन्हें खिलअत देकर इनका सम्मान किया और साथ ही अकबराबाद के सूबेदार शेख़ फ़रीद के आने तक आगरे की देखभाल करते रहने और बाद में अपने पास चले आने का आग्रह किया[3]। इसके अनुसार यह उसके साथ न जाकर वहीं ठहर गए[4]। इसके बाद जब बादशाह लाहौर से काश्मीर को रवाना हुआ, तब उसने इन्हें अपने काश्मीर से लौट आने तक अवश्य ही लाहौर पहुँच जाने का लिखा[5]।

---

१. बादशाहनामा, जिल्द २, पृ० ३४६।

२. परन्तु वि० सं० १७०१ की पौष सुदि २ (ई० सन् १६४४ को २१ दिसम्बर) के महाराज के लाहौर से लिखे फरासत के नाम के पत्र से उस समय महाराज का लाहौर में होना प्रकट होता है। यह विचारणीय है।

३. बादशाहनामा, जिल्द २, पृ० ४०७।

४. ख्यातों में लिखा है कि इन्हीं दिनों फिर मेरों के मुखिया (रावत) ने सोजत में उपद्रव शुरू किया। इस पर महाराज के दीवान मुहणोत नैणसी ने चढ़ाई कर उसे मार भगाया। इस मुहणोत नैणसी ने दो इतिहास तैयार किए थे। पहला आजकल 'मुहणोत नैणसी की ख्यात' के नाम से प्रसिद्ध है। उसमें इसने इधर-उधर से एकत्रित कर राठोड़, सीसोदिया, चौहान आदि अनेक राजपूत-वंशों का इतिहास लिखा है और दूसरे में मारवाड़ के गाँवों की उस समय की जमाबंदी, आबादी, लगान आदि का हाल दिया है।

५. बादशाहनामा, जिल्द २, पृ० ४२५। यह आज्ञा आषाढ़ सुदि ८ (२१ जून) को दी गई थी।

इसी के अनुसार जिस समय वि० सं० १७०२ की मँगसिर वदि १ (ई० स० १६४५ की २५ अक्टोबर) को बादशाह लौटकर लाहौर आया, उससे करीब २ या १½ मास पूर्व यह भी वहाँ जा पहुँचे।[1]

वि० सं० १७०३ की वैशाख सुदि ५ (ई० स० १६४६ की १० अप्रैल) को जब बादशाह का डेरा चनाब के पास हुआ, तब उसने महाराज को जड़ाऊ जमधर, फूलकटार और सुनहरी ज़ीन-सहित अरबी घोड़ा देकर इनका सत्कार किया[2]। तथा ज्येष्ठ सुदि १० (१४ मई) को महाराज के मनसब के दो हज़ार सवार दुअस्पा सेअस्पा करे दिए[3]। इसके दूसरे ही दिन बादशाह के इच्छानुसार महाराज पेशावर से रवाना होकर शाही लश्कर से एक पड़ाव आगे हो लिए[4]। इस प्रकार जब बादशाह सकुशल काबुल पहुँच गया, तब उसने भादों वदि २ (१८ अगस्त) को इन्हें सुनहरी ज़ीन का (खासा तबेले का) एक घोड़ा सवारी के लिये दिया[5] और माघ वदि ११ (ई० स० १६४७ की २१ जनवरी) को इनके मनसब के ढाई हज़ार सवार दुअस्पा

---

१. बादशाहनामा, जिल्द २, पृ० ४७१।

वि० सं० १७०१ (ई० सन् १६४४) में महाराज ने ख्वाजा फरासत को, जिसे राजा गजसिंहजी ने राजा बहादुर से ख़रीदा था, जोधपुर के प्रबंध की देख भाल के लिये भेजा। परन्तु उसके इस कार्य में सफल न हो सकने के कारण वि० सं० १७०४ (ई० सन् १६४७) में राज्य का प्रबंध उससे ले लिया गया। मृत्यु के उपरांत जहाँ पर वह गाड़ा गया था, वह स्थान, जोधपुर नगर के चाँदपोल दरवाज़े के बाहर, 'मियां के बाग़' के नाम से प्रसिद्ध है। वीरविनोद में लिखा है कि वि० सं० १७०२ (हि० सन् १०५५=ई० सन् १६४५) में महाराज के मनसब में १,००० सवार बढ़ाए गए थे। संभवतः इससे इनके मनसब के १,००० सवारों का दुअस्पा-सेअस्पा किए जाने का तात्पर्य ही होगा।

२. बादशाहनामा, जिल्द २, पृ० ५०१।

३. वीरविनोद में वि० सं० १७०४ (ई० सन् १६४७=हि० सन् १०५७) में महाराज के मनसब का ७,००० सवारों का होना लिखा है। परन्तु मूल में उद्धृत किया हुआ वृत्तान्त बादशाहनामे (की जिल्द २, पृ० ५०५) से लिया गया है।

४. इस अवसर पर आंबेर के महाराज-कुमार रामसिंहजी भी इनके साथ भेजे गए थे।

बादशाहनामा, भाग २, पृ० ५०६।

५. आषाढ़ वदि ६ (२८ मई) को महाराज, जो पहले ही काबुल पहुँच गए थे, वहाँ पर बादशाह से मिले। बादशाहनामा, जिल्द २, पृ० ५०६ और ५७८।

सेअस्पा कर दिए[1]। इसके बाद वि० सं० १७०४ (ई० स० १६४७) में इनके मनसब के ३,००० सवार दुअस्पा सेअस्पा हो गए[2]। ख्यातों से ज्ञात होता है कि इसके साथ ही इन्हें खर्च के लिये हिंदौन का परगना जागीर में मिला[3]।

वि० सं० १७०५ (ई० स० १६४८) में महाराज का मनसब ५,००० जात और ५,००० सवार दुअस्पा-सेअस्पा का कर दिया गया[4]।

इसके बाद जब अगले वर्ष कज़लबाशों (ईरानियों) के आक्रमण की सूचना पाकर बादशाह ने शाहज़ादे औरंगज़ेब को कंधार की तरफ़ रवाना किया, तब महाराज भी उसकी सहायता के लिये साथ भेजे गए। परन्तु मार्ग में काबुल पहुँचने पर औरंगज़ेब को बादशाह की आज्ञा से वहीं रुक जाना पड़ा। इससे यह भी वहीं ठहर गए। इसके बाद कुछ ही दिनों में जब बादशाह स्वयं वहाँ पहुँचा, तब इन्होंने दो हज़ार सवारों के साथ आगे जाकर उसकी अभ्यर्थना की[5]।

इसी वर्ष (वि० सं० १७०६) के कार्तिक में जिस समय जयसलमेर रावल मनोहरदासजी का स्वर्गवास हो गया, उस समय उनका पुत्र रामचन्द्र वहाँ की गद्दी पर बैठा। परन्तु वहां के सरदार उससे नाराज़ थे। इस पर स्वर्गवासी रावल मालदेव के पुत्र सबलसिंह ने जो पहले से ही शाहजहाँ के पास रहता था, उससे सहायता माँगी। बादशाह ने महाराज से उसकी सहायता करने का आग्रह किया। साथ ही सबलसिंह

१. बादशाहनामा, जिल्द २, पृ० ६२७।

वि० सं० १७०३ की चैत्र वदि ७ (ई० सन् १६४७ की १७ मार्च) के महाराज के लाहौर से लिखे फरासत के नामके पत्र से उस समय भी इनका लाहौर मे होना प्रकट होता है।

२. यह शाहजहाँ के २१वें राज्य वर्ष की घटना है; जो वि० सं० १७०४ की आषाढ़ सुदि २ (ई० सन् १६४७ की २४ जून) से प्रारंभ हुआ था।

मआसिरुलउमरा, भा० ३, पृ० ५६६।

३. ख्यातों से यह भी ज्ञात होता है कि यह परगना ६ वर्ष तक महाराज के अधिकार मे रहा था।

४. 'मआसिरुल उमरा', भा० ३, पृ० ५६६-६००। यह घटना शाहजहाँ के २१वें राज्यवर्ष के अंतिम समय की है।

५. यह घटना शाहजहाँ के २२वें राज्यवर्ष की है, जो वि० सं० १७०५ की आषाढ़ सुदि ३ (ई० सन् १६४८ की १३ जून) को प्रारंभ हुआ था।

मआसिरुलउमरा, भा० ३, पृ० ६००।

ने भी इन्हें फलोदी का प्रांत (मय पौकरन के क़िले के) लौटा देने का वादा कर लिया। इसलिये महाराज ने जोधपुर पहुँचे[2] (रीयाँ के) मेड़तिया गोपालदास, (पाली के) चांपावत विट्ठलदास और (राजसिंह के पुत्र आसोप के) नाहरख़ाँ को सेना देकर सबलसिंह के साथ कर दिया। इन लोगों ने शीघ्र ही फलोदी विजय कर वि० सं० १७०७ की कार्त्तिक वदि ६ (ई० स० १६५० की ५ अक्टोबर) को पौकरण के क़िले पर अधिकार कर लिया। इसके बाद यह आगे बढ़ जयसलमेर पर जा पहुँचे। यह देख रामचन्द्र भाग गया और जयसलमेर पर सबलसिंह का अधिकार हो गया।

वि० सं० १७१० (ई० स० १६५३) में महाराज का मनसब ६,००० ज़ात और ५,००० सवार दुअस्पा-सेअस्पा का कर दिया गया[3]।

इसके बाद यह शाहज़ादे दाराशिकोह के साथ कंधार विजय के लिये रवाना हुए[4]। परंतु इस यात्रा में शाही सेना को सफलता नहीं मिली[5]।

वि० सं० १७१२ (ई० स० १६५५) में इनका मनसब ६,००० ज़ात और ६,००० सवार (इनमें ५,००० सवार दुअस्पा-सेअस्पा थे) का हो गया और साथ

१. राव चन्द्रसेनजी ने यह प्रांत १,००,००० फदियों (करीब १२,५०० रुपयों) के बदले में जयसलमेर रावलजी को सौंप दिया था।

२. ख्यातों के अनुसार यह वि० सं० १७०७ की आषाढ़ वदि ३ (ई० सन् १६५० की ६ जून) को जोधपुर पहुँचे थे।

३. यह शाहजहाँ के २६वें राज्यवर्ष की घटना है; जो वि० सं० १७०६ की द्वितीय वैशाख सुदि ३ (ई० सन् १६५२ की ३० अप्रैल) को प्रारंभ हुआ था।

मआसिरुलउमरा, भा० ३, पृ० ६००।

ख्यातों से ज्ञात होता है कि इसके साथ ही इन्हें (अजमेर सूबेका) मलारना प्रांत जागीर में मिला था।

४. वि० सं० १७०५ (ई० सन् १६४६ की फ़रवरी) में कंधार पर ईरानियों ने अधिकार कर लिया था।

ऑक्सफ़ोर्ड हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया, पृ० ४०२।

५. ऑक्सफ़ोर्ड हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया, पृ० ४०३। इसके पहले दो बार औरंगजेब भी कंधार–विजय में असफल हो चुका था।

ही इन्हें 'महाराजा' का ख़िताब भी दिया गया। इसके बाद यह सीसोदिया सर्वदेव की कन्या से विवाह करने को मथुरा पहुँचे और वहां से जोधपुर चले आए।

इसी साल जब राठोड़ महेशदास के पुत्र रत्नसिंहजी जालोर छोड़कर मालवे की तरफ़ चले गए और वहां पर उन्हें दूसरी जागीर मिल गई, तब बादशाह ने उक्त प्रांत भी महाराज को सौंप दिया। इससे वि० सं० १७१३ में वहां पर महाराज का अधिकार हो गया।

इन्हीं दिनों मारवाड़ में सींधलों ने उपद्रव मचाना शुरू किया। जैसे ही इसकी सूचना महाराज को मिली, वैसे ही इन्होंने उन्हें दबाने के लिये एक सेना रवाना की। उसने सींधलों को परास्त कर उनके मुख्य स्थान पांचोटा और कवलां नामक गांवों को लूट लिया।

१. 'मआसिरुलउमरा', भा० ३, पृ० ६००।

ख्यातों में इस मनसब-वृद्धि का समय वि० सं० १७१० की माघ वदि ३ लिखा है। परन्तु 'मआसिरुलउमरा' में इसका समय शाहजहाँ का २६ वाँ राज्यवर्ष दिया है: जो हि० सन १०६५ की जमादिउल आखिर की १ तारीख़ से प्रारंभ हुआ था। उक्त तारीख़ वि० सं० १७१२ की चैत्र शुक्ला ३ (ई० सन् १६५५ की ३० मार्च) को आती है।

ख्यातों में यह भी लिखा है कि बादशाह ने वि० सं० १७११ में मेवाड़ के महाराणा राजसिंहजी से ४ परगने ज़ब्त कर लिए थे। उनमें से बदनोर का परगना कार्तिक सुदि ५ को महाराज को दे दिया गया और कुछ काल बाद मेरूंद का परगना भी महाराज की जागीर में मिला दिया।

२. 'मआसिरुलउमरा', भा० ३, पृ० ६००। ख्यातों में इसका नाम वीरमदेव लिखा है। यह सीसोदिया सूरजमल का पुत्र था।

३. ख्यातों में यह भी लिखा है कि इसी साल महाराज ने पंचोली मनोहरदास को अपनी रोहतक के ज़िले की जागीर का प्रबंध करने के लिये भेजा था। यह जागीर भी इन्हें बादशाह ने मनसब की वृद्धि के साथ ही दी थी।

४. ख्यातों से ज्ञात होता है कि बादशाह ने यह (जालोर का) परगना इन्हें मलारना प्रांत की एवज़ में दिया था। रत्नसिंहजी के मनसब के लिये देखो 'मआसिरुलउमरा', भा ३ पृ० ४४६-४४७। परन्तु वहाँ पर मालवे की जागीर का उल्लेख नहीं है।

वि० सं० १७१४ (ई० स० १६५८) में बादशाह शाहजहाँ बीमार हो गया और साथ ही लोगों में उसके मरने की अफ़वाह फैल गई। इस पर उसका बड़ा पुत्र दाराशिकोह उसे दिल्ली से यमुना के मार्ग द्वारा आगरे ले आया। इसकी सूचना पाते ही शाहजहाँ के द्वितीय पुत्र शाहज़ादे शुजा ने अपने को सूबे बंगाल में बादशाह घोषित कर दिया और इसके बाद वह सेना सज कर पटने के मार्ग से आगरे की तरफ़ चला। तीसरा पुत्र औरंगज़ेब राज्य पर अधिकार करने की इच्छा से दल-बल-सहित दक्षिण से रवाना हुआ और चौथा पुत्र मुराद अहमदाबाद (गुजरात में) तख़्त पर बैठ गया। यह देख दाराशिकोह ने बादशाह से कहकर महाराज का मनसब ७,००० ज़ात और ७,००० सवार (जिसमें ५,००० सवार दुअस्पा-सेअस्पा थे) का करवा दिया और इसी के साथ इन्हें १०० घोड़े, जिनमें एक सुनहरी ज़ीन का महाराज की सवारी के लिये था, चाँदी की अम्बारीवाला एक हाथी, एक हथिनी, एक लाख रुपए नक़द तथा मालवे की सूबेदारी दिलवाई। इसके बाद यह दारा के आग्रह से औरंगज़ेब को रोकने के लिये उज्जैन की तरफ़ भेजे गए और इनकी मदद के लिये शाही लश्कर के साथ क़ासिमख़ाँ नियत किया गया। साथ ही उस (क़ासिमख़ाँ) को यह भी कह दिया गया था कि यदि आवश्यकता समझे, तो गुजरात पहुँच मुराद को वहाँ से निकाल दे[3]। जब महाराज के उज्जैन पहुँचने का समाचार औरंगज़ेब को मिला, तब उसने अपनी सेना में और भी वृद्धि कर उसे दृढ़ करने का प्रयत्न किया। इसी बीच

१. 'मआसिरुलउमरा' में इस घटना का शाहजहाँ के ३२वें राज्यवर्ष में होना लिखा है (देखो भा० ३, पृ० ६००)। परन्तु 'ओरियंटल बायोग्राफ़ीकल डिक्शनरी' में शाहजहाँ का ३० वर्ष राज्य करना ही लिखा है (देखो पृ० ३६३)। यह ३० वर्ष वाली गणना अँगरेज़ी वर्ष के हिसाब से की गई प्रतीत होती है।

विन्सैंटस्मिथ की ऑक्सफ़ोर्ड हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया, पृ० ४०६।

'आलमगीरनामा' (पृ० २७) और मारवाड़ की ख्यातों में इस घटना का समय क्रमशः हि० सन् १०६७ की ७ जिलहिज और वि० सं० १७१४ (ई० सन् १६५७) दिया है। ये सब आपस में मिलते हैं।

२. 'मआसिरुलउमरा', भा० ३, पृ० ६००-६०१।-आलमगीरनामे में दाराशिकोह का मालवा अपनी जागीर में लेकर, महाराज जसवंतसिंहजी को उधर भेजना लिखा है (देखो पृ० ३२)।

३. 'आलमगीरनामा', पृ० ३२-३३।

४. ख्यातों में वि० सं० १७१४ की माघ वदि ४ को इनका उज्जैन में पहुँचना लिखा है।

बहुत से शाही अमीर देपालपुर में पहुँच, बादशाह के विरुद्ध, औरंगज़ेब से मिल गए। इस पर उसने उन्हें मनसब और ख़िलअत आदि देकर अपना मार्ग सुगम कर लिया। साथ ही उसने अपने छोटे भाई मुराद को भी बादशाहत का लालच देकर अपनी सहायता के लिये बुलवाया। इसकी सूचना पाते ही महाराज मुराद को रोकने के लिये उज्जैन से रवाना हुए। खाचरोद से ३ कोस के फ़ासले पर पहुँच जाने पर इनकी और मुराद की सेनाओं के बीच १८ कोस का फ़ासला रह गया। परन्तु उसने अकेले ही महाराज की सेना से मुकाबला करना हानिकारक जान तत्काल अपना मार्ग पलट दिया और यथासंभव दूसरे रास्ते से चलकर औरंगज़ेब से जा मिलने की कोशिश करने लगा। इसी बीच महाराज ने शाही जासूसों के द्वारा दोनों शाहज़ादों की गति-विधि जानने का बहुत कुछ प्रयत्न किया; परन्तु औरंगज़ेब ने नर्मदा के घाटों का पूरी सतर्कता से प्रबन्ध कर रक्खा था। इसलिये शाही जासूसों की अकर्मण्यता या विश्वासघात के कारण महाराज को उसकी सेना का यथार्थ समाचार न मिल सका। इसी बीच देपालपुर के पास मुराद भी उससे जा मिला। इसके बाद महाराज को मांडू के क़िलेदार राजा सेवाराम के पत्र से ज्ञात हुआ कि औरंगज़ेब मालवे की तरफ़ आ रहा है और मुरादबख़्श उससे जा मिला है। इस पर यह तत्काल खाचरोद से उसके मुक़ाबले को चले। इनके उज्जैन पहुँचने तक दोनों शाहज़ादे भी वहाँ से सात कोस के फ़ासले पर धर्मतपुर के पास पहुँच चुके थे। यह देख महाराज ने उससे एक कोस के फ़ासले पर अपने डेरे लगा दिए। इसी बीच चालाक शाहज़ादे औरंगज़ेब ने दूत द्वारा महाराज से कहलाया कि हम तो अपने पिता की बीमारी का हाल सुनकर उससे मिलने जाते हैं; ऐसी हालत में आप हमारा मार्ग क्यों रोकते हैं? परन्तु महाराज ने, जो उसके रंग-ढंग से परिचित थे, उत्तर में लिख भेजा कि यदि आप पिता के कुशल-समाचार पूछने को ही जाना चाहते हैं; तो इतनी बड़ी सेना को साथ ले जाने की क्या आवश्यकता

१. 'आलमगीरनामा', पृ० ५५।

२. 'आलमगीरनामा', पृ० ५६-५७।–वी० ए० स्मिथ ने लिखा है कि औरंगज़ेब ने नर्मदा पर की नावों पर अधिकार कर इधर की ख़बर उधर जाने का मार्ग ही रोक दिया था। इसके बाद ई० सन् १६५८ की ३ अप्रेल (वि० सं० १७१५ की चैत्र सुदि १०) को उसने नर्मदा को पार किया और उज्जैन के पास पहुँचने पर उसकी और मुराद की सेनाएँ आपस में मिल गईं।

ऑक्सफ़ोर्ड हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया, पृ० ४०६-४१०।

३. 'आलमगीरनामा', पृ० ५८।

है। हाँ यदि आप वास्तव में ही पिता से मिलना चाहते हैं, तो इस विशाल-वाहिनी को यहीं छोड़ थोड़े से ख़ास पुरुषों के साथ आगरे जा सकते हैं। जब औरङ्गज़ेब ने महाराज पर अपना रंग जमता न देखा, तब उसने गुप्त रूप से शाही सेना के नायक क़ासिमख़ाँ[1] को अपनी तरफ़ मिला लिया। इसके बाद वि० सं० १७१५ की वैशाख वदि ८ (ई० स० १६५८ की १५ अप्रैल) को महाराज और शाहज़ादों की सेनाओं के बीच युद्ध[2] ठन गया। जैसे ही दोनों सेनाओं का सामना हुआ, वैसे ही महाराज की सेना के हाडा मुकनसिंहजी (कोटा नरेश), राठोड़ रत्नसिंहजी (रतलाम नरेश), झाला दयालदास, गौड़ अर्जुन (अजमेर-प्रान्त के राजगढ़ का राजा) आदि वीरों ने आगे बढ़ औरङ्गज़ेब के तोपखाने पर आक्रमण कर दिया और उसको विध्वस्त कर ये लोग उसकी हरावल (आगे की) फ़ौज पर टूट पड़े[3]। महाराज जसवन्तसिंहजी भी, जो स्वयं सेना के मध्यभाग का संचालन कर रहे थे, आगे बढ़ गए और शाहज़ादों की सेना की क़तारों को नष्ट-भ्रष्ट करते हुए औरङ्गज़ेब से सम्मुख रण में लोहा लेने का प्रयत्न करने लगे। परन्तु इसी अवसर पर शाही सेना के नायक क़ासिमख़ाँ के विश्वास-घात से शाही तोपख़ाने का बारूद समाप्त हो गया और उसके रिश्तेदारों ने, जो उक्त तोपख़ाने के संचालक थे, एकाएक अपनी तोपों का मुख बन्द कर दिया। स्वयं क़ासिमख़ाँ भी ऐन मौक़े पर शाही सेना के साथ रणांगण से भाग खड़ा हुआ। इससे महाराजा चारों ओर शत्रुओं से घिर गये। ऐसे समय राठोड़ रत्नसिंहजी आदि ने महाराज के पास पहुँच प्रार्थना की कि अब आपका यहाँ ठहरना उचित नहीं है; क्योंकि विश्वास-घाती सेना-नायक क़ासिमख़ाँ ने सारा मामला चौपट कर दिया है। साथ ही बचे हुए मुट्ठीभर राजपूत योद्धा भी अधिक समय तक रणस्थल को सँभाले रखने में असमर्थ हैं। यद्यपि इस पर भी महाराज की इच्छा रणस्थल से हटने की न थी, तथापि रत्नसिंहजी

१. ख्यातों में लिखा है कि महाराज के साथ के २२ शाही अमीरों में से १५ मुसलमान अमीर औरंगज़ेब से मिल गए थे; केवल ७ हिन्दू-नरेश और सरदार महाराज के साथ रह गए थे।

२. विन्सैंटस्मिथ ने इस युद्ध का धर्मत में होना लिखा है। यह स्थान उज्जैन से १४ मील (दक्षिण की तरफ़ झुकता हुआ) नैर्ऋत कोण में था (ऑक्सफ़ोर्ड हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया, पृ० ४१०)। परन्तु ख्यातों में इसका चोरनराणा गाँव के पास होना पाया जाता है। साथ ही आलमगीरनामे में दोनों स्थानों का एक दूसरे के निकट होना सिद्ध होता है (पृ० ५६)। कहीं-कहीं युद्ध की तिथि ८ के बदले ६ भी लिखी है।

३. 'आलमगीरनामा'. पृ० ६६-६७।

ने सेना-संचालन का भार स्वयं लेकर अपने वंश के नायक महाराज को वहाँ से टल जाने पर बाध्य किया। अंत में हाडा मुकनसिंह, सीसोदिया सुजानसिंह, राठोड़ रत्नसिंह, गौड़ अर्जुन, झाला दयालदास और मोहनसिंह आदि वीरों के मारे जाने से खेत औरङ्गज़ेब के हाथ रहा। राजा रायसिंह सीसोदिया, राजा सुजानसिंह बुंदेला और अमरसिंह चंद्रावत आदि कुछ सरदार औरङ्गज़ेब के हमले से घबराकर अपनी-अपनी फ़ौजों के साथ अपने-अपने देशों की तरफ़ भाग निकले। रणस्थल का यह रंग देख महाराज को भी लाचार हो मारवाड़ की तरफ़ रवाना होना पड़ा। यद्यपि महाराज को

१. इस बात की पुष्टि ईशरीदास की लिखी 'फतूहाते आलमगीरी' से भी होती है। उसमें लिखा है:-

"जसवंतसिंह सम्मुख युद्ध में लड़कर प्राण देना चाहते थे। परन्तु महेशदास, आसकरण आदि उनके प्रधान उनके घोड़े की लगाम पकड़ कर उन्हें बलपूर्वक वहाँ से ले आए (देखो पृ० २१)।

मीर मुहम्मद मासूम की लिखी 'तारीखे शाहशुजाई' में 'महाराज का आहत होकर रणस्थल में गिरना और उनके योद्धाओं का उन्हें ज़बरदस्ती रणस्थल से हटा ले जाना' लिखा है (देखो पृ० ५०)।

आक़िलख़ाँ अपनी 'वाक़याते आलमगीरी' में लिखता है कि-राजा जसवंतसिंह के दो ज़ख्म लगने पर भी वह बहादुरी के साथ रणस्थल में खड़ा रहकर जहाँ तक हो सका, अपने वीरों को उत्साहित करता रहा (देखो पृ० ३१)।

मनूची ने लिखा है-राजा जसवंत तब तक बराबर वीरता से लड़ता रहा, जब तक उसके अधिकांश योद्धा वीरगति को न प्राप्त हो गए और पीछे बहुत ही थोड़े बच रहे (देखो भा० १, पृ० २५६)।

इन अवतरणों से ख़ाफ़ीख़ाँ (मोहम्मद हाशम) के महाराज पर युद्धस्थल से भाग जाने के दोषारोप का स्वयं ही खंडन हो जाता है (मुंतख़िबुललुबाब, भा० २, पृ० ४३)। इसी प्रकार आगे दिए बर्नियर के अवतरण से भी ख़ाफ़ीख़ाँ के इस लेख का खंडन होता है।

२. 'आलमगीरनामा', पृ० ७०-७१।

३. युद्ध का यह इतिहास आलमगीरनामा, सहरुल मुताखरीन, मआसरे आलमगीरी, मारवाड़ की ख्यात और बर्नियर के सफ़रनामे से लिया गया है। बर्नियर लिखता है कि यद्यपि वह स्वयं इस युद्ध में शरीक़ नहीं हुआ था, तथापि उसने जो कुछ हाल लिखा है, वह औरंगज़ेब की तरफ़ के तोपख़ाने में काम करने वाले फ्रांसीसियों से सुनकर ही लिखा है। वह लिखता है:-

"परन्तु शाहजहाँ ने राजा जयसिंह और दिलेरख़ाँ को शुजा के विरुद्ध भेजते हुए जैसी शिक्षा ("जहाँ तक बने लड़ाई न की जाय और शुजा को उसके प्रांत को लौट जाने के लिये बाध्य करने में कोई बात न उठा रक्खी जाय-" पृ० ३७) दी थी, वैसी ही सावधानी से काम करने को इनको भी कहा।

अपने थोड़े से वीरों के साथ जाते हुए देख शाहज़ादों के सैनिकों ने उनका पीछा करने का विचार किया, तथापि औरङ्गज़ेब ने, जो राठोड़ों की तलवारों का पानी देख चुका

"औरंगज़ेब को भय था कि कहीं बादशाही सेना नदी के पार उतर कर उसके थके-माँदे सैनिकों पर आक्रमण न कर दे। औरंगज़ेब का ऐसा सोचना उचित था; क्योंकि उस समय उसके सैनिक सचमुच लड़ने योग्य नहीं थे। यदि क़ासिमख़ाँ और राजा साहब इस अवसर पर आक्रमण कर देते, तो जीत अवश्य उन्हीं की होती। परन्तु क़ासिमख़ाँ और राजा साहब ऐसा किस तरह करते; क्योंकि उनको तो बादशाह की गुप्त आज्ञा के कारण केवल इतना ही करने का अधिकार था कि नदी के इस पार उपस्थित रहें और यदि औरंगज़ेब इस तरफ़ आना चाहे; तो उसे रोकें।

"राजा जसवंतसिंह ने बड़ी ही वीरता और युक्ति से शत्रुओं को पद-पद पर रोका। परन्तु क़ासिमख़ाँ ने इस अवसर पर न तो कुछ वीरता ही दिखलाई, न कुछ सामरिक युक्ति ही प्रकट की। उलटा उस पर यह संदेह किया जाता है कि इस अवसर पर उसने विश्वासघातकता की, और लड़ाई से पहले ही रात के समय अपनी ओर की सब गोली-बारूद रेत में छिपा दी। इसका यह परिणाम हुआ कि लड़ाई के समय कई बाढ़ दागने के बाद इधर की सेना के पास इस प्रकार का कोई सामान न रहा। अस्तु, कुछ भी हो, परन्तु युद्ध घमसान हुआ, और घाट के रोकने में सैनिकों ने बड़ी वीरता दिखाई। उधर औरंगज़ेब की यह दशा हुई कि बड़े-बड़े पत्थरों के कारण, जो नदी के पाट में थे, उसको बहुत कष्ट हुआ और किनारों की ऊंचाई के कारण ऊपर चढ़ना दुस्तर जान पड़ा। तथापि मुरादबख़्श के साहस ने इन सब कठिनाइयों को दूर कर दिया। वह अपनी सेना के साथ पार उतर आया, और पीछे से बाक़ी सैनिक भी बहुत शीघ्र आ पहुंचे। उस समय क़ासिमख़ाँ जसवंतसिंह को घोर संकट में छोड़कर बड़ी अप्रतिष्ठा के साथ लड़ाई के मैदान से भाग निकला। इससे यद्यपि वीर राजा जसवंतसिंह पर चारों ओर से शत्रु-सैन्य टूट पड़ा, तथापि उसके साथ के साहसी राजपूतों ने अपने प्राणों की बलि दे उसे बचालिया। लड़ाई के आरंभ में इन वीरों की संख्या ८,००० थी। परन्तु इस भयंकर युद्ध के बाद इनमें से केवल ६०० ही जीवित बचे थे। इस घटना के बाद अपना आगरे जाना उचित न जान राजा जसवंत इन बचे हुए स्वामिभक्त सैनिकों के साथ अपने देश को चले गए।"

बर्नियर की भारत-यात्रा (हिन्दी-अनुवाद), भा० १, पृ० ४०-४२।

कर्नल टाड ने महाराज पर यह दोष लगाया है कि यदि वह मुराद और औरंगज़ेब को आपस में मिलने न देकर पहले ही युद्ध छेड़ देते, तो औरंगज़ेब को सफलता न होती (टॉड का राजस्थान का इतिहास (क्रुक-संपादित), भा० २, पृ० ६८०)। परन्तु उस समय के तटस्थ लेखक बर्नियर के ऊपर उद्धृत किए लेख में यह और इसी प्रकार के अन्य दोष भी निवृत्त हो जाते हैं।

आगे बर्नियर ने महाराज जसवंतसिंहजी के असफल होकर लौटने पर इनकी सीसोदनी रानी का क़िले के द्वार बंद करवा देना और अंत में अपनी माता के आकर समझाने पर शांत होना लिखा है (बर्नियर की भारत-यात्रा, भा० १, पृ० ४३-४४)। वीरविनोद के लेखक ने भी इस कथा का उल्लेख कर इस रानी को बूँदी के राव हाडा शत्रुसाल की कन्या लिखा है। 'मुंतख़बुललुबाब'

था, उनको फिर से छेड़कर नाहक़ ख़तरा मोल लेना उचित न समझा[1]। इस प्रकार रणस्थल से लौटकर महाराज सोजत[2] पहुँचे और चार दिन वहाँ ठहरकर जोधपुर चले आए।

इसके बाद औरङ्गज़ेब भी वहाँ से आगे बढ़कर आगरे से ७½ कोस के फ़ासले पर समूगढ़[3] (फतहाबाद) के पास पहुँचा। यहाँ पर स्वयं शाहज़ादे दारा से उसका सामना हुआ। इस युद्ध में दारा की सेना के वाम-पार्श्व के सेनापति राठोड़ वीर रामसिंह ने अपने प्राणों की परवा छोड़ बड़ी वीरता दिखलाई। उसने शत्रु-सेना की पंक्तियों को चीरकर मुराद को घायल कर दिया और साथ ही जिस हौदे (अम्बारी) में मुराद बैठा था, उसका रस्सा काटकर निकट था कि वह उसे हाथी पर से गिरा देता, इतने ही में एक तीर उसके मर्म-स्थान पर आ लगा। इससे वह इस कार्य में सफल होने के पूर्व ही वीरगति को प्राप्त हो गया। इसके बाद दारा के दाहने भाग के सेनापति ख़लील-उल्लाहख़ाँ के विश्वासघात से दारा की विजय पराजय में परिणत हो गई। इससे दारा

में भी कुछ इसी प्रकार का उल्लेख मिलता है (देखो भा० २, पृ० ४३)। परन्तु हमारी समझ में बर्नियर ने यह कथा राजपूत-वीरांगनाओं की तारीफ़ में सुनी-सुनाई किंवदंतियों के आधार पर ही लिखी है, और 'मुंतख़बुललुबाब' के लेखक ने हिन्दू-नरेश की वीरता को भुलावे में डालने का उद्योग किया है। वास्तव में न तो स्वामिभक्त क़िलेदार सरदार ही रानी के कहने से अपने वीर स्वामी के विरुद्ध ऐसी कार्रवाई कर सकता था, और न इस प्रकार उदयपुर महाराना या बूँदी के राव की रानी ही अपनी पुत्री को समझाने के लिये जोधपुर आ सकती थी। अतः यह कथा विश्वास-योग्य नहीं है। रही महाराज के सम्मुख रण में लोहा लेने की बात। इस विषय में पहले ही फ़ारसी तवारीख़ों के अवतरण उद्धृत किए जा चुके हैं।

१. आलमगीरनामा, पृ० ७३ 'तवारीख़ मुहम्मदशाही' मे लिखा है कि जब युद्धस्थल से लौटते हुए महाराज अपने ३०० सवारों के साथ शाहज़ादों की बाईं और से बड़े ठाट के साथ निकले, तब सैनिकों के उकसाने पर भी औरङ्गज़ेब की इन्हें छेड़ने की हिम्मत न हुई। इसके बाद भी वह अक्सर कहा करता था कि-ख़ुदा की मनशा हिन्दुस्थान मे मुसलमानी मज़हब क़ायम रखने की थी, इसी से उस दिन वह (जसवंतसिंह) युद्ध से चला गया। यदि ऐसा न हुआ होता, तो मामला कठिन था।

कहीं-कहीं इस युद्ध में महाराज की तरफ़ के क़रीब ६,००० आदमियों का मारा जाना लिखा है।

२. ख्यातों में इनका वि० सं० १७१५ की वैशाख सुदि १ को सोजत पहुँचना लिखा है।

३. ऑक्सफ़ोर्ड हिस्ट्री ऑफ इंडिया, पृ० ४१०।

४. बर्नियर की भारत-यात्रा, भा० १, पृ० ५५-५६।

५. बर्नियर की भारत-यात्रा, भा० १, पृ० ५५-५७।

भागकर आगरे पहुँचा और वहाँ से दिल्ली की तरफ़ चला गया। औरङ्गज़ेब ने आगरे पहुँच अपने पुत्र सुलतान मुहम्मद द्वारा वहाँ के क़िले पर अधिकार कर लिया और स्वयं बादशाह शाहजहाँ को कै़द कर, दारा के पीछे चला। मार्ग में, मथुरा पहुँच उसने मुराद को भी धोखे से शराब पिलाकर कै़द कर लिया। इसके बाद वह दिल्ली से भागकर लाहौर की तरफ़ जाते हुए दारा के पीछे चला और मार्ग में आग्रज्ज़ाबाद में उसने अपने तख़्त पर बैठने की रस्म पूरी की[1]।

इसके बाद उसने वि० सं० १७१५ की भादों वदि ११ (ई० स० १६५८ की १४ अगस्त) को, आंबेर-नरेश जयसिंहजी द्वारा महाराज जसवन्तसिंहजी को समझा-बुझाकर अपने पास बुलवाया[2]। यह भी समय की गति देख उससे मिलने को पंजाब पहुँचे। इस पर आलमगीर ने ख़ासा ख़िलअत, ज़री की सिली हुई झूल और चाँदी के साज़ का एक हाथी और एक हथिनी तथा एक बढ़िया जड़ाऊ तलवार देकर इनका सत्कार किया[3]। इसी के कुछ दिन बाद सतलज के तट पर पहुँचने पर उस (आलमगीर) ने महाराज को ख़ासा ख़िलअत, जड़ाऊ जमधर, मोतियों का एक गुच्छा और एक परगना, जिसकी आमदनी एक करोड़ दाम (क़रीब २½ लाख रुपये) की थी, देकर दिल्ली को रवाना किया, और साथ ही अपने लौटने तक इनसे वहाँ की देखभाल करते रहने का आग्रह किया[4]। इसी के अनुसार यह दिल्ली चले आए[5]।

आलमगीरनामे में लिखा है कि इस युद्ध में महाराज जसवंतसिंह के चचेरे भाई राठोड़ रूपसिंह ने भी बड़ी वीरता दिखाई थी। वह वीर आगे बढ़ आलमगीर के हाथी के पास जा पहुँचा, और वहाँ पर घोड़े से उतर ऐसी वीरता से लड़ा कि स्वयं औरंगज़ेब उसकी बहादुरी को देख दंग हो गया। उसकी इस वीरता को देख उसने उसे जीवित पकड़ने की आज्ञा दी थी। परन्तु उसके भीषण कार्यों को देखकर अंत में विपक्ष के सैनिकों से न रहा गया और उन्होंने उसे मार डाला (देखो पृ० १०२-१०३)।

१. उस दिन वि० सं० १७१५ की सावन सुदि १ (ई० सन् १६५८ की २१ जुलाई) थी।
मआसिरे आलमगीरी, पृ० ८।

२. ख्यातों में लिखा है कि जिस समय औरंगज़ेब ने महाराज को सेना-सहित बुलवाया था, उस समय ५,००,००० रुपये तो सांभर के शाही ख़ज़ाने से उनके पास भिजवाए थे और ५०,००० की हुँडियाँ भेजी थीं। इस पर महाराज मथुरा में पहुँच उससे मिले। परन्तु फ़ारसी तवारीख़ों में इसका उल्लेख नहीं है।

३. आलमगीरनामा, पृ० १८३।

४. आलमगीरनामा, पृ० १८६।

५. ख्यातों में इनका वि० सं० १७१५ की आसोज सुदि १ को दिल्ली पहुँचना लिखा है।

औरङ्गज़ेब को इस प्रकार अपना पीछा करते हुए देख दारा पंजाब से मुलतान की तरफ़ होता हुआ ठट्ठे (सिन्ध) की तरफ़ चला गया[1]। इस पर वि० सं० १७१५ के मँगसिर (ई० स० १६५८ की नवम्बर) में जब आलमगीर दिल्ली की तरफ़ लौटा, तब महाराजा जसवन्तसिंहजी भी मार्ग में पहुँचकर उससे मिले। उस समय फिर उसने ख़ासा खि़लअत और एक नादरी (सदरी) देकर इनका सम्मान किया[2], तथा मँगसिर सुदि ६ (२३ नवम्बर) को (नौरोज़ के उत्सव पर) इन्हें एक जड़ाऊ तुर्रा दिया[3]।

इसके बाद जब बादशाह को शुजा की चढ़ाई की सूचना मिली, तब उसने अपने पुत्र मुहम्मद सुलतान को उसके मुक़ाबले को रवाना किया और शाह शुजा के इलाहाबाद के पास (कोड़े से ४ कोस पर) पहुँचने तक स्वयं भी वहाँ जा पहुँचा। वि० सं० १७१५ की माघ वदि ६ (ई० स० १६५९ की ४ जनवरी) को खजवे के पास दोनों सेनाओं के बीच युद्ध की तैयारी हुई। उस समय महाराज औरङ्गज़ेब की सेना के दक्षिण-पार्श्व के सेनापति थे। ख्यातों से ज्ञात होता है कि इसी बीच शाह शुजा ने पत्र लिखकर महाराज से प्रार्थना की कि आप जैसे वीर और मनस्वी राठोड़ के विद्यमान होते हुए भी औरंगज़ेब ने अपने वृद्ध पिता (बादशाह शाहजहाँ) को क़ैद कर लिया है और अब भाइयों को मार डालने की चिंता में है। इसलिये आपको मेरी सहायता कर वृद्ध बादशाह का संकट-मोचन करना चाहिए। इस पर महाराज

१. इसके बाद दाराशिकोह ठट्ठे के क़िले का प्रबंध कर अहमदाबाद चला गया। बर्नियर लिखता है-"उस समय वहाँ का सूबेदार औरंगज़ेब का श्वसुर शाह नवाज़ख़ाँ था। उसने युद्ध की यथेष्ट सामग्री रहते हुए भी नगर के द्वार खोल दिए, और दारा का बड़ा आदर-सत्कार किया। यद्यपि लोगों ने दारा से कह दिया था कि यह पुरुष कपटी है, तथापि उसके सरल व्यवहार से मुग्ध होकर दारा ने उस पर विश्वास कर लिया, और राजा जसवंतसिंह आदि ने शीघ्र सेना लेकर उसकी सहायता में पहुँचने के बारे में जो पत्र लिखे थे, उन्हें भी उसको दिखला दिया। इसके बाद जब औरंगज़ेब को दारा के अहमदाबाद पहुँचने की सूचना मिली, तब पहले तो उसने उस पर चढ़ाई करने का विचार किया। परन्तु अंत में यह सोचकर कि अहमदाबाद की तरफ़ जाने में प्रबल पराक्रमी राजा जयसिंह और जसवंतसिंह के राज्यों में से होकर जाना पड़ेगा उसने वह विचार छोड़ दिया और इसीसे वह शाहज़ादे शुजा को रोकने के लिये इलाहाबाद की तरफ़ चल पड़ा।

बर्नियर की भारत-यात्रा, भा० १, पृ० ७६-८०।

२. आलमगीरनामा, पृ० २२०।

३. आलमगीरनामा, पृ० २२६।

न उसे कहला दिया कि आज रात के पिछले पहर मैं शाहज़ादे मुहम्मद की सेना पर पीछे से आक्रमण कर दूँगा। तुम भी उसी समय उस पर सामने से टूट पड़ना। इसप्रकार आलमगीर की सेना का बल आसानी से नष्ट हो जायगा। इसी प्रतिज्ञा के अनुसार महाराज ने उसी रात को राठोड़ महेशदास, रामसिंह और हरराम तथा चौहान बलदेव आदि को साथ लेकर मुहम्मद सुलतान की सेना के पिछले भाग पर आक्रमण कर दिया। इससे घबराकर वह इधर-उधर भागने लगी। यह देख महाराज ने आगे बढ़ शाही सेना का ख़ज़ाना और सामान लूट लिया। परन्तु शुजा के निश्चित समय पर आक्रमण न कर सकने के कारण अंत में यह बादशाही सेना की पहुँच से कुछ दूर हटकर ठहर गए[1], तथा प्रातःकाल होते-होते मारवाड़ की तरफ़ रवाना हो गए।

यद्यपि इसी बीच शुजा ने भी आक्रमण कर घबराई हुई आलमगीरी सेना में और भी हलचल मचा दी और निकट था कि वह विजय प्राप्त कर लेता, परन्तु ऐसे ही समय अलीवर्दीख़ाँ के कहने से शुजा हाथी से उतरकर घोड़े पर सवार हो गया। इससे अपने मालिक को यथास्थान न देख उसकी सेना ने उसे मारा गया समझ लिया और वह मैदान से भाग खड़ी हुई। इस पर शुजा को भी प्राण लेकर भागना पड़ा[2]।

बर्नियर लिखता है कि जिस समय महाराज जसवंतसिंहजी मारवाड़ की तरफ़ जाते हुए[3] आगरे पहुँचे, उस समय औरङ्गज़ेब का मामू शाइस्ताख़ाँ, जो उस समय आगरे की देखभाल के लिये नियत था, इतना घबरा गया कि तत्काल विष पान कर आत्म-हत्या कर लेने के लिये उद्यत हो गया। यह देख बादशाही अंतःपुर की बेग़मों ने उसके हाथ से विषपात्र छीनकर उसके प्राणों की रक्षा की।

१. आलमगीरनामा, पृ० २५४ से २५६। उसमे यह भी लिखा है कि जसवंतसिंह के इस हमले से आधी के क़रीब बादशाही फ़ौज बिखर गई थी। मआसिरे आलमगीरी से भी इसकी पुष्टि होती है (देखो पृ० १३-१४)।

२. बर्नियर की भारत-यात्रा, भा० १, पृ० ८१-८३।

३. ख्यातों मे लिखा है कि यह मार्ग के नगरों को लूटते हुए आगरे के पास से होकर गए थे। मार्ग मे इन्हें जयपुर-नरेश जयसिंहजी ने औरंगज़ेब का भय दिखलाकर समझाने की चेष्टा की थी। परन्तु इन्होंने उसकी कुछ भी परवा नहीं की।

वही आगे लिखता है कि—उस सयय यदि जसवंतसिंहजी चाहते, तो शाहजहाँ को कैद से छुड़वा सकते थे। परन्तु समय की गति को देख[1] उन्होंने वहाँ अधिक ठहरना उचित न समझा। इसलिये कुछ ही देर बाद वह जोधपुर की तरफ़ रवाना हो गए[2]।

शुजा से निपटकर औरंगज़ेब फ़तहपुर चला आया, और उसने अपने साथ की महाराज की शत्रुता का बदला लेने के लिये वि० सं० १७१६ की माघ सुदी ४ (ई० सन् १६५९ की १६ जनवरी) को अमीनख़ाँ मीरबख़्शी को (९,००० सवारों[3] की) एक सेना देकर जोधपुर पर चढ़ाई करने की आज्ञा दी। साथ ही स्वर्गवासी राव अमरसिंहजी के पुत्र राव रायसिंह को राजा का ख़िताब, मारवाड़ का राज्य, चार-हज़ारी ज़ात और चार हज़ार सवारों का मनसब, तथा १,००,००० रुपये और ख़िलअत आदि देकर उसके साथ कर दिया[4]। इसके बाद वह स्वयं भी अपना आगरे की तरफ़ जाना स्थगित कर अजमेर की तरफ़ चल पड़ा[5]। इसकी सूचना पाकर महाराज ने १०,००० योद्धाओं[6] के साथ अपने सेनापति राठोड़ नाहरख़ाँ[7] को शाही सेना के मुक़ाबले के लिये आगे रवाना किया। इस पर वह मेड़ते पहुँच शाही सेना की प्रतीक्षा करने लगा। कुछ दिन बाद महाराज ने भी दलबल-सहित जोधपुर से आगे बढ़ बीलाड़ा गाँव में अपना शिविर क़ायम किया।

१. उस समय के इतिहास को देखने से ज्ञात होता है कि उस अवसर पर बड़े-बड़े मुसलमान अमीर औरंगज़ेब से मिल गए थे और शाहजहाँ वृद्धावस्था, बीमारी और शाहज़ादों की उद्दंडता से किंकर्तव्य विमूढ़ हो रहा था। इसलिये उसको फिर से गद्दी पर बिठाकर झगड़े को शांत करना असंभव था।

२. बर्नियर की भारत-यात्रा, भा० १, पृ० ८३-८४।

ख्यातों में इनका वि० सं० १७१५ की माघ सुदि १० को जोधपुर पहुँचना लिखा है।

३. मआसिरे आलमगीरी, पृ० १७।

४. आलमगीरनामा पृ० २८८।

५. आलमगीरनामा, पृ० २९२।

६. किसी-किसी ख्यात में इस अवसर पर ५०,००० योद्धाओं का एकत्रित किया जाना लिखा है।

७. यह आसोप ठाकुर कूंपावत राजसिंह का पुत्र था।

इसी बीच गुजरात से दाराशिकोह का भेजा हुआ एक पत्र महाराज को मिला[1]। उसमें उसने अपनी सहायता के लिये इनसे प्रार्थना की थी। महाराज ने भी इस बात को अंगीकार कर लिया। इसकी सूचना पाते ही औरंगज़ेब घबराया और उसने इधर तो मोहम्मद अमीनख़ाँ को वापस बुलवा लिया और उधर आंबेर-नरेश जयसिंहजी के द्वारा महाराज के पास फ़रमान[2] भिजवाकर इन्हें शांत करने की चेष्टा करने लगा। जब जयसिंहजी के बीच में पड़ने से महाराज को बादशाह की तरफ़ का विश्वास हो गया, तब यह भी बीलाड़े से जोधपुर वापस चले आए और इन्होंने दाराशिकोह को लिख दिया कि जब तक आप किसी अन्य बड़े नरेश को भी अपना सहायक न बना लें, तब तक अकेले मेरा आपकी सहायता में खड़ा होना निरर्थक ही है। इस समय तक दाराशिकोह भी २२ हज़ार सेना के साथ मेड़ते के पास पहुँच चुका था। इसलिये उसने महाराज के इस पत्र को पाकर भी इन्हें अपनी तरफ़ करने का बहुत कुछ उद्योग किया। परन्तु महाराज ने दबे हुए झगड़े को फिर से खड़ा करना उचित न समझा। अंत में दाराशिकोह निराश होकर अजमेर की तरफ़ चला गया[3]। इसके बाद जब औरंगज़ेब अजमेर के निकट पहुँचा, तब फिर दोनों भाइयों की सेनाओं के बीच युद्ध हुआ। परन्तु इस बार भी दारा को हारकर भागना पड़ा। यह घटना वि० सं० १७१६ की चैत्र सुदि २ (ई० सन् १६५९ की १४ मार्च) को हुई थी[4]।

इस युद्ध में विजय प्राप्त कर आलमगीर ने महाराज के लिये गुजरात की सूबेदारी का फ़रमान[5] और ख़ासा ख़िलअत भेजकर उनका पहले का ७,००० ज़ात और ७,००० सवारों का मनसब (जिसमें ५,००० सवार दुअस्पा-सेअस्पा थे) अंगीकार कर लिया। साथ ही इन्हें गुजरात जाकर वहाँ का प्रबंध करने और महाराजकुमार

१. आलमगीरनामे मे महाराज जसवंत का अपनी तरफ़ से दारा को पत्र लिखकर सहायता देने का वादा करना और बुलवाना लिखा है (देखो पृ० ३००)।

२. ख्यातों में इस फ़रमान का वि० सं० १७१५ की चैत्र वदि ११ को महाराज के पास पहुँचना लिखा है।

३. आलमगीरनामा, पृ० ३०६-३११।

४. आलमगीरनामा, पृ० ३१६-३२०।

५. ख्यातों में इस फ़रमान का वि० सं० १७१६ की चैत्र सुदि ६ को जोधपुर पहुँचना लिखा है।

पृथ्वीसिंहजी को अपने पास भेजने का लिखा। इसी के अनुसार महाराज सिरोही[2] की तरफ़ होते हुए अहमदाबाद चले गए[3], और वहाँ पर बरसात की मौसम में इन्होंने गुजरात के परगनों का दौरा कर कोली दूदा आदि उपद्रवियों को दबा दिया। इसकी सूचना पाकर बादशाह ने भी महाराज के लिये ख़िलअत भेजकर अपनी प्रसन्नता प्रकट[4] की। इसी प्रकार ईद के त्यौहार पर भी इनके लिये ख़िलअत भेजा गया[5]।

१. आलमगीरनामा, पृ० ३३२।

२. ख्यातों से ज्ञात होता है कि जिस समय महाराज सिरोही में थे, उस समय इन्हें समाचार मिला कि भाटी राजपूतों ने जयसलमेर के रावल सबलसिंहजी की मदद पाकर पौकरण को घेर लिया है। यह सुनते ही इन्होंने राठोड़ सबलसिंह और मुहणोत नैणसी आदि को वहां जाकर शीघ्र ही भाटियों को भगा देने की आज्ञा दी। इसी आज्ञा के अनुसार ये लोग मारवाड़ में चले आए और महाराज के कुछ सरदारों को एकत्रित कर भाटियों के मुक़ाबले को चले। उस समय तक पौकरण के क़िले पर भाटियों का अधिकार हो चुका था। परन्तु राठोड़ों की सेना का आगमन सुनते ही वे स्वयं क़िला छोड़कर पीछे हट गए। यद्यपि रावल सबलसिंहजी स्वयं भी उनकी सहायता को पहुँच गए थे, तथापि युद्ध में भाटी, राठोड़ वीरों का मुकाबला करने का साहस न कर सके। इसके बाद महाराज की सेना ने जयसलमेर-राज्य में घुस आसणी-कोट तक लूट-मार मचा दी। अंत में इस सेना के लौट आने पर भाटियों ने एक बार फिर पौकरण पर अधिकार करने का उद्योग किया। इसीसे पौकरण-स्थित राठोड़-सेना के और भाटियों के बीच मांडी के पास फिर युद्ध हुआ। यद्यपि भाटियों ने उक्त ग्राम में आग लगाकर बहुतसे घर जला दिए, तथापि उन्हें हारकर पीछे हटना पड़ा। इतने में मुहणोत नैणसी भी सेना लेकर वहाँ जा पहुँचा। इससे भाटी खेत छोड़कर भाग गए। यह देख राठोड़ सैनिकों ने भी आगे बढ़ जयसलमेर-राज्य में फिर उपद्रव करना और भाटियों से मांडी-गाँव के जलाने का पूरा-पूरा बदला लेना प्रारंभ किया। इसी बीच बीकानेर-नरेश करणसिंहजी जयसलमेर की राजकुमारी से विवाह कर लौटते हुए मार्ग में रुणेचे पहुँचे और उन्होंने बीच में पड़ राठोड़ों और भाटियों के बीच मेल करवा दिया।

३. ख्यातों में वैशाख सुदि ४ को इनका अहमदाबाद पहुँचना लिखा है।

४. आलमगीरनामा, पृ० ३४६।

५. आलमगीरनामा, पृ० ४०४-४०५।

इस पर वि० सं० १७१६ की श्रावण सुदि ६ (ई० सन् १६५९ की १५ जुलाई) को महाराज ने भी कुछ ज़वाहिरात और कुछ जड़ाऊ चीज़ें बादशाह के लिये भेजी थीं।

आलमगीरनामा, पृ० ४२०।

वि० सं० १७१६ की मँगसिर सुदि ७ (ई० सन् १६५६ की १० नवम्बर) को इन्हें दुबारा "महाराजा" का ख़िताब मिला[1]।

पहले लिखा जा चुका है कि औरंगज़ेब ने महाराज को गुजरात की सूबेदारी पर भेजते समय इनके महाराजकुमार को अपने पास बुलवाया था। उसी के अनुसार पृथ्वीसिंहजी ने सोरों के मुकाम पर पहुँचकर बादशाह को दो हाथी भेट किए। बादशाह ने भी माघ सुदि १४ (ई० सन् १६६० की १६ जनवरी) को ख़िलअत, हीरों की धुगधुगी और मोतियों का गुच्छा देकर उनका सत्कार किया[2]। इसके कुछ दिन बाद उन्होंने फिर दो हाथी बादशाह को भेट किए। बादशाह ने भी उन्हें फिर एक हीरे की धुगधुगी देकर अपनी प्रसन्नता प्रकट[3] की।

इसके बाद बादशाह ने अपने तीसरे राज्यवर्ष के प्रारंभ की ख़ुशी में (वि० सं० १७१७ की प्रथम ज्येष्ठ सुदि १०=ई० सन् १६६० की ९ मई को) महाराज के लिये एक ख़िलअत भेजा[4]। इस पर महाराज ने भी वि० सं० १७१७ की सावन वदि ४ (ई० सन् १६६० की १५ जुलाई) को कुछ जवाहिरात, ज़ेवर और कच्छी

१. आलमगीरनामे में ५ वीं रबीउल अव्वल लिखा है (देखो पृ० ४४६)। परंतु मआसिरे आलमगीरी में ५ वीं के बदले ८वीं रबीउल अव्वल लिखा है। उसके अनुसार उसदिन मँगसिर सुदि १० (१३ नवम्बर) आती है (देखो पृ० २८)।

२. बादशाह औरंगजेब के समय का महाराज के नाम का एक फ़रमान मिला है। उससे प्रकट होता है कि उस समय महाराज जसवंतसिंहजी गुजरात के प्रबन्ध करने में लगे थे और राजकुमार पृथ्वीसिंहजी बादशाह के पास थे।

यह फ़रमान औरंगजेब के प्रथम राज्यवर्ष की २५ जमादिउल अव्वल का है। यद्यपि औरंगज़ेब वि० सं० १७१५ की श्रावण सुदि १ (ई० स० १६५८ की २१ जुलाई) को बादशाह बन गया था, तथापि गद्दीनशीनी का उत्सव वि० सं० १७१६ की आषाढ वदि ११ (ई० स० १६५६ की ५ जून) को मनाया गया था। यदि उसी दिन से उसके राज्य वर्ष का प्रारम्भ माना जाय तो उपर्युक्त फ़रमान की तिथि वि० सं० १७१६ की फागुन वदि ११ (ई० स० १६६० की २८ जनवरी) आयगी।

इतिहास से भी यही ठीक प्रतीत होती है। उसके बादशाह बनने की तिथि से राज्य वर्ष का प्रारम्भ मानने से इस फ़रमान की तिथि वि० सं० १७१५ की फागुन वदि १२ (ई० स० १६५६ की ८ फरवरी) होगी। परन्तु उस समय तक महाराजा जसवंतसिंहजी का गुजरात जाना सिद्ध नहीं होता।

३. आलमगीरनामा, पृ० ४५६ और ४६२।

४. आलमगीरनामा, पृ० ४८५।

घोड़े बादशाह की भेट के लिये भेजे[1]। इसके बाद मँगसिर वदि २ (८ नवम्बर) को बादशाह ने फिर इनके लिये ख़िलअत और ख़ासी तलवार उपहार में भेज कर इनका सत्कार किया[2] और फिर महाराजकुमार पृथ्वीसिंहजी को ख़िलअत देकर जोधपुर जाने के लिये बिदा किया[3]।

मँगसिर सुदि १ (२३ नवम्बर) को महाराज के लिये फिर एक ख़िलअत भेजा गया[4]। इसी अवसर पर महाराज के भेजे हुए कुछ जड़ाऊ ज़ेवर और जवाहिरात आदि बादशाह के भेट किए गए[5]।

इन्हीं दिनों शिवाजी ने औरंगाबाद के आसपास बड़ा उपद्रव खड़ा कर रक्खा था। यद्यपि शाइस्ताख़ाँ ने उनको दबाने की बहुत कुछ कोशिश की, तथापि उसे इसमें सफलता नहीं हुई। इस पर पौष सुदि ६ (२७ दिसम्बर) को बादशाह ने महाराज को लिखा कि वह अपनी सेना लेकर गुजरात से दक्षिण में पहुँचें और शिवाजी के विरुद्ध अमीरुल उमरा (शाइस्ताख़ाँ) की सहायता करें[6]। इसी के अनुसार महाराज जूनागढ़ के फ़ौजदार कुतुबख़ाँ को अपना प्रतिनिधि (नायब) नियत कर गुजरात से दक्षिण की तरफ़ रवाना हो गए[7]।

१. आलमगीरनामा, पृ० ५६८।
२. आलमगीरनामा, पृ० ५६२।
३. आलमगीरनामा, पृ० ५६५।
४. आलमगीरनामा, पृ० ६३४।
५. आलमगीरनामा, पृ० ६३६।
६. मुन्तख़िबुल्लुबाब, भा० २, पृ० १२६ और आलमगीरनामा, पृ० ६४७।
७. महाराज के दक्षिण मे जाकर शिवाजी के साथ युद्धों मे प्रवृत्त रहने के कारण वि० सं० १७१६ की भादों बदी ३ (ई० स० १६६२ की २३ जुलाई) को गुजरात की सूबेदारी महाबतख़ां को सौंप दी गई (मआसिरे आलमगीरी, पृ० ४१)। ख्यातों में लिखा है कि इसकी एवज में महाराज को हाँसी-हिसार का सूबा मिला था। परंतु फ़ारसी तवारीख़ों में इसका उल्लेख नहीं है।

बँबे गज़ेटियर में इनका ई० स० १६५६ (वि० सं० १७१६) से १६६२ (वि० सं० १५१६) तक गुजरात के सूबे पर रहना और इसी वर्ष कुतुबुद्दीन को वहां पर अपना प्रतिनिधि नियत कर मुअज़्ज़म के पास दक्षिण में जाना, तथा बाद में महावतख़ाँ को गुजरात का सूबा मिलना लिखा है (देखो भा० १, खंड १, पृ० २८३)।

ख्यातों में इनका वि० सं० १७१७ की मँगसिर सुदि ५ तक गुजरात में रहना, माघ वदि ६ को औरंगाबाद पहुँचना और चैत्र वदि ३ को पूने को रवाना होना लिखा है।

परन्तु वहाँ पहुँचने पर इनके और ख़ान के बीच आपस में मनोमालिन्य हो गया और उस (ख़ान) के बर्ताव से वह दिन-दिन और भी बढ़ता गया। फिर भी महाराज ने वीरता से मरहठों का सामना कर उनके अनेक क़िले आदि छीन लिए।

वि० सं० १७१६ की ज्येष्ठ सुदि ३ (ई० सन् १६६२ की १० मई) को बादशाह ने महाराज और अमीरुल उमरा के लिये, जो उस समय दक्षिण में थे, ख़िलअत भेजे[1]। इसी प्रकार वि० सं० १७१६ की पौष सुदि २ (ई० सन् १६६२ की २ दिसम्बर) को भी इन दोनों के लिये ख़िलअत भेज कर इनका सत्कार किया गया[2]। तथा वि० सं० १७२० की वैशाख सुदि २ (ई० सन् १६६३ की २६ अप्रैल) को फिर इनके लिये ख़िलअत भेजा गया[3]।

वि० सं० १७२० की चैत्र सुदि (ई० सन् १६६३ की अप्रैल) में शिवाजी ने एक रोज़[4] मौक़ा पाकर जंगल के रास्ते से अमीरुलउमरा के स्थान पर नैश-आक्रमण किया[5]। इसमें उसका पुत्र अबुलफ़तह मारा गया और स्वयं अमीरुलउमरा की तीन उँगलियाँ कट गईं। यह समाचार सुन बादशाह बहुत ही नाराज़ हुआ और उसने अमीरुलउमरा के स्थान पर शाहज़ादे मुअज़्ज़म को दक्षिण की सूबेदारी पर भेज दिया। साथ ही महाराज के लिये ख़ासा ख़िलअत और सुनहरे साज़ के दो घोड़े भेजे गये[6]। इसके बाद मँगसिर सुदि १२ (१ दिसम्बर) को बादशाह ने इनके लिये सरदी में पहनने का एक गर्म ख़िलअत भेजा[7] और कुछ मास बाद सातवें राज्यवर्ष के प्रारंभ (वि० सं० १७२१ की चैत्र सुदि=ई० सन् १६६४ के मार्च) में हमेशा के रिवाज

१. आलमगीरनामा, पृ० ७४१।

२. आलमगीरनामा, पृ० ७६१।

३. आलमगीरनामा, पृ० ८१६।

४. जदुनाथ सरकार ने अपनी 'हिस्ट्री ऑफ़ औरङ्गज़ेब' में इस घटना की तिथि ई० स० १६६३ की ५ अप्रैल (वि० सं० १७२० की द्वितीय चैत्र सुदि ८) लिखी है (देखो भा० ४, पृ० ५१)।

५. उस समय अमीरुलउमरा, पूना में शिवाजी के पूर्व निवास-स्थान में ही ठहरा हुआ था। ख्यातों में भी इस घटना का समय वि० सं० १७२० की चैत्र सुदि ८ ही लिखा है।

६. आलमगीरनामा, पृ० ८१६। आलमगीरनामे में उस दिन वि० सं० १७२० की वैशाख सुदि १० (ई० स० १६६३ की ६ मई) होना लिखा है (देखो पृ० ८१६)।

७. आलमगीरनामा, पृ० ८४८।

के माफ़िक फिर इनके लिये ख़िलअ़त भेजा गया[1]। इसके बाद जब महाराज के साथ की सेना का—नामदारख़ाँ नामक—एक अफ़सर भादों वदि १० (६ अगस्त) को बादशाह के पास हाज़िर हुआ, तब उसने फिर शाहज़ादे मुहम्मद मुअ़ज्ज़म और महाराज के लिये बरसाती ख़िलअ़तें[2] भेजे। इस प्रकार इधर बादशाह समय-समय पर इनका सत्कार कर इनका प्रेम-संपादन करने की कोशिश करता था और उधर महाराज धीरे-धीरे शिवाजी के अधिकृत क़िलों पर अधिकार कर उनके उपद्रव को नष्ट करने की चेष्टा कर रहे थे। कुंडा के दुर्ग को विजय करने में भी इन्होंने अद्भुत वीरता दिखाई थी। परन्तु बादशाह की इच्छा थी कि जहाँ तक हो जल्दी ही शिवाजी का सारा बल नष्ट कर दिया जाय। यह बात महाराज को पसंद न थी; क्योंकि यह शिवाजी जैसे पराक्रमी हिन्दू-राजा का बल नष्ट कर औरंगज़ेब जैसे धर्मान्ध यवन-नरेश को और भी उत्पात करने का मौक़ा देना अनुचित समझते थे। इसी से उनकी भीतरी सहानुभूति शिवाजी के साथ रहा करती थी। इसलिये कार्तिक वदि ६ (३० सितम्बर) के क़रीब बादशाह ने इनके स्थान पर आंबेर-नरेश जयसिंहजी को नियत कर इन्हें अपने पास बुलवा लिया[3]। अतः चैत्र वदि १२ (ई० सन् १६६५ की ३ मार्च) को इन्होंने महाराज जयसिंहजी को वहाँ की सेना के संचालन का भार सौंप दिया[4] और वि० सं० १७२२ की जेष्ठ सुदि ६ (१३ मई) को यह दक्षिण से दिल्ली चले आए। इस पर बादशाह ने इन्हें ख़िलअ़त आदि देकर इनका सम्मान किया[5]।

---

१. आलमगीरनामा, पृ० ८५५।
२. आलमगीरनामा, पृ० ८६५।
३. आलमगीरनामा, पृ० ८६७-८६८।
४. आलमगीरनामा, पृ० ८८८। ख्यातों में इनका आषाढ वदि १० (२६ मई) को दिल्ली पहुँचना लिखा है।
५. इस अवसर पर महाराज ने भी १,००० अशर्फ़ियाँ और १,००० रुपये बादशाह को भेट किए थे।

आलमगीरनामा, पृ० ८८४।

आलमगीरनामे में लिखा है कि बादशाह ने अपने ४६वें वर्ष के प्रारंभ के 'जश्नेवज़ने क़मरी' के उत्सव पर (१७ शव्वाल, मंगलवार को) महाराज को ख़िलअ़त, पहुँची और जड़ाऊ धुगधुगी उपहार में दी (देखो पृ० ८८४)। उस रोज़ शायद वि० सं० १७२२ की जेष्ठ वदि ४ (ई० सन् १६६५ की २३ अप्रैल) आती है।

इसके बाद प्रथम श्रावण सुदि ४ (६ जुलाई) को महाराजकुमार पृथ्वीसिंहजी पिता से मिलने के लिये दिल्ली आए। बादशाह ने इन्हें अपने पास बुलवाकर एक पहुँची और जड़ाऊ सरपेच उपहार में दिया।[1] इसके बाद आश्विन सुदि १० (८ अक्टोबर) को दशहरे के उत्सव पर बादशाह ने फिर महाराज को ख़िलअत और महाराजकुमार को जड़ाऊ कमरबन्द दिया।[2] इसी प्रकार कार्त्तिक वदि १२ (२५ अक्टोबर) को बादशाह की तरफ़ से महाराज को ख़िलअत के साथ सुनहरी साज़ के दो घोड़े और महाराजकुमार को जड़ाऊ जमधर, मोतियों के गुच्छे और दो हज़ारी ज़ात और हज़ार सवारों का मनसब दिया[3] गया। इसके बाद मँगसिर सुदि १२ (१ दिसम्बर) को महाराज को सरदी की मौसम का गरम ख़िलअत और वि० सं० १७२३ की चैत्र सुदि २ (ई० स० १६६६ की २७ मार्च) को फिर एक ख़िलअत उपहार में मिला।[4] तथा महाराजकुमार पृथ्वीसिंहजी को जड़ाऊ तुर्रा और सोने के साज़ का घोड़ा दिया गया। इसी प्रकार ज्येष्ठ वदि ४ (१२ मई) को महाराज को और भी एक ख़िलअत दिया गया।[5]

इसके क़रीब ३ मास बाद बादशाह को सूचना मिली कि ईरान का बादशाह अब्बास सानी[6] ख़ुरासान की तरफ़ से हिंदुस्थान पर चढ़ाई करने का विचार कर रहा है। इस पर उसने आसोज वदि १ (४ सितम्बर) को शाहज़ादे मुअज़्ज़म के साथ ही महाराज जसवन्तसिंहजी को भी २०,००० सवारों के साथ उसको रोकने के लिये आगरे[7] से काबुल की तरफ़ रवाना कर दिया। इस अवसर पर फिर उसने महाराज को

---

१. आलमगीरनामा, पृ० ९०८।

२. आलमगीरनामा, पृ० ९१४।

३. आलमगीरनामे में लिखा है कि पहले के मनसब में वृद्धि करके यह मनसब दिया गया था (देखो पृ० ९१६-९१७)।

ख्यातों में लिखा है कि इसके साथ इनको फूलिया का परगना जागीर मे मिला था। परन्तु मेड़तिया राठोड़ मथुरादास के पुत्र आसकरण की बग़ावत के कारण उसकी एवज़ में मालूंबा का परगना दिया गया।

४. आलमगीरनामा, पृ० ९२३ और ९५९।

५. आलमगीरनामा, पृ० ९६१ और ९६३।

६. मआसिरुलउमरा, भा० ३, पृ० ६०३।

७. शाहजहाँ के मरने पर औरंगज़ेब वि० सं० १७२२ की माघ सुदि १० (ई० सन् १६६६ की ४ फ़रवरी) को दिल्ली से आगरे को गया था (आलमगीरनामा, पृ० ९३७)। उस समय महाराज भी उसके साथ थे।

ख़ासा ख़िलअत, तलवार, जड़ाऊ जमधर, मोतियों की लड़ी, अपने ख़ासे तबेले के सोने के साज़वाले दो घोड़े, चाँदी की अम्बारी और ज़री की झूलवाला १ हाथी देकर उन पर अपना विश्वास और प्रेम प्रकट किया। इसके बाद कार्त्तिक सुदि १० (२७ अक्टोबर) को महाराज और शाहज़ादे के लिये फिर ख़िलअतें भेजे गए। अभी ये लोग लाहौर भी नहीं पहुँचे थे कि इतने में ही शाह अब्बास की मृत्यु[3] का समाचार मिल गया। इससे बादशाह ने इन्हें अपने, पौष वदि १२ (१२ दिसम्बर) के, पत्र में लाहौर में ही ठहर जाने का लिख भेजा। माघ वदि ११ (ई० स० १६६७की १० जनवरी) को इनके और शाहज़ादे के लिये लाहौर में सरदी के ख़िलअत भेजे गये। इसके बाद इनके लाहौर से लौट आने पर बादशाह ने वि० सं० १७२३ की चैत्र वदि १२ (११ मार्च) को महाराज को ख़ासा ख़िलअत देकर इनकी अभ्यर्थना की।

वि० सं० १७२४ की चैत्र सुदि ८ (२३ मार्च) को बादशाह ने शाहज़ादे मुअज़्ज़म को दक्षिण की सूबेदारी पर रवाना किया और महाराज को ख़िलअत, जड़ाऊ कमरबंदवाली तलवार और दो घोड़े, जिनमें एक सुनहरी साज़ का था, उपहार में देकर उसके साथ करदियाँ। वि० सं० १७२४ की ज्येष्ठ वदि ११[8] (ई० स० १६६७ की

१. अलामगीरनामा, पृ० ६७५-६७६।

२. आलमगीरनामा, पृ० ६८१।

३. यह वि० सं० १७२३ की भादों सुदि ३ (ई० सन् १६६६ की २२ अगस्त) को मरा था।

४. आलमगीरनामा, पृ० ६८४-६८६।

५. आलमगीरनामा, पृ० १०३१-१०३२। ख्यातों में लिखा है कि इसी वर्ष महाराज ने राजकर्मचारियों के वेतन में वृद्धि कर रिश्वत लेने की सख़्त रोक कर दी थी।

६. आलमगीरनामा, पृ० १०३७।

७. लेटरमुग़ल्स में लिखा है-

"He was sent to serve in the Dakhin, then in Kabul, then again in the Dakhin." (भाग १, पृ० ४४) परन्तु वास्तव में यह काबुल न जाकर लाहौर से ही लौट आए थे, जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है।

८. आलमगीरनामे में हि० सन् १०७७ की ७ और १६ शव्वाल के बीच बादशाह को इसकी सूचना मिलना लिखा है (देखो पृ० १०३७-१०३८ और १०४२)। परन्तु यह समय चैत्र सुदि ८ (२३ मार्च) से वैशाख वदि ३ (१ अप्रैल) के बीच आता है। अतः यह ठीक नहीं है।

८ मई) को महाराजकुमार पृथ्वीसिंहजी[1] का शीतला की बीमारी[2] से दिल्ली में स्वर्गवास हो गया। अतः जब महाराज को इसकी सूचना मिली, तब यह बहुत ही व्याकुल हुए। यह देख शाहज़ादे ने, जो महाराज को अपना शुभचिंतक और पिता के तुल्य मानता था, इनके दुःख में समवेदना प्रकट कर इन्हें सांत्वना दी। इसके बाद जब यह औरङ्गाबाद[3] पहुँचे, तब आंबेर-नरेश जयसिंहजी[4] ने वहाँ का सारा प्रबन्ध शाहज़ादे मुअज़्ज़म को सौंप दिया[5]। कुछ ही दिनों में महाराज के उद्योग से इधर तो शाही सेनाएँ

कहीं-कहीं वि० सं० १७२३ की चैत्र वदि ८ भी लिखी मिलती है। यह भी ठीक नहीं है। यदि ऐसा हुआ होता, तो महाराज को दक्षिण जाने से पूर्व ही इसकी सूचना मिल गई होती, क्योंकि यह वि० सं० १७२४ की चैत्र सुदि ८ को औरंगाबाद (दक्षिण) की तरफ़ रवाना हुए थे।

हि० सन् १०७६ (ई० सन् १६६८=वि० सं० १७२५) के एक फ़रमान में बादशाह ने महाराज को नरबदा के किनारे के गुजरी गांव की तरफ़ जाने और गुजरात का प्रबन्ध मुहम्मद अमीनख़ाँ को देने का लिखा है।

१. पृथ्वीसिंहजी का जन्म वि० सं० १७०६ की आषाढ़ सुदि ५ (ई० सन् १६५२ की १ जुलाई) को हुआ था। इनके विवाह को अभी दो वर्ष ही हुए थे। परन्तु फिर भी इनके पीछे इनकी रानी, जो गौड़-राजपूतों की कन्या थी, सती हुई।

२. टॉड साहब ने पृथ्वीसिंहजी की मृत्यु का, वि० सं० १७२६ (ई० सन् १६७०) के अनन्तर, महाराज जसवंतसिंहजी के काबुल चले जाने पर औरंगज़ेब द्वारा दिए गए ज़हरी खिलअत के पहनने से होना लिखा है।

(टॉड का राजस्थान (क्रुक संपादित) भा० २, पृ० ६८४-६८६।)

परन्तु मारवाड़ की ख्यातों और आलमगीरनामे में इस घटना का वि० सं० १७२४ में होना लिखा है (देखो पृ० १०३८)।

३. ख्यातों मे इनका आषाढ़ वदि १३ को औरंगाबाद पहुँचना लिखा है।

४. वी० ए० स्मिथ ने लिखा है कि औरंगज़ेब के कहने से आंबेर-नरेश जयसिंहजी को उनके पुत्र कीरतसिंह ने विष दे दिया था। इससे वि० सं० १७२४ (ई० सन् १६६७) मे दक्षिण में ही उनकी मृत्यु हो गई। बादशाह ने उनके स्थान पर महाराज जसवंतसिंहजी को मुअज़्ज़म के साथ भेज दिया। यह पहले भी दक्षिण में रह चुके थे। परन्तु इन्हें इस बार भी पूरी सफलता नहीं मिली। इसका कारण यह था कि इन्होंने और शाहज़ादे ने मिलकर शिवाजी से बहुतसा रुपया ले लिया और उनके विरुद्ध किए जानेवाले कार्यों में शिथिलता कर दी। यह उनसे यहाँ तक मिल गए कि ई० सन् १६६७ (वि० सं० १७२४) में इन्होंने स्वयं बादशाह को भी शिवाजी को राजा का ख़िताब देने के लिये दबाया।

(ऑक्सफ़ोर्ड हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया, पृ० ४२७-४२८।)

५. इस घटना का समय आषाढ़ वदि १४ लिखा है।

फिर सजग हो गई, जिससे महाराष्ट्र-वीरों का उपद्रव बहुत कुछ शांत हो चला और उधर महाराज के समझाने से शिवाजी ने भी शाहज़ादे मुअज़्ज़म से मेल करना स्वीकार कर लिया। ख्यातों से ज्ञात होता है कि इसी के अनुसार महाराज के सरदार राठोड़ रणछोड़दास आदि राजगढ़ में जाकर शिवाजी से मिले और उनके पुत्र शंभाजी को साथ लेकर मँगसिर वदि ५ को शाहज़ादे के पास चले आए। महाराज के कहने से शाहज़ादे ने भी शंभाजी का अच्छा आदर सत्कार किया और शिवाजी को राजा मानकर उनका बहुत सा प्रदेश वापस लौटा दिया। इसी के साथ उन्हें बराड़-प्रदेश में भी जागीर दी गई। इस प्रकार गुप्त-संधि हो जाने के बाद शंभाजी वापस लौट गए[2]।

वि० सं० १७२६ के ज्येष्ठ (ई० स० १६६९ की मई) में औरङ्गज़ेब को सूचना मिली कि शाहज़ादा मुहम्मद मुअज़्ज़म महाराज जसवन्तसिंहजी की सहायता से स्वाधीन होने का विचार कर रहा है। इस पर उसने तत्काल ही उसकी माता को उसे समझाने के लिये भेज दिया। इसके अगले ही वर्ष बादशाह ने महाराज को दक्षिण से वापस बुलवा लिया और वि० सं० १७२८ की ज्येष्ठ वदि ८ (ई० स० १६७१ की २१ मई) को इन्हें बरसाती खिलअत और ५०० मोहर की क़ीमत का घोड़ा देकर जमरूद के थाने की रक्षा के लिये रवाना कर दिया[3]। इस पर महाराज भी अपने दल-

१. ख्यातों में लिखा है कि इसी वर्ष बादशाह ने अपने अधीन देशों के चौपाए जानवरों पर कर लगाया था। परन्तु महाराज के ख़याल से मारवाड़ के चौपाए छोड़ दिए गए थे। इस पर महाराज ने इसकी एवज़ मे यहाँ पर अपनी तरफ़ से 'घासमारी' (मवेशियों के सरकारी चरागाहों में चरने पर कर लेने) की प्रथा प्रचलित की।

यह प्रथा इस देश में अब तक जारी है। साथ ही महाराज ने गुजरात में मिले अपने मनसब के प्रदेशों में भी अपने आदमी भेज कर इस कर का प्रचार किया।

२. श्रीयुत जदुनाथ सरकार ने अपनी 'हिस्ट्री ऑफ़ औरंगज़ेब' में लिखा है:-

शिवाजी ने महाराज जसवंतसिंह को पत्र लिखकर बादशाह से संधि करने में उनकी सहायता चाही। इस पर महाराज और शाहज़ादे ने मिलकर इस विषय मे ई० सन् १६६८ की ९ मार्च (वि० सं० १७२५ की चैत्र सुदि ६) को बादशाह को लिखा। अतः उसने भी शिवाजी को राजा मानकर संधि अंगीकार करली। यह संधि दो वर्ष तक रही। उक्त पत्र मे शिवाजी ने अपने पुत्र शंभु को शाहज़ादे के पास भेजने का भी लिखा था। इस संधि के हो जाने के बाद भी बादशाह ने सिवा चकन दुर्ग के और कोई क़िला शिवाजी को नहीं लौटाया। (देखो भा० ४, पृ० ९८१)।

३. मआसिरे आलमगीरी, पृ० १०९।

परन्तु वि० सं० १७३० की ज्येष्ठ सुदि १४ के महाराज के एक पत्र से उस समय इनका नर्बदा पर होना प्रकट होता है।

बल के साथ मारवाड़ की तरफ़ होते हुए वहाँ जा पहुँचे। कुछ ही समय में इन्होंने वहाँ के उपद्रवी पठानों को दबाकर काबुल और भारत के बीच का (ख़ैबर के दर्रे का) मार्ग निष्कंटक कर दिया।

इसी वर्ष औरङ्गज़ेब ने गोवर्धन-पर्वत पर का मन्दिर गिरा देने की आज्ञा दी। इसका समाचार पाते ही गोस्वामी दामोदरजी वहाँ की मूर्ति को लेकर पहले से ही चुपचाप चल दिए और मार्ग में कोटा, बूँदी और किशनगढ़ की तरफ़ होते हुए मारवाड़ के चौपासनी नामक गाँव के निकट कदमखंडी स्थान में करीब ६ मास तक रहे। इसके बाद कार्त्तिक सुदि १५ को वह मेवाड़ के सिहाड़ नामक गाँव में चले गए। यही स्थान इस समय नाथद्वारे के नाम से प्रसिद्ध है।

वि० सं० १७३० की फागुन वदि ४ (ई० स० १६७४ की १४ फ़रवरी) को[3] पठानों ने गंदाब नदी के उस पार स्थित शुजाअतख़ाँ पर हमला कर उसे मार डाला।

१. ख्यातों मे लिखा है कि बादशाह ने वि० सं० १७२८ मे महाराज को दक्षिण से बुलाकर पहले गुजरात का सूबा दिया और इसके बाद वि० सं० १७३० के फागुन मे इन्हें काबुल भेजा। परन्तु फ़ारसी तवारीख़ों मे गुजरात के सूबे का उल्लेख नहीं है। 'बॉंबे गज़ेटियर' मे लिखा है कि ई० सन् १६७१ (वि० सं० १७२८) में महाराज जसवंतसिंहजी ने गुजरात पहुँच ख़ानजहाँ से वहाँ के प्रबंध का भार ले लिया। इसी के साथ इन्हें धंधूका और पिटलाद के परगने भी मिले। ई० सन् १६७३ (वि० सं० १७३०) में इन्हीं की सिफ़ारिश से बादशाह ने रायसिंह के पुत्र जाम तामची को नवानगर और एक जाड़े जे को २५ गाव लौटा दिए थे। इसके बाद ई० सन् १६७४ (वि० सं० १७३१) के अंत मे महाराज काबुल की तरफ़ भेजे गए (देखो भा० १, खंड १, पृ० २८५)।

'तारीख़े पालनपुर' में लिखा है कि वि० सं० १७२७ (हि० सन् १०८२=ई० सन् १६७१) में महाराज जसवंतसिंह राठोड़ ने गुजरात की सूबेदारी मिलते ही पालनपुर की हुकूमत से कमालख़ाँ को हटाकर उसके भाई फतेहख़ाँ को उसके स्थान पर नियत कर दिया था (देखो भा० १, पृ० १२३)।

जेम्स बर्जेज़ की 'क्रॉनोलॉजी ऑफ़ मौडर्न इंडिया' में ई० सन् १६७४ (वि० सं० १७३१) तक महाराज जसवंतसिंहजी का गुजरात के सूबे पर होना लिखा है (देखो पृ० ११५)।

२. कहीं-कहीं इस घटना का वि० सं० १७२६ में होना लिखा है। वहाँ पर यह भी लिखा है कि गुसांईजी क़रीब दो वर्षों तक कदमखंडी में रहकर मारवाड़ के गाँव पाटोदी में पहुँचे। परन्तु महाराज जसवंतसिंहजी के जमरूद में होने के कारण वि० सं० १७२८ में वह मेवाड़ चले गए।

३. मआसिरे आलमगीरी, पृ० १३१।

इसकी सूचना पाते ही महाराज ने अपनी सेना को पठानों पर चढ़ाई करने की आज्ञा दी। अतः कुछ चुने हुए राठोड़ वीरों ने जाकर उपद्रवियों को मार भगाया।[1] इसके बाद जब इस घटना की सूचना बादशाह को मिली, तब वह स्वयं पठानों को दंड देने के लिये हसनअबदाल की तरफ़ रवाना हुआ। उसके रावलपिंडी पहुँचने पर वि० सं० १७३१ की आषाढ़ वदि ६ (ई० स० १६७४ की १४ जून) को महाराज वहाँ जाकर उससे मिले। बादशाह ने इन्हें ख़ासा खिलअत और ७,००० रुपये की उर्बसी (पोशाक ?) देकर अपनी प्रीति प्रकट की और इनके जमरूद वापस लौटने के समय जड़ाऊ साज़ की तलवार और तलायर-समेत (अम्बारी-सहित) हाथी देकर इनका सम्मान किया।[2] इसके बाद महाराज ने जमरूद[3] पहुँच स्थान-स्थान पर अपनी चौकियाँ क़ायम कर दीं। इससे पठान बिलकुल शांत हो गए। इस पर मँगसिर (दिसम्बर) में बादशाह ने (अपने १८वें राज्यवर्ष के प्रारंभ के उत्सव पर) महाराज के लिये ख़ासा खिलअत भेजा।[4]

वि० सं० १७३३ की चैत्र वदि ३ (ई० स० १६७६ की १२ मार्च) को जमरूद में महाराज के द्वितीय महाराजकुमार जगतसिंहजी[5] का देहान्त हो गया।[6] इससे महाराज का सारा उत्साह शिथिल पड़ गया और यह उत्तराधिकारी की चिंता से खिन्न रहने लगे। इसके बाद वि० सं० १७३५ की पौष वदि १० (ई० स० १६७८ की २८ नवम्बर) को जमरूद में ही ५२ वर्ष की अवस्था में स्वयं महाराज का स्वर्गवास हो गया।[7]

---

१. ख्यातों मे लिखा है कि इसके बाद भी पठानों ने दो-तीन बार सिर उठाने की चेष्टा की थी। परन्तु महाराज की सेना के जोधा (गोविंददास के पुत्र) रणछोड़दास, भाटी रघुनाथसिंह, (श्यामसिंह के पुत्र) वीरमदेव आदि ने बड़ी वीरता से युद्ध कर उनको दबा दिया।

२. मआसिरे आलमगीरी, पृ० १३३।

३. जमरूद ख़ैबर दर्रे के उस तरफ़ अलीमसजिद के पास है।

४. मआसिरे आलमगीरी, पृ० १३६।

५. इनका जन्म वि० सं० १७२३ की माघ वदि ३ (ई० स० १६६७ की ३ जनवरी) को हुआ था।

६. लेटरमुग़ल्स-नामक इतिहास में इनके दो पुत्रों का काबुल में मरना लिखा है (देखो भा० १, पृ० ४४)। परन्तु ख्यातों से इसकी पुष्टि नहीं होती।

७. मारवाड़ की ख्यातों में से किसी में इनका जमरूद में पूर्णमल बुंदेले के बाग़ में और किसी मे पेशावर में मरना लिखा है।

इस पर उनके सरदारों ने तत्काल इस घटना की सूचना और महाराज की पगड़ी के मारवाड़ में भेजने का प्रबंध कर दिया।

'तवारीख़ मोहम्मद शाही' में लिखा है कि यह समाचार सुन औरङ्गज़ेब ने कहा:–

" दर्वाज़ए कुफ़ शिकस्त "

अर्थात्—आज कुफ़ (धर्मविरोध) का दरवाज़ा टूट गया। परन्तु जब महल में बेग़म ने यह हाल सुना, तो कहा:—

" इमरोज़ जाये दिल गिरिफ्तगीस्त के ईं चुनी रुक्ने दौलत ब शिकस्त "

अर्थात्—आज शोक का दिन है कि बादशाहत का ऐसा स्तंभ टूट गया।

महाराज जसवन्तसिंहजी बड़े वीर[1], मनस्वी, प्रतापी, दूरदर्शी, नीति-निपुण, विद्वान्, कवि, दानी और गुणग्राहक थे। इनकी वीरता, मनस्विता, प्रताप, दूरदर्शिता और नीति-निपुणता का यही सबसे बड़ा प्रमाण है कि यह औरङ्गज़ेब के बढ़ते हुए प्रताप की कुछ भी परवा न कर समय-समय पर खुल्लमखुल्ला उसका विरोध करते रहते थे और एक बार तो इन्होंने स्वयं उसीकी सेना पर आक्रमण कर उसका ख़ज़ाना लूट लिया

मआसिरे आलमगीरी मे हि० सन् १०८६ की ६ ज़ीकाद (वि० सं० १७३५ की पौष सुदि ७=ई० सन् १६७८ की १० दिसम्बर) को महाराज जसवंतसिंहजी की मृत्यु का होना लिखा है (देखो पृ० १७१)।

श्रीयुत जदुनाथ सरकार ने भी अपनी 'हिस्ट्री ऑफ़ औरंगज़ेब' में उस दिन १० दिसम्बर का होना ही लिखा है (देखो भा० ३, पृ० ३६६)। उन्होंने यह भी लिखा है कि जमरूद में महाराज के साथ उनकी ५ रानियाँ और ७ अन्य स्त्रियाँ (परदायतें आदि Concubines, etc.) सती हुई थीं (देखो भा० ३, पृ० ३७३) ख्यातों में इनकी संख्या १५ लिखी है। राजरूपक में लिखा है:-

सतरै संमत पौष पैंत्रीसे; दशमी वार ब्रहस्पत दीसै।
मुरधर छत्र जसो महराजा; सुरपुर गयो लियाँ ब्रद साजा।

मिस्टर वी० ए० स्मिथ ने अपनी 'ऑक्स फ़ोर्ड हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया' मे लिखा है कि--यदि टॉड और मनूची (Manucci) का विश्वास किया जाय, तो यही मानना होगा कि जसवंतसिंह को औरंगज़ेब की तरफ़ से विष दिलवाया गया था (देखो पृ० ४३८)।

१. महाराज अपनी सेना की देख-भाल स्वयं किया करते थे। ख्यातों में लिखा है कि वि० सं० १७२४ (ई० सन् १६६७) मे औरंगाबाद के मुकाम पर शाहज़ादे मुअज़्ज़म ने इनकी सेना के ३,२०० सैनिकों का निरीक्षण कर इनके प्रबन्ध की बड़ी तारीफ़ की थी और इसी से प्रसन्न होकर बादशाह ने इन्हें थिराद और राधनपुर के परगने दिए थे।

था । परन्तु फिर भी बादशाह आलमगीर खुलकर इनका विरोध न कर सका । यद्यपि मन-ही-मन वह इनसे बहुत जलता था, तथापि इन्हें अपने देश से दूर रखने के सिवा इनका कुछ भी न बिगाड़ सका था । उपर्युक्त आक्रमण का बदला लेने के लिये एक बार उसने राव अमरसिंहजी के पुत्र राव रायसिंह को मारवाड़ का राज्य देकर दल-बल-सहित उधर रवाना भी कर दिया था । परन्तु अन्त में उसको मुँह की खानी पड़ी ।

इनकी दूरदर्शिता का पता इससे भी लगता है कि वि० सं० १७२३ में इन्होंने अपने राज-कर्मचारियों के वेतन में वृद्धि कर रिश्वत की सख़्त मनाई कर दी थी । इनकी विद्वत्ता और काव्य-निपुणता का पता इनके बनाए साहित्य के ग्रंथ 'भाषाभूषण'[2] से और वेदान्त-विषय के १ सिद्धान्तबोध, २ सिद्धान्तसार, ३ अनुभवप्रकाश, ४ अपरोक्ष-सिद्धान्त और ५ आनन्दविलास नामक छोटे छोटे परन्तु सुबोध ग्रन्थों[3] से मिल जाता है । यह महाराज डिंगल-भाषा के भी अच्छे कवि थे ।

इसी प्रकार इनकी दानशीलता और गुणग्राहकता का हाल, इनके लाहौर में एक ही दिन में २२ घोड़े और ३ हाथी अपने सरदारों और कवियों को इनाम में देने तथा वहाँ पर उपस्थित १४ कवियों में से प्रत्येक को डेढ़-डेढ़ हज़ार रुपये दान देने से प्रकट होता है ।

महाराज जसवंतसिंहजी ने क़रीब ४१ वर्ष[1] राज्य किया था । इनमें के (बादशाह शाहजहाँ के राज्य-समय के) पहले २० वर्ष तो बड़ी ही शांति से बीते । परन्तु पिछले (औरङ्गज़ेब के समय के) २१ वर्षों में इन्हें अधिक सतर्कता से काम लेना पड़ा ।

---

१. ख्यातों के अनुसार इन्हें सातहज़ारी ज़ात और सात हज़ार सवारों के मनसब में (जिसमे के ५,००० सवार दुअस्पा-सेअस्पा थे) १७,२५,००० की आमदनी का प्रदेश मिला था । इसमें मारवाड़ के साथ ही हाडोती, गुजरात, मालवा, बुरहानपुर और हाँसी--हिसार के परगने भी थे । इसके अलावा इन्हें शाही खज़ाने से ५,२५,००० रुपये, सवारों आदि के वेतन के लिये और भी मिलते थे ।

२. यह पुस्तक काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा ने प्रकाशित की है । इन्होंने श्रीमद्भागवत पर भाषा में एक टीका लिखी थी और 'प्रबोधचन्द्रोदय'-नामक नाटक का भाषानुवाद भी किया था ।

३. राजकीय कौंसिल की आज्ञा से इन वेदान्त के पाँचों ग्रंथों का संपादन इस इतिहास के लेखक ने वेदान्त-पञ्चक के नाम से किया है । इनके बनाये ग्रन्थों का पूरा विवरण इतिहास के प्रारम्भ में दिया जा चुका है ।

यद्यपि इनका अधिक समय मारवाड़ से बाहर ही बीतता था, तथापि यह अपने देश के प्रबन्ध की तरफ़ भी पूरा-पूरा ध्यान रखते थे। इन्होंने ही काबुल से वहाँ की मिट्टी और अनार के बीज (तथा पौधे) भेजकर जोधपुर के बाहर कागा नामक स्थान में एक बग़ीचा लगवाया था। यद्यपि यह बग़ीचा इस समय उजड़ गया है, तथापि यहाँ के पौधों के इधर-उधर फैल जाने से आज भी जोधपुर के अनार मशहूर समझे जाते हैं।

'मआसिरुलउमरा'[1] से पता चलता है कि इन्होंने औरङ्गाबाद के बाहर (पूर्व की तरफ़) अपने नाम पर जसवन्तपुरा बसाकर उसके पास जसवन्तसागर-नामक तालाब बनवाया था और इसी तालाब के तट पर इनके रहने के महल थे।

वि० सं० १७२० में इनकी हाडी रानी ने (जो बूँदी-नरेश हाडा शत्रुसाल की कन्या थी) जोधपुर नगर से बाहर 'राईका बाग़' नामक एक बाग़ बनवाकर उसी के पास अपने नाम पर हाडीपुरा बसाया था। यद्यपि इस समय हाडीपुरे का कुछ भी चिह्न बाक़ी नहीं है, तथापि यह बग़ीचा आज भी उसी नाम से प्रसिद्ध[2] है। इसी रानी का बनवाया कल्याणसागर-नामक तालाब भी राई के बाग़ के पास इस समय रातानाडा के नाम से विख्यात[3] है।

इनकी देवड़ी रानी ने वि० सं० १७६५ (ई० स० १७०८) में सिरोही से आकर सूरसागर के बगीचे में तुला-दान किया था। यह बात उक्त स्थान पर लगे लेख से प्रकट होती है।

इनकी शेखावत रानी ने, जो खंडेला की थी, शेखावतजी का तालाब बनवाया था।

स्वयं महाराज ने वि० सं० १७११ के भादों में पौकरन के क़िले में एक पौल (दरवाज़ा) बनवाई[4] थी।

१. देखो भा० ३, पृ० ६०३।

२. यहाँ के वर्तमान महल वग़ैरा महाराजा जसवंतसिंहजी द्वितीय ने बनवाए थे।

३. इस तालाब का जीर्णोद्धार महाराजा जसवंतसिंहजी द्वितीय के कनिष्ठ भ्राता महाराज प्रतापसिंहजी ने करवाया था।

४. यह बात वहाँ पर के एक लेख से प्रकट होती है।

महाराज ने अपने ज्येष्ठ पुत्र पृथ्वीसिंहजी के जन्मोत्सव पर साटीका नामक (नागोर प्रान्त का) का एक गांव जोधपुर के रामेश्वर महादेव के पुजारियों को दिया था।

१. इसके अलावा महाराज ने कई गाँव और भी दान किए थे:—

१ भाकरवासणी (जैतारण परगने का), २ बासणी नरसिंघ ३ बासणी तिरवाड़ियां (सोजत परगने के) ब्राह्मणों को; ४ कामासणी (मेड़ता परगने का) चारभुजा के मंदिर को; ५ बागासणी (जैतारण परगने का), ६ कजोई ७ बेराई (शेरगढ़ परगने के), ८ ऊंचेरिया, ९ बालाघणा (परबतसर परगने के), १० मंडावरा (मेड़ता परगने का), ११ कराणी १२ मोरटऊका (जोधपुर परगने के), १३ गोदेलावास (सोजत परगने का) चारणों को; १४ हीरावास (सोजत परगने का) स्वामियों को और १५ पुनास (मेड़ते परगने का) जगन्नाथरायजी के मन्दिर को।

महाराजा जसवंतसिंहजी का प्रताप और गौरव

महाराज जसवंतसिंहजी के विषय में अपनी तरफ़ से कुछ न लिखकर उस समय के और इस समय के लेखकों की कुछ पंक्तियाँ यहाँ पर उद्धृत की जाती हैं। इनसे उनके प्रताप और गौरव का भलीभांति पता चल जायगा:—

"शाहजहाँ ने महाराज जसवंत को, जो हिंदुस्थान के राजाओं में श्रेष्ठ और फ़ौज, सामान तथा रौबदाब में प्रथम था और जिसे बादशाह सल्तनत का मज़बूत स्तम्भ समझता थाँ,[1] महाराज का ख़िताब दिया था" (आलमगीरनामा, पृ० ३२)।

बड़े राजाओं में बड़ा[2] महाराजा जसवंतसिंह (मआसिर आलमगीरी, पृ० १७१)।

"जसवंतसिंह के पिछले कार्यों के कारण जो बादशाह के दिल में रंजिश रहा करती[3] थी...............

मुंतख़िबुल्लुबाब, भा० २, पृ० २५९।

"राजा (जसवंत) फ़ौज और सामान की ज़्यादती से हिंदुस्थान के राजाओं में बड़ा था। परन्तु वारदातों के उतार-चढ़ाव में हमेशा उसका झुकाव एक तरफ़ ही रहता था, इससे दुनियादारी में ज़्यादा फ़ायदा न उठा सका।

मआसिरुलउमरा, भा० ३, पृ० ६०३।

In a letter written in 1659, Aurangzib speaks of Jaswant as "the infidel who has destroyed mosques and built idol-temples on their sites.[४]"

Sarkar's Histroy of Aurangzib, Vol. III p. 368-389.

---

१. "रुक्ने रक़ीने दौलत व सितूने क़वीमे सल्तनत"।

२. "उम्दा राजाहाये अज़ाम महाराज जसवंतसिंह"।

३. परन्तु वह इसका बदला इनके जीते-जी न ले सका।

४. ख्यातों में लिखा है कि वि० सं० १७३३ मे जिस समय महाराज काबुल में थे, उस समय उनको सूचना मिली कि बादशाह औरंगज़ेब ने मन्दिर गिरवाने की आज्ञा निकाली है। इस पर महाराज ने साथ के शाही अमीरों के सामने क्रोध प्रकट कर कहा कि यदि बादशाह ऐसा करेगा, तो हम भी मसजिदों को गिरवाना शुरू करेंगे। जब उन अमीरों के द्वारा औरंगज़ेब को यह सूचना मिली, तब उसने बखेड़ा शान्त करने के लिये अपनी आज्ञा वापस ले ली।

"A special reason, besides its strategic importance made the kingdom of Marwar a desirable acquisition in Aurangzib's eyes. It was the foremost Hindu state of northern India at this time*. Its chieftain was Jaswant Singh, who enjoyed the unrivalled rank of Maharajah and whom the death of Jai-Singh thirteen years ago had left as the leading Hindu-Peer of the Mughal court. If his powers passed on to a worthy successor, that successor would be the pillar of the Hindu's hopes all over the empire and the centre of the Hindu opposition to the policy of temple destruction and Jziya

Sarkar's History of Aurangzib, Vol. III, p. 367-368

"the death of Jaswant Singh emboldened the imperial bigot to re-impose the hated Jaziya, or poll-tax on non-Muslims"

V. A. Smith's Oxford History of India, p. 438.

* The Maharana of Udaipur, in spite of his pre-eminent descent, was a negligible factor of the Hindu population of the Mughal world, as he hid himself among his mountain fastness and never appeared in the Mughal Court or camp.

२६. महाराजा अजितसिंहजी

जिस समय जमरूद में महाराजा जसवंतसिंहजी की मृत्यु हुई, उस समय उनकी नरूकी और जादमर्न (वंश की) दो रानियाँ गर्भवती थीं। इसीसे महाराज के साथ के सरदारों ने इन्हें सती होने से रोक लिया। इसके बाद महाराज के द्वादशाह का कार्य समाप्त हो जाने पर ये लोग इन्हें साथ लेकर, वि० सं० १७३५ की माघ सुदि १३ (ई० स० १६७९ की १४ जनवरी) को, लाहौर की तरफ़ रवाना हो गए।

इनके अटक नदी के पास पहुँचने पर, पहले तो वहाँ के शाही हाकिम ने इन्हें, बादशाही आज्ञा या काबुल के सूबेदार का परवाना न होने के कारण, रोकने की चेष्टा की। परन्तु जब ये लोग मरने-मारने और नावों पर ज़बरदस्ती अधिकार करने को उद्यत हो गए, तब अंत में उसने इन्हें अटक पार करने की आज्ञा दे दी[२]। इसके बाद इनके लाहौर पहुँचने पर वि० सं० १७३५ की चैत बदी ४ (ई० सन् १६७९ की १९ फ़रवरी) बुधवार को दोनों रानियों के गर्भ से दो पुत्र उत्पन्न हुए। इनमें से बड़े राजकुमार का नाम अजितसिंह और छोटे का दलथंभन रक्खा गया।

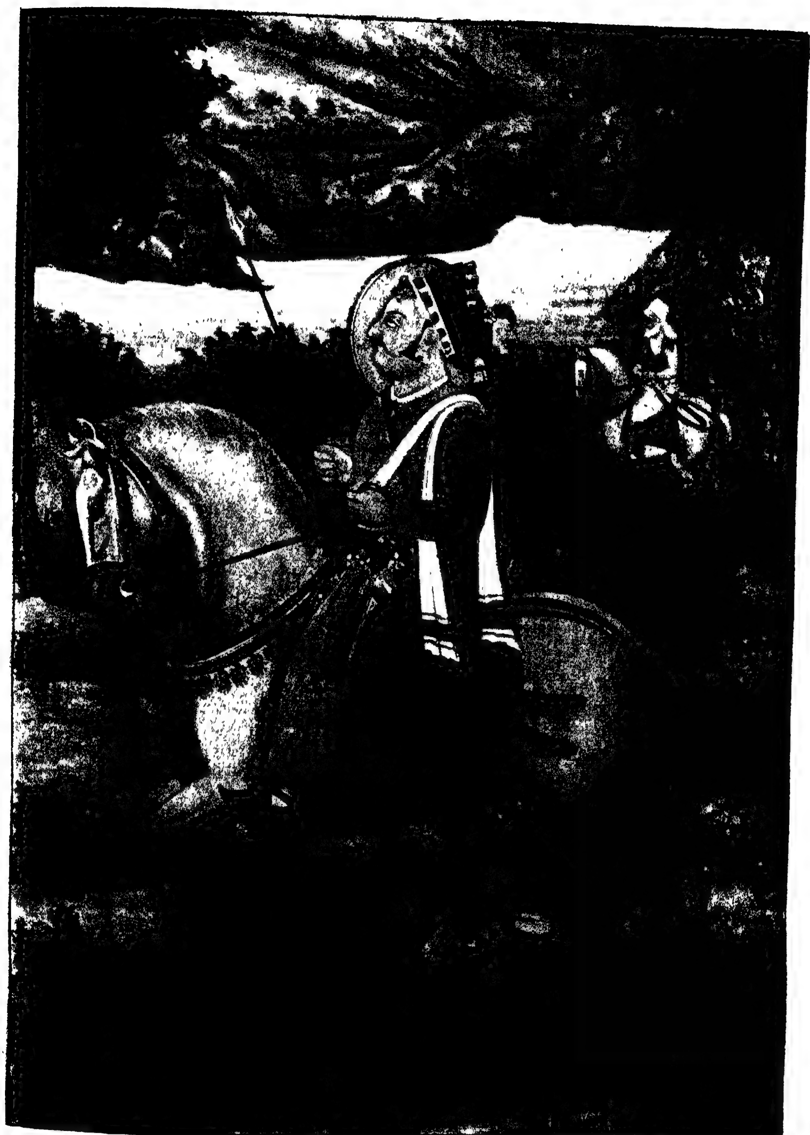
१. बालकृष्ण दीक्षित-रचित 'अजित-चरित्र' मे लिखा है:-

अतःपरं यादवराजपुत्र्या जन्मान्तरीयं कथयाम्युदन्तम्;
अजीतसिंहो जनितो ययात्र कार्ये गुणाः कारणतो भवन्ति।

(सर्ग ६, श्लोक १)

२. 'सैहरुल-मुताख़रीन' में राठोड़-सरदारों का 'मीरबहर' को आहत और परास्तकर अटक पार होना लिखा है। (देखो जिल्द १, पृ० ३४३)।

'मुंतख़िबुलुबाब' से भी इस बात की पुष्टि होती है। (भा० २, पृ० २५९)।



२६. महाराजा अजितसिंहजी

वि० सं० १७६३-१७८१ (ई० स० १७०७-१७२४)

इधर यह हो रहा था, और उधर बादशाह औरङ्गज़ेब महाराजा जसवंतसिंहजी के मरने की सूचना पाते ही स्वर्गवासी महाराज के कुटुम्ब से बदला लेने का प्रबन्ध करने लगा। यद्यपि महाराजा जसवंतसिंहजी की बारबार की छेड़छाड़ से वह प्रारंभ से ही उनसे मन-ही-मन द्वेष रखता था, तथापि उनके जीते-जी उनसे खुलकर शत्रुता करने की उसकी हिम्मत न होती थी। परन्तु महाराज के इस प्रकार निस्संतान मर जाने से उसे अच्छा मौक़ा मिल गया। इसलिये वि० सं० १७३५ की माघ सुदी १२ (ई० सन् १६७९ की १३ जनवरी) को उसने ख़िदमतगुज़ारख़ाँ को जोधपुर का क़िलेदार, ताहिरख़ाँ को फ़ौजदार, शेख़ अनवर को अमीन (तहसीलदार) और अब्दुलरहीम को कोतवाल बनाकर मारवाड़ की तरफ़ रवाना कर दिया।[1] इसके कुछ दिन बाद वह स्वयं भी मारवाड़ पर पूर्ण अधिकार करने के लिये अजमेर की तरफ़ चला। साथ ही उसने असदख़ाँ, शाइस्ताख़ाँ और शाहज़ादे अकबर को भी अपने-अपने सूबों से वहाँ पहुँचने की आज्ञाएँ भेजदीं। परन्तु औरङ्गज़ेब के मन में स्वर्गवासी महाराज से इतना डाह था कि उसे अपने अजमेर पहुँचने तक का बिलम्ब भी सहन न हो सका। इसी से उसने मार्ग से ही, फाल्गुन सुदी ७ (७ फ़रवरी) को, ख़ाँजहाँ बहादुर और हुसैनअलीख़ाँ आदि बड़े-बड़े अमीरों को मारवाड़ पर अधिकार करने के लिये आगे भेज दिया।[2]

१. मआसिरेआलमगीरी पृ० १७२। भट्ट जगजीवन रचित 'अजितोदय' नामक (३२ सर्गों के) ऐतिहासिक संस्कृत-काव्य से ज्ञात होता है कि बादशाह की आज्ञा से पहले-पहल मारवाड़ पर अधिकार करने के लिये इख़्तियारख़ाँ नाम का अमीर अजमेर से मेड़ते आया था। परन्तु उसके आगमन की सूचना पाते ही राठोड़ वीर उसके मुक़ाबले को पहुँच गए। इसलिये उसे नगर के बाहर ही रुक जाना पड़ा। इसके बाद उसने पत्र द्वारा यहाँ का सारा हाल बादशाह को लिख भेजा। इसी से उसे स्वयं अजमेर की तरफ़ आना पड़ा। (सर्ग ५, श्लो० ३४-४३)।

औरंगज़ेब ने वि० सं० १७३५ की चैत्र बदी ११ (ई० सन् १६७६ की २६ फ़रवरी) को इसी (इख़्तियारख़ाँ) इफ़्तख़ारख़ाँ के स्थान पर तहव्वुरख़ाँ को अजमेर का फ़ौजदार नियत किया था। (मआसिरेआलमगीरी, पृ० १७३)।

२. मआसिरेआलमगीरी, पृ० १७२।

इसी बीच महाराजा जसवंतसिंहजी की मृत्यु का समाचार पाकर उनके सरदार भी अपने-अपने स्थानों से आकर जोधपुर में एकत्रित होने और ख़ाँजहाँ बहादुर[1] से सम्मुख रण में लोहा लेने का विचार करने लगे। परन्तु अन्त में भाटी रघुनाथसिंह[2] ने महाराजा के मंत्री कायस्थ केसरीसिंह से सलाहकर रानियों के पुत्र उत्पन्न होने की सूचना मिलने और स्वर्गवासी महाराज के साथ के दल के मारवाड़ में पहुँचने तक युद्ध करने का विचार रोक दिया, तथा भाटी रामसिंह को कुछ सरदारों के साथ ख़ाँजहाँ बहादुर से संधि करने के लिये रवाना किया। भाटी रामसिंह ने उसके पास पहुँच मारवाड़ का अधिकार उसे सौंप देने का वादा[3] कर लिया। परन्तु इसके साथ ही यह शर्त तय की कि यदि महाराज की गर्भवती रानियों में से किसी के गर्भ से भी पुत्र उत्पन्न होगा, तो बादशाह की तरफ़ से मारवाड़ का राज्य उसे लौटा दिया जायगा।

इसके बाद ख़ाँजहाँ बहादुर ने मेड़ते पहुँच उसे शाही अधिकार में ले लिया। वहाँ से चलकर जिस समय वह पीपाड़ पहुँचा[4], उसी समय लाहौर में महाराजकुमारों के जन्म होने की सूचना भी सरदारों के पास आपहुँची। यहाँ से आगे बढ़कर ख़ाँजहाँ ने जोधपुर पर अधिकार करने का इरादा किया, और वह नगर के बाहर पहुँच शेखावतजी के तालाब पर ठहर गया। इसकी सूचना पाते ही चाँपावत वीर सोनग[5] ने उसको रोकने का इरादा किया। परन्तु भाटी रघुनाथसिंह आदि ने समय की गति का ध्यान दिलाकर उसे ऐसे समय युद्ध छेड़ने से रोक लिया[6]। इस पर ख़ाँजहाँ ने जोधपुर का प्रबन्ध ताहिरख़ाँ को सौंप सिवाना, सोजत, जैतारण आदि के प्रांतों पर भी यवन-शासक नियत कर दिया[7]। इस प्रकार मारवाड़ पर यवनों का अधिकार हो जाने से यहाँ के मन्दिर और मूर्तियाँ नष्ट की जाने लगीं। परन्तु बालक महाराजकुमारों और उनके मुख्य-मुख्य सरदारों के मारवाड़ से बाहर होने के कारण यहाँ उपस्थित राठोड़-वीरों ने उपद्रव करना उचित न समझा।

१. अजितोदय में इसका नाम बहादुरख़ाँ लिखा है। (देखो सर्ग ५, श्लो० ४४)
२. यह लवेरे का ठाकुर था।
३. अजितोदय, सर्ग ५, श्लो० ४५–५४।
४. अजितोदय, सर्ग ५, श्लो० ५५–५६।
५. यह चाँपावत विठ्ठलदास का पुत्र था।
६. अजितोदय, सर्ग ६, श्लो० २७–२९।
७. अजितोदय, सर्ग ६, श्लो० ४६, ५१–५३।

बादशाह भी वि० सं० १७३५ की चैत्र बदी ४ (ई० सन् १६७९ की १९ फ़रवरी) को अजमेर पहुँच उपर्युक्त कार्यों की गति-विधि देख रहा था। परन्तु चैत्र वदी ११ (२६ फ़रवरी) को जब उसे स्वर्गवासी महाराज के वकील द्वारा महाराज-कुमारों के जन्म की सूचना मिली, तब उसने अपना पथ निष्कंटक करने लिये दिल्ली लौटने का विचार किया। इसी के अनुसार उधर तो वि० सं० १७३६ की चैत्र सुदी ९ (१० मार्च) को उसने सैयद अब्दुल्लाख़ाँ को स्वर्गवासी महाराज के सामान और द्रव्य आदि पर अधिकार करने के लिये सिवाने के दुर्ग पर भेजा, और इधर स्वर्गवासी महाराजा के माल-असबाब पर अधिकार करने तथा मारवाड़-राज्य की आय का हिसाब तैयार करने का प्रबन्ध कर स्वयं दोनों नवजात कुमारों को छीन लेने के लिये दिल्ली को चला।

यद्यपि बादशाह औरङ्गज़ेब मज़हबी मामलों में कट्टर होने के कारण आरंभ से ही हिंदुओं से मन-ही-मन बड़ा द्वेष रखता था, तथापि महाराजा जसवंतसिंहजी के जीते-जी उसे खुलकर प्रकट नहीं कर सकता था। अतः इस समय उनका स्वर्गवास हो जाने से वह निश्शंक हो गया, और दिल्ली पहुँचते ही वि० सं० १७३६ की वैशाख सुदी २ (ई० सन् १६७९ की २ अप्रेल=हि० सन्० १०९० की १ रबी-उल्-अव्वल) को उसने हिन्दुओं से जज़ियाँ वसूल करने की आज्ञा प्रचारित करदी।

जब मारवाड़ में पूरी तौरसे बादशाही प्रबन्ध हो गया, तब ख़ाँजहाँ बहादुर भी मन्दिरों के तोड़ने से एकत्रित हुई मूर्तियों को गाड़ियों में भरवा कर द्वितीय ज्येष्ठ बदी ११

१. मआसिरेआलमगीरी, पृ० १७२-१७४

२. 'अजितोदय' में बहादुरख़ाँ (ख़ाँजहाँ) के द्वारा कोचकबेग का सिवाने भेजा जाना लिखा है। (देखो सर्ग ६, श्लो० ५१) परन्तु यदुनाथ सरकार की लिखी 'हिस्ट्री ऑफ़ औरंगज़ेब' से ज्ञात होता है कि चैत्र बदी १४ (१ मार्च) को पहले-पहल ख़िदमत गुज़ारख़ाँ ही सिवाने के क़िले और ख़ज़ाने पर अधिकार करने के लिये भेजा गया था। परन्तु जब वहाँ का ख़ज़ाना उसके हाथ न लगा, तब दूसरा सेनापति (सैयद अब्दुल्लाख़ाँ) वहाँ के लिये नियत किया गया, और उसको आज्ञा दी गई कि वहाँ की पृथ्वी तक को खोदकर माल-असबाब का पता लगावे। (देखो भा० ३, पृ० ३७०-३७१)।

३. मआसिरेआलमगीरी, पृ० १७४। यह मज़हबी कर था, जो मुसलमान बादशाह मुसल-मानेतर धर्मवालों से लिया करते थे। परन्तु अकबर ने इस प्रथा को अपने राज्य के लिये हानिकारक समझ बंद कर दिया था।

(२५ मई) को दिल्ली जा पहुँचा । उसीके साथ भाटी रघुनाथ और मंत्री केसरीसिंह (कायस्थ) भी कई सरदारों को लेकर बादशाह से प्रार्थना करने के लिये दिल्ली गए थे[2]।

इस के बाद काबुल से चला राठोड़ों का दल भी कुछ दिन लाहौर में ठहर आषाढ़-शुक्ल (जून के अन्त) में दिल्ली आ पहुँचा[3], और मारवाड़ से आए हुए सरदारों के साथ मिलकर बादशाह से बालक महाराज अजितसिंहजी को मारवाड़ का राज्य देने का आग्रह करने लगा । इस पर बादशाह ने उनसे कहा कि अभी महाराजकुमार बालक हैं । इसलिये कुछ दिन तक इन्हें और इनकी माताओं को नूरगढ़[4] में रहने दो । जब यह बड़े हो जायँगे, तब इन्हें इनका राज्य दे दिया जायगा[5] । परन्तु राठोड़ों ने यह बात नहीं मानी । यह देख औरङ्गज़ेब ने राठोड़ सरदारों को अनेक तरह के प्रलोभन देना प्रारंभ किया । जब इसमें भी उसे सफलता नहीं मिली, तब उसने स्वर्गवासी महाराज के मंत्री केसरीसिंह से महाराज के ख़ज़ाने का हिसाब आदि समझाने का बखेड़ा शुरू किया, और उसके इनकार करने पर उसे कैद कर लिया । परन्तु इस पर भी वह स्वामि-भक्त मंत्री विचलित न हुआ, और अन्न-जल त्यागकर इस संसार के बन्धन से ही मुक्त हो गया[6] ।

---

१. मआसिरेआलमगीरी, पृ० १७५ । उसमें यह भी लिखा है कि बादशाह ने ख़ाँजहाँ को शाबाशी देकर आज्ञा दी कि इन मूर्तियों को दरबार के चौक और जुमा-मसजिद के आगे डलवा दे, ताकि ये लोगों के पाँवों के नीचे कुचली जाती रहें । इनमें की कुछ मूर्तियाँ सोने, चाँदी, ताँबे और पीतल की तथा कुछ जड़ाऊ और कुछ पत्थर की थीं ।

२. अजितोदय में ख़ाँजहाँ का पहले राठोड़-सरदारों को लेकर बादशाह के पास अजमेर जाना और वहाँ से उसके साथ ही दिल्ली लौटना लिखा है । (देखो सर्ग ६, श्लो० ५६-५७) ।

ईश्वरदास ने लिखा है कि ख़ाँजहाँ के मारवाड़ का राज्य महाराज जसवंतसिंह के नवजात कुमार को देने का निवेदन करने पर बादशाह उससे अप्रसन्न हो गया । 'हिस्ट्री ऑफ़ औरंगज़ेब', भा० ३, पृ० ३७२ का फुटनोट *

नहीं कह सकते कि यह घटना इसी अवसर की है या बादशाह के दुबारा अजमेर आने पर भाटी रामसिंह के बादशाह को समझाने के लिये ख़ाँजहाँ को पत्र लिखने के समय की है । (देखो अजितोदय, सर्ग ६, श्लो० १८) ।

३. वास्तव में यह ईस्वी सन् १६७६ की जुलाई में दिल्ली पहुँचा था ।

४. अजितोदय में सलेमकोट लिखा है । (सर्ग ६, श्लो० ६६) ।

५. मआसिरेआलमगीरी, पृ० १७७ ।

६. अजीतोदय, सर्ग ६, पृ० ६७-७३, ७६ ।

इसी बीच बादशाह ने राठोड़ सरदारों में फूट डालने के लिये स्वर्गवासी महाराज के बड़े भ्राता राव अमरसिंहजी के पौत्र (रायसिंह के पुत्र) इंद्रसिंह को खासा खि़लअत, जड़ाऊ साज़ की तलवार, सोने के साज़ का घोड़ा, हाथी, नक्कारा और निशान देकर जोधपुर का राजा बना दिया[1]। इस पर उसने भी इसकी एवज़ में बादशाह को ३६ लाख रुपये नज़र करने की प्रतिज्ञा की। इसके बाद वह जोधपुर पर अधिकार करने के लिये दिल्ली से नागोर पहुँचा, और वहाँ के राठोड़-सरदारों को अपनी तरफ़ मिलाने की कोशिश करने लगा। 'अजितोदय[2]' से ज्ञात होता है कि यह नागोर से जोधपुर भी आया था, परन्तु वहाँ के राठोड़ों ने आपस में ही लड़कर अपना बल क्षीण करना उचित न जान उससे किसी प्रकार की छेड़-छाड़ नहीं[3] की।

इसके बाद राठोड़-वीरों ने सलाहकर बादशाह से प्रार्थना की कि हममें से बहुत से सरदार अपने-अपने कुटुम्बों के साथ देश को जाना चाहते हैं। इसलिये यदि आप आज्ञा दें, तो रवाना हो जायँ। इस पर बादशाह ने वहाँ पर इनकी संख्या के कम हो जाने में अपना लाभ समझ यह बात स्वीकार[4] कर ली। परंतु साथ ही यह आज्ञा भी दी

ख्यातों में लिखा है कि इस घटना के समय सिंघी सुंदरदास ने बादशाह को प्रसन्न करने के लिये स्वामि-धर्म का त्यागकर ख़ज़ाने का सारा भेद उसे बतला दिया था।

१. मआसिरेआलमगीरी, पृ० १७५-१७६।

२. देखो सर्ग ६, श्लो० १-७।

३. ख्यातों में लिखा है कि राव इन्द्रसिंह बादशाह से मारवाड़ का अधिकार पाकर जोधपुर पहुँचा। इस पर पहले तो चांपावत सोनग आदि सरदारों ने मिलकर उसका सामना करने का इरादा किया, परन्तु फिर शीघ्र ही इन्द्रसिंह के अपने पुत्र को भेजकर प्रलोभन दिलवाने से वे उससे मिल गए और जोधपुर का क़िला उसे सौंपने का विचार करने लगे। इसकी सूचना मिलते ही दुर्गादास ने सोनग को शत्रुपक्ष में जाने से रोकने के लिये एक पत्र लिखा। परन्तु इन्द्रसिंह के दिए प्रलोभन के सामने इसका कुछ भी असर न होसका। इसके बाद जब वि० सं० १७३६ की भादों सुदि ७ (ई० सन् १६७९ की २ सितम्बर) को यहां का क़िला इन्द्रसिंह को सौंप दिया गया, तब शीघ्रही उसने अपनी प्रतिज्ञा भंग करदी। यह देख सोनग आदि सरदार सिरोही पहुँच दुर्गादास से मिले। इस पर पहले तो उसने उन्हें इन्द्रसिंह के दिए प्रलोभन में पड़जाने के लिये बड़ा उलाहना दिया, परन्तु फिर सबने मिलकर यवनों से युद्ध करना ठान लिया।

४. सैरुलमुताख़रीन, भा० १, पृ० ३४३।

कि नवजात कुमारों और दोनों रानियों को यहीं रक्खा जाय। इस पर दुर्गादास आदि तीन सौ सरदार तो दिल्ली में रहे, और बाकी सरदार जोधपुर को रवाने हो गऐ।

इसी समय राजकुमार दलथंभन का स्वर्गवास हो गया। अतः इन लोगों ने बालक नरेश अजितसिंहजी को वहाँ से निकाल ले जाने का प्रबन्ध किया। यद्यपि इनकी देख भाल के लिये शाही गुप्तचरों और सैनिकों का पहरा बिठा दिया गया था, तथापि सरदारों ने इन्हें बलूँदे के चाँदावत सरदार मोहकमसिंह की स्त्री बाघेली के साथ सकुशल दिल्ली से निकाल दिया।

'अजितोदय' में लिखा है कि चाँदावत मोहकमसिंह की स्त्री ने अपनी दूध पीती हुई कन्या को तो अजितसिंहजी की धाय को सौंप दिया, और वह स्वयं इन्हें लेकर मारवाड़ की तरफ़ रवाना हो गई। यह देख उसका पुत्र हरिसिंह और खीची वीर मुकुंददास भी उसके पिछे हो लिऐ। इन लोगों के निकल जाने पर दिल्ली में ठहरे हुए सरदारों ने शाही पुरुषों को धोका देने के लिये एक बालक को बनावटी राजकुमार बना लिया था।

मारवाड़ में पहुँचने पर कुछ दिन तो बालक महाराज[3] बलूँदे में ही रहे, परन्तु इसके बाद उक्त स्थान के चारों तरफ़–जैतारण, मेड़ता, बीलाड़ा और सोजत आदि में मुसलमानों का अधिकार देख खीची मुकुंददास और दुर्गादास इन्हें सिरोही की तरफ़ ले गए[4], और वहाँ पर स्वर्गवासी महाराजा जसवंतसिंहजी की रानी देवड़ीजी[5] की सलाह से पुरोहित जयदेव नामक पुष्करणे ब्राह्मण की स्त्री को सौंप दिया। इस पर वह ब्राह्मणी भी अपने गांव कालिंद्री में रहकर बड़ी होशियारी से इनका लालन-पालन करने लगी। खीची मुकुंददास भी संन्यासी का वेशकर वहीं आस-पास में बस गया, और दूर से ही बालक महाराज पर दृष्टि रखने लगा[6]।

१. अजितोदय, सर्ग ६, श्लो० ८५-९०।

२. अजितोदय, सर्ग ६, श्लो० ९१-९३, 'राजरूपक' में मोहकमसिंहजी की स्त्री का उल्लेख नहीं है। (देखो पृ० ११)।

३. अजितोदय, सर्ग ७, श्लो० १।

४. अजितोदय, सर्ग ७, श्लो० ४-७।

५. क्योंकि सिरोही का राव बादशाह के भय से इन्हें अपने यहाँ रखने में सहमत नहीं हो सका था।

६. 'राजपूताने के इतिहास' मे लिखा है कि राठोड़ दिल्ली से अजितसिंह को साथ लेकर मारवाड़ की तरफ़ गए, परन्तु संपूर्ण जोधपुर-राज्य पर बादशाह का अधिकार हो जाने



राठोड़-वीर दुर्गादास

जन्म–वि० सं० १६९५ (ई० स० १६३८) स्वर्गवास–वि० सं० १७७५ (ई० स० १७१८)

इस प्रकार जब बहुत से राठोड़-सरदार मारवाड़ की तरफ़ चले गए, तब पीछे से सावन बदी २ (१५ जुलाई) को बादशाह ने दिल्ली के कोतवाल फ़ौलादखाँ को

से अजितसिंह की चिंता रहने के कारण दुर्गादास, सोनिंग आदि ने महाराणा राजसिंह को अर्ज़ी लिखकर अजितसिंह को अपनी शरण में लेने की प्रार्थना की। उसे स्वीकार करने पर वे अजितसिंह को महाराणा के पास ले गए और महाराणा को सब ज़ेवर-सहित एक हाथी, ११ घोड़े, एक तलवार, रत्न-जटित कटार, दस हज़ार दीनार (चाँदी का सिक्का) नज़र किए। महाराणा ने उसे १२ गाँवों-सहित केलवे का पट्टा देकर वहाँ रक्खा, और दुर्गादास आदि से कहा कि बादशाह सीसोदियों और राठोड़ों की सम्मिलित सेना का मुक़ाबला नहीं कर सकता, आप निश्चिन्त रहिए। (देखो भा० ३, पृ० ८६५)।

वह (सोनिंग) उस (महाराजा जसवंतसिंह) की मृत्यु के पीछे राठोड़ दुर्गादास के साथ महाराजा अजितसिंह को लेकर महाराणा राजसिंह के पास आया। अजितसिंह के मेवाड़ से चले जाने के पश्चात् सोनिंग भी राठोड़ दुर्गादास के साथ राठोड़ों की सेना का मुखिया बनकर लड़ा। (देखो भा० ३, पृ० ८६७ पर का पृ० ८६६ के फ़ुटनोट १८ का शेषांश)।

औरंगज़ेब के साथ महाराणा की संधि होने के पश्चात् सोनिंग आदि राठोड़ महाराजा अजितसिंह को मेवाड़ से सिरोही इलाक़े में ले गए, वहाँ वह कुछ वर्षों तक गुप्त-रूप से रखा गया। (देखो भा० ३, पृ० ८९६ का फ़ुट नोट नं० ३)।

जोधपुर के महाराज अजितसिंह ने भी उन (सिरोही के देवड़ों) की सहायता की, क्योंकि वह उदयपुर छोड़ने के बाद कई वर्ष तक सिरोही-राज्य में रहा था। इस बात से महाराणा और अजितसिंह के बीच मनमुटाव हो गया। परन्तु कुछ समय बाद स्वयं अजितसिंह ने महाराणा से मेल करना चाहा। महाराजा को जोधपुर प्राप्त करने के लिये महाराणा की सहायता की आवश्यकता थी। (देखो भा० ३, पृ० ९१०)।

परन्तु वास्तव में बालक महाराजा अजितसिंहजी दिल्ली से चाँदावत ठाकुर मोहकमसिंह की ठकुरानी के साथ बलूँदे भेज दिए गए थे। उस समय खीची मुकुंददास भी इनके साथ था। इसके बाद वहाँ पर बालक महाराज का सुरक्षित रहना असंभव समझ राठोड़-वीर दुर्गादास और मुकुंददास इन्हें लेकर सिरोही पहुँचे और वहाँ पर उन्होंने स्वर्गवाही महाराजा जसवंतसिंहजी की रानी देवड़ीजी की सलाह से इनको कालिंद्री के पुष्करणे ब्राह्मण जयदेव की स्त्री को गुप्त-रूप से सौंप दिया।

इस विषय में हम मारवाड़ और मेवाड़ के इतिहासों को छोड़ कर तटस्थ लेखक यदुनाथ सरकार की 'हिस्ट्री ऑफ् औरंगज़ेब' से कुछ अवतरण उद्धृत करते हैं:-

.........दुर्गादास आकर फिर (मार्ग में) अपने बालक महाराज से मिला और उन्हें (२३ जुलाई को) सकुशल मारवाड़ में ले आया।

अजितसिंह ने गुप्त-रूप से आबू के दुर्गम पर्वतों के मठ में परवरिश पाई। (भा० ३, पृ० ३७८)।

राठोड़ों के स्थान पर भेजा। उसे आज्ञा दी गई थी कि वह अजितसिंहजी के साथ ही

उसी में आगे लिखा है कि:-

इस समय उदयपुर-नरेश के सामने दो बातें थीं। या तो वे बाग़ी राठोड़ों का साथ देते या अपनी स्वाधीनता को छोड़ते। मारवाड़ पर बादशाही अधिकार हो जाने से उनके पहाड़ी स्थान भी ख़तरे में पड़ गए थे। इसके अलावा महाराना को भी जज़िया देने के लिये दबाया गया था। इसीसे महाराना ने राठोड़ों का साथ दिया। बहुत-से सीसोदिये भी गोड़वाड़ में आए हुए राठोड़ों से मिल गए थे। (देखो भा० ३, पृ० ३८२-३८३)।

इसके अलावा उस समय महाराजा जसवंतसिंहजी का सारा माल-असबाब बादशाह ने छीन लिया था और सारे ही मारवाड़ पर मुग़लों का अधिकार हो गया था। इससे राठोड़-सरदार भी संकट में थे। ऐसी हालत में बालक महाराज की तरफ़ से महाराना को सब ज़ेवरों से सजा हुआ हाथी और दस हज़ार रुपये आदि नज़र करना और उनका महाराज को मेवाड़ में रखकर जागीर देना कहाँ तक ठीक है।

इसीप्रकार अजितसिंह के मेवाड़ से चले जाने पर सोनग का राठोड़ दुर्गादास के साथ होकर शाही सेना से लड़ने का उल्लेख भी विचारणीय है; क्योंकि इन दोनों ने वि० सं० १७३६ (ई० सन् १६८०) में ही जालोर के बिहारी पठान फ़तेहख़ाँ पर हमला किया था।

अस्तु। यहाँ पर इन इधर-उधर की बातों को छोड़कर वास्तविक बात पर विचार करना ही उचित है।

स्वयं 'राजपूताने के इतिहास' में बादशाह के और महाराना के बीच वि० सं० १७३८ की श्रावण बदी ३ (ई० सन् १६८१ की २४ जून) को संधि होना लिखा है (देखो भा० ३, पृ० ८६७), परन्तु दुर्गादास तो इससे २३ दिन पूर्व ही दक्षिण में शंभाजी के राज्य के पालीनगर में जा पहुँचा था। (देखो 'हिस्ट्री ऑफ़ औरंगज़ेब,' भा० ४, पृ० २४६) 'मआसिरेआलमगीरी' में भी अकबर और दुर्गादास का (हि० सन् १०९२ की ७ जमादि-उल-अव्वल (वि० सं० १७३८ की ज्येष्ठ सुदि ८=ई० सन् १६८१ की १५ मई) को दक्षिण में पहुँचना लिखा है, और महाराना के साथ की संधि की तिथि ७ जमादि-उल-आख़िर (आषाढ़ सुदी ६=१४ जून) लिखी है। (देखो पृ० २०६-२०८) ऐसी हालत में उक्त घटना के बाद दुर्गादास का बालक महाराज को ले जाकर सिरोही की तरफ़ छिपाना और सोनग के (जो उसके दक्षिण से लौटने के पूर्व ही मर चुका था) साथ मिलकर शाही सैनिकों से युद्ध करना कहाँ तक संभव हो सकता है।

रहा महाराज को जोधपुर प्राप्त करने में महाराना की सहायता की आवश्यकता का प्रतीत होना, सो न तो स्वयं 'राजस्थान के इतिहास' मे ही वि० सं० १७६३ (ई० सन् १७०७) की घटनाओं में इस प्रकार की सहायता का उल्लेख है, न किसी अन्य इतिहास में ही। हाँ हम यह मान लेने को तैयार है कि अन्य अनेक राजनैतिक कारणों से सीसोदियों के भी राठोड़ों के साथ बग़ावत इख़्तियार कर लेने से दोनों पक्षों को एक-दूसरे से समय-समय पर सहायता मिलती थी, और वे एक दूसरे के रहस्यों से भी बहुत कुछ परिचय रखते थे। परन्तु इससे यह सिद्ध करना कि जोधपुर के बालक महाराज को शरण देने के कारण ही महाराना को बादशाह का कोप-भाजन होना पड़ा था, नितांत असत्य है।

स्वर्गवासी महाराज की दोनों रानियों को भी रूपसिंह राठोड़ की हवेली[1] से लाकर नूर-गढ़ में रख दे, और यदि उनके साथ के राठोड़ इसमें बाधा दें, तो उन्हें दंड दे। इसी के अनुसार वह शाही सैनिकों को लेकर राठोड़ों के स्थान पर जा पहुँचा, और उनसे बादशाह की आज्ञा के पालन करने का आग्रह करने लगा। परन्तु स्वामि-भक्त राठोड़ इसकी कुछ भी परवा न कर युद्ध के लिये तैयार हो गए।

जैसे ही यह समाचार महाराज की दोनों रानियों के पास पहुँचा, वैसे ही वे भी मर्दाना वेशकर अपने सुभटों का युद्ध देखने और उन्हें उत्साहित करने को मैदान में आ खड़ी हुईं। यह देख शाही सेना ने राठोड़ों पर हमला कर दिया। इस पर दोनों तरफ़ से घमसान युद्ध मच गया। पहले पहल भाटी रघुनाथ (की अध्यक्षता में १०० राजपूत वीरों) ने बड़ी वीरता से यवन-वाहिनी का सामना किया। इस युद्ध में दोनों तरफ़ के अनेक योद्धा मारे गए। इसके बाद जब राठोड़ों की संख्या बहुत कम रह गई, तब दुर्गादास आदि बचे हुए सरदारों ने दोनों रानियों के क्षत-विक्षत शरीरों को[3] यमुना में

---

१. बादशाह ने इन्द्रसिंह को जोधपुर का राज्य देने के साथ ही दिल्ली में की महाराज की हवेली भी दे दी थी। इसलिये ये लोग किशनगढ़-नरेश की हवेली में ठहरे थे। 'अजितोदय' में सरदारों का यमुना के किनारे ठहरना लिखा है। (देखो सर्ग ६, श्लो० ५८)।

२. मआसिरेआलमगीरी, पृ० १७७-१७८; अजितोदय, सर्ग ७, श्लो० १०-१८।

३. अजितोदय, सर्ग ७, श्लो० १६-२०। 'राजरूपक' में लिखा है कि रानियों ने अपने सिर कटवाकर पति का अनुगमन किया था। किसी-किसी ख्यात में इनके सिर काटनेवाले का नाम जोधा चंद्रभान लिखा है। यदुनाथ सरकार ने अजितसिंहजी की माता का मेवाड़ राजवंश की होना और उसका दिल्ली से मारवाड़ पहुँच महाराना से सहायता माँगना लिखा है। (हिस्ट्री ऑफ़ औरंगज़ेब, भा० ३, पृ० ३७७-३७८ और ३८३-३८४) यह ठीक प्रतीत नहीं होता।

वी० ए० स्मिथ ने भी अपनी 'ऑक्सफ़र्ड हिस्ट्री ऑफ़ इन्डिया' में क़रीब-क़रीब यही बात लिखी है। (देखो पृ० ४३८)।

बालकृष्ण दीक्षित-रचित 'अजित-चरित्र' में लिखा है–

प्रेषणीयावतो देशे धात्रीभ्यां सहिताबुभौ ;
युद्धेस्मिन्गतिरस्माकं खड्गेनैव न संशयः।
तदा क्षत्रिया विस्मिताः प्रोचुरेनां
स्वदेशेषु-युक्तो गमः श्रीमतीनाम् ;
तथा नेति चोक्तं गमः पुत्र योस्ते
ध्वजिन्या समं कारयामासुरेते।

(सर्ग ८, श्लो० ११-१२।)

प्रवाहित कर लड़ते-भिड़ते मारवाड़ का मार्ग लिया। तुगलकाबाद तक तो शाही सेना भी इनके पीछे लगी रही, परन्तु अंत को रात्रि के कारण उसे आगे बढ़ने का साहस न हुआ।

राठोड़ों के चले जाने के बाद जब फ़ौलादख़ाँ को बालक महाराज का कुछ भी पता न चला, तब उसने उनके बदले एक दूध बेचनेवाले के बालक को लेजाकर बादशाह के सामने उपस्थित कर दिया। बादशाह ने भी उसे वास्तविक राजकुमार समझ[2] उसका नाम मोहम्मदीराज रक्खा, और उसे अपनी कन्या ज़ेबुन्निसा बेगम

---

१. मआसिरेआलमगीरी, पृ० १७८। उक्त इतिहास में यह भी लिखा है कि इस युद्ध में राठोड़ों के जोधा रणछोड़दास आदि ३० सरदार मारे गए, और बादशाह के बहुत से सैनिक क़त्ल हुए।

अजितोदय, सर्ग ७ श्लो० १६–८८।

परन्तु यदुनाथ सरकार ने लिखा है कि जिस समय भाटी रघुनाथ यवन-सैनिकों का ध्यान अपनी तरफ़ खींचे हुए था, उसी समय राठोड़ दुर्गादास रानियों को मरदाने भेस में लेकर मय राजकुमार के मारवाड़ की तरफ़ चल पड़ा। परन्तु जब डेढ़ घंटे के युद्ध में अन्य ७० राजपूत-वीरों के साथ ही रघुनाथ भी मारा गया, तब यवनों ने दुर्गादास का पीछा किया, और उसके क़रीब ६ मील पहुँचते-पहुंचते उसे जा घेरा। इस पर रणछोड़दास जोधा ने थोड़े-से वीरों को लेकर उनका मार्ग रोक लिया। परन्तु इन मुट्ठी-भर वीरों के मारे जाने पर फिर मुग़ल सैनिकों ने इनका पीछा किया। तब दुर्गादास ने महाराज के परिवार को तो ४० योद्धाओं के साथ मारवाड़ की तरफ़ रवाना कर दिया, और स्वयं ५०० वीरों के साथ पलटकर मुग़लों का सामना किया। इस बार घंटे-भर के युद्ध के बाद ही सूर्यास्त का समय हो जाने और दिन-भर के युद्ध में थक जाने के कारण यवन-सेना शिथिल पड़ गई। अतः जिस समय अपने बचे हुए ७ आहत योद्धाओं के साथ दुर्गादास यवन-वाहिनी में से मार्ग काटकर निकल गया, उस समय मुग़ल-सेना भी दिल्ली को लौट गई। इसके बाद दुर्गादास भी महाराज के परिवार के साथ श्रावण बदी ११ (२३ जुलाई) को मारवाड़ में पहुँच गया।

(हिस्ट्री ऑफ़ औरंगज़ेब, भा० ३, पृ० ३७७–३७८)।

२. मआसिरेआलमगीरी में लिखा है कि बादशाह ने उस बालक को राठोड़ों के डेरे से पकड़ कर लाई गई दासियों को दिखलाकर अपनी तसल्ली करली थी।

परन्तु इतिहास से प्रतीत होता है कि स्वामि-भक्त दासियों ने उसे साफ़ धोका दिया था। उसमें यह भी लिखा है कि फ़ौलादख़ाँ ने दूसरे दिन लड़के का कुछ ज़ेवर भी लाकर बादशाह के सामने पेश किया था। राठोड़-सरदारों का कुछ माल भी बादशाह के हाथ आया। (देखो पृ० १७८)।

'मआसिरुलउमरा' में भी अजितसिंहजी को जसवंतसिंहजी का असली पुत्र लिखा है। (देखो भाग ३ पृ० ७५५) 'सैहरुल मुताख़रीन' में लिखा है कि राठोड़ों ने वहाँ पर असली महाराजकुमारों के बदले नक़ली बालकों को रख कर दिल्ली से कूच कर दिया, और पीछे ठहरनेवाले

को सौंप दिया[1]।

इन दिनों मुगल सैनिक मारवाड़ में मनमाने अत्याचार करने लगे थे। यह देख सातलवास के (माधोदासोत) मेड़तिए राजसिंह ने अपने भाई बन्धुओं को एकत्रित कर मेड़ते पर चढ़ाई कर दी। इस पर वहाँ का हाकिम शेख़ सादुल्लाख़ाँ उससे लड़ने के लिये नगर के बाहर निकल आया। राजसिंह के निकट पहुँचने पर दोनों तरफ़ से घमासान युद्ध होने लगा। परन्तु शाम होने पर सादुल्लाख़ाँ नगर का भार (केशवदासोत) मेड़तिये पृथ्वीसिंह को सौंपकर स्वयं क़िले में चला गया। दूसरे दिन कुछ ही देर के युद्ध के बाद क़िला राजसिंह के हाथ आ गया, और सादुल्लाख़ाँ पकड़ा गया। इस पर मेड़ते के मन्दिरों में फिर से मूर्तिपूजन होने लगा[2]।

सावन वदि ११ (२३ जुलाई) को बचे हुए राठोड़-सरदार भी दिल्ली से जोधपुर पहुँच गए। इनकी ज़बानी दिल्ली के युद्ध का हाल सुनकर चाँपावत वीर सोनग और भाटी राम आदि ने (अजमेर के फ़ौजदार) तहव्वरख़ाँ को जोधपुर से निकाल कर नगर पर अधिकार कर लिया। इसी प्रकार धवेचा सुजानसिंह ने सिवाने के क़िले को भी हस्तगत कर लिया[3]।

इन घटनाओं की सूचना पाते ही बादशाह तहव्वरख़ाँ से नाराज़ हो गया और उसने उसका ख़ाँ का ख़िताब छीनकर उससे अजमेर की फ़ौजदारी भी ले ली। इसी प्रकार इंद्रसिंह को भी अयोग्य समझ उसके पास दिल्ली लौट आने की आज्ञा भेज दी। इसके बाद भादों वदि ६ (१७ अगस्त) को बादशाह ने फिर से राठोड़ों को परास्त कर जोधपुर पर अधिकार करने के लिये सरबलंदख़ाँ की अधीनता में एक बड़ी सेना

अपने साथियों से कह दिया कि यदि किसी तरह यह भेद खुल जाय, तो वे शाही सैनिकों से युद्ध छेड़ कर कुछ समय तक उन्हें वहीं रोक रक्खें। इसके बाद वे ही नक़ली बालक बादशाही महल मे पहुँचाए गए, और बहुत समय तक लोग उन्हें ही असली महाराजकुमार समझते रहे। (देखो पृ० ३४३)।

'मुंतख़िलबुल्लुबाब' से भी इसी बात की पुष्टि होती है। उसमें यह भी लिखा है कि जब तक रानाजी ने अपने कुटुम्ब की कन्या से अजितसिंहजी का संबंध नहीं कर दिया, तब तक बादशाह का उनके विषय का संदेह दूर नहीं हुआ। (देखो भाग २ पृ० २६०)।

१. मआसिरेआलमगीरी, पृ० १७८।

२. अजितोदय, सर्ग ८, श्लो० १-३४।

३. अजितोदय, सर्ग ८, श्लो० ३०-३२।

रवानी की। इस सेना ने जोधपुर पहुँच दुबारा वहाँ पर कब्जा कर लिया। इन्हीं दिनों इस गड़बड़ से मौक़ा पाकर पड़िहारों ने भी फिर से अपनी पुरानी राजधानी मंडोर पर अधिकार कर लिया था।

इसी बीच मेड़तिया राजसिंह द्वारा मेड़ते के छीने जाने की सूचना पाकर अजमेर के फ़ौजदार तहव्वरख़ाँ ने उस पर फिर अधिकार करने का विचार किया, और इसी के अनुसार वह अपनी सेना को लेकर पुष्कर पहुँचा। इतने में राजसिंह भी अपनी राठोड़-वाहिनी को लेकर उसके मुक़ाबले को आ गया। तीन दिन तक दोनों तरफ़ से घोर युद्ध होता रहा। अंत में शाही सेना को नष्ट करता हुआ राजसिंह भी अपने भाइयों के साथ इसी युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुआ[2]। यह घटना भादों बदी ९ (१९ अगस्त) की है।

भादों बदी १३ (२३ अगस्त) को जब बादशाह को इसकी सूचना मिली, तब भादों सुदी ८ (३ सितम्बर) को वह स्वयं अजमेर की तरफ़ रवाना हुआ, और उसी दिन उसने पालम के मुक़ाम से अपने शाहज़ादे मोहम्मद अकबर को आगे चलकर अजमेर पहुँचने की आज्ञा दी[3]।

आसोज (क्वाँर) सुदी १ (२५ सितम्बर) को जब बादशाह अजमेर पहुँच गया[4], तब भाटी रामसिंह ने ख़ाँजहाँ बहादुर को पत्र लिखकर एक बार फिर बादशाह को समझाने और महाराज अजितसिंहजी को उनका पैतृक राज्य दिलवा देने की प्रार्थना की। परन्तु किसी प्रकार इसकी सूचना राव इन्द्रसिंह को मिल गई। अतः उसके आदमियों ने अचानक जोधपुर पहुँच रामसिंह के मकान को घेर लिया। इस पर वह वीर भी तलवार लेकर बाहर निकल आया, और सम्मुख रण में लड़ता हुआ शत्रुओं के हाथों मारा गया[5]।

१. मआसिरेआलमगीरी, पृ० १७६।
(हिस्ट्री ऑफ़ औरंगज़ेब, भाग ३, पृ० ३७६)।

२. मआसिरेआलमगीरी, पृ० १७६-१८० और 'अजितोदय', सर्ग ८, श्लो० ३५-७०। 'राजरूपक' मे इस युद्ध का भादों सुदी ११ को होना लिखा है। (देखो पृ० १८)।

३. मआसिरेआलमगीरी, पृ० १८०।

४. मआसिरेआलमगीरी, पृ० १८१।

५. यह घटना 'अजितोदय' से लिखी गई है (सर्ग ६, श्लो० १४-२२)। 'अजित-ग्रंथ' से भी इसकी पुष्टि होती है। (देखो, छंद ३१४-३१६) 'मआसिरे-आलमगीरी' में सावन

इसी बीच बादशाह के अजमेर पहुँचते ही सरबलंद और शाहज़ादे अकबर की सेनाओं ने मेड़ते की तरफ़ होकर जोधपुर पर चढ़ाई की। आश्विन बदी २ (२६ सितम्बर) को बादशाह ने इलाहाबाद के सूबेदार हिम्मतख़ाँ को भी अकबर की सहायता के लिये भेज दिया[1]।

यद्यपि राठोड़-वीर मार्ग में स्थान-स्थान पर इस सम्मिलित मुग़ल-सैन्य का सामना कर इसकी गति में बाधा खड़ी करने लगे, तथापि अंत में इस विशाल सेना ने अपना मार्ग साफकर हिन्दू-मन्दिरों को नष्ट-भ्रष्ट करना शुरू किया। मेड़ता, डीडवाना, रोहट, परबतसर आदि पर भी शाही सेना का क़ब्ज़ा हो गया।

इसके बाद ही बादशाह ने मारवाड़ के भिन्न-भिन्न प्रांतों में अपने फ़ौजदार भेज दिए, और इस प्रकार मारवाड़ पर अधिकार हो जाने से उन्मत्त होकर यवनों ने हर तरफ़ अत्याचार करने शुरू किए। यह देख महाराना राजसिंहजी ने राठोड़ों का साथ देना उचित समझा[2]। और इसीके अनुसार राठोड़ों के २५,००० और सीसोदियों के १२,००० सवारों[3] ने मिलकर शाही सेना को हैरान करना प्रारम्भ किया। इस पर बादशाह और भी क्रुद्ध हो गया, और उसने तहव्वरख़ाँ आदि मुसलमान-अमीरों और

में ही बादशाह का इंद्रसिंह को दिल्ली बुला लेना लिखा है। परन्तु बादशाह के अजमेर आते समय वह भी शाही सेना के साथ था।

किसी-किसी ख्यात में इसका भादों सुदी १ को बादशाह की आज्ञा से जोधपुर आना और भादों सुदी ७ को क़िले पर चढ़ाई करना लिखा है। उसमे यह भी लिखा है कि आसोज सुदी १३ को यह फिर से सिवाने पर अधिकार करने को गया था। परन्तु वहाँ पर इसे सफलता नहीं हुई।

१. मआसिरेआलमगीरी, पृ० १८१।

2. Lord of Udaipur had to choose between rebellion and the loss of whatever is dearest to man. The Mughal annexation of Marwar turned his left flank and exposed his country to invasion through the Aravali passes on its western side, while the eastern half of his State, being comparatively level, lay open to a foe as before. The mountain fastness of Kamalmir, which had sheltered Partap during the dark days of Akber's invasion, would cease to be an impregnable refuge to his successor. The annexation of Marwar was but the preliminary to an easy conquest of Mewar. Besides, Aurangzeb's compaign of temple destruction was not likely to stop within the imperial dominions........On the revival of the Jaziya tax, a demand for its enforcement throughout his State had been sent to the Maharana. If the Sisodias did not stand by the Rathors now, the two clans would be crushed piecemeal, and the whole of Rajasthan would lie helpless under the tyrant's feet. So thought Maharana Raj Singh. (History of Aurangzeb, Vol. III. P. 382-383.)

३. 'हिस्ट्री ऑफ़ औरंगज़ेब', भाग ३, पृ० ३८६।

मोहकमसिंह आदि हिन्दु सरदारों को मेवाड़ के भिन्न-भिन्न परगनों पर अधिकार करने के लिये रवाना किया। साथ ही मँगसिर सुदि ८ (३० नवम्बर) को वह स्वयं भी अजमेर से उदयपुर की तरफ़ चला। इस पर मोहम्मद अकबर, जो उस समय मेड़ते में था, दिवराई में आकर बादशाह से मिला[1]। पौष बदी ६ (१६ दिसम्बर) को शाहज़ादा मोहम्मदआज़म भी बंगाल से आकर बादशाह के साथ हो लिया। जब महाराना को यह समाचार मिला, तब वह उदयपुर छोड़कर पहाड़ों के आश्रय में चले गए[3]। इस पर मारवाड़ के बहुत से राठोड़ भी उनके पास जा पहुँचे। यह देख बादशाह ने इधर तो हसनअली को रानाजी का पीछा करने की आज्ञा दी, और उधर उदयपुर में मन्दिरों को नष्ट-भ्रष्ट करने का प्रबंध किया। यद्यपि वीर सीसोदियों ने भी ऐसे समय आत्म-बलि देकर यवनों को रोकने की बहुत कुछ चेष्टा की, तथापि उनके विशाल समूह के आगे वे कृतकार्य न हो सके[4]।

इस प्रकार मेवाड़ की दुर्दशा होते देख राठोड़ उत्तेजित हो उठे। दुर्गादास तथा सोनग ने और भी ज़ोर-शोर से मारवाड़ में उपद्रव शुरू करने का प्रबंध किया। इसीके अनुसार ये लोग पहले जालोर पहुँचे। परन्तु इनके उत्पात से डरकर वहाँ के शासक फ़तेहखाँ[5] ने इन्हें कुछ दे-दिलाकर संधि कर ली। इस पर ये लोग वहाँ से बीलाड़े की

१. 'मआसिरेआलमगीरी' में इन्हीं में इन्द्रसिंह का भी नाम है। (देखो पृ० १८२)।

२. मआसिरेआलमगीरी, पृ० १८२।

३. मआसिरेआलमगीरी, पृ० १८६।

४. मआसिरेआलमगीरी, पृ० १८६।

५. 'तवारीखेपालनपुर' में लिखा है कि बादशाह ने वि० सं० १७३६ की फागुन सुदी १४ को गुजरात के सूबेदार की सिफ़ारिश से जालोर, साँचोर और भीनमाल के प्रांत फ़तेहखाँ को दे दिए थे। (देखो पृ० १४६) ये प्रांत पहले इसके पूर्वजों के अधिकार में भी रह चुके थे। परन्तु इस समय केवल पालनपुर पर ही इसका अधिकार था। यह प्रबंध बादशाह ने राठोड़ों को दबाने के लिये ही किया था।

टॉड ने अपने राजस्थान के इतिहास में लिखा है कि जिस समय बादशाह उदयपुर पर हमला करने में लगा था, उसी समय उसे दुर्गादास के जालोर पर आक्रमण करने की सूचना मिली। इस पर वह अपनी उदयपुर की विजय को छोड़ कर अजमेर लौट आया, और उसने मुकर्रबखाँ को बिहारियों की मदद पर भेजा। परन्तु उसके वहाँ पहुँचने के पूर्व ही दुर्गादास दंड के रुपये लेकर जोधपुर की तरफ़ चला गया था। (देखो भाग २, पृ० ६६६)।

'राजरूपक' में भी बादशाह का मुकर्रब को जालोर की रक्षार्थ भेजना लिखा है। परन्तु 'मआसिरेआलमगीरी' में लिखा है कि बादशाह ने उदयपुर से अजमेर की तरफ़ लौटते समय मुकर्रमख़ाँ को रणथंभोर (या बदनोर) की तरफ़ भेजा था ।(पृ० १६०)।

तरफ़ चले गए।

जैसे ही इसकी सूचना बादशाह को मिली वैसे ही वह चित्तौड़ की रक्षा का भार शाहज़ादे मोहम्मद अकबर को देकर, चैत्र बदी १ (ई० सन् १६८० की ६ मार्च) को उदयपुर से अजमेर को लौट चला और वि० सं० १७३७ की चैत्र सुदी २ (२२ मार्च) को वहाँ आ पहुँचा।

इसी प्रकार जब इन्द्रसिंह को राठोड़-सरदारों के बीलाड़े की तरफ़ जाने की सूचना मिली, तब वह भी बदनोर से इनके मुक़ाबले को चला[3]। खेतासर के तालाब के पास दोनों की मुठभेड़ हुई। दिन-भर तो दोनों तरफ़ के वीरों ने जी खोलकर तलवार चलाई। परन्तु सायंकाल के समय इन्द्रसिंह की सेना के पैर उखड़ गए। इसके बाद दुर्गादास आदि वीर चेराई गाँव में पहुँचे, और जोधपुर पर चढ़ाई करने का विचार करने लगे। इसकी सूचना पाते ही पहले तो इन्द्रसिंह ने राठोड़ों को अपनी तरफ़ मिलाने की चेष्टा की। परन्तु जब अनेक प्रलोभन दिखलाने पर भी इसमें उसे सफलता नहीं हुई, तब वह स्वयं जोधपुर चला आया, और यहीं से बादशाह को सारा हाल लिख भेजा। इस पर उसने तत्काल नवाब मुकर्रमख़ाँ को जोधपुर की तरफ़ रवाना किया। अतः जिस समय राठोड़ों की सेना जोधपुर को घेरकर उस पर अधिकार करने का उद्योग कर रही थी, उसी समय वह यहाँ आ पहुँचा। इस पर ये लोग जोधपुर का घेरा उठाकर मेवाड़ की तरफ़ चले गए। यद्यपि नवाब और इन्द्रसिंह ने बहुत कुछ इनका पीछा करने की चेष्टा की, तथापि ये उनके हाथ न आए।

---

१. अजितोदय, सर्ग ६, श्लो० २७।

२. मआसिरुलउमरा, पृ० १६० ।

३. 'राजरूपक' में इस घटना का वि० सं० १७३७ की ज्येष्ठ सुदी १० को होना लिखा है।

४. अजितोदय, सर्ग ६, श्लो० २८-४७। 'राजरूपक' में इस युद्ध का वि० सं० १७३७ की जेष्ठ सुदी १३ को होना लिखा है।

५. ख्यातों में लिखा है कि जब दुर्गादास आदि के सामने राव इन्द्रसिंह को सफलता की आशा नहीं रही, तब उसने पाली ठाकुर चांपावत उदैसिंह और कूंपावत प्रतापसिंह (सुंदर सेणोत) को उन्हें समझाने के लिये भेजा। परन्तु दुर्गादास ने इनकी बात मानने से इन्कार करदिया और उदैसिंह को धिक्कारते हुए कहा कि तुम महाराजा जसवन्तसिंहजी की कृपा से ही पाली की जागीर का उपभोग करते थे, उसका बदला क्या इसी प्रकार देते हो ?, यह सुन वह बहुत लज्जित हुआ और राव इन्द्रसिंह का साथ छोड़ दुर्गादास के साथ होगया।

६. अजितोदय, सर्ग १०, श्लो० १-१६। 'मआसिरे-आलमगीरी' में बीलाड़े और जोधपुर की इस चढ़ाई का उल्लेख नहीं मिलता है।

इसके बाद राठोड़ सरदार रानाजी के साथ मिलकर[1] सोजत और जैतारण के प्रांतों में मार-काट करने और वहाँ की रबी की फ़सल को लूटने लगे। यह देख वहाँ के शाही हाकिमों ने सारा हाल बादशाह को लिख भेजा। इस पर उसने वि० सं० १७३७ की जेष्ठ बदी ४ (६ मई) को हामिदख़ाँ को सोजत और जैतारण में उपद्रव करने वाले राठोड़ों को दबाने के लिये रवाना किया[2]। परन्तु जब उसे सफलता नहीं मिली, तब बादशाह ने शाहज़ादे मोहम्मदआज़म को तो चित्तौड़ की रक्षा के लिये भेजा, और शाहज़ादे अकबर को सोजत और जैतारण पहुँच राठोड़ों को दंड देने की आज्ञा दी[3]। इसी के अनुसार वह (वि० सं० १७३७ की आषाढ़ सुदी ६=ई० सन् १६८० की २५ जून को) चित्तौड़ से रवाना होकर बरकी-घाटी के मार्ग से मारवाड़ को चला। उसकी सेना के अग्र-भाग का मार्ग साफ़ करने के लिये तहव्वरख़ाँ नियत किया गया। यह देख राठोड़ों ने मार्ग में स्थान-स्थान पर आक्रमण कर मुग़ल-सेना के बढ़ने में बाधा डालनी शुरू की। ब्यावर और मेड़ते के पास तो और भी जमकर सामना किया। परन्तु अंत में सावन सुदी ३ (१८ जुलाई) को शाहज़ादे अकबर ने दल-बल-सहित सोजत पहुँच उसे अपना सदर मुक़ाम बनाया।

इस पर राठोड़ अपने को भिन्न-भिन्न दलों में बाँटकर देश में चारों तरफ़ मार-काट करने और देश को उजाड़ने लगे। ये लोग जहाँ कहीं मौक़ा पाते, मुग़लों की चौकियों पर टूटकर उन्हें नष्ट कर देते या मार्ग में उनकी रसद को लूटकर उन्हें तंग करते थे। इससे मुग़लों को हर समय अपनी चौकियों आदि की रक्षा के लिये चौकन्ना या इधर उधर घूमते रहना पड़ता था। यदि राठोड़ों का एक दल मारवाड़ के दक्षिणी भाग-जालोर और सिवाने पर अचानक आक्रमण करता था, तो दूसरा मारवाड़ के पूर्वी भाग-गोड़वाड़ पर टूट पड़ता था। इसी प्रकार तीसरा दल देश के उत्तरी भाग में स्थित नागौर को लूटता, तो चौथा तत्काल ईशान-कोण के प्रदेश डीडवाना और साँभर में मार-काट मचा देता था। इससे मुग़ल सेना बहुत हैरान हो गई[4]।

१. 'राजरूपक' से ज्ञात होता है कि राना राजसिंहजी ने बादशाह से बदला लेने के लिये अपने पुत्र राजकुमार भीम को सेना देकर राठोड़ों के साथ कर दिया था।

२. मआसिरेआलमगीरी, पृ० १६३।

३. मआसिरेआलमगीरी, पृ० १६४। अजितोदय, सर्ग १०, श्लो० २६-२७।

४. 'हिस्ट्री ऑफ़ औरंगज़ेब', भाग ३, पृ० ३६२-३६३।

उन दिनों राठोड़ों का मुख्य शिविर नाडोल में था, और वहीं से ये लोग राणाजी से मिलकर मेवाड़ के यवनों को भी तंग किया करते थे। अतः सोजत पहुँचते ही शाहज़ादे अकबर ने तहव्वरख़ाँ को नाडोल हस्तगत कर कुंभलमेर पर आक्रमण करने की आज्ञा दी। परन्तु अपने प्राणों के मोह को त्यागकर रणांगण में जूँझनेवाले राठोड़-वीरों का एकाएक मुक़ाबला करने की उसके सैनिकों की हिम्मत न हुई। इसलिये कई महीने तो तैयारी में ही लगा दिए गए। इसके बाद मार्ग में फिर सैनिकों के आगे बढ़ने से इनकार कर देने पर उसे एक मास तक खरवे में रुकना पड़ा। अंत में जब बड़ी मुशकिल से वह सेना नाडोल पहुँची, तब फिर मुग़लों को भयने आ घेरा। इस पर लाचार होकर आश्विन सुदी ८ (२१ सितम्बर) को स्वयं शाहज़ादे अकबर को सोजत से वहाँ जाना पड़ा। यद्यपि इस समय तक जोधपुर से (सोजत होते हुए) नाडोल तक मार्ग में स्थान-स्थान पर शाही चौकियों का प्रबंध कर रसद आदि के लिये मार्ग साफ़ कर दिया गया था, तथापि तहव्वरख़ाँ ने पहाड़ी मार्ग में आगे बढ़ने से इनकार कर दिया। अंत में अकबर के बहुत दबाव डालने पर आश्विन सुदी १४ (२७ सितम्बर) को जैसे ही वह आगे बढ़ देसूरी की घाटी के पास पहुँचा, वैसे ही राठोड़ों और राजकुमार भीम की सम्मिलित सेनाओं ने पहाड़ों से निकल उस पर आक्रमण कर दिया[1]। दोनों तरफ़ के वीर एक दूसरे को पछाड़ने में बहादुरी दिखाने लगे। परन्तु पूरी सफ़लता किसी पक्ष को न मिली[2]। इसके बाद राठोड़ों ने वहाँ रहना अनुचित समझ बीटणी की तरफ़ प्रयाण किया और वहाँ पर लूट-मारकर ये लोग मेड़ते की तरफ़ चले आए। इस पर मँगसिर बदी १३ (९ नवम्बर) को हामिदख़ाँ को उधर जाने की आज्ञा दी गई। परन्तु राठोड़ों ने इसकी भी कुछ परवा नहीं की, और डीडवाने[3] तथा सांभर में जाकर उपद्रव शुरू कर दिया।

यह देख मँगसिर सुदी २ (१३ नवंबर) को रुहुल्लाख़ाँ तो मोहम्मद अकबर की सहायता को भेजा गया[4], और मुग़लख़ाँ को साँभर और डीडवाने की रक्षा के लिये जाने

१. 'राजरूपक' में इस युद्ध का नाडोल में होना लिखा है।

२. हिस्ट्री ऑफ़ औरंगज़ेब, भा० ३, पृ० ३६४-३६५।

३. अजितोदय, सर्ग १०, श्लो० ५१-५२।

४. 'हिस्ट्री ऑफ़ औरंगज़ेब' में लिखा है:-

मँगसिर सुदी ७ (१८ नवम्बर) को बादशाह का भेजा हुआ रुहल्लाख़ाँ नवीन सेना और ख़र्च के रुपयों के साथ नाडोल पहुँचा। उसके द्वारा बादशाह ने शाहज़ादे अकबर को शीघ्र ही आगे बढ़ने

की आज्ञा मिली । इसी के १८वें रोज़ शाहज़ादे कामबख़्श का बख़्शी मोहम्मद नईम भी अकबर की सहायता के लिये भेज दिया गया । इस पर राठोड़-सरदार फलोदी की तरफ़ चले गए, और वहाँ पर युद्ध की सामग्री आदि का संग्रह कर फिर गोड़वाड़ की तरफ़ लौट आए । इसके बाद एक बार फिर ये मैदान के युद्धों में अपने सवारों द्वारा और पहाड़ी लड़ाइयों में पैदल सैनिकों द्वारा समय-समय पर शाही सेना से सम्मुख रण में लोहा लेकर अथवा उसकी रसद आदि को लूटकर या उस पर नैश आक्रमण कर यथासंभव उसे तंग करने लगे ।

इधर यह सब हो रहा था और उधर दुर्गादास ने मारवाड़ के उद्धार के लिये पहले गुजरात की तरफ़ जाकर उपद्रव करने का इरादा किया। परन्तु अंत में एक नवीन युक्ति सोच निकाली । उसी के अनुसार इसने शाहज़ादे मुहम्मद मोअ़ज़्ज़म को अपने पिता का पदानुसरण कर राठोड़ों की सहायता से बादशाह बन जाने के विषय में पत्र लिखे। पर जब इसमें सफ़लता की आशा न देखी, तब इसी विषय की बातचीत शाहज़ादे मोहम्मद अकबर से शुरू की । इस पर उक्त शाहज़ादे ने अपने अधीनस्थ सेनापति तहव्वरख़ाँ से सलाह कर इस बात को अंगीकार कर लिया, और अपने बादशाह हो जाने पर महाराजा अजितसिंहजी को उनका राज्य लौटा देने की प्रतिज्ञा की[3] ।

की आज्ञा भेजी थी । अतः वह दूसरे ही दिन नाडोल से देसूरी की तरफ़ चला, और वहाँ पहुँचकर मँगसिर सुदी ११ (२२ नवम्बर) को उसने तहव्वरख़ाँ को झीलवाड़े की तरफ़ रवाना किया। यद्यपि मार्ग में राजपूत-वीरों ने सम्मुख रण में प्रवृत्त हो भीषण मार-काट मचाई, तथापि अपनी संख्याधिकता के कारण अंत में किसी तरह मुग़ल-सेना कुंभलमेर से ८ मील उत्तर के झीलवाड़ा ग्राम में पहुँच कर ठहर गई । (देखो भाग ३, पृ० ३६६-३६७) ।

१. मआसिरेआलमगीरी, पृ० १९५ ।

२. अजितोदय, सर्ग १० श्लो० ५२-५३।

(बादशाह राठोड़ों से इतना क्रुद्ध हो गया था कि वह मारवाड़ को उजाड़ देने तक को उद्यत था। उसने अपने अमीरों को आज्ञा देदी थी कि जोधपुर और उसके आस-पास के प्रदेशों को बर्बाद कर दो, शहर और गाँवों को जला दो, फलवाले दरख़्तों को काट दो, स्त्री-पुरुषों को पकड़कर गुलाम बना डालो और सारी रसद को लूट लो ।) ।

३. 'अजितोदय' और 'राजरूपक' में अकबर की तरफ़ से इस प्रस्ताव का किया जाना लिखा है । (देखो सर्ग ११, श्लो० ४-६)।

इसके बाद ही दुर्गादास आदि सरदारों ने शाहज़ादे अकबर से मिलकर नाडोल में उसका बादशाह होना घोषित कर दिया[1], और साथ ही ये लोग उक्त नवीन बादशाह को लेकर पुराने बादशाह औरङ्गज़ेब पर चढ़ चले। जैसे ही इसकी सूचना औरङ्गज़ेब को मिली, वैसे ही एक बार तो वह बिलकुल ही घबरा गया; क्योंकि उस समय उसके पास कुल मिलाकर दस हज़ार से भी कम अनुयायी थे। अतः उसने अपने निवासस्थान के चारों तरफ़ मोरचे बँधवाकर पास की पहाड़ियों पर तोपें लगवा दीं। इसी बीच वि० सं० १७३७ की माघ बदी ३० (ई० सन् १६८१ की ६ जनवरी) को शहाबुद्दीनख़ाँ, जो सोनग और दुर्गादास को गुजरात की तरफ़ जाकर उपद्रव करने से रोकने के लिये सिरोही की तरफ़ भेजा गया था, अजमेर लौट आया। यह मीरकख़ाँ को भी, जो शाहज़ादे अकबर के साथ था, समझा-बुझाकर अपने साथ ले आया[2] था। परन्तु अपने बादशाहत पाने की ख़ुशी में मस्त हुए और नाच-रंग में लगे अकबर ने इधर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। इसी प्रकार धीरे-धीरे और भी कई अमीर उसकी सेना से निकल गए[3]।

जब चार-पाँच दिनों में इधर-उधर से आकर कुछ और सेना औरङ्गज़ेब के शिविर में इकट्ठी हो गई, तब वि० सं० १७३७ की माघ सुदि ४ (ई० सन् १६८१ की १३ जनवरी) को वह अजमेर से निकल कर ६ मील दक्षिण के दोवराई नामक गाँव में पहुँचा। वहीं पर उसे शाहज़ादे अकबर और राजपूत सैनिकों के कुड़की में (अजमेर से नैर्ऋत कोण में २४ मील पर) होने की सूचना

१. यह घटना वि० सं० १७३७ की माघ बदी ६ (ई० सन् १६८१ की ३ जनवरी) की है।

'हिस्ट्री ऑफ़ औरंगज़ेब' (भा० ३ पृ० ३६८) में इस घटना का समय ई० सन् १६८१ की १ जनवरी लिखा है। उसमें यह भी लिखा है कि इस कार्य में महाराना राजसिंह का भी हाथ था। परन्तु २२ अक्टोबर (वि० सं० १७३७ की कार्त्तिक सुदी १०) को उनकी मृत्यु हो जाने से उस समय यह कार्य न हो सका। अतः कुछ दिन बाद उनके उत्तराधिकारी महाराना जयसिंह के समय यह कार्य संपन्न हुआ। (देखो भा० ३, पृ० ४०५)।

२. मआसिरेआलमगीरी, पृ० १९६-१९९।

३. इसी बीच हामिदख़ाँ भी बादशाह के पास पहुँच गया था, और शाहज़ादा मुअज़्ज़म भी शीघ्र ही पहुँचने वाला था।

मिली। उस समय अकबर के पास क़रीब १६ हज़ार सेना[1] थी। तीसरे दिन बादशाह औरङ्गज़ेब वहाँ से और भी दो चार मील दक्षिण के दोराहा स्थान पर पहुँचा[2]। परन्तु यहाँ से आगे बढ़ने की उसकी हिम्मत न हुई।

जैसे-जैसे शाहज़ादे अकबर और बादशाह औरङ्गज़ेब की सेनाएँ परस्पर निकट होती जाती थीं, वैसे-वैसे बादशाही अमीर अकबर की सेना से निकल-निकलकर शाही लश्कर में मिलते जाते थे। यहीं पर शाहज़ादा मुअज़्ज़म भी, मेवाड़ से आकर, शाही लश्कर के साथ हो गया। इसके बाद यहाँ से बादशाह ने पहले तो पत्र लिखकर अकबर को धोका देने की चेष्टा की; परन्तु जब इसमें उसे सफलता नहीं हुई, तब उसने उसके सेनापति तहव्वरख़ाँ को[3] (उसके ससुर) इनायतख़ाँ के द्वारा भय और लालच दिखलाकर अपनी तरफ़ मिला लिया। इस पर वह पहर रात जाने पर चुपचाप अकबर के शिविर[4] से निकल बादशाह की डेवढ़ी पर जा पहुँचा। परन्तु वहाँ पर शस्त्र खोलकर अन्दर जाने से इनकार करने पर मार डाला गया।

इसी बीच राठोड़ों को भी तहव्वर के बादशाह के पास चले जाने की सूचना मिल गई। इससे ये संदेह में पड़ गए और इनका विश्वास अकबर पर से उठ गया[5]। ऐसी अवस्था में ये लोग उसका साथ छोड़ पीछे हट गए। जब

१. 'हिस्ट्री ऑफ़ औरंगज़ेब' में ३० हज़ार सेना का होना लिखा है। (देखो भाग ३, पृ० ४१०)।

२. 'हिस्ट्री ऑफ़ औरंगज़ेब' मे लिखा है कि यहाँ से दो रास्ते निकलते थे। एक पश्चिम की तरफ़ ब्यावर होता हुआ मारवाड़ को, और दूसरा पूर्व की तरफ़ आगरे को जाता था। (देखो भा० ३, पृ० ४१०)।

३. 'मआसिरे-आलमगीरी' में बादशाहकुलीख़ाँ नाम लिखा है। (देखो पृ० २००-२०१) यह तहव्वरख़ाँ ही का ख़िताब था, जो बादशाह ने उसको मेवाड़ के रणस्थल में दिखलाई हुई वीरता के उपलक्ष में दिया था। (देखो मआसिरुलउमरा, भा० १, पृ० ४४८ और हिस्ट्री ऑफ़ औरंगज़ेब, भा० ३, पृ० ३६६)।

४. उस समय दोनों सेनाओं के बीच केवल ३ मील का फ़ासला था।

५. 'राजरूपक' में लिखा है कि जिस समय तहव्वरख़ाँ बादशाह के पास जाने लगा, उस समय उसने राठोड़ों से भी कहला दिया कि मैंने आपके और शाहज़ादे अकबर के बीच पड़कर संधि करवाई थी। परन्तु मुझे शाहज़ादे के बादशाह से मिल जाने का संदेह होता है। अतः अब मैं इसकी ज़िम्मेदारी अपने ऊपर नहीं रख सकता। आप लोगों को भी सावधान होकर लौट जाना चाहिए।

प्रातःकाल होने पर इस घटना की सूचना शाहज़ादे अकबर को मिली, तब वह बहुत घबराया। उस समय उसके पास केवल ३५० सवार ही रह गए थे। इसलिये वह बाप के क्रोध से बचने के लिये अपने कुटुम्ब और माल-असबाब को लेकर १० कोस के फ़ासले पर ठहरे हुए राठोड़ों की शरण में चला गया। यह घटना वि० सं० १७३७ की माघ सुदी ७ (ई० सन् १६८१ की १६ जनवरी) की है। उसकी यह दशा देख राठोड़ भी असली भेद को समझ गए। इसी से दूसरे दिन रात्रि में दुर्गादास ने उसके पास पहुँच उसे अपनी शरण में ले लिया। परन्तु इस समय तक मौक़ा हाथ से निकल चुका था, अतः वे उसको साथ लेकर जालोर की तरफ़ चले गए।

इस घटना से बादशाही शिविर में बड़ा आनन्द मनाया गया। इसके बाद बादशाह शाहबुद्दीनख़ाँ, शाह आलम, कुलीचख़ाँ, इन्द्रसिंह आदि को बाग़ियों का पीछा करने की आज्ञा देकर स्वयं अजमेर लौट गया।

वी० ए० स्मिथ ने अपनी 'ऑक्सफ़र्ड हिस्ट्री ऑफ़ इन्डिया' मे लिखा है कि स्वयं बादशाह ने राजपूतों को धोका देने के लिये अकबर के नाम का पत्र लिख कर उनके हाथ में पहुँचवा दिया था। इसी से वे लोग शाहज़ादे को बाप से मिला हुआ समझ उससे अलग हो गए। (देखो पृ० ४४१)।

'हिस्ट्री ऑफ़ औरंगज़ेब' से भी इसकी पुष्टि होती है। उसमें लिखा है कि बादशाह ने उस पत्र में अकबर को लिखा था कि मैं तेरे राठोड़ों को धोका देकर फसा लाने से बहुत प्रसन्न हूँ। कल प्रातःकाल के युद्ध में मैं आगे से उन पर आक्रमण करूँगा और तू पीछे से हमला कर देना। इससे वे आसानी से नष्ट हो जायँगे। जब यह पत्र दुर्गादास को मिला, तब वह इसके बाबत अपना संदेह मिटाने को अकबर के शिविर में पहुँचा। परन्तु उस समय अर्द्धरात्रि से भी अधिक समय बीत चुका था। अतः अकबर गहरी नींद में सोया हुआ था। ऐसे समय यद्यपि दुर्गादास ने उसके अंग-रक्षकों से उसे जगाने को कहा, तथापि ऐसा करने की आज्ञा न होने के कारण उन्होंने इस बात के मानने से इनकार कर दिया। इससे दुर्गादास क्रुद्ध होकर लौट गया। इसके बाद उसने तहव्वरख़ाँ की तलाश की। परन्तु जब उसके भी शाही सेना मे चले जाने का समाचार मिला, तब राठोड़ों का संदेह दृढ़ हो गया, और वे प्रातःकाल होने के ३ घन्टे पूर्व ही अकबर के शिविर को लूटकर मारवाड़ की तरफ़ लौट गए। यह देख अन्य शाही सेना-नायक भी बादशाह से जा मिले। (देखो भा० ३, पृ० ४१४-४१५)।

१. अजितोदय, सर्ग ११, श्लो० १२-१६।

२. मआसिरेआलमगीरी, पृ० २०३। 'हिस्ट्री ऑफ़ औरंगज़ेब' मे लिखा है कि बादशाह औरंगज़ेब ने शाहज़ादे मोअ़ज़्ज़म को सेना देकर अकबर को पकड़ने के लिये मारवाड़

वि० सं० १७३८ की चैत्र सुदी ११ (ई० सन् १६८१ की २० मार्च) को इनायतख़ाँ अजमेर का फ़ौजदार बनाया गया, और उसे भी राठोड़ों को दबाने की आज्ञा[1] मिली। जब इससे भी राठोड़-सरदारों का उपद्रव शांत न हुआ, तब बादशाह ने स्वर्गवासी महाराजा जसवन्तसिंहजी के बनावटी पुत्र मुहम्मदीराज को दिल्ली (शाहजहानाबाद) से अपने पास बुलवाया[2]। परन्तु उपद्रव की भयंकरता के कारण वह उसे जोधपुर की गद्दी पर न बिठा सका।

पहले लिखे-अनुसार राठोड़ों की सेना भी अकबर को लिये हुए जालोर जा पहुँची। परन्तु शाह आलम की सेना ने इसका पीछा न छोड़ा। इससे जैसे ही उक्त सेना जालोर पहुँची, वैसे ही राठोड़-वाहिनी ने उस पर अचानक धावा कर दिया, और जो कुछ सामान हाथ लगा, उसे लेकर वह सांचोर चली गई[3]। जब वहाँ पर भी शाही सेना ने उनका पीछा किया, तब फिर उसने उसका सामना किया, और मार-काट मचा कर (सिवाने होती हुई) सिरोही की तरफ़ चली गई[4]।

की तरफ़ रवाना किया, और साथ ही तमाम शाही चौकियों के अफ़सरों के नाम भी इधर-उधर के मार्गों को रोककर अकबर को राजस्थान से बाहर न जाने देने की आज्ञा लिख भेजी। (देखो भा० ३, पृ० ४१६-४१७)।

कागा (जोधपुर नगर के बाहर) के एक कीर्तिस्तम्भ पर के वि० सं० १७३७ की माघ सुदि १५ के लेख से उस समय जोधपुर का इन्द्रसिंह के शासन में होना प्रकट होता है।

१. मआसिरेआलमगीरी, पृ० २०६। वि० सं० १७४० के पौष (ई० स० १६८३ के दिसम्बर) मे इसे जोधपुर के शासन के साथ ही अजमेर की सूबेदारी भी दी गई थी। (हिस्ट्री ऑफ़ औरङ्गज़ेब, भा० ५, पृ० २७३ फुटनोट)।

२. 'मआसिरेआलमगीरी' में इसका वि० सं० १७३८ की वैशाख सुदी १ (ई० स० १६८१ की ६ अप्रेल) को अजमेर पहुँचना लिखा है। (देखो पृ० २०७)।

३. मआसिरेआलमगीरी, पृ० २०४।

४. अजितोदय, सर्ग ११ श्लो० १६–१८। उक्त इतिहास में बहादुरख़ाँ द्वारा राठोड़ों का पीछा किया जाना लिखा है। 'राजरूपक' में लिखा है कि बादशाह की आज्ञा से शाह आलम ने ८ हज़ार सुवर्ण मुद्राएँ भेजकर दुर्गादास को अपनी तरफ़ मिलाना चाहा था। परंतु वीर दुर्गादास ने वे मुहरें लेकर अकबर को खर्च के लिये दे दीं, और शरणागत के साथ विश्वासघात करने से साफ़ इनकार कर दिया।

'अजितोदय' में शाहआलम द्वारा चार हज़ार मुहरों का भेजा जाना लिखा है। (देखो सर्ग ११ श्लो० २०)।

इसके बाद सोनगं और दुर्गादास आदि मुख्य-मुख्य सरदारों ने अकबर को अपने साथ-साथ लिए फिरना उचित न समझा। इसलिये मारवाड़ का भार तो चाँपावत वीर सोनग को सौंपा गया, और दुर्गादास अकबर को लेकर ५०० सैनिकों के साथ राजपीपला के मार्ग से दक्षिण की तरफ़ रवाना हो गया। यद्यपि बादशाह की आज्ञा से शाही सेना ने इनका बहुत कुछ पीछा किया, तथापि उसे सफलता नहीं हुई, और ये लोग जेठ सुदी ८ (१५ मई) को बुरहानपुर होकर वि० सं० १७३८ की आषाढ़ बदी १० (ई० सन् १६८१ की १ जून) को शंभाजी के राज्य (पाली) में जा पहुँचे। इन्हें आया देख यद्यपि पहले तो

१. यह सरेचां का ठाकुर था।

२. 'अजितोदय' में लिखा है कि राठोड़-सैनिक सिरोही से आबू की तरफ़ गए, और अकबर को वहाँ रखकर मारवाड़ की ओर चले आए। इसकी सूचना पाते ही इन्द्रसिंह भी जोधपुर आ पहुँचा। परन्तु शीघ्र ही बादशाह उससे नाराज़ होगया, और उसने उसे अपने पास बुलवा कर जोधपुर का प्रबन्ध इनायतखाँ को सौंप दिया। इस पर उस (इनायतख़ाँ) ने अपनी ओर से क़ासिमख़ाँ को वहाँ की देख-भाल सौंप दी।

इसी समय अकबर आबू से लौटकर सिरोही होता हुआ पालनपुर पहुँचा। वहीं पर पहुँच कर राठोड़ भी उसके शरीक होगए और फिर बड़गाँव होते हुए थिराद की तरफ़ चले गए। इसके बाद ये फिर सिवाने होते हुए सिरोही पहुँचे। यहीं पर दुर्गादास ने मारवाड़ का भार तो सोनग को सौंप दिया और स्वयं अकबर के साथ मेवाड़ की तरफ़ चला गया। इसके बाद वह रानाजी से द्रव्य की सहायता लेकर (क्योंकि उस समय महाराना जयसिंहजी अकबर को शरण देने में असमर्थ थे) अकबर के साथ नर्मदा को पार करता हुआ शंभाजी के पास जा पहुँचा (देखो सर्ग ११, श्लो० २१-२६)।

'हिस्ट्री ऑफ़ औरङ्गज़ेब' में लिखा है कि अकबर सांचोर से चलकर मेवाड़ पहुँचा। यद्यपि महाराना जयसिंह ने उसका अच्छा आदर सत्कार किया, तथापि वहाँ पर भी शाही सेना के आक्रमण का भय देख दुर्गादास उसे दक्षिण की ओर ले जाने का प्रबन्ध करने लगा। (देखो भा० ३, पृ० ४१७-४१८)।

'राजपूताने के इतिहास' में लिखा है कि महाराना ने दुर्गादास को पत्र लिखकर अकबर को मेवाड़ में लाने से मना कर दिया था। (देखो भा० ३, पृ० ८६७)।

कहीं-कहीं इनका मल्लानी के रेतीले भाग की ओर जाना भी लिखा है। वास्तव में दुर्गादास का अकबर को दक्षिण की ओर ले जाने से यही तात्पर्य था कि इससे बादशाह का ध्यान उधर बट जायगा, और मारवाड़ का आक्रमण शिथिल हो जायगा।

३. 'हिस्ट्री ऑफ़ औरङ्गज़ेब' भा० ४, पृ० २४६। उस इतिहास में यह भी लिखा है कि यद्यपि बादशाह ने सब मार्गों और घाटों का प्रबन्ध कर रक्खा था, तथापि दुर्गादास बड़ी चालाकी से अपना पीछा करनेवालों को धोके में डालता हुआ डूँगरपूर से अहमदनगर

शंभाजी विचार में पड़ गए, तथापि अंत में कवि कलश के समझाने से उन्होंने इनको बड़े आदर-सत्कार के साथ अपने यहाँ रख लिया।

इसकी सूचना पाने पर बादशाह को भय हुआ कि कहीं शाहजादा अकबर उधर भी इधर जैसा ही उपद्रव न खड़ा करदे। अतः उसने स्वयं दक्षिण की ओर जाने का इरादा किया। परन्तु मारवाड़ में राठोड़ और मेवाड़ में सीसोदिये उसको हैरान कर रहे थे। इसलिये अंत में उसने महाराना से संधि कर लेना ही उचित समझा। इसी के अनुसार बादशाह ने मोहम्मद आज़म के द्वारा महाराना को संधि कर लेने को प्रस्तुत किया; और बातचीत तय हो जाने पर जज़िया लेना बंद करके मेवाड़ का इलाक़ा रानाजी को सौंप दिया। परन्तु उसके पुर, मांडल और बदनोर के परगने अपने ही अधिकार में रक्खे। इस संधि में एक शर्त यह भी थी कि जिस समय महाराज अजित-सिंहजी युवा हो जायँ, उस समय बादशाह की तरफ़ से मारवाड़ का राज्य उनको सौंप दिया जाय।

की तरफ़ चला। परन्तु जब उसे इस मार्ग से जाने में सफलता न हुई, तब वह अग्निकोण की ओर लौटकर बाँसवाड़े और दक्षिण मालवे से होता हुआ ज्येष्ठ बदी ८ (१ मई) के निकट अकबरपुर के पास से नर्मदा के उस पार हो गया, और इसी के १५वें रोज़ बुरहानपुर से कुछ फ़ासले पर तापती के किनारे जा पहुँचा। परन्तु यहाँ पर भी शाही अवरोध के मिलने से उसे पश्चिम की ओर मुड़कर खानदेश और बगलाने होते हुए चलना पड़ा। अन्त में वह रायगढ़ से शंभाजी के पास पहुँच गया। (देखो भा० ३, पृ० ४१८)।

१. 'अजितोदय' सर्ग ११, श्लो० २७-२६।

२. 'अजित-ग्रन्थ' में लिखा है कि सोनग ने भाटी वीरों को साथ लेकर आषाढ सुदी ६ (१४ जून) को जोधपुर के निकट इनायतखाँ से भीषण संग्राम किया। इसके बाद इसने फलोदी पहुँच उसे भी लूटा। (देखो छंद ६४४-६५४)।

३. मआसिरेआलमगीरी में रानाजी की तरफ़ से संधि का प्रस्ताव होना लिखा है। यह संधि वि० सं० १७३८ की आषाढ़ सुदी ६ (ई० सन् १६८१ की १४ जून) को राजसमन्द तालाब पर शाहज़ादे आज़म और राना जयसिंहजी के बीच हुई थी। (देखो पृ० २०८-२०६)।

कहीं कहीं ७ के बदले १७ जमादिउस्सानी मानकर श्रावण बदी ३ (२४ जून) को इस घटना का होना लिखा है।

४. एलफ़िंस्टन्स हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया, पृ० ६२७।

इसके बाद सावन सुदी १ (६ जुलाई) को शाहआलम बहादुर (मुहम्मद मुअज़्ज़म) भी, जो राठोड़ों को दबाने के लिये भेजा गया था, सोजत और जैतारण की ओर से लौटकर अजमेर आ पहुँचा।

भादों सुदी ३ (६ अगस्त) को बादशाह को खाँजहाँ बहादुर की अर्ज़ी से सूचना मिली कि शाहज़ादा अकबर इस समय दक्षिण में पाली के क़िले[3] में ठहरा हुआ है और उसके पास २०० सवार और ८०० पैदल हैं। इन सब के खर्च का प्रबंध शंभाजी की ही तरफ़ से होता है। यह हाल जानकर बादशाह ने मुहम्मद आज़म को शाह का ख़िताब देकर दक्षिण की ओर भेजा, और प्रथम आश्विन सुदी ६ (८ सितंबर) को स्वयं भी उधर कूच किया[4]। साथ ही अजमेर का प्रबंध शाहज़ादे मुहम्मद अज़ीम को सौंपा। बादशाह के दक्षिण की ओर जाते ही सोनग आदि राठोड़-सरदारों ने और भी ज़ोर-शोर से उपद्रव का झन्डा खड़ा किया, और लगभग तीन हजार सवार एकत्रित कर मेड़ता-प्रांत को विध्वस्त करना प्रारंभ किया[5]। इस पर कार्त्तिक सुदी १४ (१४

---

१. 'राजरूपक' में इसी वर्ष की आषाढ़ सुदी ६ को महाराज के सरदारों का जोधपुर पर चढ़ाई कर युद्ध करना लिखा है। (देखो पृ० ७६)।

२. 'मआसिरेआलमगीरी' पृ० २०६। 'अजित ग्रन्थ' में लिखा है कि उसी समय बादशाह ने इन्द्रसिंह से नाराज़ होकर जोधपुर ज़ब्त कर लिया। परन्तु शाहआलम के कहने से नागोर उसी के पास रहने दिया (देखो छंद ६३१-६३६) उसी में आगे लिखा है कि बादशाह ने इनायतखां, को जोधपुर का प्रबन्ध सौंपा। अतः शाहबुद्दीनखाँ, जो हाल ही में वहाँ गया था, बीलाड़े चला गया। (देखो छन्द ६४०-६४३)।

३. यह क़िला रायगढ़ से २५ मील पर था। कहीं-कहीं अकबर का पादशाहपुर में ठहरना भी लिखा मिलता है। यह पाली के क़िले से ६ मील पूर्व मे था।

४. 'मआसिरेआलमगीरी' पृ० २११।

५. उस समय मारवाड़ के उत्तर में साँभर और डीडवाने में, ईशानकोण में मेड़ते में, पूर्व में जैतारण, सोजत, पाली और गोडवाड़ में, पश्चिम में बालोतरा, पचपदरा और सिवाने में तथा दक्षिण में जालोर में बड़े-बड़े शाही थाने मुकर्रर किए गए थे। (हिस्ट्री ऑफ् औरङ्ग-ज़ेब, भा०५, पृ० २७५-२७६)।

६. 'मआसिरेआलमगीरी' पृ० २१२। 'अजित ग्रंथ' में लिखा है कि बादशाह ने इनायतखाँ के बदले क़ासिमखाँ को जोधपुर भेजा, और असदखाँ को शाहआलम के पुत्र अज़ीम के पास अजमेर में रक्खा। (देखो छन्द ६८४-६८६)।

७. 'राजरूपक' में इनका जोधपुर को घेरना, और बादशाह का घबराकर इनसे संधि करना लिखा है। उक्त इतिहास में यह भी लिखा है कि इस अवसर पर अजितसिंहजी को सात हज़ारी

नवम्बर) को शाही सेनापति ऐतक़ादख़ाँ ने इन पर चढ़ाई की। पूँदलोता के पास युद्ध होने पर दोनों तरफ़ के बहुत से वीर मारे गए। इन्हीं में प्रसिद्ध वीर सोनग[1] था। अतः उसकी मृत्यु के उपरांत उसका बड़ा भाई चाँपावत अजबसिंह[2] सेनापति नियत हुआ, और उसने इधर-उधर के गाँवों को लूट डीडवाने पर चढ़ाई की[3]। यह देख वहाँ का शाही हाकिम घबरा गया। परन्तु इसी अवसर पर एक शाही सेना उधर आ पहुँची। अतः ये लोग वहाँ से कसूँबी को चले गए, और कुछ वीरों ने जाकर मेड़ते को लूट लिया। शाही सेना भी इनके पीछे लगी चली आती थी। इससे डीगराने में पहुँचते-पहुँचते

मनसब के साथ ही जोधपुर लौटा देना भी तय हुआ था। परन्तु इस घटना के २-१ दिन बाद ही सोनग के मर जाने से यवनों ने यह संधि भंग कर दी।

'राजरूपक' में अजमेर के सूबेदार अजीमदीन की मार्फ़त संधि का प्रस्ताव होना लिखा है। परंतु अजितोदय में अस्तीख़ाँ द्वारा संधि का प्रस्ताव किया जाना लिखा है। (देखो सर्ग ११, श्लो० ३२-३३)।

१. 'मआसिरेआलमगीरी' पृ० २१४-२१५।

'राजरूपक' में १७३८ की आसोज सुदी ७ शनिवार को सोनग का एकाएक मर जाना लिखा है। यथा:-

अठत्रीसै आसोज में, सित सातम सनवार;
गौ सोनागिर धाम हरि, नाम करे संसार।

द्वितीय आश्विन सुदी ७ को शनिवार था। अतः उस दिन ई० सन् १६८१ की ८ अक्टोबर आती है। 'अजित ग्रन्थ' में भी यही तिथि लिखी है। यथा:-

सुदी दूजो आसोज, वले सातम सनिवारे;
सुत बीठल गो सुरग, सुणे इम हाको सारे। ७२३

'अजितोदय' में भी इसका एकाएक मरना ही लिखा है। उपर्युक्त ग्रंथों से यह भी पता चलता है कि शाही सेनापतियों ने सोनग की मार से तंग आकर ही संधि करने का निश्चय किया था। परन्तु उसके मरते ही अपना वचन भंग कर दिया। (देखो 'राजरूपक', पृ० ८२ और 'अजितोदय', सर्ग ११, श्लो० ३२-३५)।

'अजित ग्रन्थ' से भी इस बात की पुष्टि होती है। (देखो छन्द ६६४-७२६)।

२. 'मआसिरेआलमगीरी' में सोनग के साथ ही अजबसिंह का मरना भी लिखा है।

परन्तु 'अजितोदय' में सोनग के बाद अजबसिंह का सेनापति होना लिखा है। (देखो सर्ग ११, श्लो० ३३)।

यह बात ' राजरूपक ' से भी प्रकट होती है। (देखो पृ० ८३)।

३. 'अजित ग्रन्थ' में मकराने के लूटने का उल्लेख है। (देखो छन्द ७४५)।

उसने राठोड़ों की सेना को पकड़ लिया। मारवाड़ के वीर भी शत्रु को आया देख मुड़कर उस पर टूट पड़े। घोर युद्ध के बाद घोड़े का पैर टूट जाने के कारण वीर अजबसिंह युद्ध-स्थल में मारा गया[1]।

इसके बाद सरदारों ने चाँपावत धीरसिंह के पुत्र उदयसिंह को अपना सेनापति बनाया। इस पर वह भी सेना को सजाकर जालोर पहुँचा, और उक्त नगर को लूटकर माँडले[2], सरवाड़पुर और तोड़े को लूटता हुआ मारवाड़ में लौट आया। इसके बाद इसने जाकर नगर नामक गाँव को लूट लिया[3]।

वि० सं० १७३९ (ई० सन् १६८२) में इधर ऊदावत जगरामसिंह ने जैतारण में जाकर मार-काट मचाई[4], और उधर भाद्राजन पर हमला करनेवाली यवन-वाहिनी को जोधा उदयभान[5] ने और बालोतरे की तरफ़ आई हुई शाही सेना को बाला अखैराज आदि ने मार भगाया[6]। इस प्रकार ऊदावत, कूँपावत, मेड़तिया आदि राठोड़ों ने और भाटी

---

१. अजितोदय, सर्ग ११, श्लो० ३४-४०। उक्त काव्य में मेड़ते को लूटने की तिथि वि० सं० १७३७ की कार्त्तिक बदी १४ (ई० सन् १६८० की ११ अक्टोबर) लिखी है। यथाः-

संवच्छैलभवाब्धिवारिधिशशांकांकोन्मितेब्दे तथा-
प्यूर्जे कृष्णदले तु शम्भुदिवसे प्रातः समागम्य च।

परन्तु इसमें एक वर्ष का अन्तर प्रतीत होता है। 'राजरूपक' मे अजबसिंह का वि० सं० १७३८ की कार्त्तिक सुदी २ को युद्ध में मरना लिखा है। (देखो पृ० ८५)।

'अजितग्रन्थ' में अजबसिंह के मरने की तिथि वि० सं० १७३८ की कार्त्तिक सुदी १ (ई० सन् १६८१ की १ नवम्बर) लिखी है। (देखो छन्द ७७६-७८०)।

२. 'मआसिरेआलमगीरी' से ज्ञात होता है कि वि० सं० १७३८ की फागुन सुदी ११ (ई० सन् १६८२ की ८ फ़रवरी) को बादशाह को ज्ञात हुआ कि राठोड़ माँडलपुर पर धावा करके बहुत सा माल-असबाब लूट ले गए हैं। (देखो पृ० २१७।) (मेवाड़ का यह परगना बादशाह के अधिकार में था)।

'राजरूपक' में फागुन सुदी ३ को माँडल का लूटना और चैत्र बदी ८ को सोजत का घेरना लिखा है। (देखो पृ० ८८)।

३. अजितोदय, सर्ग ११, श्लो० ४७-४८।

४. अजितोदय, सर्ग ११, श्लो० ४९-५२। 'राजरूपक' में इस घटना का कार्त्तिक बदी १२ को होना लिखा है। यह युद्ध एक मास तक चलता रहा था।

५. अजितोदय, सर्ग १२, श्लो० २-७।

६. अजितोदय, सर्ग १२, श्लो० २६-३९। 'राजरूपक' में इस घटना का समय भादों सुदी १३ लिखा है।

चौहान, सीसोदिया आदि उनके संबन्धियों ने मारवाड़ को उजाड़ कर देश-भर में गमनागमन के मार्ग रोक दिए।

इसी प्रकार चाँपावत उदयसिंह ने सोजत की यवन-वाहिनी को परास्त किया। जोधावतों के एक दल ने मारवाड़ के उत्तरी भाग के मुसलमानों का मार्ग रोका, और दूसरे ने शाही सेना-नायक नूरअली को मार भगाया।

इसके बाद चाँपावत उदयसिंह और मेड़तिया मोहकमसिंह[1] ने गुजरात की ओर जाकर उपद्रव आरंभ किया। इसकी सूचना पाते ही सैयद मोहम्मद की सेना ने इनका पीछा किया। इस पर ये लोग उससे लड़ते-भिड़ते रत्नपुर होकर पाली पर टूट पड़े। यहाँ के युद्ध[2] में बाला राठोड़ों ने अच्छी वीरता दिखाई। इसके बाद मेड़तिये मोहकमसिंह ने सोजत और जैतारण लूट मेड़ते पर अधिकार कर लिया[3]।

वि० सं० १७४१ (ई० सन् १६८४) में अजमेर के शाही सेना-नायक ने राठोड़ों पर चढ़ाई की। इसी बीच मौक़ा पाकर भाटियों ने मंडोर पर अधिकार कर लिया[4]; परन्तु कुछ दिन बाद ही उक्त नगर फिर मुसलमानों के अधिकार में चला गया।

१. 'राजरूपक' के अनुसार इसने शाही मनसब छोड़ कर बालक महाराज का पक्ष ग्रहण किया था:-

मोहकमसिंह किल्याण तण, मेड़तियौ पणबंध ;
तज मनसफ सुरतांणरौ, मिलियौ फौज कमंध।

(देखो पृ० ८३)।

'अजितग्रंथ' से इस घटना का क़रीब एक वर्ष पूर्व सोनग के समय होना प्रकट होता है। उसमें यह भी लिखा है कि यह मोहकमसिंह अकबर की बग़ावत के समय तहव्वरख़ाँ के शरीक था। इसीसे उसके मारे जाते ही अपनी जागीर तोसीणे में चला गया था। जब बादशाह ने इसको मरवाने का विचार किया, तब यह आकर सोनग के साथ हो गया। (देखो छंद ६५४, ६६० और ६७४)।

'हिस्ट्री ऑफ़ औरंगज़ेब' में भी मोहकमसिंह का ई० सन् १६८१ में राठोड़ों के साथ होना लिखा है। (देखो भा० ५, पृ० २७६)।

२. 'राजरूपक' में पाली के युद्ध का वि० सं० १७४० की पौष सुदी ६ को होना लिखा है। (देखो पृ० ६७)।

३. 'अजितग्रन्थ' में लिखा है कि वि० सं० १७४० की सावन बदी १४ (ई० सन् १६८३ की ६ जुलाई) को असदख़ाँ और शाहज़ादा अजमेर से दकन को चले और इनायतख़ाँ को मारवाड़ का भार सौंपा गया। यहां के सरदार बराबर उपद्रव कर रहे थे। (देखो छंद ६१८-१०२२)।

४ 'राजरूपक' में भी इस घटना का वि० सं० १७४१ के प्रारंभ में होना लिखा है। (देखो पृ० १००)।

इधर अनूपसिंह ने करमसोतों और कूँपावतों को लेकर लूनी के आस-पास मार-काट मचाई, और उधर मोहम्मदअली ने मौक़ा पाकर मेड़ता छीन लेने के लिये चढ़ाई की। परन्तु जब यवन-सेनापति को सम्मुख युद्ध में विजय की आशा न दिखाई दी, तब उसने मेड़तिया मोकमसिंह को संधि के बहाने अपने पास बुलवाकर मार डाला[२]।

इसके बाद कूँपावत, भाटी और चौहान-वीरों ने जोधपुर पर चढ़ाई की। यह देख मुग़ल-सैनिक भी मुक़ाबले में आ डटे। युद्ध होने पर महाराज की तरफ़ के अनेक वीर मारे गए। इस पर संग्रामसिंह ने शाही मनसब की आशा छोड़ अपने वंशवालों का साथ दिया, और सुरजाँ में मार-काट कर बालोतरे और पचपदरे को लूट लिया[३]।

जोधा उदयभान के उपद्रव से तंग आकर शाही फ़ौज ने भादराजन पर चढ़ाई की। परन्तु युद्ध में उदयभान के आगे वह सफल मनोरथ न हो सकी[४]।

वि० सं० १७४२ (ई० सन् १६८५) के लगते ही कूँपावत-वीरों ने काणाणे में पुरदिलख़ाँ पर हमला कर उसे मार डाला, और चैत्र सुदी ८ (ई० सन् १६८५ की २ अप्रेल) को सिवाने का क़िला छीन लिया[५]।

इसी प्रकार अन्य राजपूत-वीर भी अपने बालक महाराज की अनुपस्थिति में अपने-अपने दलों को साथ लेकर इधर-उधर घूमते रहते थे, और जब जहाँ मौक़ा पाते, तब वहीं यवनों पर आक्रमण कर उनका नाश करते थे[६]।

१. 'राजरूपक' में वि० सं० १७४१ के वैशाख में इस युद्ध का होना लिखा है। (देखो पृ० १०४)।

२. 'राजरूपक' में इस घटना का समय १७४१ की आषाढ़ सुदी ६ लिखा है। (देखो पृ० १०५)।

३. राजरूपक, पृ० १०५-११०।

४. 'राजरूपक' में इस युद्ध का वि० सं० १७४१ की माघ सुदी ७ को होना लिखा है। (देखो पृ० १११)।

'अजितग्रन्थ' में भी इस घटना की यही तिथि लिखी है। (देखो छंद ११११)।

५. एशियाटिक सोसाइटी, बंगाल की छपी 'मआसिरेआलमगीरी' में इस घटना का १२ दिन बाद वैशाख बदी ६ (१४ अप्रेल) को होना लिखा है। (देखो पृ० २५६) 'अजितग्रन्थ' में लिखा है कि वि० सं० १७४१ के ज्येष्ठ में पुरदिल को सिवाना मिला था, और १० मास बाद फागुन में उसने उस पर अधिकार किया था। (देखो पृ० १६२ की वार्ता और छंद ११३८)।

६. उस समय मारवाड़ के अनेक सरदार जहाँ तहाँ यवनों से लोहा लेने में लगे थे। अतः उन सब के किए युद्धों का अलग-अलग वर्णन करना कठिन होने के कारण ही यहाँ पर केवल मुख्य-मुख्य लड़ाइयों का संक्षिप्त हाल दिया गया है।

इसके बाद अगले वर्ष कुछ चाँपावत, कूँपावत और ऊदावत आदि शाखाओं के सरदारों ने महाराज को देखने और उनको प्रकट कर सरदारों के चित्त में और भी अधिक उत्साह बढ़ाने का संकल्प किया। इसी के अनुसार ये लोग खीची मुकुन्ददास के पास जाकर बालक महाराज के विषय में पूछताछ करने लगे। इसी समय बूँदी से आकर हाडा राव दुर्जनसालजी भी इनके साथ हो गए[1]। यद्यपि पहले तो मुकुन्ददास ने इस विषय में अपनी अनभिज्ञता प्रकट कर उन सब को दुर्गादास के दक्षिण से लौट आने तक संतोष रखने की सलाह दी, तथापि अन्त में जब सरदारों का अत्यधिक आग्रह देखा, तब लाचार हो वि० सं० १७४४ की चैत्र सुदी १५ (ई० सन् १६८७ की १८ मार्च) को बालक महाराज को लाकर सब के सामने उपस्थित कर दियो[2]। उस समय महाराज की अवस्था लगभग ८ वर्ष की थी। फिर भी सब से पूर्व हाडा दुर्जनसालजी उनसे मिले,[3] और फिर क्रमशः मारवाड़ के सरदारों ने नज़र और निछा-वर करके महाराज का अभिनन्दन किया।

इसके बाद महाराज अपने उपस्थित सरदारों के साथ आउवा, बगड़ी, रायपुर, बीलाड़ा, बलूँदा, रीयाँ, आसोप, लवेरा, खींवसर, कोलू आदि स्थानों में होते हुए और वहाँ के सरदारों को साथ लेते हुए पोकरन पहुँचे।

इस समय तक दुर्गादास को दक्षिण में रहते बहुत समय बीत चुका था। अतः उसे भी मारवाड़ के समाचार जानने की उत्कंठा हुई। परन्तु दक्षिण के मार्गों पर चारों ओर शाही सेना की चौकियाँ बैठी हुई थीं। इसलिये वह शाहज़ादे अकबर को

१. 'राजरूपक' में इनका १,००० सवारों के साथ आना लिखा है। (देखो पृ० १२१)।

२. 'राजरूपक' में इस विषय में लिखा है:-

बरस तयाँलै चैत सुद, पूनम परम उजास।

उक्त काव्य में श्रावण से नया वर्ष माना गया है। अतः इसके अनुसार यह घटना वि० सं० १७४४ के चैत्र में ही हुई थी। (देखो पृ० १२२)।

परन्तु हमने जहाँ कहीं अन्यत्र 'राजरूपक' से तिथियाँ और संवत् उद्धृत किए हैं, वे उत्तरीय भारत में प्रचलित चैत्र शुक्ल १ से प्रारंभ होनेवाले संवतों में परिवर्तन करके ही किए हैं।

'अजित-ग्रन्थ' में चैत्र सुदी १० को इनका प्रकट होना लिखा है (देखो छंद १४८२)।

३. 'अजित-ग्रन्थ' में इनका वि० सं० १७४३ में राठोड़ों के शरीक होना (देखो छंद १४४४) और महाराज अजित के अपने सरदारों के साथ सँडेराव में पहुँचने पर उनसे मिलना लिखा है। (देखो छंद १४६३)।

जल-मार्ग से फ़ारस की तरफ़ रवाना कर अपने वीरों के साथ शाही सैनिकों की दृष्टि को बचाता हुआ नर्मदा के पार हो गया, और वहाँ से मालवे के प्रदेशों को लूटता हुआ वि० सं० १७४४ के भादों (ई० सन् १६८७ के अगस्त) में मारवाड़ आ पहुँचा।

ख्यातों में लिखा है कि दुर्गादास की सलाह के विना ही सरदारों के आग्रह से महाराज प्रकट कर दिए गए थे। इसी से यहाँ पहुँचने पर उसके चित्त में कुछ उदासीनता आ गई। अतः जब वह दक्षिण से लौटकर मारवाड़ में आया, तब उसने स्वयं उपस्थित न होकर केवल पत्र द्वारा ही महाराज को अपने आगमन की सूचना भेज दी[2]। यह देख महाराज ने उसे ले आने के लिये अपना आदमी भेजा। परन्तु वह कुछ दिन के बाद उपस्थित होने की प्रतिज्ञा कर बात को टाल गया। इस पर महाराज स्वयं जाकर दुर्गादास से मिले, और बाद में उसी की सलाह से गूघरोट के पर्वतों में चले गए[3]। इसके बाद दुर्गादास ने भी अपने वीरों को एकत्रित कर इधर-उधर के यवन-शासकों को तंग करना शुरू किया[4]।

१. अजितोदय में लिखा है कि अकबर एक बार फिर दुर्गादास के साथ मारवाड़ मे आने को तैयार हो गया था। परन्तु मार्ग में मुग़ल-सैनिकों का सामना हो जाने और युद्ध में मरहटों के पीछे हट जाने से उसने इस विचार को छोड़ दिया। इस युद्ध मे दुर्गादास और उसके राजपूत-अनुयायियों ने अच्छी वीरता दिखाई थी। इसके बाद दुर्गादास के मारवाड़ की तरफ़ लौट जाने पर अकबर जल-मार्ग से हबस-देश की तरफ़ चला गया। (देखो सर्ग १३ श्लोक १०) अन्य इतिहासों से उसका ई० सन् १६८६ के अक्टोबर के अंत (वि० सं० १७४३ के वैशाख) में पर्शिया के मार्ग से मस्कट की तरफ़ जाना प्रकट होता है।

'मआसिरेआलमगीरी' मे लिखा है कि हि० सन् १०६४ की १८ सफ़र (वि० सं० १७४० की फागुन बदी ५=ई० सन् १६८३ की ६ फ़रवरी) को खाँजहाँ-बहादुर ने बादशाह को लिखा कि शाहज़ादा अकबर शंभा के राज्य से निकल जहाज़ द्वारा भाग गया है। (देखो पृ० २२४) परन्तु वास्तव में उस समय कवि कलश और दुर्गादास ने उसे कह-सुनकर रोक लिया था। (देखो सरकार-रचित 'हिस्ट्री ऑफ़ औरंगज़ेब', भा० ४, पृ० २८५-२८६)।

२. उस समय महाराज़ का निवास सिवाने में था। (देखो अजितग्रन्थ, छंद १५०२)।

३. यहीं से कुछ दिन बाद यह सिवाने के क़िले में चले गए थे।

४. 'हिस्ट्री ऑफ़ औरंगज़ेब' में लिखा है कि दुर्गादास और दुर्जनसाल हाडा ने मिलकर मोहन, रोहतक और रिवाड़ी को लूटा। इसमें बहुत-सा माल इनके हाथ लगा। इसका समाचार मिलने पर दिल्ली में भी गड़बड़ मच गई। यह देख वहाँ के प्रबंधकर्ताओं ने ४,००० सवार इनके मुक़ाबले को भेजे। जब वे सवार इनसे २० मील के फ़ासले पर पहुँच गए,

इस प्रकार महाराज के प्रकट होने से उनके सरदारों का उत्साहित होना देख अजमेर के शाही हाकिम ने शीघ्र ही इस घटना की सूचना बादशाह के पास भेज दी। इससे उसकी चिन्ता और भी बढ़ गई, और उसने अजमेर के सूबेदार के नाम महाराज को पकड़ लेने की आज्ञा लिख भेजी। यह कार्य कुछ ऐसा सहज नहीं था। इसलिये बहुत कुछ उद्योग करने पर भी उसे सफलता नहीं मिली[1]। यह देख एक बार फिर बादशाह ने स्वर्गवासी जसवन्तसिंहजी के बनावटी पुत्र मोहम्मदीराज को जोधपुर का राज्य सौंपने का इरादा किया। परन्तु वि० सं० १७४५ (ई० सन् १६८८) में वह बीजापुर में प्लेग की बीमारी से मर गया[2]।

इसके बाद बादशाह ने गुजरात के सूबेदार कारतलबख़ाँ को मारवाड़ का प्रबंध करने के लिये जाने की आज्ञा भेजी। परन्तु उसके गुजरात से रवाना होते ही वहाँ की सेना में बलवे की सूरत हो गई, इसलिये उसे मार्ग से ही वापस लौट जाना पड़ा।

तब ये दोनों सरहिंद होते हुए मारवाड़ में लौट आए। इसके बाद दुर्जनसाल ने पुर और माँडल पर हमला किया। यहाँ पर इनायतख़ाँ और दीनदारख़ाँ (माँडल के फ़ौजदार) की सेनाओं से युद्ध होने पर दुर्जनसाल मारा गया।

कर्नल टॉड के लेखानुसार राठोड़ों ने मालपुरे की सेना को नष्ट कर वहाँ से दंड के रुपये वसूल किए थे। (देखो भा० ५, पृ० २७८)।

१. 'अजितोदय' (सर्ग १३, श्लो० २३) और 'राजरूपक' (पृ० १२५) में इस हाकिम का नाम इनायतख़ाँ लिखा है, और उनमें यह भी लिखा है कि उसी समय पीठ मे फोड़ा हो जाने से वह मर गया था। अतः इस कार्य मे सफल न हो सका। 'बॉंबे गज़ेटियर' में लिखा है कि ई० सन् १६८६ मे इनायतख़ाँ के मरने की सूचना पाकर कारतलबख़ाँ वहाँ के झगड़े को दबाने के लिये गुजरात से जोधपुर को रवाना हुआ। (देखो भा० १, खंड १, पृ० २८८) परन्तु 'मआसिरेआलमगीरी' में उसके मरने की सूचना का औरंगज़ेब के पास वि० सं० १७३६ की कार्त्तिक सुदी ३ (ई० सन् १६८२ की २३ अक्टोबर) को पहुँचना लिखा है। (देखो पृ० २२३)।

'हिस्ट्री ऑफ़ औरंगज़ेब' में लिखा है कि हि० सन् १०६६ (वि० सं० १७४४=ई० सन् १६८७) में जोधपुर का फ़ौजदार मर गया। परन्तु उस समय दक्षिण से फ़ौज भेजना असंभव था। अतः यहाँ की फ़ौजदारी का भार भी गुजरात के सूबेदार को सौंप दिया गया। (देखो भाग ३, पृ० ४२३ फ़ुटनोट *) उसी में यह भी लिखा है कि उसने अगले वर्ष राठोड़ों से यह समझौता करलिया कि यदि वे व्यापारियों के गमनागमन में बाधा न डालेंगे, तो उनके माल पर के लगान का चौथाई हिस्सा उन्हें दिया जायगा। (देखो भा० ५, पृ० २७३)।

२. मआसिरेआलमगीरी, पृ० ३१८।

अन्त में जब उसने वहाँ पहुँच उस झगड़े को दबा दिया, तब बादशाह ने प्रसन्न होकर उसका नाम शुजाअतखाँ रख दिया और गुजरात के साथ ही मारवाड़ का प्रबंध भी उसे सौंप दिया। इसके बाद शुजाअतखाँ गुजरात से जोधपुर पहुँचा और उसने काज़मबेग मोहम्मद अमीन को जोधपुर में अपना प्रतिनिधि नियत किया[1]। मेड़ता (राव इन्द्रसिंह के पुत्र) मोहकमसिंह को सौंपा गया। सोजत और जैतारण पर सैयदों का अधिकार रहा। इस प्रकार मारवाड़ का प्रबंध कर वह फिर गुजरात को लौट गया[2]।

यह देख मारवाड़ के सरदारों ने फिर से मार-काट शुरू कर दी। इसी समय इनायतखाँ का पुत्र मुहम्मदअली अपने कुटुम्ब को लेकर मेड़ते से दिल्ली को रवाना हुआ। यह बड़ा ही धूर्त था। अतः इसकी सूचना पाते ही चाँदावत जूँझारसिंह, सूरजमल और जोधा हरनाथ ने उसका पीछा किया। मार्ग में युद्ध होने पर मुहम्मद तो अपने कुटुम्ब को छोड़ कर भाग खड़ा हुआ, और उसका साज़-सामान राठोड़ों के हाथ लगा[3]।

वि० सं० १७४६ (ई० सन् १६८९) में चाँपावत मुकुन्ददास और दुर्गादास आदि ने मिलकर जोधपुर के रक्षक काज़मबेग और अजमेर के सेनापति शफ़ीखाँ को तंग करना शुरू किया[4]। इसकी सूचना पाते ही बादशाह ने उसकी शिथिलता के लिये बहुत कुछ उलाहना लिख भेजा। इस पर शफ़ीखाँ ने और भी दृढ़ता के साथ राठोड़ों का पीछा शुरू किया[5]।

१. बॉबेगज़ेटियर, भा० १, खंड १, पृ० २८८।
२. अजितोदय, सर्ग १३, श्लो० २४-२८।
३. अजितोदय, सर्ग १४, श्लो० १ और १६-३७, राजरूपक, पृ० १३३-१३४ और अजितग्रन्थ, छन्द १५८४-१५८८। 'राजरूपक' मे इस घटना का वि० सं० १७४६ में होना लिखा है। 'अजितोदय' से ज्ञात होता है कि शुजाअतखाँ ने मेड़ते का प्रबन्ध भी इन्द्रसिंह के पुत्र मोहकमसिंह को सौंप दिया था। इसी से मुहम्मदअली वहाँ से दिल्ली को रवाना हुआ था। (देखो सर्ग १३, श्लो० २६)।

इस मुहम्मदअली ने कोसाने के ठाकुर चाँदावत पृथ्वीसिंह को, दोहा के ठाकुर चाँदावत जैतसिंह को और मेड़तिया मोहकमसिंह को धोके से मारा था। (अजितोदय सर्ग १४, श्लो० ३-१८)।

४. 'अजितग्रन्थ' में इस घटना का वि० सं० १७४७ में होना लिखा है। (देखो छन्द १६०० और १६०४-१६०६)।
५. 'अजितग्रन्थ' में वि० सं० १७४७ (ई० सन् १६९०) में शुजाअतखाँ का गुजरात से मारवाड़ में आना और बादशाह का अपने पदाधिकारियों द्वारा मारवाड़ में महाराज के

वि० सं० १७४७ के मँगसिर (ई० स० १६९० के नवम्बर) में अजमेर के शाही सेनापति शफ़ीख़ाँ ने महाराज को धोका देकर पकड़ लेने का इरादा किया, और इसीके अनुसार उसने इन्हें अजमेर आकर मारवाड़ के शासन का बादशाही फ़रमान ले जाने की सूचना दी। महाराज भी शफ़ीख़ाँ का पत्र पाकर अपने दल-बल सहित सिवाने से अजमेर की तरफ़ चले। यद्यपि इनके दल-बल को देख उसकी हिम्मत इनके पकड़ने की न हुई, तथापि इनके इधर चले आने से यवनों ने सिवाने पर अधिकार कर उसे जोधा सुजानसिंह को सौंप दिया। जैसे ही महाराज को इस कपट का पता चला, वैसे ही यह समेल के पहाड़ों में चले गए[3]।

वि० सं० १७४८ (ई० स० १६९१) में महाराना जयसिंहजी के ज्येष्ठ पुत्र अमरसिंहजी ने पिता से राज्य छीन लेने का विचार किया। इस पर महाराना तत्काल कुंभलगढ़ चले आए, और वहां से उन्होंने मेड़तिये गोपीनाथ की सलाह के अनुसार महाराज अजितसिंहजी के पास आदमी भेजकर इनसे सहायता की प्रार्थना की। इस पर महाराज की तरफ़ से चांपावत उदयसिंह और दुर्गादास उनकी मदद में भेजे गए। इन्होंने वहां पहुँच साम, दान और भय द्वारा राजकुमार को शांत कर दिया। इस प्रकार पिता-पुत्र के बीच संधि हो जाने पर रानाजी उदयपुर चले गए और

सरदारों को चौथ (आमदनी का चौथा हिस्सा) देने का हाल सुन दक्षिण से उसके नाम उलाहना लिख भेजना लिखा है। (देखो छन्द १६५०-१७१४)।

१. 'अजितग्रन्थ' में वि० सं० १७५१ की ज्येष्ठ सुदी में अजमेर के फ़ौजदार शफ़ीख़ाँ का मरना लिखा है। (देखो पृ० ३९५) उसमें यह भी लिखा है कि इसके बाद इसका काम हामिदख़ाँ को सौंपा गया। (देखो पृ० ३९७)।

२. यह पिंशांगण का था। 'राजरूपक' में सिवाना लेने का कुछ भी उल्लेख नहीं है। (हस्तलिखित कापी, पृ० १३२-१३३)।

३. 'अजितग्रन्थ' में इस घटना का वि० सं० १७४६ के आश्विन में होना लिखा है। (देखो पृ० ३१५ और ३५६)।

'हिस्ट्री ऑफ़् औरङ्गज़ेब' में ई० सन् १६९० में दुर्गादास द्वारा अजमेर में शफ़ीख़ाँ का हराया जाना लिखा है। उसमें यह भी लिखा है कि इस घटना की सूचना पाकर शुजाअतख़ाँ को मारवाड़ में आना पड़ा और इसी समय उसने व्यापारियों के माल के लगान का चौथा हिस्सा राठोड़ों को देना तय किया। (देखो भा० ५, पृ० २७८-२७९)।

महाराजकुमार राजसमंद तालाब पर रहने लगे। इसके बाद दुर्गादास आदि राठोड़ सरदार लौटकर मारवाड़ में चले आए।[1]

वि० सं० १७४९ (ई० सन् १६९२) में औरङ्गज़ेब ने शाहज़ादे मुहम्मद अकबर की कन्या[2] को दुर्गादास से वापस लेने की कोशिश शुरू की। परन्तु इसका कुछ भी नतीजा न हुआ। उलटा राठोड़-सरदारों का उपद्रव और भी बढ़ गया। इस पर शुजाअतख़ाँ ख़ुद जोधपुर आया, और उसने कुछ बड़े-बड़े सरदारों को उनकी जागीरें लौटाकर अपनी तरफ़ मिला लेने की चेष्टा की। उसी की आज्ञा से काज़िमबेग ने भी दुर्गादास पर चढ़ाई कर उसके दल को बिखेर दिया। परन्तु पूरी सफलता न होने के कारण पहले के समान ही मोहकमसिंह को मेड़ते में छोड़ शुजाअतख़ाँ गुजरात को लौट गया।[3]

ख्यातों में लिखा है कि यद्यपि महाराज दुर्गादास से विना पूछे ही अजमेर की तरफ़ चले गए थे, तथापि सिवाने के इस प्रकार हाथ से निकल जाने के कारण दुर्गादास को बहुत दुःख हुआ, और वह फिर उदासीन होकर घर बैठ रहा। इस पर महाराज वि० सं० १७५० (ई० सन्० १६९३) में फिर उससे मिलने के लिये भीमरलाई पहुँचे। इसकी सूचना पाते ही दुर्गादास ने आगे आ महाराज की अभ्यर्थना की। परन्तु पीछे से आने का वादा कर महाराज के साथ चलने से इनकार कर दिया। यह बात महाराज को बुरी लगी, और वह कुछ असन्तुष्ट होकर कुंडल की तरफ़ लौट गए।[4]

वि० सं० १७५० (ई० सन् १६९३) में मुसलमानों की सम्मिलित सेनाओं ने मोकलसर के बाला अखैसिंह पर चढ़ाई की। परन्तु बाला राठोड़ो ने बड़ी वीरता से इनका सामना किया। इसी प्रकार और भी कई जगह शाही और महाराज की सेनाओं के बीच मुठभेड़ें हुईं। इस वर्ष भी शुजाअत को राठोड़ों के उपद्रव के कारण दो बार मारवाड़ में आना पड़ा।[5]

---

१. 'अजितोदय' सर्ग १५, श्लो० ११७। 'वीरविनोद' मे प्रकाशित मारवाड़ के इतिहास में इस घटना का समय वि० सं० १७४६ (ई० सन् १६८९) लिखा है।

२. 'मआसिरेआलमगीरी' में पुत्र लिखा है। (देखो पृ० ३६५)।

३. बँबिगज़ेटियर, भा० १, खंड १, पृ० २८६। उसी में यह भी लिखा है कि शुजाअतख़ाँ साल में ६ महीने जोधपुर में रह कर यहाँ के उपद्रव को दबाने में लगा रहता था।

४. यह बात 'राजरूपक' और 'अजितोदय' में नहीं लिखी है।

५. बँबिगज़ेटियर, भा० १, खंड १, पृ० २८६।

वि० सं० १७५१ (ई० सन् १६९४) में राठोड़ों ने और भी ज़ोर पकड़ा। इस पर बहुत से शाही हाकिम इनको अपने-अपने प्रदेशों की आमदनी का एक भाग देकर अपना बचाव करने लगे।

कुछ दिन बाद शुजाअतख़ाँ ने काज़िमख़ाँ को अपने पास गुजरात में बुला लिया। इस पर वह सोजत के लश्करीख़ाँ को जोधपुर का प्रबन्ध सौंप वहाँ चला गया। महाराज उस समय पीपलोद के पहाड़ों में थे, इसलिये चाँपावत उदयसिंह आदि ने लश्करीख़ाँ को गोड़वाड़ के युद्ध में मार भगाया। इसकी सूचना पाते ही शुजाअतख़ाँ ने काज़िम को फिर जोधपुर भेज दिया।[1]

ख्यातों में लिखा है कि इसी वर्ष महाराज ने फिर से मुकुंददास आदि को दुर्गादास के पास भेजा। यह लोग उसे समझाकर महाराज के पास ले आए। इसके बाद सरदारों ने फिर से इधर-उधर के यवन-शासकों को दबाकर दण्ड के रुपये वसूल करने शुरू किए।

वि० सं० १७५२ (ई० सन् १६९५) में महाराज के वीरों और मुगल-सेनापतियों के बीच किरमाल की घाटी के पास युद्ध हुआ। इसमें राठोड़ों ने पर्वत का सहारा पा अच्छी वीरता दिखाई। इसके बाद महाराज बीजापुर की तरफ़ चले गए।[2] इसी बीच बादशाह ने शाहज़ादे मोहम्मद अकबर के बालकों को लौटाने के लिये शुजाअतख़ाँ के द्वारा दुर्गादास से फिर बातचीत प्रारंभ की, और उसे मनसब देने का वादा भी किया। परंतु दुर्गादास ने महाराज को मनसब मिलने के पहले स्वयं उसे स्वीकार करने से इनकार कर दिया।[3]

इसी वर्ष लोगों के सिखलाने से मेवाड़ के महाराजकुमार अमरसिंहजी ने फिर से पिता के साथ विरोध करने का विचार किया।[4] यह देख महाराना जयसिंहजी ने अपने भाई

१. अजितोदय, सर्ग १५, श्लो० १६-२७। इस काव्य मे पीछे से महाराज का भी युद्ध-स्थल मे आ जाना लिखा है। 'अजितग्रन्थ' मे इसी वर्ष की फागुन बदी १० को काज़िमबेग का मरना और हामिदख़ाँ को उसका पद मिलना लिखा है। (देखो पृ० ४१४)।

२. अजितग्रन्थ, पृ० ४०५-४०८।

३. 'राजरूपक' में दुर्गादास का अकबर के पुत्र को अपने पास रखकर उसकी बेगम को बादशाह के पास भेज देना लिखा है (देखो पृ० १४१)।

४. इसकी पुष्टि 'राजपूताने के इतिहास' से भी होती है। उसके तीसरे भाग के पृ० ९०२ पर लिखा है कि, "इस प्रकार वि० सं० १७४८ (ई० सन् १६९१) के अन्त के आस पास इस गृह-कलह की समाप्ति हुई। परन्तु दोनों के दिल साफ़ न हुए, इत्यादि"।

गजसिंह की कन्या से महाराज का विवाह निश्चित कर इन्हें शीघ्रही उदयपुर आने को लिखा। इस पर महाराज भी अपने वीरों को लेकर तत्काल वहाँ जा पहुँचे। यह देख महाराजकुमार को शांत हो जाना पड़ा। इसके बाद वि० सं० १७५३ (ई० सन् १६९६) में विवाह हो जाने पर महाराज लौटकर पीपलोद के पहाड़ों में चले आए।

इन्हीं दिनों शुजाअतख़ाँ फिर जोधपुर आया और यहाँ के उपद्रव के कारण कुछ मास तक उसे यहीं रहना पड़ा। इसी बीच उसने दुर्गादास से संधि की शर्तें तय कर लीं। अतः दुर्गादास ने पहले तो बादशाह की पोती को उस (बादशाह) के पास भेज दिया और फिर स्वयं दक्षिण में पहुँच उसके पोते को भी उसे सौंप दिया। इसकी एवज़ में बादशाह ने उसे पहले मेड़ता और बाद में धंधुकाँ तथा गुजरात के अन्य कई परगने जागीर में दिएँ। वि० सं० १७५५ (ई० सन् १६९८) में इत्तमादख़ाँ मर गया, और उसका बेटा मुहम्मदमुशीन दीवान बनाया गया। इस पर बादशाह ने उसे दुर्गादास को मेड़ता

१. यह घटना 'अजितोदय' (सर्ग १५, श्लो० २९-३५) और 'राजरूपक' (पृ० १४१) से ली गई है। 'अजितग्रंथ' मे पिता-पुत्र में फिर झगड़ा होने का उल्लेख नहीं है। (देखो पृ० ४२१)।

'वीरविनोद' में प्रकाशित मारवाड़ के इतिहास मे इस घटना का समय वि० सं० १७५३ (ई० सन् १६९६) दिया है।

२. 'बॉंबेगज़ेटियर', भा० १, खंड १, पृ० २८९।

३. दुर्गादास ने वहाँ के प्रबंध के लिये अपना प्रतिनिधि भेज दिया था। 'हिस्ट्री ऑफ़ औरंगज़ेब' मे ई० सन् १६९४ से ही दुबारा इस विषय की बातचीत का शुरू होना लिखा है। (देखो भा० ५, पृ० ३८१)।

४. 'राजरूपक' मे लिखा है कि वि० सं० १७५३ (ई० सन् १६९६) के अंत मे दुर्गादास ने अकबर की बेगम और कन्या को, जो शाहज़ादे के दक्षिण जाने के समय से ही मारवाड़ मे थीं, बादशाह के पास भेज दिया, और वि० सं० १७५४ (ई० सन् १६९७) मे वह स्वयं शाहज़ादे के पुत्र को लेकर बादशाह के पास दक्षिण में पहुँचा। इस समय महाराज अपने वीरों के साथ कुंडल के पहाड़ों मे ठहरे हुए थे। इसके बाद अगले वर्ष जालोर पर महाराज का अधिकार हो गया। (देखो पृ० १४३-१४६)।

'मआसिरेआलमगीरी' में लिखा है कि अहमदाबाद के नाज़िम शुजाअतख़ाँ के समझाने से दुर्गादास ने वि० सं० १७५५ की द्वितीय ज्येष्ठ बदी ५ (ई० सन् १६९८ की २० मई) को अकबर के पुत्र बुलंदअख़्तर को, जो उस (अकबर) के भागने के समय मारवाड़ में पैदा हुआ था, ले जाकर बादशाह को सौंप दिया। इस पर बादशाह ने प्रसन्न होकर दुर्गादास को जड़ाऊ ख़िलअत, तीन हज़ारी ज़ात और ढाई हज़ार सवारों का मनसब दिया।

सौंप देने की आज्ञा दी, और मुहम्मदमुनीम को जोधपुर का क़िलेदार बनाया। लगातार दो वर्षों से वर्षा न होने के कारण इस वर्ष मारवाड़ में बड़ा अकाल पड़ा। वि० सं० १७५६ (ई० सन् १६६६) में दुर्गादास के कहने से बादशाह ने महाराज को कुछ परगनों के साथ ही जालोर[1] और सांचोर का शासन[2] सौंप दिया। इसके बाद वि० सं०

मआसिरेआलमगीरी, पृ० ३६५। 'हिस्ट्री ऑफ़ औरंगज़ेब' में जड़ाऊ खंजर, सोने का पदक, मोतियों की माला और १,००,००० रुपये देना लिखा है। (देखो भा० ५, पृ० २८६)।

वि० सं० १७५५ की पौष सुदी १३ (ई० सन् १६६६ की ३ जनवरी) को बादशाह ने दुर्गादास के नाम एक फ़रमान लिखा। उसमें उसे सेवस्तान की तरफ़ जाकर शाहज़ादे अकबर को ले आने की आज्ञा दी थी।

'मीरातेअहमदी' में लिखा है कि हि० सन् ११०७ (वि० सं० १७५३=ई० सन् १६६६) मे ईश्वरदास और शुजाअतख़ाँ की लिखा-पढ़ी से मामला तय हो जाने पर दुर्गादास ने शाहज़ादे अकबर की कन्या सफ़ीयतुन्निसाँ बेगम को बादशाह के पास भेज दिया। दुर्गादास ने एक पढ़ी-लिखी औरत को रख कर उक्त बेगम को कुरान याद करवा दिया था। बादशाह को बेगम के द्वारा यह बात ज्ञात होने पर बड़ी प्रसन्नता हुई, और उसने शुजाअतख़ाँ को लिखा कि जैसे हो, वैसे वह दुर्गादास को बड़ी इज़्ज़त के साथ दरबार मे भेज दे। इसी के साथ उसने यह भी आज्ञा दी कि दुर्गादास को (जोधपुर पहुँचने पर ५०,००० और अहमदाबाद पहुँचने पर ५०,००० कुल) १,००,००० रुपये दिए जायँ, और मेड़ता उसकी जागीर में कर दिया जाय। इस पर दुर्गादास भी अकबर के पुत्र (बुलंदअख़्तर) को लेकर अगले वर्ष बादशाह के पास दक्षिण में जा पहुँचा। बादशाह की तरफ़ स उसके अमीरों ने दुर्गादास की पेशवाई में उपस्थित हो उसका बड़ा आदर-सत्कार किया। (देखो भा० १, पृ० ३४६-३५०)।

उस समय बादशाह भीमा नदी पर स्थित इसलामपुर में था। जब दुर्गादास ने बादशाह की आज्ञानुसार शस्त्र खोलकर दरबार में जाना अंगीकार न किया, और बहुत दबाने पर तलवार पर हाथ रक्खा, तब उसे शस्त्र लेकर ही उपस्थित होने की आज्ञा दी गई। (हिस्ट्री ऑफ़ औरंगज़ेब, भा० ५, पृ० २८५-२८६)।

१. अजितोदय, सर्ग १५, श्लो० ५१।

२. मुजाहिदख़ाँ जालोरी को, जो पहले वहाँ का शासक था, इनकी एवज़ मे पालनपुर और डीसे में जागीर दी गई थी। 'हिस्ट्री ऑफ़ औरंगज़ेब' में ई० सन् १६६८ में बादशाह द्वारा महाराज को जालोर, साँचोर और सिवाना दिया जाना लिखा है (देखो भा० ५, पृ० २८४)।

'राजरूपक' में महाराज का वि० सं० १७५५ की आषाढ़ सुदी ५ को जालोर पहुँचना लिखा है। उसमें यह भी लिखा है कि वि० सं० १७५४ (ई० सन् १६६८) में महाराज कुछ दिन जोधपुर जाकर रहे थे, और उस अवसर पर शाहज़ादे (अज़ीम) ने इनकी बड़ी ख़ातिर की थी। इसके बाद यह जालोर लौट गए। परन्तु यह सब कवि-कल्पना ही प्रतीत होती है।

१७५७ (ई० सन् १७००) में उसने इन्हें अपने पास आने को लिखा[1]।

वि० सं० १७५७ के द्वितीय श्रावण (ई० सन् १७०० के अक्टोबर) में अजितसिंहजी ने ४,००० सवार लेकर शाही दरबार में उपस्थित होने की इच्छा प्रकट की। परन्तु इसके साथ ही इन्होंने खर्च के लिये कुछ रुपये नक़द और कुछ परगने दिए जाने का भी लिखा। बादशाह ने रुपयों के देने के लिये तो अजमेर के ख़जाने पर आज्ञा भेज दी, परन्तु जागीर के बाबत महाराज के दरबार में उपस्थित होने पर दिए जाने का वादा किया[2]।

इसके बाद बादशाह ने महाराज को कई बार बुलवाया। पर यह उसके पास नहीं गए[3]।

ख्यातों में लिखा है कि वि० सं० १७५७ के पौष (ई० सन् १७०० की जनवरी) में महाराज अजितसिंहजी ने शाही सेना को भगाकर जोधपुर पर अधिकार कर लिया था। परन्तु वि० सं० १७५६ (ई० सन् १७०२) में शाहज़ादे मुहम्मद मुअज़्ज़म ने उसे वापिस छीन लिया। यह भी ठीक प्रतीत नहीं होता। 'अजितोदय' में भी इसका उल्लेख नहीं है।

१. 'बँबिगज़ेटियर', भा० १, खंड १, पृ० २६०-२६१।

२. 'हिस्ट्री ऑफ़ औरंगज़ेब', भा० ५, पृ० २८६।

३. हिस्ट्री ऑफ़ औरंगज़ेब, भा० ५, पृ० २८७।

जोधपुर राज्य की मुनशीगीरी के दफ्तर से एक फ़रमान मिला है। यह औरंगज़ेब के पौत्र (शाहज़ादे मुअज़्ज़म बहादुरशाह के पुत्र) मुइज़ुद्दीन की तरफ़ से लिखा गया था। इसकी मुहर में हि० सन् १११३ और आलमगीरी सने जलूस ४६ (वि० सं० १७५८=ई० सन् १७०२) लिखा है। इससे प्रकट होता है कि पद्मसिंह के द्वारा लिखा पढ़ी होने के बाद बादशाह की तरफ़ से उसी के साथ महाराज के लिये ख़ासा खिलअत, निशान, सातहज़ारी ज़ात, सात हज़ार सवारों का मनसब और जोधपुर के अधिकार का फ़रमान मय ख़ास पंजे के भेजा गया था। साथ ही इन्हें जहां तक हो शीघ्र २०-३० हज़ार सवार और इतने ही पैदल सिपाही साथ लेकर दिल्ली के निकट मिलने का लिखा गया था और ऐसा करने पर और भी पद और मर्यादा में वृद्धि करने का वादा किया गया था। उसी में आगे अपने भी शीघ्र दिल्ली पहुँचने का ज़िक्र था।

यह फ़रमान २६ जिलहिज को लिखा गया था। परन्तु इसके लिखे जाने के सन् का निर्णय करना कठिन है। सम्भवत; यह वि० सं० १७६३ की वैशाख सुदि १ (ई० सन् १७०६ की २ अप्रेल) को लिखा गया होगा; क्योंकि इसमें बादशाह के दिल्ली की तरफ़ रवाना होने का उल्लेख है।

वि० सं० १७५६ की मँगसिर बदी १४ (ई० सन् १७०२ की ७ नवम्बर) को महाराज की चौहान-वंश की रानी के गर्भ से महाराजकुमार अभयसिंहजी का जन्म हुआ[1]। उस समय महाराज जालोर में थे, और चाँपावत उदयसिंह इनका प्रधान था[2]।

वि० सं० १७६० (ई० सन् १७०३) में शुजाअतखाँ के[3] मरने पर शाहजादा मुहम्मदआज़म गुजरात का सूबेदार हुआ। उसने काज़म के पुत्र जाफरकुली को जोधपुर का और दुर्गादास को पाटन का फ़ौजदार बनाया[4]।

इसके कुछ दिन बाद ही बादशाह की आज्ञा से शाहज़ादे आज़म ने दुर्गादास को अपने अहमदाबाद के दरबार में बुलाकर मार डालने का इरादा किया। परन्तु उसकी जल्दबाज़ी से दुर्गादास को संदेह हो गया, और इसीसे वह बचकर निकल गया[5]। यद्यपि आज़म की आज्ञा से सफ़दरखाँ बाबी ने उसका पीछा किया, तथापि दुर्गादास के पौत्र द्वारा मार्ग में ही रोक लिए जाने से उसे सफलता नहीं हुई। यहीं पर दुर्गादास का उक्त पौत्र मारा गया[6]। परन्तु दुर्गादास अपने कुटुम्बियों के साथ मारवाड़ में पहुँच महाराज

---

१. अजितोदय, सर्ग ६, श्लो० ४-१५।

२. अजितोदय, सर्ग १५, श्लो० ५२।

३. 'हिस्ट्री ऑफ़् औरङ्गज़ेब' में शुजाअत का वि० सं० १७५८ की श्रावण बदी १ (ई० सन् १७०१ की ६ जुलाई) को मरना लिखा है। (देखो भा० ५, पृ० २८७)।

४. 'बॉंबेगज़ेटियर', भा० १ खंड १, पृ० २६१, 'राजरूपक' में वि० सं० १७५७ (ई० सन् १७००) में शुजाअत का मरना और आज़म का गुजरात का सूबेदार होना लिखा है। उसके अनुसार वि० सं० १७६१ में जाफ़र का मारवाड़ में आना प्रकट होता है। (देखो पृ० १६०)।

५. शाहज़ादे की आज्ञा से दुर्गादास पाटन से आकर अहमदाबाद के पास करिज़ में ठहरा था। उस दिन द्वादशी का दिन होने से वह एकादशी के व्रत का पारण कर दरबार में उपस्थित होना चाहता था। उधर शाहज़ादे ने शिकार को जाने के बहाने से सेना और मनसबदारों को पहले से ही तैयार कर यथास्थान खड़ा कर दिया था और दुर्गादास के मारने का काम सफ़दरखाँ बाबी को सौंपा था। परंतु दुर्गादास के आने में देर होती देख शाहज़ादे ने उसको बुला लाने के लिये बार-बार हलकारे भेजने शुरू किए। इससे उसको संदेह हो गया, और वह पारण किए विना ही अपने कैंप को जलाकर मारवाड़ की तरफ़ चल दिया। (हिस्ट्री ऑफ़् औरङ्गज़ेब, भा० ५, पृ० २८७-२८८)।

६. यह युद्ध पाटन के मार्ग में हुआ था। इसमें सफ़दर का पुत्र और मुहम्मद अशरफ़ गुरनी ज़ख़मी हुए।

अजितसिंहजी के दल में मिल गया।

वि० सं० १७६२ (ई० सन् १७०५) में जबरदस्तखाँ अजमेर और जोधपुर का हाकिम नियत हुआ। उसी समय बादशाह ने दुर्गादास का मारवाड़ में अधिक रहना हानिकारक समझ इधर तो उसे गुजरात जाने के लिये लिख भेजा, और उधर गुजरात के नायब अब्दुलहमीद को उसकी पुरानी जागीर उसे लौटा देने की आज्ञा दी[१]। इसी वर्ष गुजरात के शासक शाहज़ादे मुहम्मद बेदारबख़्त[३] ने फिर से महाराजा अजितसिंहजी के उपद्रवों को दबाने का प्रयत्न प्रारंभ किया[४]। परन्तु उस समय गुजरात में मरहठों के कारण बड़ी गड़बड़ मची हुई थी। अतः दुर्गादास[५] की सलाह से महाराज ने थिराद

इतने में दुर्गादास ६० मील पर के उंझा-उनौवा में पहुँच गया, और वहाँ से पाटन पहुँच अपने कुटुम्ब के साथ थिराद चला आया। यहाँ पर इसने वि० सं० १७५६ (ई० सन् १७०२) में महाराज के साथ होकर फिर मुग़ल-सैनिकों पर आक्रमण शुरू कर दिए। परन्तु इनमें विशेष सफलता नहीं हुई। (हिस्ट्री ऑफ़् औरङ्गज़ेब, भा० ५, पृ० २८८-२८६)।

उक्त इतिहास में इसी वर्ष महाराज के और दुर्गादास के बीच मनोमालिन्य होना लिखा है। (देखो भा० ५, पृ० २८६-२६०)।

१. बॉंबेगज़ेटियर, भा० १, खंड १, पृ० २६१-२६२।

२. बॉंबेगज़ेटियर, भा० १, खंड १, पृ० २६३।

३. यह वि० सं० १७६२ (ई० सन् १७०५) मे गुजरात का सूबेदार नियत किया गया था।

'हिस्ट्री ऑफ़् औरङ्गज़ेब' में लिखा है कि इसी वर्ष दुर्गादास ने शाहज़ादे आज़म के द्वारा बादशाह से फिर मेल कर लिया। इसी से वह अपने पुराने मनसब और पाटन की फ़ौजदारी के पद पर नियत किया गया। (देखो भा० ५, पृ० २६१)।

४. वि० सं० १७६२ की कार्त्तिक वदि १ के बाली से लिखे मुकुन्ददास के पत्र से, जो बीलाड़े में भगवानदास के नाम भेजा गया था, ज्ञात होता है कि इस अवसर पर औरङ्गज़ेब ने महाराजा अजितसिंहजी को अपने पास बुलवाया था और इन्हें मनसब देने का वादा भी किया था।

५. बॉंबेगज़ेटियर, भा० १, खंड १, पृ० २६४-२६५। उसमें यह भी लिखा है कि अन्त में अजितसिंह ने कुँवर मोहकमसिंह को हराकर जोधपुर पर चढ़ाई की, और उक्त नगर को काज़मबेग के पुत्र ज़ाफरकुली से छीन लिया। इसी बीच दुर्गादास जाकर सूरत के दक्षिण में रहनेवाले कोलियों के साथ छिप गया था। इससे मौक़ा पाकर उसने नायब होकर पाटन को जाते हुए काज़म के पुत्र शाहकुली को मार्ग में ही मार डाला, और इसके बाद चनियार में बीरमगाँव के हाकिम मासुमक़ुली की सेना का भी नाश कर दिया। मासुमक़ुली स्वयं बड़ी कठिनता से बचकर भाग सका। इस पर सफ़दरखाँ बाबी ने पाटन की हकूमत

पर चढ़ाई कर दी। परन्तु अन्त में यवन-वाहिनी के वहाँ पहुँच जाने से इनको जालोर लौट आना पड़ा।

इसी समय राव इन्द्रसिंह के पुत्र मोहकमसिंह[1] ने बगड़ी ठाकुर दुर्जनसिंह के द्वारा, महाराज के मंत्री चाँपावत उदयसिंह को अपनी तरफ़ मिला लिया, और वि० सं० १७६२ के माघ (ई० सन् १७०६ की जनवरी) में यवन-वाहिनी को लेकर चुपचाप जालोर पर चढ़ाई कर दी। जैसे ही महाराज को चाँपावत तेजसिंह द्वारा चाँपावत उदयसिंह के विश्वास-घात की सूचना मिली, वैसे ही यह भी युद्ध के लिये तैयार हो गए। परन्तु वहाँ का रंग-ढंग देख तेजसिंह ने कुछ समय के लिये महाराज के इस विचार को रोक दिया। इस पर महाराज अपने कुटुम्ब के साथ क़िले से निकलकर (५ कोस पर के) अगवारी नामक गांव में चले गए, और जालोर पर मोहकमसिंह का अधिकार हो गया। इसके बाद इधर तो चाँदारूण का ठाकुर मेड़तिया कुशलसिंह और बलूंदे का चाँपावत विजयसिंह इस चढ़ाई की सूचना पाते ही अपने-अपने स्थानों से तत्काल रवाना होकर महाराज के पास आ पहुँचे, और उधर वीर जगरामसिंह और भाद्राजण का ठाकुर जोधा बिहारीसिंह भी अपनी-अपनी सेनाओं के साथ वहाँ आ गए। बिहारीसिंह की सेना में राजपूतों के साथ ही बहुत से भील भी थे।

इस प्रकार बल संग्रह हो जाने पर महाराज ने जालोर पर हमला कर दिया[2]। यह देख मोहकमसिंह और उदयसिंह क़िला छोड़कर समदड़ी की तरफ़ चले गए। जब

पाने की आशा से दुर्गादास को मारने या पकड़ने का ज़िम्मा लिया। परन्तु इसके बाद दुर्गादास का कुछ पता नहीं चलता। अतः संभव है, सफ़दर अपने कार्य में सफल हो गया हो। (देखो भा० १, खंड १, पृ० २६५) परन्तु दुर्गादास वि० सं० १७७४ (ई० सन् १७१७) तक जीवित था। इससे उपर्युक्त गज़ेटियर के लेखक का यह अनुमान ठीक प्रतीत नहीं होता।

'हिस्ट्री ऑफ़् औरङ्गज़ेब' में लिखा है कि ई० सन् १७०४ की मई में औरङ्गज़ेब ने दुर्गादास के भाई खेमकरण और भतीजे देवकरण और दलकरण को अपनी नौकरी से हटा दिया। साथ ही उसने दुर्गादास को अहमदाबाद से दरबार में पकड़ लाने का भी हुक्म दिया। परंतु अगले ही महीने यह हुक्म रद कर दिया गया। (हिस्ट्री ऑफ़ औरङ्गज़ेब, भा० ५, पृ० २६१ फुटनोट)।

१. इसका जन्म वि० सं० १७२८ की आश्विन सुदि ३ को हुआ था।

२. 'राजरूपक' में इस युद्ध का माघ सुदी १३ को होना लिखा है। (देखो पृ० १६६)।

महाराज ने वहाँ भी उनका पीछा किया, तब वे अपना साज-सामान छोड़ दुनाड़े होते हुए मेड़ते की तरफ़ भाग गए। परन्तु इस घटना की सूचना पाते ही जोधपुर के हाकिम जाफ़रख़ाँ ने मोहकमसिंह से मेड़ते की हकूमत छीन ली। अतः लाचार होकर वह नागोर चला गया।[3]

वि० सं० १७६३ की भादों बदी ७ (ई० सन् १७०६ की १६ अगस्त) को महाराज के द्वितीय पुत्र बख़्तसिंहजी का जन्म हुआ। इसके बाद महाराज ने रोहीचे पर चढ़ाई कर वहाँ के चौहानों को हराया।

वि० सं० १७६३ की फागुन बदी १४ (ई० सन् १७०७ की २० फ़रवरी) को दक्षिण में अहमदनगर के पास बादशाह औरङ्गज़ेब का देहांत हो गया। इसकी सूचना पाते ही महाराज ने अपनी सेना को एकत्रित कर सूराचंद से जोधपुर पर चढ़ाई कर दी। वहाँ के क़िलेदार जाफ़रकुली ने भी पहले तो इनका सामना किया, परन्तु अन्त में वह राठोड़-वाहिनी के वेग को रोकने में असमर्थ हो क़िला छोड़कर भाग गया।

१. यहाँ पर दोनों सेनाओं के बीच घमसान युद्ध हुआ था।

२. 'हिस्ट्री ऑफ़ औरंगज़ेब' मे (ई० सन् १७०४ में) औरंगज़ेब का महाराज को मेड़ते का अधिकार देना लिखा है। परन्तु उसमें यह भी लिखा है कि महाराज ने वहाँ का प्रबंध कुशलसिंह को सौंप दिया था। इसमे (नागोर के स्वामी इन्द्रसिंह का पुत्र) मोहकमसिंह, जो अजितसिंहजी की बाल्यावस्था में इनकी तरफ़ से बादशाह से बराबर लड़ता रहा था, नाराज़ होकर (ई० सन् १७०५ में) बादशाह की तरफ़ हो गया। (देखो भा० ५, पृ० २६०-२६१)। परन्तु इन्द्रसिंह का पुत्र मोहकमसिंह प्रारंभ से ही महाराज के विरुद्ध था। शाही मनसब छोड़कर महाराज की तरफ़ से यवनों से लड़ने वाला मेड़तिया मोहकमसिंह उससे भिन्न था।

३. अजितोदय, सर्ग १६, श्लो० २०-४२। 'राजरूपक' में अजितसिंहजी के जोधपुर पर अधिकार कर लेने पर मोहकम का मेड़ता छोड़ नागोर जाना लिखा है। (देखो पृ० १६८)।

४. अजितोदय, सर्ग १७, श्लो० २-३।

५. अजितोदय, सर्ग १७, श्लो० ४।

६. 'क्रॉनॉलॉजी ऑफ़ मॉडर्न इन्डिया' में उस दिन (हि० सन् १११८ की २८ ज़ीकाद को) ३ मार्च का होना लिखा है। यह ठीक प्रतीत नहीं होता। (देखो पृ० १४६)।

कहीं-कहीं फागुन बदी ३० (ता० २१ फ़रवरी) भी लिखी मिलती है।

७. बॉंबेगज़ेटियर, भा० १, खंड १, पृ० २६५। अजितोदय, सर्ग १७ श्लो० ४-७।

इस पर वि० सं० १७६३ की चैत्र बदी ५ (ई० सन् १७०७ की १२ मार्च) को, २८ वर्ष की अवस्था में, महाराज ने अपनी राजधानी जोधपुर-नगर में प्रवेश किया। इसके दूसरे दिन (माधोदासोत) मेड़तिये कुशलसिंह ने शाही सैनिकों से मेड़ता छीन लिया। इसी प्रकार कुछ दिनों में मारवाड़ के अन्य प्रदेशों (सोजत और पाली आदि) पर भी महाराज का अधिकार हो गया।

इस पर मुसलमानों और बगड़ीवालों ने मिलकर एक बनावटी दलथंभन को सोजत का मालिक बना दिया। इसकी सूचना पाते ही महाराज स्वयं सेना सहित वहाँ जा पहुँचे। छः दिन के भीषण युद्ध के बाद शत्रु तो हारकर भाग गये, और सोजत पर महाराज का अधिकार हो गया। इसके बाद कुछ दिनों में वहाँ का प्रबन्ध ठीककर यह फिर जोधपुर लौट आए।

महाराज अजितसिंहजी ने औरङ्गज़ेब के कारण २८ वर्षों तक बड़ी-बड़ी तकलीफ़ें उठाई थीं। यदि उस समय मारवाड़ के सरदार देश काल के अनुसार बुद्धिमानी, दृढ़ता और वीरता से अपना धर्म न निभाते, तो इनके प्राणों तक का बचना कठिन था। इसके अलावा इन २८ वर्षों में धर्मांध यवनों ने तमाम मारवाड़ के—ख़ासकर जोधपुर के मंदिरों को नष्ट कर उनके स्थानों पर मसजिदें बनवा दी थीं। इसीसे चारों तरफ़ ब्राह्मणों के घंटा और शंखनाद की एवज़ में मुल्लाओं की अज़ाँ सुनाई देती थी। हिन्दुओं का धन, धर्म, इज़्ज़त और प्राण तक संकट में पड़ गए थे। परन्तु महाराज ने राज्य पर अधिकार करते ही इन सब बातों को उलट दिया। चारों तरफ़ मसजिदों के स्थान पर मंदिर दिखाई देने लगे। अज़ाँ की आवाज़ों का स्थान फिर से घंटा और शंखनाद ने

१. अजितोदय, सर्ग १७, श्लो० ११। 'राजरूपक' में भी महाराज के जोधपुर-प्रवेश की यही तिथि लिखी है। परन्तु उसमें क़िले पर जाने की तिथि चैत्र बदी १३ दी है। (देखो पृ० १७०)।

२. अजितोदय, सर्ग १७, श्लो० १२। उस समय क़िले का प्रत्येक स्थान गंगाजल और तुलसी-दल से पवित्र किया गया था। (हिस्ट्री ऑफ़ औरंगज़ेब, भा० ५, पृ० २६२)।

३. 'अजितोदय' में वहीं पर दलथंभन का मारा जाना लिखा है। (देखो सर्ग १७, श्लो० १४-१७) परन्तु अन्य इतिहासों में इस घटना का उल्लेख नहीं मिलता।

किसी किसी ख्यात में इस घटना का समय वि० सं० १७६७ लिखा है। यह विचारणीय है।

४. अजितोदय, सर्ग १७, श्लो० १४-१८।

५. मुंतख़िबुल्लुबाब, भा० २, पृ० ६०५-६०६।

ले लिया। बहुत से यवन मारे गए या इधर उधर भाग गए। परन्तु जो बच रहे, उन्होंने दाढ़ी मुँडवाकर अपने वेश को ही बदल लिया। इन कार्यों से निपटकर महाराज ने अपने पक्षवालों को उनकी सेवाओं के अनुसर जागीरें आदि देकर संतुष्ट किया, और विपक्षियों को यथासाध्य दन्ड देने का प्रबन्ध किया।

जब इन बातों की सूचना औरङ्गज़ेब के उत्तराधिकारी (मुहम्मद मुअज़्ज़म) बादशाह बहादुरशाह[1] को मिली, तब वि० सं० १७६४ की कार्तिक सुदी ८ (ई० सन् १७०७ की २३ अक्टोबर) को वह महाराज से बदला लेने के लिये अजमेर की तरफ़ रवाना हुआ। इस यात्रा में आँबेर-महाराज सवाई जयसिंहजी भी उसके साथ थे[3]।

उसके आगमन का समाचार पाते ही महाराज किले का साज-सामान ठीककर युद्ध की तैयारी करने लगे, और उनके अनेक सरदार भी प्राणों की बलि देकर किले की रक्षा करने को आ उपस्थित हुए।

---

१. यह वि० सं० १७६४ की आषाढ़ बदी ४ (ई० सन् १७०७ की ८ जून) को अपने भाई शाहज़ादे आज़म को मारकर बादशाह बना था। 'मआसिरुलउमरा' में लिखा है कि मुहम्मद मुअज़्ज़म ने अपने भाई आज़मशाह पर चढ़ाई करने के समय महाराज को अपनी सहायता के लिये बुलवाया था। परन्तु इन्होंने उसकी प्रार्थना पर ध्यान नहीं दिया। इसी से आज़म को परास्त करने के बाद उसने इन पर चढ़ाई करने का प्रबंध किया, और खाँजमाँ को सेना देकर आगे भेजा। इसके बाद संधि हो जाने पर महाराज को ३,००० सवारों का मनसब दिया गया। (देखो पृ० ७५६)।

औरंगज़ेब के तीसरे पुत्र मोहम्मद आज़म का, हि० सन् १११८ की ६ सफ़र (वि० सं० १७६३ की प्रथम ज्येष्ठ सुदि ८=ई० सन् १७०६ की ९ मई) का, महाराज के नाम का एक फ़रमान मिला है। उसमें इनको महाराजा का खिताब, सात हज़ारी ज़ात और सात हज़ार सवारों का मनसब देने का उल्लेख है। परन्तु उस समय बादशाह औरंगज़ेब जीवित था। इससे ज्ञात होता है कि मोहम्मद आज़म ने पिता से बगावत कर बादशाह बनने का इरादा किया होगा और उस समय राठोड़-नरेश को अपनी तरफ़ मिलाने के लिये इनके नाम यह फ़रमान भेजा होगा।

आज़म के बगावत करने की पुष्टि ऐलफ़िन्स्टन की 'हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया' और 'मुन्तखिबुल्लुबाब' से भी होती है। (देखो क्रमशः पृ० ६५१ और भा० २, पृ० ५४६)।

२. मुंतखिबुल्लुबाब, भा० २, पृ० ६०५-६०६।

३. जयसिंहजी ने शाहज़ादे आज़म का पक्ष लिया था। इसी से बहादुरशाह ने जयपुर पर अपने अनुयायी विजयसिंह का अधिकार करवा दिया था। यह विजयसिंह जयसिंहजी का छोटा भाई था।

बादशाह ने मार्ग से ही (पौष=दिसंबर में) शाहज़ादे अज़ीमुश्शान की सेना के साथ कुछ अमीरों को जोधपुर की तरफ़ रवाना किया । इसलिये वे लोग मारवाड़ के गांवों को लूटते हुए पीपाड़ तक आ पहुँचे । परंतु इसी बीच बादशाह को दक्षिण में कामबख़्श के स्वाधीन हो जाने की सूचना मिली । इस पर दिखावे के लिये तो वह अजमेर पहुँच जोधपुर पर चढ़ाई करने का विचार प्रकट करता रहा, परंतु मन-ही-मन उसने शीघ्र ही इधर का झगड़ा शांत कर दक्षिण की तरफ़ जाने का निश्चय कर लिया । इतने में उसे महराबख़ाँ और महाराज के बीच पीपाड़ में युद्ध होने की सूचना मिली । इस पर वि० सं० १७६४ की फागुन बदी ३ (ई० सन् १७०८ की २९ जनवरी) को[3] उसने महाराज से संधि करने के लिये दुर्गादास के नाम एक फ़रमान भेज दिया ।

इस प्रकार आपस की लिखा-पढ़ी के बाद जब संधि की बातें तय हो गईं, तब उसने ख़ाँजहाँ, हाडा बुद्धसिंह और निजाबतख़ाँ आदि अमीरों को महाराज से मिलने के लिये रवाना किया, और वि० सं० १७६४ की फागुन सुदी १२ (ई० सन् १७०८ की २१ फ़रवरी) को स्वयं भी मेड़ते आ पहुँचा । इस पर महाराज भी चौथे दिन वहां पहुँच उससे मिले । बादशाह ने अनेक बहुमूल्य वस्तुएँ उपहार में देकर इनका आदर-सत्कार किया । इसके बाद उसने, चैत्र बदी १४ और (वि० सं० १७६५ की) वैशाख सुदी १५ (१० मार्च और २३ अप्रेल) को, आम दरबार कर

१. मुंतख़िबुल्लुबाब, भा० २, पृ० ६०६ ।

'लेटरमुग़ल्स' मे लिखा है कि मार्ग मे भुसावर पहुँचते ही उसने फ़ौजदार मेहराबख़ाँ को जोधपुर पर अधिकार करने के लिये भेज दिया । इसके बाद जब वह जयपुर का अधिकार विजयसिंह को देकर अजमेर के क़रीब पहुँचा, तब उसने स्वयं जोधपुर पर चढ़ाई करने का इरादा प्रकट किया। इस पर महाराज के वकील मुकुंदसिंह और बख्तसिंह उसे समझा-बुझाकर शांत करने की चेष्टा करने लगे । (देखो भा० १, पृ० ४७) ।

२. मुन्तख़िबुल्लुबाब, भा० २, पृ० ६०६ ।

३. यह तारीख़ असली फ़रमान से ली गई है । 'लेटरमुग़ल्स' में उस दिन १२ फ़रवरी का होना लिखा है । (देखो भा० १, पृ० ४७-४८) ।

'अजितोदय' मे लिखा है कि पीपाड़ से महराबख़ाँ का पत्र पाकर पहले तो बादशाह ने महाबतख़ाँ को उसकी मदद पर भेजा, पर पीछे शीघ्र ही संधि कर ली । उसमें पीपाड़ के युद्ध का उल्लेख नहीं है । (देखो सर्ग १७, श्लो० ३०-३१) ।

इनको 'महाराजा' की पदवी के साथ ही ३,५०० ज़ात और ३,००० सवारों का मनसब (जिसमें १,००० सवार दुअस्पा थे) दिया।

इस प्रकार इधर के झगड़े को शांत कर जब बादशाह अजमेर को लौटा, तब महाराज भी दुर्गादास को लेकर उसके साथ हो लिए। इसके बाद बहादुरशाह ने कामबख़्श को दबाने के लिये, मेवाड़ की तरफ़ होते हुए, दक्षिण पर चढ़ाई की। इस यात्रा में भी महाराजा अजितसिंहजी, दुर्गादास और आंबेर-नरेश जयसिंहजी ये तीनों उसके साथ थे।

यद्यपि बादशाह ऊपर से महाराज के साथ ख़ूब प्रेम दिखलाता रहा, तथापि उसने प्रबंध की देख-भाल करने के बहाने काज़मख़ाँ और मेहराबख़ाँ आदि अमीरों को भेजकर जोधपुर पर चुपचाप अपना अधिकार कर लिया। इसकी सूचना मिलने पर महाराज बहुत क्रुद्ध हुए; परंतु मौका देख इन्हें चुप रहना पड़ा। इसके बाद जब शाही लश्कर नर्मदा के पार उतरने लगा, तब यह (अजितसिंहजी) आंबेर-नरेश जयसिंहजी और दुर्गादास के साथ वापस लौट चले और मार्ग में महाराना अमरसिंहजी से मिलकर मेवाड़ से गोडवाड़ होते हुए जोधपुर चले आए।

---

१. इसी समय बादशाह ने इन्हें निशान और नक्कारा भी दिया था। साथ ही उसने इनके महाराजकुमार अभयसिंहजी का मनसब १,५०० ज़ात और ३०० सवारों का, तथा बख़्तसिंहजी का ७०० ज़ात और २०० सवारों का कर दिया था। (मि० विलियम इरविन ने अपने 'लेटर मुग़ल्स' नामक इतिहास (के प्रथम भाग के ४८ वें पृष्ठ) में उपर्युक्त बातों का उल्लेख करते हुए बख़्तसिंह के स्थान पर राखीसिंह लिख दिया है)।

इसी प्रकार बादशाह की तरफ़ से महाराज के तृतीय और चतुर्थ महाराजकुमारों को भी ५०० ज़ात और १०० सवारों का मनसब दिया गया था।

२. अजितोदय, सर्ग १७, श्लो० ३३।

३. 'लेटर मुग़ल्स' में लिखा है कि वि० सं० १७६४ की चैत्र बदी ४ (ई० सन् १७०८ की २८ फ़रवरी) को बहादुरशाह ने क़ाज़ीख़ाँ और मुहम्मद गौस मुफ़्ती को जोधपुर में फिर से नमाज़ आदि के प्रचार के लिये भेजा। (देखो भा० १, पृ० ४८)।

४. 'अजितोदय' (सर्ग १७, श्लो० ३४) में खाचरोद से और 'बहादुरशाहनामे' (के पृ ११०) में मालवे के मंडेश्वर नामक स्थान से इनका लौटना लिखा है। पिछले इतिहास के अनुसार यह घटना वि० सं० १७६५ की ज्येष्ठ बदी ६ (ई० सन् १७०८ की ३० अप्रेल) को हुई थी।

५. महाराना अमरसिंहजी (द्वितीय) गाडवा नामक गाँव तक इनकी पेशवाई में आए थे।

वि० सं० १७६५ की सावन सुदी १३ (ई० सन् १७०८ की १९ जुलाई) को महाराज ने मेहराबख़ाँ को भगाकर जोधपुर के क़िले पर फिर से अधिकार कर लिया[1], और इसके कुछ दिन बाद यह आंबेर-नरेश जयसिंहजी को साथ लेकर[2] अजमेर को लूटते हुए सांभर जा पहुँचे। यह देख वहां का हाकिम सैयद अलीअहमद युद्ध के लिये तैयार हुआ। नारनौल के सैयद भी उसकी सहायता को आ गए। कुछ दिनों तक दोनों पक्षों के बीच विकट युद्ध होने के बाद यवन भाग चले, और सांभर पर महाराज का अधिकार हो गया[3]। इसी बीच महाराज अजितसिंहजी और जयसिंहजी

१. 'अजितोदय' सर्ग १७, श्लो० ३४-३५। 'लेटरमुग़ल्स' में लिखा है कि महाराज ने जोधपुर को ३० हज़ार सवारों से घेर कर विजय किया था, और दुर्गादास राठोड़ के बीच में पड़ने से जोधपुर के फ़ौजदार मेहराबख़ाँ को निकल जाने का मौका दिया था। (देखो भा० १, पृ० ६७)।

२. यह महाराज के साथ आकर जोधपुर में सूरसागर के बग़ीचे में ठहरे थे।

३. अजितोदय, सर्ग १७, श्लो० ३६-५०। 'राजरूपक' में इस घटना का कार्त्तिक सुदी १ को होना और इसके अगले मास मे दोनों नरेशों का आँबेर पर अधिकार करना लिखा है। (देखो पृ० १८२) ख्यातों में लिखा है कि यहीं पर महाराज किसी बात पर दुर्गादास से कुछ अप्रसन्न हो गए। यह देख दुर्गादास ने महाराज से निवेदन किया कि नर्मदा से लौटते हुए आप कुछ दिन उदयपुर मे ठहरे थे, और महाराना ने आपका अच्छी तरह से स्वागत किया था। इसलिये यदि आज्ञा हो, तो मैं जाकर महाराना को कुछ दिन के लिये यहाँ ले आऊँ; जिससे आप भी उनका वैसा ही सम्मान कर आपस की प्रीति को बढ़ावें। महाराज ने इस बात को अंगीकार कर लिया। इस पर वह महाराना को ले आने के बहाने से उदयपुर चला गया और वि० सं० १७६६ में सफरा नदी के किनारे इस वीर का स्वर्गवास हो गया। परंतु वास्तव में दुर्गादास का देहांत वि० सं० १७७५ के क़रीब हुआ था। अतः ख्यातों का यह लेख ठीक नहीं है।

ख्यातों में यह भी लिखा मिलता है कि दुर्गादास ने (अपने को बादशाही मनसबदार समझ) साँभर मे अपना डेरा महाराज की सेना से अलग किया था, इसी से महाराज उससे नाराज़ हो गए थे। यह भी संभव है कि जोधपुर और जयपुर के नरेशों को साँभर का विभाग करते देख दुर्गादास ने भी हिस्सा मांगा हो, और यही महाराज की अप्रसन्नता का कारण हुआ हो। वि० सं० १७६५ की कार्त्तिक सुदी १५ के, साँभर से लिखे, भंडारी विट्ठलदास के, बीलाड़े के चौधरी भगवानदास के नाम के, पत्र से ज्ञात होता है कि कार्त्तिक बदी १३ को महाराज की सेना साँभर पहुँची। वहाँ पर युद्ध होने पर अली अहमद हारा, और उसने एक लाख बीस हज़ार रुपये देने का वादा कर इनसे संधि कर ली। इसके बाद कार्त्तिक सुदी १ को नारनौल, मथुरा और आँबेर के सूबेदार ? (फ़ौजदार) ५-६ हज़ार सेना लेकर वहाँ पहुँचे। परन्तु तीसरे पहर के युद्ध में वे तीनों मय तीन हज़ार सैनिकों के मारे गए। उनकी सेना के बहुत-से हाथी, घोड़े, ऊँट, सुखपाल आदि महाराज की सेना के हाथ लगे।

की सम्मिलित सेनाओं ने आँबेर पर भी अधिकार कर लिया था। इसीसे जयसिंहजी

१. 'लेटर मुग़ल्स' में लिखा है कि बादशाह को दोनों नरेशों के आँबेर पर सम्मिलित आक्रमण करने की सूचना ई० सन् १७०८ की १६ जून को मिली थी, और इसके एक सप्ताह बाद यह भी ज्ञात हुआ कि इन दोनों नरेशों ने हिंदौन और बयाना के फ़ौजदार को भी हरा दिया है। (ये दोनों प्रांत आगरे से क्रमशः ७० और ५० मील नैर्ऋत्य-कोण पर थे।) इस पर उसने अमीरख़ाँ को सेना एकत्रित कर उधर जाने की आज्ञा दी। इसके कुछ दिन बाद ही उसे अजमेर के सूबेदार शुजाअतख़ाँ बाराह का पत्र मिला। उसमे लिखा था कि दोनों नरेशों ने मिलकर अपने सेनापति रामचन्द्र और साँवलदास की अधीनता में २,००० सवार और १५,००० पैदल आँबेर पर आक्रमण करने के लिये भेजे थे। परन्तु वहाँ के सूबेदार ने उन्हें सफल न होने दिया। इस झूठी सूचना को सच्ची समझ बादशाह ने बड़ी प्रसन्नता प्रकट की। इसी बीच बादशाह ने असदख़ाँ-वकीले मुतलक़ को दिल्ली से आगरे पहुँच उधर के उपद्रव को दबाने की आज्ञा भेजी। इसी प्रकार अवध के सूबेदार ख़ाँदौराँ, इलाहाबाद के सूबेदार ख़ाँजहाँ और मुरादाबाद के फ़ौजदार मुहम्मद अमीनख़ाँ को भी आज्ञा दी गई कि वे अपनी आधी-आधी सेनाओं को लेकर असदख़ाँ की मदद पर जायँ। इसी अवसर पर मेवात के फ़ौजदार ने भी दिल्ली के सूबेदार से सेना बढ़ाने के लिये तीन लाख रुपये की मदद माँगी। परन्तु उसने वह पत्र असदख़ाँ के पास भेज दिया। इस पर असदख़ाँ ने १,००,००० रुपये नक़द भेजकर अपनी सेना को वहाँ जाने की आज्ञा दे दी। परन्तु २१ अगस्त (आश्विन बदी १) को उपर्युक्त झूठी सूचना का भेद खुल गया, और बादशाह को ज्ञात हो गया कि राजा जयसिंहजी ने २०,००० सैनिकों के साथ नैश आक्रमण कर आँबेर के क़िले पर अधिकार कर लिया है।

इसके बाद बरसात के समाप्त होते ही राजपूत-वीरों ने मेड़ते होते हुए अजमेर पर हमला किया, और वहाँ से आगे बढ़ साँभर पर चढ़ाई की। इस पर मेवात, मेड़ता और नारनौल के फ़ौजदार भी तत्काल इनके मुक़ाबले को आ पहुँचे। यद्यपि युद्ध में एक बार तो राजपूत-सेना के पैर उखड़ गए, तथापि कुछ देर बाद ही उसे हुसैनख़ाँ के मारे जाने की सूचना मिल गई। इससे मैदान दोनों नरेशों के हाथ रहा। इसके अगले वर्ष महाराना के सेनापति साँवलदास ने पुर और माँडल के फ़ौजदार को भगाकर युद्ध में वीर-गति प्राप्त की। (भा० १, पृ० ६८-७०)।

'मआसिरेआलमगीरी' (भा० २, पृ० ५००) में लिखा है कि जब आँबेर के फ़ौजदार सैयद हुसैनख़ाँ को महाराजा अजितसिंहजी और राजा जयसिंहजी के युद्ध से हट जाने और आँबेर पर आक्रमण करने के विचार की सूचना मिली, तब उसने वहाँ के क़िले की रक्षा का पूरा-पूरा प्रबंध किया। परंतु राजपूत-सैनिकों के पहुंचते ही उसकी नई भरती की हुई सेना घबराकर भाग गई। इस पर ख़ाँ ने बचे हुए सैनिकों के साथ क़िले से निकलकर राठोड़ दुर्गादास का सामना किया। यद्यपि राजपूत पूरी तौर से सफल न हो सके, तथापि ख़ाँ का डेरा लूट लिया गया, और उसका पुत्र, जो शिविर

लौटकर अपनी राजधानी को चले गए, और महाराज साँभर से नागोर की तरफ़ चले। इनके आगमन की सूचना पा मोहकमसिंह लाडणू की तरफ़ भाग गया, और राव इन्द्रसिंह को क़िले का आश्रय लेना पड़ा। जब महाराज उक्त प्रांत के गांवों को लूटते हुए मूँडवे पहुँचे, तब इंद्रसिंह की माता अपने पौत्र को लेकर इनसे मिलने आई, और उसने कह-सुनकर इन्हें लौट जाने पर राज़ी कर लिया। इसलिये यह लौटकर जोधपुर चले आए।

की रक्षा के लिये नियत था, मार डाला गया। दूसरे दिन ख़ाँ बड़ी गड़बड़ के साथ भागकर नारनौल पहुँचा। परंतु वहाँ से सैनिक इकट्ठे कर फिर एक बार लौट चला। साँभर के पास पहुँचते पहुँचते उसका राजा जयसिंहजी की सेना से सामना हो गया। यद्यपि पहले पहल ख़ाँ की सेना कुछ सफल होती हुई दिखाई दी, तथापि शीघ्र ही ख़ाँ और उसके सरदार रेत के टीले के पीछे छिपे हुए २-३ हज़ार बंदूकधारी राजपूत-योद्धाओं के बीच घिरकर मारे गए। (लेटरमुगल्स, भा० १, पृ० ६८-७०)।

उसी में 'बहादुरशाहनामे' के आधार पर यह भी लिखा है कि इसके बाद बादशाह ने नर्मी से काम लिया, और शाहज़ादे अज़ीमुश्शान को बीच में डालकर ई० स० १७०८ की ६ अक्टोबर (वि० सं० १७६५ की कार्तिक सुदी ४) को राजा जयसिंहजी और महाराजा अजितसिंहजी को मनसब दिए गए। परंतु जोधपुर और मेड़ते के क़िले बाराह के सैयद अब्दुल्लाख़ाँ के अधिकार में ही रक्खे गए। (लेटर मुग़ल्स, भा० १, पृ० ७१)।

'हदीक़तुल अक़ालीम' नामक इतिहास में लिखा है कि आँबेर और जोधपुर के राजाओं के मालवे से ही अपने-अपने देशों को लौट जाने पर बादशाह ने असदख़ाँ को लिखा कि शाहजहानाबाद (दिल्ली) से अकबराबाद (आगरे) जाकर राजपूतों को तसल्ली दे। इसके बाद नर्मदा से पार उतरने पर उसे ख़बर मिली कि राना की मिलावट से कछवाहा और राठोड़ नरेशों के अपने-अपने देशों पर फ़ौजें भेजने पर आँबेर का फ़ौजदार हुसैनख़ाँ, मारे गए जानवर की तरह शत्रुओं के मुक़ाबले मे हाथ-पाँव पटककर, और मेहराबख़ाँ लड़ाई से मुँह मोड़कर जोधपुर से भाग गए हैं। इससे राजपूत और भी सुदृढ़ हो गए हैं, और राना के बहकाने से अधिक उपद्रव करना चाहते हैं। यह देख उसने असदख़ाँ को उन्हें दंड देने का लिखा। (देखो पृ० १२८)।

१. कहीं-कहीं महाराज अजितसिंहजी का भी जयसिंहजी के साथ आँबेर जाना और कुछ दिन वहाँ रहकर लौट आना लिखा मिलता है।

२. अजितोदय, सर्ग १८, श्लो० १-६ तथा ६६-१०६।

ख्यातों में लिखा है कि महाराजा अजितसिंहजी का प्रधान मंत्री पाली का ठाकुर चांपावत मुकुन्ददास (सुजाण सिंहोत) था। परंतु उसकी उद्दण्डता के कारण कुछ ही समय बाद महाराज उस से नाराज़ हो गए। इसके बाद महाराज की आज्ञा से एक रोज़ छिपिये के ठाकुर ऊदावत प्रतापसिंह ने मुकुन्ददास और उसके भाई रघुनाथसिंह को मारडाला। परंतु इस की सूचना मिलते ही

कुछ दिन बाद महाराज ने फिर अजमेर पर चढ़ाई कर वहां के शाही हाकिम को तंग करना शुरू किया। यह देख उसने बहुत-सा द्रव्य देकर इनसे संधि कर ली[1]। इस पर यह देवलिये होते हुए जोधपुर चले आए[2]।

इसी प्रकार महाराज के पराक्रम के सामने साँभर और डीडवाने के शाही अधिकारियों को भी सिर झुकाना पड़ा[3]।

इसकी सूचना पाकर बादशाह इनसे और भी नाराज़ हो गया। इसके बाद वह दक्षिण में अपने भाई कामबख़्श[4] के मारे जाने से निश्चिन्त होकर अजमेर की तरफ़ लौटा। जब उसके नर्मदा से इस पार आने की सूचना मिली, तब

मुकुन्ददास के सेवक गुहिलोत धंना और चौहान भीयां ने (जो मामू भानजे थे) किले में ही प्रतापसिंह को मार कर अपने स्वामी का बदला लिया। ख्यातों के अनुसार यह घटना वि० सं० १७६५ में हुई थी।

इस विषय का यह दोहा मारवाड़ में प्रचलित है:-

आजूणी अधरात, मैहलां जु रोई मुकनरी।
पातल री परभात, भली रुआणी भीमड़ा॥

१. 'वीर विनोद' में मुद्रित शाहपुरे के राजा भारतसिंहजी के, वि० सं० १७६५ की माघ सुदी ६ (ई० सन् १७०६ की ६ जनवरी) के, पत्र से और उनके मुत्सद्दियों के वि० सं० १७६५ की चैत्र बदी ३ (ई० सन् १७०६ की १६ फ़रवरी) के पत्र से जो उदयपुर के पंचोली बिहारीदास के नाम लिखे गए थे, प्रकट होता है कि भारतसिंहजी के बादशाह के साथ दक्षिण में होने और अजितसिंहजी के अजमेरवालों से दंड वसूल करने से उत्साहित होकर अजमेर प्रांत के राठोड़-सरदारों ने शाहपुरेवालों को तंग करना शुरू किया था। अतः लाचार हो, उन्होंने ये पत्र, सहायता के लिये, उदयपुरवालों को लिखे थे।

२. अजितोदय, सर्ग १६, श्लो० ६-१४।

३. अजितोदय, सर्ग १६, श्लो० १७-१८। 'वीरविनोद' मे प्रकाशित नवाब असदख़ाँ के, हि० सन् ११२१ की ११ सफ़र (वि० सं० १७६६ की प्रथम वैशाख सुदी १३ = ई० सन् १७०६ की ११ अप्रेल) के, पत्र से, जो अजमेर के सूबेदार शुजाअतख़ाँ के नाम लिखा गया था, प्रकट होता है कि उस (असदख़ाँ) की पूर्ण इच्छा थी कि मारवाड़ और मेवाड़ के नरेशों को समझा-बुझाकर अपनी तरफ़ कर लिया जाय।

४. मि० विलियम इरविन ने अपने 'लेटरमुग़ल्स' नामक इतिहास में कामबख़्श का ई० सन् १७०६ की जनवरी में मरना लिखा है। (देखो भा० १, पृ० ६२-६४) इसके

महाराज ने राव इंद्रसिंह को अपनी सेना लेकर जोधपुर में उपस्थित होने की आज्ञा भेजी। परंतु उसने अपने को शाही मनसबदार बतलाकर महाराज की आज्ञा मानने से इनकार कर दिया। इस पर महाराज ने पहले उसी को दंड देने का विचार कर मँगसिर में फिर से नागोर पर चढ़ाई की। यह देख इंद्रसिंह का सुखस्वप्न टूट गया। बादशाह अब तक यहाँ से बहुत दूर था, अतः उससे किसी प्रकार की सहायता की आशा नहीं की जा सकती थी। इससे लाचार होकर उसे फिर महाराज की शरण लेनी पड़ी[1]। महाराज ने भी उसे अपना भतीजा जान क्षमा कर दिया।

इसके बाद मार्ग में इंद्रसिंह ने बीमारी के कारण अपना साथ में चलना कष्टकर बतलाकर महाराज से अपने पुत्र को साथ ले जाने की प्रार्थना की। इसी के अनुसार यह डीडवाने से उसके पुत्र को लेकर साँभर[2] होते हुए मारोठ पहुँचे और वहाँ पर अधिकार कर बहादुरशाह के मुक़ाबले को चले[3]।

अनुसार वि० सं० १७६५ के फागुन में यह घटना हुई थी। परंतु 'ओरियंटल बायोग्राफ़िकल डिक्शनरी' में इस घटना का हि० सन् ११११ के ज़िलहिज (ई० सन् १७०८ की फ़रवरी या मार्च) में होना लिखा है। इसके अनुसार इसका समय करीब ११ मास पूर्व आता है। (देखो पृ० २०८) यह ठीक प्रतीत नहीं होता।

१. महाराज के सिकदार दयालदास के नाम लिखे वि० सं० १७६६ की माघ सुदी १ के पत्र से ज्ञात होता है कि इस बार इंद्रसिंह ने दो लाख रुपये नक़द देने और समय पर सेना लेकर फ़ौज में उपस्थित होने का वादा किया था। इसके बाद इंद्रसिंह के उपस्थित होने पर इनमें के एक लाख रुपये माफ़ कर दिए गए, और महाराज उसको साथ लेकर वापस लौटे।

२. वि० सं० १७६६ की चैत्र-सुदी १५ के, साँभर से, महाराज के लिखे, दयालदास के नाम के पत्र में लिखा है कि तू किसी बात की फ़िक्र न करना। हम बादशाह के साथ ऐसी चोट करेंगे कि वह बहुत दिन तक याद करेगा। हाँ, अगर वह मेल करेगा, तो उसे हमारी इच्छा के अनुसार शर्तें माननी होंगी।

बादशाह बहादुरशाह (शाह आलम) ने अपने सने जलूस ३ की १७ वीं रबिउल अव्वल (वि० सं० १७६६ की ज्येष्ठ वदि ४ = ई० स० १७०६ की १६ मई) को महाराज के नाम एक फ़रमान लिखा था। उस से प्रकट होता है कि आसफ़उद्दौला के समझाने से बादशाह ने महाराज से मेल करना अङ्गीकार करलिया था।

३. अजितोदय, सर्ग १६, श्लोक १६-३०।

इसी बीच पंजाब में सिक्खों का उपद्रव उठ खड़ा हुआ[1]। अतः बहादुरशाह ने राजपूताने में फिर से झगड़ा उत्पन्न करना उचित न समझा और, वि० सं० १७६७ के आषाढ़ (ई० सन् १७१० के जून) में, उसने अजमेर पहुँच, महाबतखाँ की मारफ़त महाराज से संधि करली[2]। इसके अनुसार जोधपुर पर भी महाराज का अधिकार स्वीकार कर लिया गया[3]।

१. 'लेटर मुग़ल्स' मे पहले-पहल बादशाह को इसकी सूचना का, ई० सन् १७१० की ३० मई को, अजमेर के निकट पहुंचने पर मिलना लिखा है। (देखो भा० १, पृ० १०४) परंतु अन्य गणितज्ञों के अनुसार उस दिन हि० सन् ११२२ की २ रबिउल आख़ीर को ई० सन् १७१० की २० मई (वि० सं० १७६७ की ज्येष्ठ-सुदी ३) आती है।

२. बादशाह बहादुरशाह (शाह आलम) के सने जलूस ४ की १ रविउल आख़िर (वि०-सं० १७६७ की ज्येष्ठ सुदि २=ई० सन् १७१० की १६ मई) का एक ख़ास पंजे वाला फ़रमान मिला है। इस में महाराज को जोधपुर देने और मेड़ता खालसे मे रखने का उल्लेख है। साथ ही इस मे महाराज को दरबार मे पहुँचने पर मनसब देने का वादा भी किया गया है।

इसी साल की ६ रविउल आखिर (वि० सं० १७६७ की ज्येष्ठ सुदि ११ = ई० स० १७१० की २७ मई) का महाराज के नाम का एक बादशाही फ़रमान और भी मिला है। इस पर भी ख़ास पंजा लगा है। इस मे बहादुरशाह ने महाराज को अपने पास आने के लिये लिखा है।

इसी में पहले फ़रमान का हवाला भी है। इसी प्रकार अपने सने जलूस ५ की ५ सफ़र (वि० सं० १७६८ की चैत्र सुदि ६ = ई० स० १७११ की १४ मार्च) को बादशाह बहादुरशाह ने एक फ़रमान और भेज कर महाराजा अजितसिंहजी को अपने पास बुलवाया था।

वि० सं० १७६६ (चैत्रादि १७६७) की आषाढ़ बदी ११ के, महाराज के, दयालदास के नाम लिखे पत्र में लिखा है कि शाहज़ादे अज़ीम और महाबतखाँ ने आदमी भेजकर कहलाया था कि अपने भरोसे के पुरुष भेज दो, ताकि आपकी इच्छानुसार संधि करवा दी जाय। इस पर राठोड़ चाँपावत भगवानदास आदि ५ आदमी वहाँ भेजे गए। बादशाह ने हमारी सब बातें स्वीकार कर हमे बुलवाया। इस पर हम भी उससे मिलने को चले। यह देख उसने ख़ानख़ाना मुहब्बतखाँ और बुंदेला चतुरसाल को हमारी पेशवाई में भेजा। आषाढ़ बदी ११ को इधर हमने डूमाड़े में सवारी की, और उधर बादशाह राजोसी से चला। शाहज़ादा अज़ीम भी उसके साथ था। पास आने पर शाहज़ादा पालकी से उतर घोड़े पर सवार हुआ, और हमें अपने साथ ले जाकर बादशाह से मिलाया। उसने भी हमे जोधपुर का अधिकार, १६ हज़ारी ज़ात और १४ हज़ार सवारों का मनसब, घोड़ा, हाथी, ख़िलअत, दुगदुगी, तलवार, जड़ाऊ सरपेच आदि दिए।

३. इसी समय आँबेर पर भी महाराज जयसिंहजी का स्वत्व मान लिया गया। इसके बाद ये दोनों नरेश बादशाह से मिलकर अपने-अपने देशों को लौट गए, और बादशाह पंजाब की तरफ़

के उपद्रव को शांत करने के लिये वि० सं० १७६७ की आषाढ़-सुदी २ (१७ जून) को अजमेर से पंजाब की तरफ़ गया।

ऐलफ़िंस्टन ने अपने हिंदोस्थान के इतिहास मे लिखा है कि बादशाह ने अपने पुत्र के द्वारा संधि की थी। उस समय उसने जयपुर और जोधपुर के नरेशों की सारी शर्तें स्वीकार कर इनकी स्वाधीनता भी उदयपुर के राना के समान ही मान ली थी। (देखो पृ० ६६२)।

'अजितोदय' से भी शाहज़ादे अज़ीमुश्शान के द्वारा संधि का होना प्रकट होता है। (देखो सर्ग १६, श्लो० ३१-३८)।

'हिस्ट्री ऑफ़् औरङ्गज़ेब' मे लिखा है कि ई० सन् १७०६ के अगस्त में अजितसिंह ने अंतिम बार दल-बल-सहित जोधपुर मे प्रवेश किया, और बादशाह ने उसका स्वत्व पूरी तौर से स्वीकार कर लिया। (देखो भा० ३, पृ० ४२४)।

'लेटर मुग़ल्स' में लिखा है कि जिस समय बहादुरशाह का शिविर बनास के तट पर था, उस समय हाँसी का नाहरख़ाँ और यारमुहम्मद, जो राजस्थान के नरेशों को दबाने के लिये भेजे गए थे, उनके मंत्रियों को लेकर हाज़िर हुए। ई० सन् १७१० की २२ मई (वि० सं० १७६७ की ज्येष्ठ सुदी ५) को शाहज़ादे अज़ीमुश्शान के द्वारा उक्त नरेशों के पत्र बादशाह के सामने पेश किए गए; साथ ही शाहज़ादे की प्रार्थना पर उनके कुसूर माफ़ कर दिए गए, और उसी (शाहज़ादे) के द्वारा उनके मंत्रियों को ख़िलअत दिए गए। इसके पाँचवें दिन जब बादशाह का डेरा टोडे के पास हुआ, तब उसने राना अमरसिंह, महाराजा अजितसिंह और राजा जयसिंह के आदमियों को १८ ख़िलअत दिए। साथ ही १ ख़िलअत राठोड़ दुर्गादास का पत्र लानेवाले को भी दिया गया। इसी बीच बादशाह को सरहिंद के उत्तर में (बन्दा की अधिनायकता में) सिक्खों के उपद्रव उठाने की सूचना मिली। अतः उसने महाबतख़ाँ को उपर्युक्त नरेशों को समझाकर अपने पास ले आने के लिये भेजा। इसके बाद जब इन्होंने संधि करना स्वीकार कर लिया, तब बादशाह ने अपने वज़ीर मुनअमख़ाँ को इनकी अगवानी को रवाना किया। २१ जून को जोधपुर और जयपुर के नरेश आकर उससे मिले, और प्रत्येक ने २०० मुहरें और २,००० रुपये उसकी भेट किए। बादशाह ने भी उन्हें ख़िलअत, जड़ाऊ तलवारें, कटार, पट्टे, हाथी और फ़ारस के घोड़े देकर अपनी-अपनी राजधानियों को लौट जाने की आज्ञा दी। इससे पुष्कर तक तो दोनों राजा एक साथ लौटे, परंतु वहाँ से जयसिंहजी तो जयपुर की तरफ़ रवाना हो गए और महाराज जुलाई (आषाढ़) के अंतिम भाग में जोधपुर चले आए। बादशाह भी २२ जून (आषाढ़-सुदी ७) को अजमेर पहुँचा।

उसी इतिहास में कमवरख़ाँ के लेख के आधार पर यह भी लिखा है कि जिस समय दोनों राजा बादशाह से मिलने आए, उस समय कमवर ने देखा कि शाही कैंप के चारों ओर की पहाड़ियाँ और मैदान राजपूतों से भरे हैं। उस समय कई हज़ार शुतर-सवार पहाड़ों के दर्रों मे छिपे थे और प्रत्येक ऊँट पर बन्दूकों या तीर-कमानों से सजे हुए दो-दो या तीन-तीन योद्धा बैठे थे। उनका उद्देश्य यह था कि यदि बादशाह की तरफ़ से किसी प्रकार का धोका हो, तो अपने प्राण देकर भी अपने स्वामियों की रक्षा करें। (देखो भा० १, पृ० ७१-७३)।

महाराज के रामपुर से लिखे वि० सं० १७६६ (चैत्रादि १७६७) की वैशाख बदी १३ के दयालदास के नाम के पत्र से बादशाह का महाराज को जोधपुर और जयसिंहजी को आँबेर देने का वादा करना प्रकट होता है।

इसी वर्ष महाराज ने तीर्थ-यात्रा का विचार किया[1]। इसीसे यह जोधपुर से चलकर राजगढ़, पाटन और दिल्ली होते हुए कुरुक्षेत्र पहुँचे, और वहाँ से अन्य तीर्थों में स्नान करते हुए साढोर होकर हरद्वार गए। यहीं पर इन्हें राव इंद्रसिंह का भेजा हुआ एक पत्र मिला। उसमें महाराज की अनुपस्थिति में तहव्वरअली द्वारा मारवाड़ में किए गए उपद्रवों का वर्णन था[3]। इस पत्र को पढ़ते ही महाराज मारवाड़ को लौट चले, और कुछ ही दिनों में मारोठ आ पहुँचे। इनके आगमन का समाचार सुन तहव्वरअली गोठ-माँगलोद से भागकर अजमेर चला गया। इसपर महाराज पुष्कर स्नान कर मेड़ते होते हुए जोधपुर को चले। मार्ग में ही इन्हें बहादुरशाह के लाहौर में मरने की सूचना मिली[4]।

इसके बाद उसके चारों पुत्रों के बीच बादशाहत के लिये झगड़ा उठ खड़ा हुआ। यह देख महाराज ने भी आस-पास के यवन शासकों का नाश करना शुरू कर दिया।

इसके बाद बहादुरशाह का पुत्र मोइज़ुद्दीन जहाँदारशाह अपने भाइयों को मारकर, वि० सं० १७६९ की चैत्र सुदी १५ (ई० स० १७१२ की १० अप्रेल) को, तख़्त पर बैठा[5]।

---

१. कर्नल टॉड ने लिखा है कि वि० सं० १७६८ में महाराज ने बादशाह की तरफ़ से नाहन (सिरमूर=पंजाब) के राजा पर चढ़ाई कर उसे हराया और वहाँ से लौटते हुए यह तीर्थ-यात्रा को गए। (क्रुकसंपादित टॉड का राजस्थान का इतिहास, भा० २, पृ० १०२०) 'राजरूपक' में भी नाहन-विजय का उल्लेख है। (देखो पृ० १८७)।

२. बहादुरशाह (शाह आलम) के, सने जलूस ५ की १२ शव्वाल) (वि० सं० १७६८ की कार्त्तिक सुदी १३=ई० सन् १७११ की १२ नवम्बर) के, महाराज के नाम के शाही फ़र्मान से ज्ञात होता है कि उस ने महाराज को सूरत की फ़ौजदारी दी थी। इसीसे शायद यह वहाँ का प्रबन्ध कर तीर्थयात्रा को गए होंगे।

३. 'राजरूपक' में इस घटना का उल्लेख नहीं है।

४. अजितोदय, सर्ग १६ श्लो० ७०-६०।

बहादुरशाह वि० सं० १७६८ की फागुन बदी ७ (ई० सन् १७१२ की १८ फ़रवरी) को मरा था। 'क्रॉनोलॉजी ऑफ़ मॉडर्न इंडिया' में २८ फ़रवरी लिखी है। (देखो पृ० १५३) परंतु 'लेटर मुग़ल्स' में ई० सन् १७१२ की २७ फ़रवरी की रात को उसका मरना लिखा है। (देखो भा० १, पृ० १३५)।

५. 'लेटर मुग़ल्स' में उस दिन (हि० सन् ११२४ की २१ सफ़र मानकर) २६ (वास्तवमें १६) मार्च का होना लिखा है। (देखो भा० १, पृ० १८६) और 'क्रॉनोलॉजी ऑफ़ मॉडर्न इंडिया' में उस दिन २० अप्रेल लिखा है। (देखो पृ० १५४)।

किशनगढ़ नरेश राजसिंहजी के विपक्षी का साथ देने के कारण[1] यह उनसे नाराज़ था। इसलिये वह लाहौर से लौटकर रूपनगर चले आए, और उन्होंने महाराज को पत्र लिखकर समय पड़ने पर सहायता करने की प्रार्थना की। इस पर इन्होंने भी उन्हें अपना भतीजा समझ यह बात स्वीकार करली। इसके कुछ दिन बाद महाराज ने आस-पास के प्रदेशों पर अधिकार करने का विचार कर किशनगढ़-नरेश राजसिंहजी को भी सेना लेकर उपस्थित होने का लिखा। परंतु उन्होंने इसकी कुछ भी परवा न की। यह देख महाराज बाँदरवाड़ा, भिणाय और विजयगढ़ को विजय करते हुए देवगढ़ पहुँचे[3]। जिस समय इनका निवास उक्त स्थान पर था, उस समय फिर इन्होंने पत्र लिखकर राजसिंहजी को अपने पास बुलवाया। परंतु जब इस बार भी उन्होंने इस पर ध्यान नहीं दिया, तब (वि० सं० १७६९=ई० सन् १७१२ में) इन्होंने किशनगढ़ पर आक्रमण कर वहां पर अधिकार कर लिया और उसके बाद ही रूपनगर को भी घेर लिया। पहले तो राजसिंहजी ने बड़ी वीरता से इनका सामना किया, परंतु अंत में उन्हें महाराज की

'राजरूपक' में लिखा है कि उसने महाराज को गुजरात की सूबेदारी दी थी। परंतु महाराज के उधर जाने के पूर्व ही वह मर गया, और फ़र्रुख़सियर दिल्ली के तख्त पर बैठा। (हस्त-लिखित पुस्तक पृ० १८८)।

जहाँदारशाह का जलूसी सन् हि० सन् ११२४ की १४ रबीउल अव्वल (वि० सं० १७६९ की चैत्र सुदी १५=ई० सन् १७१२ की १० अप्रेल) से माना गया था।

१. इन्होंने शायद लाहौर के युद्ध में अज़ीमुश्शान का पक्ष लिया था। इसी से मोइज़ुद्दीन जहाँदारशाह इनसे नाराज़ था।

२. इसकी पुष्टि किशनगढ़-नरेश के वि० सं० १७६८ की माघ सुदी ८ के महाराज के नाम के पत्र से भी होती है।

३. महाराज के लिखे वि० सं० १७६९ (चैत्रादि संवत् १७७०) के, पँचोली बालकृष्ण के नामके पत्रों से ज्ञात होता है कि महाराज ने उसे जूनिया, मसूदा, तोड़ा, बाँदरवाड़ा और शक्तावतों के अधीन के प्रदेशों को विजय करने के लिये भेजा था और उसने वे प्रदेश विजय कर लिए थे।

ऐसा ज्ञात होता है कि महाराज के उधर से लौट कर जोधपुर आने पर उपर्युक्त लोगों ने फिर कहीं-कहीं सिर उठाया होगा। इसीसे पंचोली बालकृष्ण ने उन को फिर से जीता।

बात मानलेनी पड़ी। इसके बाद यह रायसिंहजी को साथ लेकर सांभर पहुंचे[2]। इसकी सूचना पाते ही आंबेर-नरेश जयसिंहजी, राजा उदयसिंहजी और राव मनोहरदास शेखावत वहाँ आकर इनसे मिले[3]। इसी समय बादशाह मोइज़ुद्दीन भी लाहौर से दिल्ली की तरफ़ चला आया था। परंतु शीघ्र ही उसे हाजीपुर से शाहज़ादे (अज़ीमुश्शान के पुत्र) फ़र्रुखसियर की चढ़ाई का समाचार मिल जाने से उसने महाराज से छेड़-छाड़ करना उचित न समझा। महाराज भी आँबेर-नरेश जयसिंहजी आदि के लौट जाने पर जोधपुर चले आए[4]।

कुछ दिन बाद जब मोइज़ुद्दीन जहाँदारशाह को कैद कर फ़र्रुखसियर बादशाही तख़्त पर बैठा, तब राव इंद्रसिंह का पुत्र मोहकमसिंह बगड़ी के ठाकुर दुर्जनसिंह

१. महाराज के, दयालदास के नाम लिखे, एक पत्र में (इसका नीचे का भाग फटा हुआ है) लिखा है कि हमारे राजसिंहजी को बुलाने पर उन्होंने आप न आकर अपने तीनों लड़कों को भेजने का लिखा। इस पर हमने किशनगढ़ आदि पर अधिकार कर रूपनगर को भी घेर लिया। जब क़िला फ़तह हो जाने की सूरत हुई, तब राजसिंहजी ने अपना क़ुसूर मानकर माफ़ी माँग ली और आश्विन बदी १ को वह हमारे पास चले आए। साथ ही उन्होंने हाथी और तोपें भी नज़र कीं। वि॰ सं॰ १७६६ (चैत्रादि संवत् १७७०) की वैशाख बदी ६ के महाराज के लिखे अपने फ़ौजबख़्शी पंचोली बालकृष्ण के नाम के पत्र से उस समय सरवाड़ आदि पर महाराज का कब्ज़ा होना प्रकट होता है।

२. महाराज के वि॰ सं॰ १७६६ की मँगसिर बदी १० के लिखे, दयालदास के नाम के पत्र में लिखा है कि आज राय रघुनाथ का पत्र आया। उससे ज्ञात हुआ कि बादशाह ने हमारी कही सब बातें मान लीं हैं। उसने अहमदाबाद का सूबा और सोरठ, ईडर तथा पट्टन का दरोबस्त हमको दिया है। और हमने उज्जैन का सूबा और मंदसोर आदि का दरोबस्त राजा जयसिंहजी को दिलवाया है। साथ ही इंद्रसिंहजी और राजसिंहजी को क्रमशः नागोर और किशनगढ़ तथा रूपनगर दिलवाया है। जिन-जिन लोगों ने हमारी सेवा की थी उन-उनके सब काम ठीक तौर से करवा दिए हैं।

३. 'राजरूपक' में इन घटनाओं का उल्लेख नहीं है। 'वीरविनोद' में प्रकाशित मारवाड़ के इतिहास में किशनगढ़ की चढ़ाई का वि॰ सं॰ १७६८ के भादों (ई॰ सन् १७११ के सितम्बर) में होना लिखा है।

४. 'अजितोदय', सर्ग २०, श्लो॰ १-२१। उक्त काव्य में यह भी लिखा है कि बादशाह ने जयपुर और जोधपुर के नरेशों का साँभर में एकत्रित होना सुनकर ही लाहौर से लौटने में शीघ्रता की थी।

५. फ़र्रुख़सियर वि॰ सं॰ १७६६ की माघ बदी १० (ई॰ सन् १७१३ की १० जनवरी) को बादशाह हुआ था।

को साथ लेकर, दिल्ली चला गया, और वहाँ पर महाराज के विरुद्ध बादशाह के कान भरने लगा। यह बात महाराज को बहुत बुरी लगी। अतः इन्होंने भाटी अमरसिंह को भेज मोहकमसिंह को मरवा डाला। इस पर दुर्जनसिंह भागकर दक्षिण में चला गया।

इसके बाद महाराज ५ महीने तक मेड़ते में रहे, और वहीं से फिर इन्होंने राव इन्द्रसिंह को अपने पास आने को लिखा। परंतु वह इनके पास न आकर कुछ दिन के लिये सैयदों के पास दिल्ली चला गया। इसी प्रकार किशनगढ़-नरेश राजसिंहजी भी दिल्ली पहुँच बादशाह के पास रहने लगे।

ये लोग फ़र्रुख़सियर को महाराज के विरुद्ध भड़काते रहते थे। अतः उसने इनके कहने से पहले तो पत्र लिखकर महाराज-कुमार अभयसिंहजी को दरबार में बुलाने की कोशिश की। परन्तु जब महाराज ने इस पर कुछ ध्यान नहीं दिया, तब वि० सं० १७७० (ई० सन् १७१३) में उसने सैयद हुसैनअलीख़ाँ (अमीरुल उमरा) को जोधपुर पर चढ़ाई करने की आज्ञा दी[3]। इसकी सूचना पाते ही महाराज ने खींवसी

१. अजितोदय, सर्ग २०, श्लो० २४-२६। 'लेटरमुग़ल्स' (भा० १, पृ० २८५ का फ़ुटनोट) में मोहकम के स्थान पर मुकंद (और मुल्कन) लिखा है। 'वीरविनोद' मे प्रकाशित मारवाड़ के इतिहास में इस घटना का वि० सं० १७७० की भादों सुदी ५ (ई० सन् १७१३ की २७ अगस्त ?) को होना लिखा है। 'सेहरुल मुताख़रीन' में जिस राजा मोहकमसिंह का हि० सन् ११३३ की १३ मुहर्रम (वि सं० १७७७ की कार्त्तिक सुदी १५=ई० सन् १७२० की ३ नवम्बर) को बादशाह मुहम्मदशाह की सेना को छोड़कर अब्दुल्लाख़ाँ से मिल जाना, और युद्ध होने पर दूसरे दिन रात को उसकी सेना से भी भाग जाना लिखा है, वह इस मोहकम से भिन्न था; क्योंकि उसके नाम के आगे राव न लगा होकर राजा की उपाधि लगी है। (देखो भा० २, पृ० ४४०) साथ ही 'मआसिरुलउमरा' मे उसे खत्री लिखा है। (देखो भा० २, पृ० ३३०)।

२. अजितोदय, सर्ग २०, श्लो० ३६-३६।

३. मि० इर्विन ने अपने 'लेटर मुग़ल्स' नामक इतिहास के भा० १ पृ० २८५-२९० में लिखा है कि बहादुरशाह महाराज अजितसिंहजी को दबाने में कृतकार्य न हो सका, और उसके मरते ही शाही तख़्त के लिये झगड़ा उठ खड़ा हुआ। यह देख महाराज ने भी मारवाड़ के आस-पास गो-वध बन्दकर मुसलमानी धर्म के प्रचार को रोक दिया। इसके बाद अजमेर पर भी इन्होंने अपना अधिकार कर लिया। उसी इतिहास मे कमवरख़ाँ के लेख के आधार पर यह भी लिखा है कि इधर तो बादशाह ने हुसैनकुली को जोधपुर पर चढ़ाई करने के लिये भेजा और उधर अनेक प्रलोभनों से पूर्ण पत्र लिखकर महाराज से उसे मार डालने का आग्रह किया। (लेटर मुग़ल्स, भा० १, पृ० २८६)।

को हुसैनअली से मिलकर बातचीत तय करने के लिये भेज दिया, और स्वयं सेना सजाकर नगर से बाहर राईकेबाग के पास डेरा लगाया। खींवसी ने मेड़ते के पास (बूंध्यावास में[1]) पहुंचे शाही सेना-नायक से संधि कर ली[2]। इस पर वह महाराज-कुमार अभयसिंहजी[3] को लेकर दिल्ली लौट गया। वहाँ पर वि० सं० १७७१ की सावन बदी ४ (ई० सन् १७१४ की १६ जुलाई) को बादशाह ने महाराज-कुमार से मिलकर उनका बड़ा आदर-सत्कार किया।

'बॉंबे गज़ेटियर' में लिखा है कि इसी अवसर पर बादशाह ने महाराज-कुमार को सोरठ की हकूमत (फ़ौजदारी) दी। इस पर वह स्वयं तो बादशाह के पास ही रहे,

१. फ़ारसी-इतिहासों मे हुसैनअली का मारवाड़ के गाँवों को लूटते हुए मेड़ते पहुँचना लिखा है।

२. बादशाह फ़र्रुख़सियर के सने जलूस १ की ११ सफ़र (वि० सं० १७७० की फागुन सुदी १२=ई० सन् १७१४ की १५ फरवरी) का महाराज के नाम का एक फ़रमान मिला है। उसमें अजितसिंहजी के (पहले के अनुसार ही) मनसब और रियासत के अधिकार के अङ्गीकार करने का उल्लेख है।

कहीं-कहीं ऐसा भी लिखा मिलता है कि मीरजुमला ने ही दोनों सैयद-भ्राताओं को एक स्थान से हटाने के लिये बादशाह से कहकर हुसैनअली को जोधपुर पर चढ़ाई करने के लिये भिजवाया था। साथ ही उसने एक फ़रमान महाराज के नाम भी भिजवाया था। उसमे उसने हुसैनअली को मार डालने का आग्रह किया था। इसके बाद बादशाह ने अब्दुल्लाख़ाँ को पकड़ने की कोशिश शुरू की। परंतु इस बात के प्रकट हो जाने से उसने अपने भाई (हुसैनअली) को शीघ्र लौट आने के लिये लिख भेजा। इसी समय महाराज ने हुसैनअली को उसके मारने के लिये आया हुआ शाही फ़रमान भी दिखला दिया। इस पर वह महाराज से संधि कर तत्काल लौट गया।

'मुंतख़िबुलुलुबाब' से भी इस बात की बहुत कुछ पुष्टि होती है। (देखो भा० २, पृ ७३८)।

'अजितोदय' मे लिखा है कि जब बादशाह के कहने से हुसैनअली मारवाड़ की तरफ़ चला आया, तब पीछे दिल्ली मे मीर जुमला के बहकाने से बादशाह ने उसके बड़े भाई को मारडालने का प्रबन्ध किया। परन्तु इसमें उसे सफलता नहीं हुई। इसकी सूचना पाते ही हुसैनअली महाराज से संधि कर दिल्ली लौट गया। (देखो सर्ग २१, श्लो० १-३८) उक्त काव्य मे इस चढ़ाई के कारणों मे मोह-कमसिंह का दिल्ली मे मारा जाना भी एक कारण माना है। परन्तु कुछ भी हो, इतना तो मानना ही पड़ता है कि इस बार की संधि में मारवाड़ के वीरों का वह पूर्व का-सा पौरुष प्रकट न हो सका।

३. वि० सं० १७७० (चैत्रादि १७७१) की ज्येष्ठ बदी १४ के, महाराज के, खींवसी के नाम लिखे पत्र से प्रकट होता है कि इसके एक दिन पूर्व हुसैनअली के तीन अमीर आकर अभयसिंहजी से मिले और उन्हें हाथी पर चढ़ाकर नवाब के पास ले गए। वहाँ पर उसने इनका बड़ा सत्कार किया, और १ हाथी, १ पोशाक तथा १ कलग़ी भेट की।

परन्तु कायस्थ फ़तहसिंह को उन्होंने अपना नायब बनाकर वहाँ का प्रबंध करने के लिये जूनागढ़ भेज दिया[1]। इसके बाद वि० सं० १७७२ के ज्येष्ठ (ई० सन् १७१५ की मई) में महाराज-कुमार लौटकर जोधपुर चले आए।

इसी वर्ष (वि० सं० १७७२=ई० सन् १७१५ में) महाराज को गुजरात की सूबेदारी और ५,००० सवारों का मंसब मिला[2]। इस पर यह जालोर[3] होते हुए भीनमाल पहुँचे और वहाँ से व्यास दीपचंद की सलाह से चाँपावत हरिसिंह और भाटी खेतसी को जैतावत दुर्जनसिंह और बनावटी दलथंभन के पीछे[4] रवाना किया। इनको आज्ञा दी गई थी कि ये उक्त दुर्जनसिंह और दलथंभन का पता लगाकर उन्हें मार डालें। (इसी के साथ मेड़ते के शासक पेमसी को भी नागोर पर चढ़ाई करने की आज्ञा भेजी गई।) इसके बाद महाराज बड़गाँव की तरफ़ होते हुए आबू के पास पहुँचे और वहाँ के देवड़ा शक्तिसिंह को हराकर पालनपुर की तरफ़ चले। इन्हें आया देख वहाँ के यवन-शासक (फ़ीरोजख़ाँ) ने और वावड़ी के पंचायण ने इनसे संधि कर ली। इसके बाद यह कोलीवाड़े से कर लेते हुए पाटन पहुँचे। यहाँ से महाराज ने अपनी सेना के एक भाग को मालगढ़ पर चढ़ाई करने की आज्ञा दी, और दूसरे भाग के साथ यह स्वयं अहमदाबाद की तरफ़ चले। महाराज की आज्ञा के अनुसार सेना का वह भाग भी कोलियों के उपद्रव को शांत कर मार्ग में महाराज से आ मिला। इसके बाद यह अहमदाबाद पहुँच वहाँ के सूबे का प्रबंध करने में लग गए।

१. बॉंबे गज़ेटियर, भा° १, खंड १, पृ० २६७।

२. बॉंबे गज़ेटियर, भा० १, खंड १, पृ० २६६ और 'लेटर मुग़ल्स' भा० १, पृ० २६· का फुटनोट।

महाराजा अजितसिंहजी के नाम का अहमदाबाद की सूबेदारी का फ़रमान बादशाह फर्रुख़सियर के सने जलूस ३ की २३ ज़िलहिज (वि० सं० १७७२ की पौष बदी १०=ई० स० १७१५ की ६ दिसम्बर) को लिखा गया था। इस फ़रमान में बादशाह की तरफ़ से महाराज को एक ख़िलअत दिए जाने का भी उल्लेख है।

३. 'राजरूपक' में भादों के अंत तक महाराज का जालोर में निवास करना लिखा है। (देखो पृ० १६८)।

४. अजितोदय, सर्ग २२, श्लो० ७-३५। उक्त काव्य में दलथंभन का उल्लेख नहीं है, क्योंकि उसके लेखानुसार वह सोजत के युद्ध में ही मारा गया था।

'बाँबे गज़ेटियर' में लिखा है कि अहमदाबाद पहुँचकर महाराज ने ग़ज़नीख़ाँ जालोरी को पालनपुर और जवाँमर्दख़ाँ बाबी को राधनपुर का हाकिम (फ़ौजदार) बनाया था[1]।

'मीरातेअहमदी' से ज्ञात होता है कि उसी वर्ष महाराज को प्रसन्न करने के लिये कोल्हापुर के कोतवाल ने ईद के त्योहार पर गाय की कुरबानी रोक दी। इससे वहाँ के सारे मुसलमान भड़क उठे[2]।

पहले लिखा जा चुका है कि महाराज ने पेमसी को नागोर विजय की आज्ञा दी थी। उसी के अनुसार उसने नागोर को घेरकर युद्ध छेड़ दिया। इसी अवसर पर इंद्रसिंह के बहुत-से सरदार भी लालच में पड़कर महाराज के पक्ष में चले आए। इससे जब नगर पर महाराज का अधिकार हो गया, तब राव इंद्रसिंह क़िला छोड़कर[3] अपने परिवार के साथ कासली नामक गाँव में जा रहा। परन्तु उसका पीछा करता हुआ जोधा दुर्जनसिंह रात्रि में वहाँ जा पहुँचा, और उसने उसके द्वितीय पुत्र मोहन-सिंह को भी मार डाला। यह देख इंद्रसिंह भागकर दिल्ली में बादशाह के पास चला गया, और फिर से महाराज के विरुद्ध उसके कान भरने लगा। परंतु इस बार उसे विशेष सफलता नहीं हुई[4]। यह घटना वि० सं० १७७३ के श्रावण (ई० सन् १७१६ की जुलाई) की है।

इसी वर्ष बादशाह ने हैदरकुली को सोरठ का फ़ौजदार बनाया। उस समय वहाँ का प्रबंध महाराजकुमार अभयसिंहजी के अधिकार में होने से पहले तो उसे हस्तगत करने की उसकी हिम्मत न हुई, परंतु अंत में किसी तरह वहाँ पर उसका अधिकार हो गया[5]।

१. बाँबे गज़ेटियर, भा १, खंड १, पृ० २९९।

२. बाँबे गज़ेटियर, भा १, खंड १, पृ० २९९, फ़ुटनोट ३।

३. 'राजरूपक' में इस घटना की तिथि सावन सुदी ३ लिखी है। (देखो पृ० २००)।

४. अजितोदय, सर्ग २३, श्लो० २-१३, और राजरूपक, पृ० २०१-२०२। वि० सं० १७७३ की सावन सुदी ७ के एक पत्र से भी इसी वर्ष नागोर पर महाराज का अधिकार होना सिद्ध होता है।

५. बाँबे गज़ेटियर, भा०, १, खंड १, पृ० २९९-३००।

वि० सं० १७७३ की माघ सुदि १२ (ई० स० १७१७ की १३ जनवरी) को बादशाह ने महाराज को शाही ख़िलअत, जड़ाऊ सरपेच, जड़ाऊ दस्तारबंद, जड़ाऊ कटार और सोने के साज का हाथी दिया[1]।

इसके बाद फागुन (फरवरी) में उस (बादशाह) ने इन्हें नागोर का परगना, जो उस समय अजमेर की सूबेदारी में था, जागीर में देदिया[2]।

अगले वर्ष महाराज ने गुजरात में दौरा करते समय द्वारका की यात्रा की, और मार्ग में हलवद के झालों[3] की कूटनीति से क्रुद्ध हो उसे दंड दिया। इसके बाद यह अहमदाबाद लौट आए। इसी बीच हरिसिंह ने कर्माखेड़ी की गढ़ी पर आक्रमण कर दलथंभन और दुर्जनसिंह को मार डाला[4]।

मुसलमानों के स्वेच्छाचार से नफ़रत होने के कारण महाराज अपने अधिकृत-स्थानों में उनकी स्वच्छंदताओं को दबाए रखते थे। इसी से वि० सं० १७७४ (ई० सन् १७१७) में इस प्रकार की शिकायतों से नाराज़ होकर बादशाह ने गुजरात का सूबा शम्सामुद्दौला ख़ाँदौराँ नसरतजंग को सौंप दिया। अतः महाराज लौटकर जोधपुर चले आए[5]।

---

१. फ़र्रुख़सियर के सने जलूस ४ की १० सफ़र का महाराज के नाम का एक फ़रमान मिला है। इसमें सिक्खों की हार का उल्लेख है।

२. फ़र्रुख़सियर के सने जलूस ५ की रबीउल अव्वल का भी महाराज के नाम का एक फ़रमान मिला है। इसमें की तारीख़ फट गई है। सम्भव है यह १ रबिउल अव्वल हो; क्योंकि उसी दिन फ़र्रुख़सियर का सने जलूस शुरू हुआ था।

इस फ़रमान में उस अवसर पर बादशाह द्वारा एक ख़ासे ख़िलअत और दो ईराकी घोड़ों का महाराज को दिया जाना लिखा है। ये घोड़े ईरान के बादशाह ने भेजे थे।

३. अजितोदय, सर्ग २३, श्लो० २४-३५। वहीं पर यह भी लिखा है कि हलवद पहुँचने पर रात्रि में महाराज की सेना के साथ के व्यापारियों के ऊँट चुरा लिए गए। इस पर जब वहाँ के झाला-वंशी शासक से शिकायत की गई, तब उसने इस पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। इसलिये महाराज को उससे युद्ध करना पड़ा। अन्त में झाला भागकर नवानगर वालों की शरण में चला गया। इस पर पहले तो नवानगरवालों ने भी झाला का पक्ष लेकर महाराज का सामना किया। परंतु अन्त में उन्होंने दंड के रुपये देकर महाराज से संधि करली।

४. अजितोदय, सर्ग २४, श्लो० ३४-३६ और राजरूपक, पृ० २०१।

५. बॉंबे गज़ेटियर, भा० १, खंड १, पृ० ३०० और अजितोदय, सर्ग २४ श्लो० ४०।

इसके बाद यह मंडोर, नागोर और मेड़ते का दौरा करते हुए पुष्कर पहुँचे। इसी बीच बादशाह फ़र्रुख़सियर और सैयदों के बीच के मनोमालिन्य ने उग्र रूप धारण कर लिया। यह देख बादशाह ने कुतुबुल्मुल्क को धोके से पकड़कर मारना चाहा। परंतु चालाक सैयद को इस बात का पता लग जाने से वह सचेत होगया। इस पर बादशाह ने नाहरख़ाँ के द्वारा महाराज को अपनी सहायता के लिये बुलवाया[1]। परंतु नाहरख़ाँ स्वयं भी गुप्त रूप से सैयदों से मिला हुआ था। इसीसे उसने बादशाह की अव्यवस्थितचित्तता का वर्णन कर महाराज का चित्त भी उसकी तरफ़ से फिरा दिया[2]।

वि० सं० १७७५ की भादों सुदी ६ (ई० सन् १७१८ की २० अगस्त) को जब महाराज दिल्ली के पास पहुंचे, तब बादशाह ने इनके लिये एतक़ादख़ाँ[3] के साथ एक कटार भेजी, और इनकी अगवानी के लिये शम्सामुद्दौला को नियत कर उसे आज्ञा दी कि वह महाराज के सामने जाकर जहाँ तक हो, खुशामद आदि से उन्हें अपनी तरफ़ मिलाने का प्रयत्न करे। परंतु महाराज बादशाह की अस्थिरता[4] और शाही दरबार की हालत से परिचित हो चुके थे। अतः इन्होंने कुतुबुल्मुल्क के साथ जाकर ही बादशाह से मिलना उचित समझा। इसी के अनुसार जब यह दूसरे दिन मंत्री के साथ जाकर बादशाह से मिले, तब ऊपर से तो उसने ख़िलअत आदि देकर इनका

१. अजितोदय, सर्ग २५, श्लो० ४-२३। परन्तु उक्त काव्य में इनका जयपुर-नरेश जयसिंहजी की सलाह से बुलाया जाना और यह देख सैयद-भ्राताओं का इनसे मेल कर लेना लिखा है। 'मुंतख़िबुल्लुबाब' में बादशाह का महाराज को अहमदाबाद से बुलवाना और 'महाराजा' के ख़िताब के साथ ही अन्य तरह से भी इनके पद और मान में वृद्धि कर इन्हें अपनी तरफ़ मिलाने की चेष्टा करना लिखा है। (देखो भा० २, पृ० ७६२)।

फ़र्रुख़सियर के लिखे इस विषय के दो फ़रमान मिले हैं। इनमें बड़ी खुशामद के साथ महाराज से दिल्ली आने का आग्रह किया गया है। परन्तु दोनों में ही सन् और तारीख़ नहीं दी गई है।

हां, इनमें के एक फ़रमान से प्रकट होता है कि यह लिखा पढ़ी महाराज के द्वारका की यात्रा कर अहमदाबाद से जोधपुर चले आने पर की गई थी।

२. लेटर मुग़ल्स, भा० १, पृ० ३४८।

३. अजितोदय, सर्ग २६, श्लो० ३ और राजरूपक, पृ० २०६।

४. 'मुंतख़िबुल्लुबाब' में फ़र्रुख़सियर की अव्यवस्थितचित्तता के बारे में ये शब्द लिखे हैं–"इज़्मो राय बादशाह बरयक हाल करार न मे गिरिफ़्त" (देखो भा० २, पृ० ७६४)।

सम्मान किया[1], परंतु इनके मंत्री के साथ आकर मिलने के कारण वह मन-ही मन इनसे नाराज़ हो गया[2]। यह देख इन्होंने भी बादशाही दरबार में जाना छोड़ दिया। परंतु आश्विन बदी १३ (११ सितंबर) को बादशाह ने, मेल करने की इच्छा से, ख़ाँदौराँ और सरबलंदख़ाँ को भेजकर इन्हें फिर अपने पास बुलवाया[3]। इस पर महाराज और कुतुबुल्मुल्क अब्दुल्लाख़ाँ, दोनों एक ही हाथी पर सवार होकर[4] बादशाह के पास पहुँचे। बादशाह ने भी ऊपर से बड़ी प्रीति दिखलाई[5] और वज़ीर की सलाह से बीकानेर का अधिकार भी महाराज को दे दिया[6]। परंतु भीतरही-भीतर वह निज़ामुल्मुल्क, मीर जुमला और ऐतक़ादख़ाँ आदि अनेक अमीरों को मिलाकर इनके मारने का षड्यंत्र रचने लगा। यह देख इधर कुतुबुल्मुल्क ने अपने भाई को, जो उस समय दक्षिण में था, सारा हाल लिख भेजा और, उधर बादशाह भी, जो सैयदों से पूरा पूरा द्वेष रखता था

१. अजितोदय, सर्ग २६, श्लो॰ ३६-४७।

वि॰ सं॰ १७७५ की भादों सुदी ८ के दिल्ली से महाराज के लिखे दयालदास के नाम के पत्र में लिखा है कि भादों सुदी ७ को हम बादशाह से मिले। बादशाह भी हमसे बड़े आदर के साथ बाँह फैलाकर मिला और हमें अपनी दाहनी तरफ़ सब से ऊपर खड़ाकर 'राजराजेश्वर' का ख़िताब, ख़िलअत, घोड़ा, हाथी, माही मरातब, मोतियों की माला, जड़ाऊ कटार, जड़ाऊ सरपेच, १,००० सवार दुअस्पा का इज़ाफ़ा और १ करोड़ दाम दिए।

इसकी पुष्टि इसी तिथि के पंचोली अजबसिंह के नाम लिखे महाराज के पत्र से भी होती है।

२. 'अजितोदय में लिखा है कि महाराज क़िले से लौटते हुए मार्ग में कुतुबुल्मुल्क के मकान पर ठहरे थे (देखो सर्ग २६, श्लो॰ ४६) परन्तु किसी ने इसकी सूचना बादशाह को दे दी। इससे बादशाह इनसे और भी अप्रसन्न हो गया। (देखो सर्ग २७, श्लो॰ २)।

३. किसी-किसी तवारीख़ में बादशाह का महाराज के द्वारा वज़ीर से मेल करने की इच्छा प्रकट करना भी लिखा है।

४. इस प्रकार महाराज को अकेले अब्दुल्लाख़ाँ के हाथी पर सवार होते देख नींबाज़ का ठाकुर अमरसिंह उनके पीछे चढ़ बैठा। उसी दिन से सरदार लोग महाराज के पीछे बैठने लगे हैं।

५. महाराज के, सिकदार दयालदास के नाम लिखे, वि॰ सं॰ १७७५ की पौष बदी ४ के पत्र में लिखा है कि बादशाह ने इन्हें ख़िलअत, मोतियों की माला, जड़ाऊ कलग़ी और एक करोड़ दाम देकर इनके मनसब में एक हज़ार सवार दुअस्पा की वृद्धि की। इसके अलावा अहमदाबाद का सूबा देने का भी हुक्म दिया।

६. 'लेटर मुग़ल्स' भा॰ १, पृ॰ ३४८-३५१।

इनके विरुद्ध बराबर षड्यंत्र करने लगा। एक-दो बार तो उसने महाराज के मार डालने या पकड़ लेने की कोशिश भी की[1], परंतु इसमें उसे सफलता नहीं हुई[2]।

अंत में (अब्दुल्लाखाँ) कुतुबुल्मुल्क के समझाने से पौष सुदी ३ (१३ दिसंबर) को स्वयं बादशाह उसे साथ लेकर महाराज के डेरे पर आया, और घंटे-भर से भी अधिक समय तक मेल-मिलाप की बातें करता रहा। इस पर दूसरे दिन महाराज भी दरबार में उपस्थित हुए। इस प्रकार एकबार फिर इनके आपस में मेल हो गया[3]। इसके बाद माघ बदी २ (२८ दिसम्बर) को बादशाह ने इन्हें 'राजराजेश्वर' की उपाधि देकर गुजरात की सूबेदारी दी[4]।

---

१. एकबार बादशाह ने सोचा कि उसके शिकार से लौटते हुए वज़ीर के मकान के पास पहुँचने पर जिस समय महाराज (जिनका पड़ाव उसी के मकान के पास था) अपने खेमे से निकलकर सत्कार के लिये सामने आवें, उस समय उन्हें पकड़ लिया जाय। परन्तु यह बात प्रकट हो जाने से महाराज हुसैनअली के मकान पर जाकर खड़े हो गए। इससे बादशाह की उधर आने की हिम्मत ही नहीं हुई।

इसी प्रकार स्वयं महाराज द्वारा अपने विश्वासपात्र सरदारों को लिखे गए उस समय के पत्रों में भी बादशाह की तरफ़ से इनके विरुद्ध किए गए षड्यंत्रों का उल्लेख मिलता है। उन पत्रों में महाराज ने जयपुर-नरेश जयसिंहजी का भी अपने विरुद्ध बादशाह को भड़काना सूचित किया है।

'अजितोदय' में भी महाराज को मारने के लिये बादशाह द्वारा षड्यंत्रों के रचे जाने का उल्लेख मिलता है। (देखो सर्ग २७, श्लो० ३-५)।

२. 'लेटर मुग़ल्स' में लिखा है कि पौष बदी १४ (६ दिसम्बर) को महाराजा अजितसिंहजी और शाही तोपख़ाने के नायक (बीका हज़ारी) के बीच लड़ाई छिड़ गई। यह लड़ाई तीन घंटे तक जारी रही, और इसमे दोनों तरफ़ के बहुत से योद्धा मारे गए। रात हो जाने पर जब झगड़ा शांत हुआ, तब बादशाह ने ज़फ़रखाँ को महाराज के पास भेजकर इस ग़लती के लिये क्षमा चाही। (देखो भा० १, ३६३)।

३. 'अजितोदय' सर्ग २७, श्लो० ७-११ और राजरूपक, पृ० २१२।

४. लेटर मुग़ल्स, भा० १, पृ० ३६३-३६४। ऊपर उद्धृत किए भादों सुदी ८ के स्वयं महाराज के पत्र में भी इन बातों का उल्लेख मिलता है।

अजितोदय में लिखा है कि इसके बाद एक दिन बादशाह ने राजराजेश्वर महाराजा अजितसिंहजी को और कुतुबुल्मुल्क को क़िले में बुलवाकर मार डालने का प्रबन्ध किया। इसके लिये पहले से ही सशस्त्र सिपाही महल में छिपाकर बिठा दिए गए थे। परन्तु इसका भेद खुल जाने से ये दोनों वहाँ से सकुशल निकल आए। (देखो सर्ग २७ श्लो० १२-१३)।

'लेटर मुग़ल्स' में इस घटना का संबंध केवल कुतुबुल्मुल्क से ही बतलाया है। (देखो भा० १, पृ० ३५४-३५५)।

कुतुबुल्मुल्क का ख़याल था कि आँबेर-नरेश राजा जयसिंहजी भी उसके विरुद्ध बादशाह को भड़काते रहते हैं। इससे उसने फ़र्रुख़सियर पर दबाव डालकर उन्हें अपने देश को लौट जाने की आज्ञा दिलवा दी[1]।

इसी बीच सैयद हुसैन अलीख़ाँ (अमीरुल्उमरा) अपनी सेना लेकर दक्षिण से दिल्ली आ पहुँचा। अतः[2] इन लोगों ने स्थायी संधि कर लेने के लिये फिर एकबार बादशाह से बातचीत शुरू की। परंतु अंत में फ़र्रुख़सियर की अव्यवस्थितचित्तता से सैयदों का और महाराज का विश्वास उस पर से बिलकुल ही उठ गया। इसलिये फागुन सुदी ६ (ई० सन् १७१६ की १७ फरवरी)[3] को इन्होंने क़िले पर अधिकार कर लिया[4]। यह देख फ़र्रुख़सियर ज़नाने में घुस गया। यद्यपि इन लोगों ने उसे बाहर आकर मामला तय कर लेने के लिये कई बार कहलाया, तथापि उसने इनकी बात पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। इससे क्रुद्ध होकर इन लोगों ने दूसरे ही दिन रफ़ीउद्दरजात[5] को क़ैद से निकालकर तख़्त पर बिठा दिया[6] और फ़र्रुख़सियर को ज़नाने में से पकड़वाकर क़ैद कर लिया[7]।

१. 'लेटर मुग़ल्स' भा० १, पृ० ३७६ और अजितोदय, सर्ग २७, श्लो० ३७ और ४०।

२. अजितोदय, सर्ग ३७, श्लो० १६।

३. 'हदीकतुल्अकालीम' में ८ रबीउल आख़ीर के बदले ८ रबीउल् अव्वल लिखा है। (देखो पृ० १३४) यह ठीक नहीं है।

४. अजितोदय, सर्ग २७ श्लो० ४१-४७।

५. अजितोदय, सर्ग २७ श्लो० ४८ और ५१। यह बहादुरशाह का पौत्र और रफ़ीउश्शान का पुत्र था।

'अजितोदय' में लिखा है कि मुग़ल गाज़िउद्दीन ने एकबार फ़र्रुख़सियर को छुड़वाने की चेष्टा की थी। परन्तु हुसैनअलीख़ाँ ने उसे नगर के पूर्वी द्वार के पास हराकर भगा दिया। (देखो सर्ग २७, श्लो० ४६-५०) इसकी पुष्टि 'लेटर मुग़ल्स' से भी होती है। (देखो भा० १ पृ० ३८६)।

६. रफ़ीउद्दरज़ात को तख़्त पर बिठाते समय उसका एक हाथ कुतुबुल्मुल्क ने और दूसरा महाराज अजितसिंहजी ने पकड़ा था। (देखो लेटर मुग़ल्स, भा० १, पृ० ३८६)।

७. वि० सं० १७७५ (चैत्रादि १७७६) की ज्येष्ठ बदी ११ के महाराज के सिकदार दयालदास के नाम के पत्र में लिखा है:--

बादशाह फ़र्रुख़सियर ने हमें अपनी सहायता के लिये यहाँ बुलवाया था। परन्तु हमारे यहाँ पहुँचने पर जयसिंहजी के कहने-सुनने से वह हमसे नाराज़ हो गया। इस पर हमने और नवाब अब्दुल्लाख़ाँ ने हसनअली को दक्षिण से यहाँ बुलवा लिया। उसके (१७७५ की) फागुन बदी १४ को

इसके बाद महाराज के कहने से नए बादशाह ने अपने पहले ही दरबार में जज़िया उठा देने और तीर्थों पर लगने वाले कर को हटा देने[1] की आज्ञा देदी[2]।

इस प्रकार दिल्ली के झगड़े से निपटकर वि० सं० १७७६ की ज्येष्ठ बदी ४ (ई० सन् १७१९ की २६ अप्रेल) को महाराज ने वहां (दिल्ली) से गुजरात की तरफ़ जाने का विचार किया। परंतु रफ़ीउद्दरजात के गद्दी पर बैठने का समाचार फैलते ही

दिल्ली पहुँचने पर फागुन सुदी २ को क़िला घेर लिया गया। फागुन सुदी १० बुधवार को फ़र्रुख़सियर को क़ैद कर लिया, और रफ़ीउद्दरज़ात को गद्दी पर बिठा दिया। साथ ही हमने उससे कहकर जज़िया माफ़ करवा दिया, और तीर्थों पर की रुकावट भी दूर करवा दी।

इसके बाद वैशाख सुदी १० को फ़र्रुख़सियर के गले में तसमा डलवाकर मरवा डाला। फिर ज्येष्ठ बदी ११ रविवार को हमने बादशाह से मारवाड़ में आने की आज्ञा माँगी। इस पर बादशाह ने ख़िलअत, जड़ाऊ साज़ का घोड़ा, कानों में पहनने के लिये क़ीमती मोती, जड़ाऊ सरपेच, जड़ाऊ तलवार, हाथी, हथनी, तुमनतोग (बड़ा मरातब) आदि दिए।

पहले जब हम फ़र्रुख़सियर से मिले, तो उसने जयसिंहजी से सलाहकर हमको मरवाना चाहा। दूसरी दफ़े फिर घातकों को भीतर छिपाकर हमें बुलवाया। इसी प्रकार तीसरी बार शिकार में बुलाकर धोका देने का विचार किया। चौथी दफ़े पास बिठा कर मरवाना चाहा। इसी प्रकार एक बार बाग़ में बारूद बिछाकर और आग लगानेवालों को पास मे खड़े कर हमको वहाँ बुलवाया। परन्तु उसे इनमे सफलता नहीं हुई। हम चाहते, तो जयसिंहजी को मार कर जयपुर की गद्दी पर किसी दूसरे को बिठा देते। परन्तु हमने उसे बचा दिया। पहले तो उसके वहीं पर (दिल्ली मे ही) मारने का इरादा किया गया था। इसके बाद जब वह जयपुर की तरफ़ चला, तो उसके पीछे फ़ौज रवाना की गई। परन्तु हमने नवाब को समझाकर फ़ौज की चढ़ाई रुकवा दी। फिर उसे (जयसिंहजी को) मनसब में आँबेर दिलवाकर वहाँ (आँबेर) से ७०० कोस पर के दक्षिण में के बीदर की फ़ौजदारी दिलवाई। इसलिये अब वह वहाँ जायगा। हम उसे एकबार पहले भी आँबेर की गद्दी दिलवा चुके हैं।

लेटर मुग़ल्स में लिखा है कि वि० सं० १७७६ की वैशाख सुदी ६ (ई० सन् १७१६ की १७ अप्रेल) की रात को फ़र्रुख़सियर मार डाला गया। (देखो भा० १, पृ० ३७६-३९३)।

१. मुंतख़िबुल्लुबाब, भा० २, पृ० ८१७। यद्यपि फ़र्रुख़सियर ने भी पहले अपने राज्य के प्रथम वर्ष (वि० सं० १७७०=ई० सन् १७१३) में ही जज़िया उठा दिया था, तथापि बाद में इनायतउल्लाख़ाँ के जो इस विषय में मक्के के शरीफ़ की एक अर्ज़ी लाया था, कहने से अपने राज्य के छठे वर्ष (वि० सं० १७७४=ई० सन् १७१८) मे इसे फिर से जारी कर दिया। (देखो लेटर मुग़ल्स, भा० १ पृ० ३३८ और मुंतख़िबुल्लुबाब, भा० २ पृ० ७७५)।

२. महाराजा अजितसिंहजी के नामका महाराना संग्रामसिंहजी द्वितीय का वि सं० १७७५ की वैशाख बदी ११ का पत्र। इसमें उन्होंने जज़िया और तीर्थों पर की रुकावट उठवा देने के कारण महाराज को धन्यवाद दिया है।

आगरे की मुग़ल-सेना ने बगावत का झंडा खड़ाकर, वि० सं० १७७६ की ज्येष्ठ बदी ३० (ई० सन् १७१९ की ८ मई) को, शाहज़ादे मुहम्मद अकबर के पुत्र निकोसियर को तिमूर सानी के नाम से बादशाह घोषित कर दिया[1]। इससे इन्हें अपना विचार स्थगित करना पड़ा।

इसके कुछ दिन बाद ही रफ़ीउद्दरज़ात[2] सख़्त बीमार हो गया। अतः महाराज अजितसिंहजी ने और सैयद-भ्राताओं ने मिलकर आषाढ़ बदी ३ (२५ मई) को उसे तो ज़नाने में भेज[3] दिया और उसकी इच्छानुसार[4] उसके बड़े भाई रफ़ीउद्दौला को आषाढ़ बदी ५ (२७ मई) के दिन शाहजहाँ सानी के नाम से गद्दी पर बिठा दिया[5]। इसके बाद ही इन्हें शाइस्ताख़ाँ और आँबेर-नरेश जयसिंहजी के मिलकर आगरे में उपद्रव करने के विचार की सूचना मिली। अतः वहाँ पर अधिकार करने के लिये पहले सैयद हुसैनअली भेजा गया, और इसके कुछ दिन बाद कुतुबुल्मुल्क (अब्दुल्लाख़ाँ) और महाराज ने भी रफ़ीउद्दौला को लेकर उधर प्रयाण किया[6]। अब्दुल्लाख़ाँ का विचार मार्ग से ही आँबेर पर चढ़ाई कर राजा जयसिंहजी को दन्ड देने का था, परन्तु महाराजा अजितसिंहजी ने कह सुनकर उसे उधर जाने से रोक लिया[7]। इसके बाद वि० सं० १७७६ की भादों बदी ५ (ई० सन् १७१९ की २५ जुलाई) को महाराज तो कोरी के मुक़ाम से मथुरा स्नान के लिये चले गए और कुतुबुल्मुल्क बादशाह को लेकर फ़तेहपुर-सीकरी की तरफ़ मुड़ गया। भादों बदी १२ (१ अगस्त) को आगरे के

१. मुंतख़िबुल्लुबाब, भा० २, पृ० २५।

२. वि० सं० १७७६ की आषाढ़ बदी १० (ई० सन् १७१९ की १ जून) को रफ़ीउद्दरज़ात राजयक्ष्मा की बीमारी से मर गया। (देखो लेटर मुग़ल्स, भा० १, पृ० ४१८) इसने केवल ३ महीने के क़रीब राज्य किया था।

३. 'लेटर मुग़ल्स' में रफ़ीउद्दरज़ात का गद्दी से उतारा जाकर ज़नाने में भेजा जाना लिखा है। (देखो भा० १, पृ० ४१८)।

४. मुंतख़िबुल्लुबाब, भा० १, पृ० ८२९।

५. अजितोदय, सर्ग २७, श्लो० ५३ और लेटर मुग़ल्स, भा० १, पृ० ४२०।

६. मुंतख़िबुल्लुबाब, भा० १, पृ० ८३३।

७. यह बात महाराज द्वारा अपने एक सरदार के नाम लिखे उस समय के पत्र से भी प्रकट होती है। उसमें लिखा है कि अपने पर होनेवाली सैयदों की चढ़ाई की सूचना पाते ही आँबेर-नरेश जयसिंहजी ने अपने सरदारों को भेज हमसे सहायता की प्रार्थना की। इसी से हमने सैयदों से कह-सुनकर उक्त चढ़ाई रुकवा दी।

क़िले पर सैयदों का अधिकार हो गया, और निकोसियर क़ैद कर लिया गया। इसकी सूचना पाते ही अब्दुल्लाख़ाँ अपनी चाल तेज़कर भादों सुदी १३ (१६ अगस्त) को 'ओल' के मुक़ाम पर पहुँचा। यहीं पर महाराज भी मथुरा की यात्रा से लौटकर उससे आ मिले। इतने ही में हुसैनअली भी लौटकर इनके पास आ गया। अतः यह सब लोग मिलकर दिल्ली को लौट चले। विद्यापुर में[2] पहुँचने पर प्रथम आश्विन सुदी ५ या ६ (७ या ८ सितम्बर) को रफ़ीउद्दौला भी बीमार होकर मर गया। परंतु कुतुबुल्मुल्क ने दूसरे शाहज़ादे के दिल्ली से आने तक इस बात को गुप्त रक्खा[3]। इसके बाद शाहज़ादे रोशनअख़्तर[4] के दिल्ली से वहाँ पहुँच जाने पर रफ़ीउद्दौला की मृत्यु प्रकट की गई,

---

'अजितोदय' से भी इस बात की पुष्टि होती है। परन्तु उसमे एक तो आगरे पर की चढ़ाई का रफ़ीउद्दौला की मृत्यु के बाद मुहम्मदशाह के समय होना लिखा है और दूसरा निकोसियर के पकड़े जाने के बाद महाराज का आगरे से मथुरा जाना और वहां से लौटने पर सैयद-भ्राताओं को आँबेर पर चढ़ाई करने से रोकना लिखा है। (देखो सर्ग २७, श्लो० ५३-५७ और सर्ग २८, श्लो० १-२६) और (राजरूपक, पृ० २१६-२१७) महाराज के दयालदास के नाम लिखे एक पत्र में (पत्र का कुछ हिस्सा फट जाने से तिथि आदि नहीं मिली है।) लिखा है कि अकबर के बेटे आगरे के क़िले मे क़ैद थे। उन्होंने जयसिंह आदि के कहने से बग़ावत की। इस पर हम और हसनअलीख़ाँ वहाँ भेजे गए। हमने बादशाह को भी चढ़ाई करने को तैयार किया। इससे भादों बदी ३० को आगरे का क़िला फ़तह हुआ। निकोसियर दोनों भतीजों-सहित पकड़ा जाकर क़ैद किया गया। इसके बाद जयसिंह पर चारों तरफ़ से फ़ौजों की चढ़ाई हुई। इससे उसके मुल्क के हाथ से निकल जाने की नौबत आ पहुँची। यह देख उसने अपने ५ आदमी हमारे पास भेजे, और आजिज़ी करवाई। हमारी हर आज्ञा के पालन का वादा किया। इस पर हमने उसे साढ़े तीन हज़ारी मनसब दिलवाकर आँबेर को बचाया, और सोरठ की फ़ौजदारी दिलवाकर उसे अपने पास नियत किया। साथ ही उस पर गई हुई फ़ौजों को भी पीछा बुलवा लिया। इसके बाद हमने उसकी इच्छा के अनुसार अपने ४ आदमी भेज कर उसकी तसल्ली करवाई। अनंतर शीघ्र ही शाहजहां (सानी) भी बीमार होने के कारण मर गया। इस पर हमने जहाँशाह के बेटे रौशनअख़्तर को दिल्ली से बुलवा कर और आश्विन बदी २ को हाथ पकड़ कर शाही तख़्त पर बिठा दिया। साथ ही उसका नाम मोहम्मदशाह ग़ाज़ी रक्खा। इसके बाद हमारे देश को लौटने का इरादा करने पर बादशाह ने ख़िलअत, जड़ाऊ साज़ का घोड़ा, हाथी, मोतियों की माला, जड़ाऊ सरपेच और जड़ाऊ कटार भेट किए। इनके अलावा अजमेर का......(यहीं से पत्र खंडित है) ।

१. लेटर मुग़ल्स, भा० १, पृ० ४२२-४३०। परन्तु इसमे अब्दुल्लाख़ाँ का स्वयं ही कोसी के मुक़ाम पर आँबेर जाने का विचार स्थगित करना लिखा है।

२. विद्यापुर फ़तेहपुर-सीकरी से ३ कोस उत्तर में है।

३. लेटर मुग़ल्स, भा० १, पृ० ४३१।

४. यह बहादुरशाह के चौथे पुत्र खुजिस्ताअख़्तर का पुत्र था।

और इसके दो दिन बाद ही द्वितीय आश्विन बदी १ (१८ सितम्बर) को रौशनअख़्तर नासिरुद्दीन मोहम्मदशाह के नाम से गद्दी पर बिठा दिया गया[1]।

वि० सं० १७७६ की कार्तिक बदी ५ (ई० सन् १७१९ की २२ अक्टोबर) को बादशाह ने अजमेर के सूबे का प्रबन्ध सैयद नुसरतयारख़ाँ से लेकर महाराज के अधीन कर दिया और साथ ही मनसब में भी ३०० सवारों की वृद्धि कर शायद २,५०० सवार दुअस्पा सेअस्पा कर दिए[2]।

इसके बाद महाराज जोधपुर की तरफ़ रवाना हुए, और मार्ग से जयसिंहजी को साथ लेकर मनोहरपुर होते हुए जोधपुर चले आए[3]। यहाँ पर जयसिंहजी का बड़ा आदर-सत्कार किया गया। वह भी कुछ दिनों तक यहाँ रहकर अपने देश को लौट गए[4]।

---

१. लेटर मुग़ल्स, भा० २, पृ० १-२।

२. हिजरी सन् ११३१ की १६ ज़िलहिज का फ़र्मान। इसमें के २,५०० सवारों के बाद के कुछ शब्द नष्ट हो गए हैं।

'लेटर मुग़ल्स' से भी अजमेर की सूबेदारी मिलने की पुष्टि होती है। देखो भा० २, पृ० ४।

३. अजितोदय, सर्ग २८, श्लो० ३०-३३। 'लेटर मुग़ल्स' में लिखा है कि महाराज अजितसिंहजी के बीच मे पड़ने पर भी जयसिंहजी ने अबतक शत्रुता नहीं छोड़ी थी। इसलिये सैयदों का विचार उनपर चढ़ाई करने का था। (देखो भा० २, पृ० ३) परंतु महाराज अजितसिंहजी ने जोधपुर जाते हुए मार्ग में जयसिंहजी को समझा कर शांत करने का वादा कर लिया। इससे यह चढ़ाई रोक दी गई। इसके बाद द्वितीय आश्विन सुदी ३ (५ अक्टोबर) को जयसिंहजी के टोडे से वापिस आँबेर लौट जाने की सूचना मिल गई। अतः यह झगड़ा शान्त हो गया। (देखो भा० २, पृ० ४) 'राजरूपक' मे महाराज का मँगसिर में जोधपुर आना लिखा है। उसके अनुसार बूँदी-नरेश बुधसिंहजी भी इनके साथ थे। (देखो पृ० २१८)।

४. अजितोदय, सर्ग २६ श्लो० १-३५। परन्तु उक्त काव्य मे सैयद-भ्राताओं में से एक के मारे और दूसरे के क़ैद किए जाने पर जयसिंहजी का जोधपुर से लौटना लिखा है।

इसी के आगे उसमे महाराज का ८ महीनों के लिये मेड़ते जाकर रहना और फिर अजमेर पर चढ़ाई करना भी लिखा है। (देखो सर्ग २६, श्लो० १-६६) 'राजरूपक' में भी जयसिंहजी का एक सैयद के मारे जाने पर जोधपुर से जाना लिखा है। इसके बाद वि० सं० १७७७ की कार्त्तिक-बदी १२ को महाराज का मेड़ते पहुँचना और फिर अजमेर पर अधिकार कर लेना भी उससे प्रकट होता है। (देखो पृ० २२०)।

इसी बीच बादशाह ने सोरठ का सूबा जयसिंहजी को दे दिया, परंतु बाकी के[1] अहमदाबाद सूबे का प्रबन्ध महाराज के ही अधिकार में रक्खा। उस समय मरहटों का प्रभाव बहुत बढ़ा हुआ था। साथ ही महाराज भी अत्याचारी मुसलमानों से हार्दिक घृणा रखते थे। इसी से यह गुप्त रूप से मरहटों को प्रोत्साहन देते रहते थे, और मौक़ा पाकर इन्हों ने मारवाड़ की सरहद से मिलते हुए गुजरात के प्रदेशों को भी अपने राज्य में मिला लिया था। यद्यपि बाद में इनको वापस हस्तगत करने के लिये सर-बुलन्दख़ाँ ने बहुत कुछ उद्योग किया, तथापि वह कृतकार्य न हो सका[2]।

वि० सं० १७७७ (ई० सन् १७२०) में सैयदहुसेनअली मारा गया, और इसके क़रीब एक मास बाद ही सैयद अब्दुल्लाख़ाँ[3] क़ैद कर लिया गया[4]। इसलिये महाराज ने स्वयं मारवाड़ से बाहर जाना अनुचित समझ भंडारी अनोपसिंह को गुजरात के प्रबंध की देख-भाल के लिये भेज दिया। वहाँ पर उसके और अहमदाबाद के एक बड़े व्यापारी कपूरचन्द भंसाली के बीच झगड़ा उठ खड़ा हुआ, और वह व्यापारी अनोप-सिंह के कार्य में गड़-बड़ करने लगा। इससे क्रुद्ध होकर अनोप ने भंसाली को मरवा डाला[5]।

इस प्रकार गुजरात के सूबे का प्रबंध हो जाने के बाद महाराज स्वयं मेड़ते होते हुए अजमेर पहुँचे और वहाँ पर इन्होंने अपना अधिकार कर लिया। इसके बाद यह बादशाह की परवा छोड़ स्वाधीनता-पूर्वक आनासागर के शाही महलों में रहने लगे[6] और इन्होंने अपने दोनों सूबों में गोवध का होना बंद कर दिया[7]।

१. 'बॉंबे गज़ेटियर' में लिखा है कि उस समय दिल्ली के पास सर्व प्रतापी-नरेश महाराज अजितसिंहजी ही थे। इसी से इनको प्रसन्न रखने के लिये ई० सन् १७१६ में, सैयदों ने इन्हें गुजरात की सूबेदारी दे दी थी। यह सूबेदारी ई० सन् १७२१ तक इन्हीं के अधिकार में रही। (देखो भा० १, खंड १, पृ० ३०१)।

२. बॉंबे-गज़ेटियर, भा० १, खंड १, पृ० ३०१।

३. वि० सं० १७७६ (ई० सन् १७२२) में यह भी मार डाला गया। इसी बीच एक बार महाराज ने बादशाह मोहम्मदशाह से मिलकर अपने मित्र अब्दुल्लाख़ाँ को छुड़वाने की कोशिश करने का इरादा किया था, परंतु उस समय दिल्ली के शाही दरबार में विरोधी-पक्ष का प्रभाव देख इन्हें यह विचार छोड़ देना पड़ा।

४. लेटर मुग़ल्स, भा० २, पृ० ५६-६० और ६१।

५. बॉंबे गज़ेटियर, भा० १, खंड १, पृ० ३०१।

६. अजितोदय, सर्ग २६, श्लो० ६७-६८ और सर्ग ३०, श्लो० १।

७. लेटर मुग़ल्स, भा० २ पृ० १०८।

इन कामों से निपटकर महाराज ने राजकुमार अभयसिंहजी को और भंडारी रघुनाथ को सांभर की तरफ़ भेजा। उन्होंने वहाँ के शाही फ़ौजदार को भगाकर साँभर पर अपना अधिकार कर लिया। इसी प्रकार महाराज की सेनाओं ने डीडवाना, टोडा, झाडोद और अमरसर पर भी कब्ज़ा कर लिया[1]।

महाराज के इस प्रकार बढ़ते हुए प्रताप को देखकर बादशाह ने आगरे के शासक सआदतख़ाँ को अजमेर की सूबेदारी देने के साथ ही इन पर चढ़ाई करने की आज्ञा दी। परन्तु इस कार्य में एक भी शाही अमीर उसका साथ देने को तैयार न हो सका। इससे उसकी चढ़ाई करने की हिम्मत न[2] हुई। इसके बाद क्रमशः शम्सामुद्दौला, कमरुद्दीनख़ाँ बहादुर और हैदरकुलीख़ाँ बहादुर को इस कार्य के लिये तैयार किया गया। परंतु इनमें के प्रत्येक व्यक्ति ने चढ़ाई करने का वादा करके भी दिल्ली से आगे बढ़ने का साहस नहीं किया। ख़ासकर शम्सामुद्दौला तो अपना पेशख़ेमा दिल्ली के बाहर खड़ा करवाकर भी इधर-उधर के बहाने कर नगर से बाहर न निकला। वह अच्छी तरह जानता था कि एक तो इस समय शाही ख़ज़ाना ख़ाली होने से सैनिकों के वेतन और रसद आदि का प्रबन्ध करना ही कठिन होगा। दूसरे यदि इस कार्य में असफलता हुई, तो दूसरों को भी सिर उठाने का साहस हो जायगा। इन हालतों में महाराजा अजितसिंहजी जैसे प्रबल शत्रु से भिड़ना मूर्खता ही होगी[3]।

कहीं-कहीं ऐसा भी लिखा मिलता है कि बुद्धिमान् और दूरदर्शी शम्सामुद्दौला को भय था कि यदि ऐसे अवसर पर महाराज ने स्वयं ही दिल्ली पर चढ़ाई कर दी, तो यह घुन लगी हुई शाही इमारत बहुत शीघ्र गिरकर नष्ट हो जायगी। इसलिये जहाँ तक संभव हो सका, उसने नम्रतापूर्ण पत्र भेज-भेजकर महाराज को संतुष्ट रक्खा[4], और इस प्रकार दिल्ली को भावी संकट से बचा लिया[5]।

१. अजितोदय, सर्ग ३०, श्लो० २-५।
२. मुंतख़िबुल्लुबाब, भा० २. पृ० ९३६-९३७।
३. लेटर मुग़ल्स, भा० २, पृ० १०८, सैहरुल मुताख़रीन, पृ० ४५४ और मुंतख़िबुल्लुबाब, भा० २, पृ० ९३७।
४. 'सैहरुल मुताख़रीन' से भी इस बात की बहुत कुछ पुष्टि होती है। (देखो पृ० ४५४)।
५. ख्यातों में लिखा है कि वि० सं० १७७७ में बादशाह रतलामनरेश राजा मानसिंहजी से नाराज़ हो गया और उसने उनसे रतलाम का अधिकार छीन लिया। इस पर उन्होंने महाराजा अजितसिंहजी से सहायता की प्रार्थना की। महाराज ने बादशाह से कह कर

शम्सामुद्दौला का विचार था कि यदि बादशाह का ऐसा ही आग्रह हो, तो महाराज से अजमेर का सूबा लेकर गुजरात का सूबा उन्हीं की अधीनता में छोड़ दिया जाय। परंतु हैदरकुलीख़ाँ आदि को यह बात पसंद न थी। इसीसे सआदतख़ाँ को महाराज पर चढ़ाई करने की आज्ञा दी गई थी। परंतु जब वह पहले लिखे अनुसार कृतकार्य न हो सका, तब यह काम कमरुद्दीनख़ाँ को सौंपा गया। इस पर उसने बादशाह से प्रार्थना की कि सैयद अब्दुल्लाख़ाँ और उसके रिश्तेदारों के अपराधों को क्षमा कर उन्हें उसके साथ जाने की आज्ञा दी जाय। परन्तु बादशाह ने यह बात स्वीकार न की।

इसके बाद वि० सं० १७७८ के कार्तिक (ई० स० १७२१ के अक्टोबर) में हैदरकुलीख़ाँ को गुजरात की और सैयद मुज़फ़्फ़रअलीख़ाँ को अजमेर की सूबेदारी दी गई। इस पर हैदरकुली ने अपना नायब भेजकर महाराज के प्रतिनिधि अनोपचन्द और नाहरख़ाँ से गुजरात का शासन ले लिया; परंतु मुज़फ़्फ़रख़ाँ ने स्वयं जाकर अजमेर पर अधिकार करने का इरादा किया। इसी के अनुसार जिस समय वह मनोहरपुर[2] पहुँचा, उस समय तक उसके पास क़रीब २०,००० सैनिक जमा हो गए थे। इसकी सूचना पाते ही महाराज ने भी महाराजकुमार अभयसिंहजी को मुज़फ़्फ़र का मार्ग रोकने के लिये रवाना कर दिया[3]।

बादशाह को ख़याल था कि शाही सेना की चढ़ाई का समाचार पाते ही महाराज डरकर उसकी अधीनता स्वीकार कर लेंगे। परंतु जब उसे अपनी यह इच्छा पूर्ण होती न दिखाई दी, तब उसने मुज़फ़्फ़र को मनोहरपुर में ही ठहर जाने की आज्ञा लिख भेजी। इसके अनुसार उसे तीन मास तक वहाँ रुकना पड़ा। इसी बीच उसका सारा खज़ाना समाप्त हो गया, और रसद की कमी हो जाने के कारण उसकी सेना के बहुत से सिपाही उसे छोड़कर अपने-अपने घरों को लौट गए। उसकी यह दशा देख आँबेर-नरेश जयसिंहजी ने अपने सेनापति के द्वारा उसे आँबेर बुलवा लिया। परंतु अपनी

रतलाम का अधिकार फिर से राजा मानसिंहजी को दिलवा दिया। परंतु इस घटना के बारे में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जासकता।

१. लेटर मुग़ल्स, भा० २, पृ० १०८ और सैरुल मुताख़रीन, पृ० ४५२।

२. यह नगर जयपुर से ३५ मील उत्तर और अजमेर से १३० मील ईशान कोण में है।

३. लेटर मुग़ल्स, भा० २, पृ० १०८-१०९।

असमर्थता का विचार कर मुज़फ़्फ़र को इतनी ग्लानि हुई कि वहीं से उसने अजमेर की सूबेदारी का फ़रमान और ख़िलअत बादशाह को लौटा दिया और स्वयं फ़कीर हो गया।[1]

इसके बाद सैयद नुसरतयारख़ाँ बाराह को अजितसिंहजी पर चढ़ाई करने की आज्ञा दी गई। इसी बीच (भरतपुर-राज्य के संस्थापक) चूड़ामन जाट ने अपने पुत्र मोहकमसिंह को सेना देकर महाराज के पास अजमेर भेज दिया। अनन्तर जैसे ही महाराज को नुसरतयारख़ाँ के चढ़ाई करने के विचार की सूचना मिली, वैसे ही इन्होंने महाराजकुमार अभयसिंहजी को उत्तर की तरफ़ आगे बढ़ नारनौल को और दिल्ली तथा आगरे के आस-पास के प्रदेशों को लूटने की आज्ञा दी। इसके अनुसार वह बारह हज़ार शुतर[2]-सवारों के साथ नारनौल जा पहुँचे। यद्यपि पहले तो वहाँ के फ़ौजदार बयाज़िदख़ाँ मेवाती के प्रतिनिधि ने इनका यथा सामर्थ्य सामना किया, तथापि अन्त में राठोड़ों की तीक्ष्ण तलवार के सामने से उसे मेवात की तरफ़ भागना पड़ा। महाराजकुमार भी नारनौल को लूटने के बाद अलवर, तिजारा और शाहजहाँपुर को लूटते हुए दिल्ली से केवल नौ कोस के फ़ासले पर स्थित सराय अलीवर्दीख़ाँ तक जा पहुँचे।[3]

इससे दिल्ली के शाही दरबार में फिर गड़-बड़ मच गई। इस पर सब से पहले शम्सामुद्दौला ने महाराज से भयंकर बदला लेने की क़समें खाकर बादशाह से अजमेर पर चढ़ाई करने की आज्ञा प्राप्त की और इसीके अनुसार वह अपने डेरे (एक बार फिर) दिल्ली के बाहर खड़े करवा कर बड़े ज़ोर-शोर से चढ़ाई की तैयारी करने लगा।[4]

१. लेटर मुग़ल्स, भा० २ पृ० १०६-११० और सैरुल मुताख़रीन, पृ० ४५४। पिछले इतिहास में यह भी लिखा है कि महाराज अजितसिंहजी के दो राजकुमारों ने मुज़फ़्फ़र का पीछा कर ४-५ शाही गाँवों को लूट लिया। परंतु उसमे इस घटना के बाद शाही अमीरों को अजमेर पर चढ़ाई करने की आज्ञा का मिलना और उनका बाहने बनाकर इस कार्य को टालना लिखा है।

अजितोदय, सर्ग ३०, श्लो० ६-११। उक्त काव्य में अभयसिंहजी की चढ़ाई का समाचार सुनकर मुज़ (द) फ्फ़र का मनोहरपुर से भागना और इसके बाद अभयसिंहजी का साँभर की तरफ़ जाना लिखा है।

२. इनमें के प्रत्येक ऊँट पर बंदूकों या तीर कमानों से सजे दो-दो सवार चढ़े हुए थे।

३. लेटर मुग़ल्स, भा० २, पृ० ११०। अजितोदय में महाराजकुमार अभयसिंहजी का नारनौल को लूटकर साँभर को लौटना और इसके बाद जाकर शाहजहाँपुर को लूटना लिखा है। इसके बाद यह फिर साँभर लौट आए थे। (देखो सर्ग ३०, श्लो० १२-२१)।

४. लेटर मुग़ल्स, भा० २, पृ० ११०।

परन्तु इतना सब कुछ होने पर भी उसकी आगे बढ़ने की हिम्मत न हुई। यह देख बादशाह उससे नाराज़ हो गया। अतः शम्सामुद्दौला को अपना दरबार में जाना ही बन्द करना पड़ा। इसके बाद बादशाह ने हैदरकुलीख़ाँ को इस कार्य के लिये तैयार किया। यद्यपि पहले तो उसने बादशाह के सामने अनेक प्रबंध-संबंधी प्रार्थनाएँ उपस्थित कर इस कार्य में बड़ी तत्परता दिखाई, तथापि अन्त में जब सारा शाही तोपख़ाना ही उसके अधिकार में दे दिया गया, और उसके डेरे भी नगर से बाहर खड़े करवा दिए गए, तब उसने आगे बढ़ने से एकाएक इनकार कर दिया। इसके बाद कमरुद्दीनख़ाँ को भी इसी प्रकार अपनी असमर्थता प्रकट करनी पड़ी। अन्त में बहुत कुछ कहा सुनी के बाद नुसरतयारख़ाँ ने किसी तरह महाराज के विरुद्ध चढ़ाई की। परन्तु इसी बीच महाराज स्वयं ही अजमेर से जोधपुर लौट आए[1]। इसलिये यह झगड़ा यहीं शान्त हो गया।

इस घटना के क़रीब एक मास बाद (ई० सन् १७२२ की २१ मार्च=वि० सं० १७७६ की चैत्र सुदी १५ को) महाराज ने बादशाह के पास अपने प्रतिनिधि भेजकर कहलाया कि तख़्त पर बैठते समय आपने गुजरात और अजमेर के उपद्रव को दबाने के लिये उक्त दोनों सूबे मुझे सौंपे थे। इसके बाद जब सारे उपद्रव शांत हो चुके, तब गुजरात का सूबा हैदरकुली को दे दिया गया। फिर भी मैंने इस पर कुछ आपत्ति नहीं की। परन्तु अब आप अजमेर का सूबा भी मुझसे लेना चाहते हैं। यह कहाँ तक न्याय्य है। इसे आप स्वयं ही सोच देखें[2]।

'अजितोदय' में लिखा है कि इसी अवसर पर आँबेर-नरेश जयसिंहजी ने महाराजकुमार के बढ़ते हुए प्रताप को देख अपने प्रधान पुरुषों को महाराज के पास भेजा, और उनके द्वारा बहुत कुछ कह सुन और क्षमा मांगकर महाराज से मैत्री कर ली। इसी समय महाराज ने आँबेर-नरेश की तरफ़ से आए हुए खंगारोत श्यामसिंह के बड़े पुत्र को नराणा गांव जागीर मे दिया था। (देखो सर्ग ३० श्लो० २२-२६)।

१. लेटर मुग़ल्स, भा० २, पृ० ११०-१११। उक्त इतिहास में यह भी लिखा है कि निज़ा-मुल्मुल्क के दक्षिण से दिल्ली के निकट पहुँचने की सूचना मिलने से ही महाराज अजमेर से जोधपुर लौट गए थे।

२. लेटर मुग़ल्स, भा० २, पृ० १११। उक्त इतिहास में यह भी लिखा है कि अजितसिंहजी ने बादशाह को यह भी सूचित किया था कि यदि मुज़फ़्फ़रअली यहाँ आ जाता, तो मैं उसे अजमेर भी सौंप देता। परन्तु वह तो यहाँ तक पहुँचा ही नहीं। इसके अलावा नारनौल पर के हमले का कारण केवल मेवातियों के साथ का व्यक्तिगत मनोमालिन्य ही था। शत्रु लोग इससे बादशाह से विरोध करने का तात्पर्य बतलाकर अन्याय करते हैं।

इस पर बादशाह ने भी सहज ही झगड़ा मिटता देख उत्तर में महाराज के नाम एक फ़रमान लिख भेजा । उसमें इनके पहले के किए कार्यों की प्रशंसा के बाद दोनों सूबों के ले लेने के विषय में इधर-उधर के बहाने बनाए गए थे । अन्त में यह भी लिखा था कि अजमेर का सूबा तो तुम्हारे ही अधीन रक्खा जाता है, कुछ दिनों में अहमदाबाद का सूबा भी तुम्हें लौटा दिया जायगा । इस फ़रमान के साथ ही बादशाह की तरफ़ से महाराज के लिये ख़ासा ख़िलअत, जड़ाऊ सरपेच, एक हाथी और एक घोड़ा उपहार में भेजा गया[1]।

वि० सं० १७७६ के मँगसिर (ई० सन् १७२२ के दिसम्बर) में[2] बादशाह ने नाहरख़ाँ को अजमेर की दीवानी और सांभर की फ़ौजदारी तथा उसके भाई रुहल्लाख़ाँ को गढ़ बीटली की क़िलेदारी दी । इसपर वे दोनों महाराज के वकील खेमसी भंडारी के साथ दिल्ली से अजमेर चले आए[3]। इस घटना को अभी तक एक महीना भी न होने पाया था कि एक रोज नाहरख़ाँ ने महाराज के सामने कुछ अनुचित शब्द कह दिए । इससे क्रुद्ध होकर इन्होंने उसे और उसके भाई को मरवा डाला, औ उसका शिविर लूट लिया । उसके साथ के यवनों में से कुछ तो हमले में मारे गए और कुछ बचकर निकल भगे ।

१. लेटर मुग़ल्स, भा० २, पृ० १११-११२ । ग्रांटडफ़ की 'हिस्ट्री ऑफ़ मरहटाज़' में लिखा है कि इसी समय बादशाह ने ख़ाँ दौराँ के कहने से आगरे के सूबे का प्रबन्ध भी महाराज को सौंप दिया था । (देखो भा० १, पृ० ३५१)।

२. वि० सं० १७७६ की मँगसिर बदी १ के महाराज के, दयालदास के नाम, सांभर से लिखे, पत्र से प्रकट होता है कि गेसूख़ाँ ने हिंडौन से जयपुर-नरेश जयसिंहजी का थाना उठाकर वहाँ पर अधिकार कर लिया था । इस पर महाराज ने अपनी सेना को आँबेरवालों की फ़ौज के साथ भेजकर कार्त्तिक बदी ५ को वहाँ पर फिर जयसिंहजी का अधिकार करवा दिया । गेसूख़ाँ मय फ़ौज के मारा गया ।

३. लेटर मुग़ल्स, भा० २, पृ० ११२ । नाहरख़ाँ और रघुनाथ भंडारी ये दोनों ही महाराज का पत्र लेकर संधि के लिये पहले बादशाह के पास गए थे ।

४. अजितोदय, सर्ग ३०, श्लो० ३१-३३ ।

५. लेटर मुग़ल्स, में नाहरख़ाँ के मुख से अनुचित शब्दों के निकलने का उल्लेख नहीं है । (देखो भा० २, पृ० ११२) वि० सं० १७८० की पौष वदि ६ के, मेड़ते से लिखे, महाराज के दयालदास के नाम के पत्र में लिखा है कि नाहरख़ाँ ७-८ दिन में मारवाड़ में पहुँचेगा । परंतु इस पत्र के पिछले दो अंकों में कुछ गड़बड़ मालूम होती है ।

इसकी सूचना पाते ही बादशाह ने शरफुद्दौला इरादतमंदख़ाँ को ७,००० ज़ात और ६,००० सवारों का मनसब तथा २,००,००० रुपये नक़द देकर महाराज पर चढ़ाई करने की आज्ञा दी। साथ ही ५०,००० शाही सवारों और अनेक अमीरों को भी उसके साथ कर दिया। इनके अलावा उसने आँबेर-नरेश जयसिंहजी, मुहम्मदख़ाँ बंगश और राजा गिरधर बहादुर आदि अमीरों को भी उसके साथ जाने को लिख दिया। इसके बाद ही वि० सं० १७८० की ज्येष्ठ सुदी १३ (ई० सन् १७२३ की ५ जून) को नागोर का परगना राव इन्द्रसिंह को दे दिया गया।[1] परन्तु उस समय उसके शाही सेना के साथ दक्षिण में होने के कारण समयानुसार नज़र आदि का कार्य उसके पौत्र मानसिंह ने पूरा किया।[2]

इसी समय हैदरकुलीख़ाँ भी अहमदाबाद से लौटकर रिवाड़ी आ पहुँचा। इसकी सूचना पाते ही बादशाह ने उसे अजमेर की सूबेदारी और साँभर की फ़ौजदारी देकर उधर जाने की आज्ञा दी। अतः वह भी वहीं से लौटकर नारनौल में इरादतख़ाँ के साथ हो लिया।[3]

इस प्रकार शाही दल को आता देख महाराज ने गढ़ बीटली (के क़िले) की रक्षा का भार तो ऊदावत वीर अमरसिंह को सौंपा और स्वयं साँभर होते हुए जोधपुर चले आए।[4]

१. कुछ दिन बाद जयपुर-नरेश जयसिंहजी ने आकर शाही सेना की सहायता से नागोर पर इंद्रसिंह का अधिकार करवा दिया। इस पर राज्य की तरफ़ से महाराजकुमार आनन्दसिंह उसके मुक़ाबले को भेजे गए। परंतु इन्होंने डीडवाना पहुँच स्वयं ही स्वतंत्रता का झण्डा खड़ाकर दिया। अन्त में बहुत कुछ समझाने-बुझाने पर यह तो शांत हो गए, पर इस गड़बड़ के कारण नागोर इंद्रसिंह के अधिकार मे ही रह गया।

२. लेटर मुग़ल्स, भा० २, पृ० ११३ और अजितोदय, सर्ग ३०, श्लो० ३३-४० और ४२-४४।

३. लेटर मुग़ल्स, भा० २, पृ० ११३ और अजितोदय, सर्ग ३०, श्लो० ४१।

४. लेटर मुग़ल्स, भा० २, पृ० ११३ और पृ० ११४ का फ़ुटनोट *।

'अजितोदय' में महाराज का शाही सेना से युद्ध करने के लिये त्रिवेणी से आगे पहुँचना, जयसिंहजी का बीच में पड़, इन्हें युद्ध से रोकना और इनका वापस अजमेर लौट आना लिखा है। (देखो सर्ग ३०, श्लो० ४६-५२) पर यह ठीक प्रतीत नहीं होता।

वि० सं० १७८० के आषाढ़[1] (ई० स० १७२३ के जून) में शाही सेना के अजमेर पहुँचने पर ऊदावत वीर अमरसिंह ने क़िले का आश्रय लेकर उसका सामना किया। कुछ दिनों तक तो बराबर युद्ध होता रहा, परन्तु इसके बाद आँबेर-नरेश जयसिंहजी ने बीच में पड़ उक्त क़िला शाही सेना को दिलवा दिया[2], और बादशाह को संधि का विश्वास कराने के लिये महाराजकुमार अभयसिंहजी को दिल्ली भिजवा दिया[3]। बादशाह ने भी महाराजकुमार के वहाँ (दिल्ली) पहुँचने पर उनकी बड़ी ख़ातिर की[4]। इसके बाद महाराज स्वयं, जो इन दिनों मेड़ते के मुक़ाम पर थे, जोधपुर लौट आए[5]।

१. 'राजरूपक' में सावन में फ़ौज का आना और ४ मास तक युद्ध होना लिखा है। (देखो पृ० २३८)।

वि० सं० १७७९ (चैत्रादि १७८०) की वैशाख सुदी १५ के बूँदी के, रावराजा बुधसिंहजी के लिखे, महाराज के नाम के, पत्र से प्रकट होता है कि उस समय उन्हों ने भी कुछ सेना महाराज की सहायता के लिये भेजने का प्रबंध किया था।

२. अजितोदय, सर्ग ३०, श्लो० ५३-६५। परन्तु 'राजरूपक' में जयसिंहजी के बीच में पड़ने का उल्लेख नहीं है। (देखो पृ० २३९)।

कर्नल टॉड के राजस्थान के इतिहास से भी इसकी पुष्टि होती है। उसमें लिखा है कि ४ महीने के युद्ध के बाद अजमेर शाही अमीरों के हवाले किया गया। परंतु उसमें क़िले का नाम तारागढ़ लिखा है। (देखो भा० २, पृ० १०२८)।

'लेटर मुग़ल्स' में मीराते वारिदात' के आधार पर लिखा है कि यद्यपि इस क़िले में केवल ४०० योद्धा थे, तथापि आपस की बातचीत के बाद ही यह क़िला शाही लश्कर को सौंपा गया था. और क़िलेवाले अपने-अपने शस्त्र लिए निशान उड़ाते और नक्क़ारा बजाते हुए क़िले से बाहर निकले थे। (देखो भा० २ पृ० ११४ का फ़ुटनोट*)

ख्यातों में लिखा है कि इस अवसर पर महाराजा अजितसिंहजी को १ अजमेर, २ टोडा, ३ मिणाय, ४ केकड़ी, ५ परब्रतसर, ६ मारोठ, ७ हरसोर, ८ भैंसेर, ९ तोसीणा, १० वाहाल, ११ बँवाल, १२ साँभर, १३ नागोर और १४ डीडवाने के परगनों का अधिकार छोड़ देना पड़ा था।

३. 'राजरूपक' में मँगसिर सुदी ७ को इनका दिल्ली को रवाना होना लिखा है।) देखो पृ० २४५)।

४, अजितोदय, सर्ग ३०, श्लो० ६६-८५। उसमें यह भी लिखा है कि जिस समय यवन-सेना रीयां में थी, उस समय महाराज ने जयसिंहजी के आग्रह से संधिकर महाराजकुमार को बादशाह के पास जाने की आज्ञा दी थी।

५. अजितोदय, सर्ग ३१, श्लो० १।

यद्यपि बादशाह ने महाराज से अजमेर ले लिया था, तथापि उसे हर समय इनका भय बना रहता था और वह इनको मारकर निश्चिंत होने का मौक़ा ढूँढ़ता था। इसीलिये उसने महाराजकुमार अभयसिंहजी से घनिष्ठता बढ़ानी प्रारंभ की, और राजा जयसिंहजी के द्वारा भंडारी रघुनाथ को अपनी तरफ़ मिला लिया। इसके बाद इन्हीं दोनों के द्वारा वह अभयसिंहजी को उनके पिता के विरुद्ध भड़काने का षड्यंत्र रचने लगा। परन्तु इस पर भी जब महाराजकुमार ने उसके भय और प्रलोभनों पर ध्यान नहीं दिया, तब एक रोज़ उसने राजा जयसिंहजी और भंडारी रघुनाथ के द्वारा एक जाली पत्र लिखवाकर किसी तरह उस पर उन (महाराजकुमार) के दस्तख़त करवा लिए। इसके बाद वही पत्र गुप्त रूप से अभयसिंहजी के छोटे भ्राता बख़तसिंहजी के पास भेज दिया गया। इसमें राज्य की रक्षा के लिये वृद्ध महाराज को मार डालने का आग्रह किया गया था। जैसे ही यह पत्र उनको मिला, वैसे ही एकबार तो वह चकित और किंकर्तव्य-विमूढ से हो गए। परंतु अन्त में उन्होंने देश और भ्राता पर आनेवाले भावी संकट का विचार कर भवितव्यता के आगे सिर झुकाना ही स्थिर किया। इसी के अनुसार वि० सं० १७८१ की आषाढ सुदी १३ (ई० सन् १७२४ की २३ जून) को, रात्रि के पिछले पहर, निद्रित अवस्था में ही, महाराजा अजित इस लोक से विदा हो गए।

महाराज के प्रताप से मुसलमान लोग जितना भय खाते थे, हिन्दू उतना ही निर्भय रहते थे। इन्होंने बालकपन से ही संसार के अनेक परिवर्तन देखे थे। एक समय वह था कि जब यह अपनी माता के गर्भ में ही थे कि इनके पिता का स्वर्गवास हो गया। इसके बाद इनके जन्म लेते ही औरङ्गज़ेब जैसा प्रबल बादशाह इनका शत्रु बन बैठा, और उसकी शत्रुता के कारण इनकी वीर-माता को भी प्राणों

---

१. मआसिरुल उमरा, भा० ३ पृ० ७५८। (इसी पृष्ठ की टिप्पणी में 'तारीख़े मुज़फ्फ़री' का हवाला देकर लिखा है कि कुछ लोगों का कहना है कि महाराजा अजितसिंह बादशाह की कुछ भी परवा नहीं करते थे। इसीसे बादशाह ने और उसके वज़ीर ऐतमादुद्दौला क़मरुद्दीनख़ाँ ने उसके बेटे बख़तसिंह को, बाप का उत्तराधिकारी बना देने का प्रलोभन देकर, उसको मारने के लिये तैयार कर लिया। इंडियन ऐंटिक्वेरी, भा० ५८, पृ० ४७-५१।

महाराज के साथ कुल मिलाकर ६२ या ६६ प्राणियों ने अपनी ख़ुशी से चिता में प्रवेशकर हृदय-ज्वाला को शांत किया था। इनमें ६ रानियाँ थीं। (देखो अजितोदय, सर्ग ३१, श्लो० ३२-३३ और राजरूपक, पृ० २४७-२५४)।

से हाथ धोना पड़ा। इसके बाद ८ वर्ष की आयु तक यह अज्ञातवास में रहे, और इनके पैतृक-राज्य पर यवनों का अधिकार रहा। परंतु इनके स्वामि-भक्त सरदार उस समय भी प्राणों का मोह छोड़ विना नायक के ही शत्रुओं से लोहा लेते रहे। इसके बाद २० वर्षों तक इनके सरदारों और इन्होंने समय-समय पर यवनों के दांत खट्टे कर अन्त में अपने गए हुए राज्य को पुनः प्राप्त कर लिया। परंतु आश्चर्य तो उस समय होता है, जब एक मातृ-पितृ-हीन नवजात बालक कालांतर में ऐसा प्रतापी निकलता है कि जिसकी सहायता से फ़र्रुख़सियर सा बादशाह दिल्ली के शाही तख़्त से हटाया जाता है और उसके रिक्त स्थान पर क्रमशः तीन नए बादशाह बिठाए जाते हैं।

यहाँ पर यह प्रकट करना कुछ अनुचित न होगा कि उस संकट के समय मारवाड़ के अधिकतर सरदारों ने अपने स्वामि-धर्म का स्मरण कर बड़ी निर्भीकता से महाराज का साथ दिया था। यह उन्हीं की वीरता का फल था कि औरङ्गज़ेब जैसा प्रबल बादशाह भी मारवाड़ राज्य को नहीं पचा सका, और उसके उत्तराधिकारी को उसे उगलना पड़ा।

ख्यातों के अनुसार महाराज के १२ पुत्र थे १ अभयसिंहजी, २ बख़तसिंहजी, ३ अखैसिंह, ४ बुधसिंह, ५ प्रतापसिंह[1], ६ रत्नसिंह, ७ सोनग (सोभागसिंह) ८ रूप सिंह, ९ सुलतानसिंह, १० आनन्दसिंह[2], ११ किशोरसिंह[3], १२ रायसिंह[4]। इनमें से बड़े

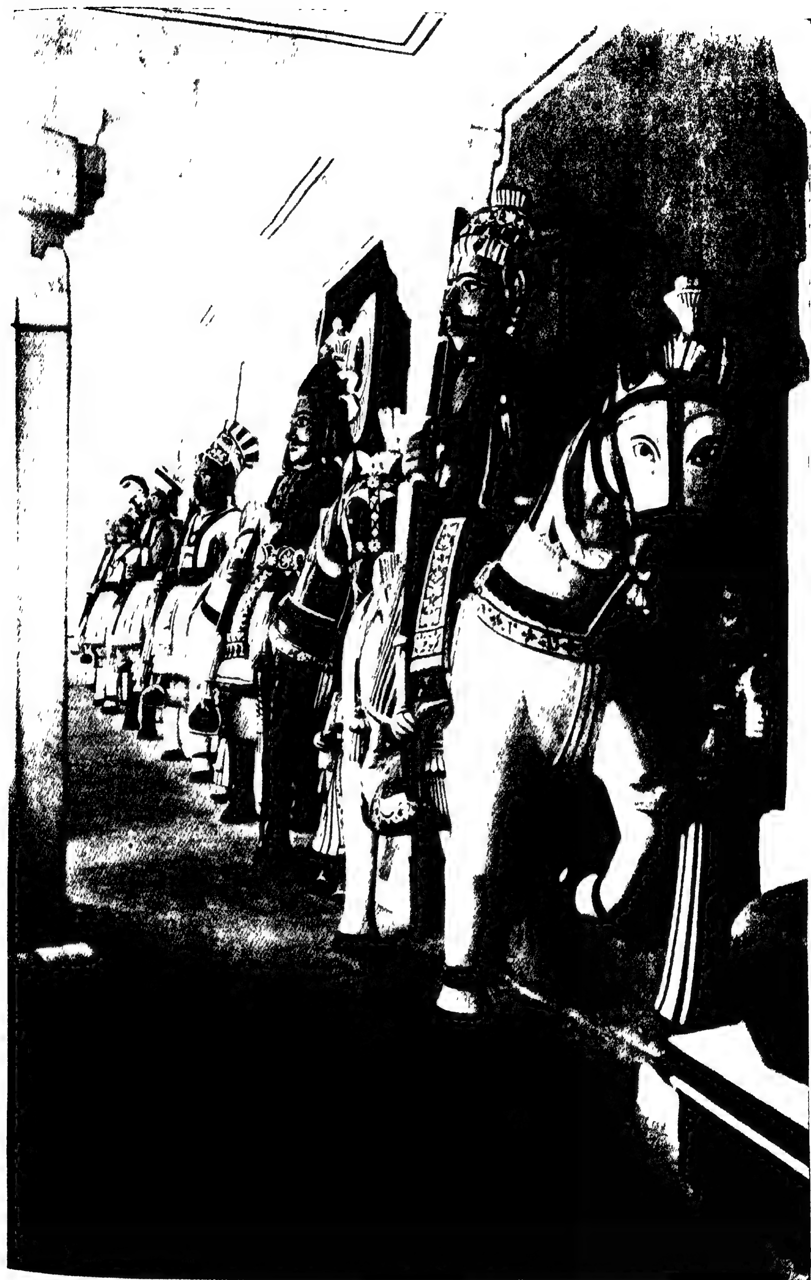
१. रफीउद्दरज़ात ने १५ जमादिउल आख़िर हि० स० ११३१ को (अपने राज्य के पहले वर्ष मे) महाराजा अजितसिंहजी के पुत्र प्रतापसिंह को १,००० ज़ात और ५०० सवारों के मनसब की जागीर दी थी। यह बात अमीरउल उमरा के परवाने से ज़ाहिर होती है। उसी में महाराज के पुत्र चतुरसिंह की, जिसको पहले से यह मनसब था, मृत्यु का भी उल्लेख है।

२. इनका जन्म वि० सं० १७६५ की आषाढ़ सुदी ५ (ई० सन् १७०८ की ११ जून) को हुआ था (देखो अजितोदय, सर्ग १७, श्लो० २०-२१)।

३. इनका जन्म वि० सं० १७६६ की आश्विन बदी ११ (ई० सन् १७०९ की १८ सितंबर) को हुआ था।

४. इनका जन्म वि० सं० १७६७ की श्रावण बदी ३० (ई० सन् १७१० की १५ जुलाई) को हुआ था। (देखो अजितोदय, सर्ग १९, श्लो० ६३-६४)।

वि० सं० १७६० की आषाढ़ बदी १ के अजितसिंहजी के ताम्रपत्र में इनके बड़े महाराजकुमार का नाम उद्योतसिंहजी लिखा है। उनका जन्म वि० सं० १७५९ की आश्विन वदि ३० को हुआ था। परंतु अनुमान होता है कि उनकी मृत्यु बाल्यावस्था में ही हो जाने से उस समय के ग्रन्थों में अभयसिंहजी ही ज्येष्ठ राजकुमार मान लिए गए थे।



वीरों का दालान, मंडोर

यह महाराजा अजितसिंहजी ने वि० सं० १७७१ (ई० स० १७१४) में बनवाया था

पुत्र अभयसिंहजी जोधपुर-राज्य के स्वामी हुए, द्वितीय पुत्र बख़तसिंहजी को नागोर का प्रान्त मिला और तृतीय पुत्र आनन्दसिंहजी[1] ने फिर से ईडर का राज्य प्राप्त किया।

महाराज ने कई गाँवें[2] दान दिए थे और कई नवीन स्थान[3]

१. ख्यातों से ज्ञात होता है कि स्वर्गवासी महाराजा अजितसिंहजी की दाहक्रिया हो जाने पर उनके पुत्र आनन्दसिंहजी अपने छोटे भ्राता किशोरसिंह और रायसिंह को लेकर रायपुर की तरफ़ चले गए थे। परंतु 'अजितोदय' में इनका घाणेराव की तरफ़ जाना लिखा है। उसमें यह भी लिखा है कि जोधा मोहकमसिंह इनका अभिभावक होकर इनके साथ गया था। (देखो सर्ग ३२, श्लो० २-३) इसके बाद वि० सं० १७८५ (ई० सन् १७२८) में आनन्दसिंहजी और रायसिंहजी ने जाकर ईडर पर अधिकार कर लिया। संभवतः उस समय उक्त प्रान्त इनके बड़े भ्राता अभयसिंहजी के मनसब की जागीर में रहा होगा।

किशोरसिंह अपने ननिहाल जयसलमेर चला गया था। 'अजितोदय' मे लिखा है कि आंबेर नरेश जयसिंहजी ने इसे दिल्ली बुलवाकर बादशाह से टोड़े का अधिकार दिलवा दिया था (देखो सर्ग ३२, श्लो० ५)।

२. १ बासणी-दधवाडियां (जैतारण परगने का), २ बेराई (शेरगढ़ परगने का), ३ घोडारण ४ सूरपालिया (नागोर परगने के), ५ गोदेलावास (सोजत परगने का), ६ गूंदीसर ७ राजपुरा ८ ईंटावा-सूरपुरा (मेड़ता परगने के), ९ मंडली, १० डोली नेरवा (जोधपुर परगने के), ११ कोडिया पटी जाखेड़ों की १२ गोरेडी (डीडवाने परगने के), १३ ढाढरवा १४ नोखडा १५ अंटिया समदड़ाऊ (फलोदी परगने के), १६ झुडली (बीलाड़ा परगने का) चारणों को; १७ बाघावसिया (बीलाड़ा परगने का), १८ साजी (पाली परगने का), १९ पुरियों का खेड़ा (जसवंतपुरा परगने का), २० बेदावड़ी खुर्द (मेड़ता परगने का), २१ हाडेचा (सांचोर परगने का) स्वामियों, नाथों, भारतियों, पुरियों और गुसाँइयों को; २२ पुरोहितों का बास (सिवाना परगने का), २३ भैंसेर-कोटवाली २४ तिंवरी २५ मांडियाई-खुर्द २६ भैंसेर-खुर्द २७ खेडापा २८ ढंढोरा २९ मोडी-बड़ी ३० बासणी मनणा (जोधपुर परगने के), ३१ खीचंद (फलोदी परगने का), ३२ टीबणिया (पचपदरा परगने का), ३३ मादड़ी (पाली परगने का), ३४ पंडित का वास (शेरगढ़ परगने का) पुरोहितों को; ३५ पालड़ी (नागोर परगने का), ३६ गैलावस (जोधपुर परगने का) ब्राह्मणों को; ३७ मूंदियाऊ (नागोर परगने का) (द्वारका के) श्री रणछोड़रायजी के मन्दिर को; ३८ मामावास (सोजत परगने का) महादेव के मंदिर को; ३९ ऊदलियावास (बीलाड़ा परगने का) गंगा-गुरु को; ४० अंबाली (नागोर परगने का) समनशाह की दरगाह को; ४१ दागडा (मेड़ता परगने का) भाटों को; ४२ टीबडी (जैतारण परगने का) रूपनारायणजी ठाकुरजी के मन्दिर को और ४३ महेशपुरा (जालोर परगने का) रावलों को।

३. महाराज अजितसिंहजी के बनवाए हुए स्थानः–

जोधपुर के क़िले में–फ़तैपौल और गोपालपौल के बीच का कोट, नई फ़तैपौल (वि० सं० १७७४ में), दौलतख़ाना, फ़तेहमहल, भोजनसाल, बीच का महल, ख्वाबगाह के महल, रंगसाल और

'अभयोदय'[1] से ज्ञात होता है कि इसी समय बादशाह ने इन्हें 'राजराजेश्वर' की उपाधि भी दी थी। इसके बाद, वि० सं० १७८१ के भादों (ई० सन् १७२४ के अगस्त) में, इन्होंने मथुरा जाकर आँबेर-नरेश जयसिंहजी की कन्या से विवाह किया[2], और फिर यह वृंदावन-यात्रा कर दिल्ली लौट आए[3]।

इसके बाद वि० सं० १७८२ (ई० सन् १७२५) में यह सरबुलंदख़ाँ (मुबारिज़ुलमुल्क) के साथ हामिदख़ाँ और दक्षिणियों के उपद्रवों को दबाने के लिये गुजरात की तरफ़ गए[4]।

वहां से लौटने पर जिस समय महाराज दिल्ली में थे, उस समय इन्हें सूचना मिली कि (इनके छोटे भाई) आनंदसिंहजी और रायसिंहजी, जैतावत, कूँपावत,

---

१. देखो सर्ग ६, श्लो० ११-१२।

२. ख्यातों मे लिखा है कि जोधपुर के सरदारों का विश्वास था कि राजा जयसिंहजी की सलाह से ही महाराज अजितसिंहजी मारे गए थे। इसलिये उन्होंने, इस विवाह को टालने के लिये महाराज से पहले जोधपुर चलने का आग्रह किया। परन्तु जब महाराज ने इस बात को नहीं माना, तब बहुत-से सरदार नाराज़ होकर अपने-अपने घरों को चल दिए और बहुत से महाराज के छोटे भ्राता आनन्दसिंहजी और रायसिंहजी के दल मे जा मिले। महाराज के, वि० सं० १७८१ की भादों सुदी १० के, दिल्ली से लिखे, दुर्गादास के पुत्र अभयकरण के नाम के पत्र से भी सरदारों के अपने-अपने घरों को चले जाने की पुष्टि होती है।

सरदार लोग भंडारी रघुनाथ को भी महाराजा अजितसिंहजी के मरवाने में सम्मिलित समझते थे। परन्तु फिर भी उस समय तक अभयसिंहजी का सारा कार-बार भंडारियों के ही हाथ में होने से वे लोग नाराज़ थे और महाराज को उनके क़ैद करने के लिये बार-बार दबाते थे। अंत में लाचार होकर महाराज को उन्हें क़ैद करने का हुक्म देना पड़ा। इस अवसर पर कई भंडारी मारे गए। इसके बाद महाराज ने मथुरा के मुक़ाम पर स्वयं भंडारी रघुनाथ को भी क़ैद कर लिया और उसका काम पंचोली रामकिशन को सौंपा। परन्तु इसके बाद वि० सं० १७८२ के ज्येष्ठ में जब महाराज ने उस (रघुनाथ) को और अन्य भंडारियों को क़ैद से निकाला, तब फिर सरदार नाराज़ होकर जालोर की तरफ़ चले गए। इस पर महाराज ने, उनको प्रसन्न करने के लिये, भंडारी रघुनाथ और खींवसी को दुबारा क़ैद कर दिया।

३ अभयोदय, सर्ग ६, श्लो० १७-४२।

४. बॉंबेगज़ेटियर, भा० १, खंड १, पृ० ३०६। परन्तु 'राजरूपक' में इसका उल्लेख नहीं है। वि० सं० १७८२ की कार्त्तिक सुदी ४ के, जयपुर-नरेश जयसिंहजी के, महाराज के नाम लिखे, पत्र से भी इसकी पुष्टि होती है।



२७. महाराजा अभयसिंहजी

वि० सं० १७८१-१८०६ (ई० स० १७२४-१७४६)

ऊदावत आदि मारवाड़ के कुछ सरदारों को साथ लेकर देश में उपद्रव मचा रहे हैं[1]। उन्होंने गोढवाड़ में लूट-मार करने के बाद सोजत और जैतारण पर अधिकार कर लिया है और साथ ही मेड़ते पहुँच उसे भी लूट लिया है। जब यह सूचना महाराज को दिल्ली में मिली, तब यह वहां से लौट आए[3] और मेड़ते पहुँच इन्होंने वहां की रक्षा का भार मेड़तिया (माधवसिंह के वंशज) शेरसिंह को सौंप दिया। इसके बाद चिर-प्रचलित प्रथा के अनुसार जोधपुर में इनका राजतिलकोत्सव मनाया गया। इन कामों से निपटकर चैत्र में इन्होंने नागोर पर चढ़ाई की। उस समय इनके छोटे भ्राता बख़तसिंहजी भी इनके साथ थे। जैसे ही इंद्रसिंह को इनके मेड़ते और रैण होते हुए खजवाने पहुँचने की सूचना मिली, वैसे ही उसने अपने पुत्र को सेना देकर इनका सामना करने के लिये मूँडवे की तरफ़ रवाना किया। परन्तु वहां पहुँचने पर जब उसे महाराज की विशाल-सेना का हाल मालूम हुआ, तब वह विना लड़े ही भागकर नागोर लौट गया। इसके बाद महाराज ने आगे बढ़ नागोर को घेर लिया। यद्यपि कुछ दिन तक इंद्रसिंह ने भी इनका सामना बड़ी वीरता से किया, तथापि अन्त में नगर पर महाराज का अधिकार हो जाने से वह क़िला ख़ाली कर इनकी शरण में चला आया। महाराज ने उसके निर्वाह के लिये कुछ गांव निकालकर नागोर का अधिकार अपने छोटे भ्राता बख़तसिंहजी को देना निश्चित किया[4]। इसीके साथ उन्हें 'राजाधिराज'

---

१. महाराज के, वि० सं० १७८१ (चैत्रादि १७८२) की आषाढ़ सुदी ११ के, दिल्ली से, दुर्गादास के पुत्र अभयकरण के नाम लिखे पत्र से भी इस बात की पुष्टि होती है।

२. वि० सं० १७८१ की मँगसिर बदी ७ के महाराज के दिल्ली से लिखे अभयकरण के नाम के पत्र से इसकी पुष्टि होती है।

३. वि० सं० १७८२ की फागुन बदी ६ के एक पट्टे से उस समय महाराज का निवास जालोर में होना प्रकट होता है। इस पट्टे में इनके महाराजकुमार का नाम ज़ोरावरसिंह लिखा है।

४. वि० सं० १७८६ की सावन बदी ८ के स्वयं राजाधिराज बख़तसिंहजी के, नागोर से लिखे, पंचोली बालकृष्ण के नाम के पत्र से प्रकट होता है कि नागोर का वास्तविक अधिकार उनको वि० सं० १७८६ की सावन बदी १ से मिला था।

परन्तु वि० सं० १७८४ (चैत्रादि संवत् १७८५) की आषाढ़ सुदी ६ के आनन्दसिंहजी के पत्र से इस बात का पहले से ही तय हो जाना सिद्ध होता है। उस पत्र में उन्होंने अपने हक़ पर भी उदारता से विचार करने की प्रार्थना की है।

की उपाधि देना भी तय हुआ। यह देख इंद्रसिंह वहां से दिल्ली की तरफ़ चला गया।

जिस समय महाराज नागोर-विजय में लगे थे, उस समय इनके छोटे भ्राता आनन्दसिंहजी ने एक बार फिर मेड़ते पर चढ़ाई की। परन्तु वहाँ के रक्षक मेड़तिये शेरसिंह के आगे उन्हें सफलता नहीं हुई, और वे नगर के बाहर ही लूट-मारकर वापस लौट गए। इसकी सूचना पाते ही महाराज भी अपने भ्राता राजाधिराज बखतसिंहजी को साथ लेकर मेड़ते आ पहुँचे।

ख्यातों से ज्ञात होता है कि आँबेर-नरेश जयसिंहजी के और उनके बहनोई बूँदी-नरेश रावराजा बुधसिंहजी के आपस में मनोमालिन्य हो गया था। इसी से जयसिंहजी ने उनसे बूँदी का अधिकार छीन कर हाडा दलेलसिंह को दे दिया। इस पर बुधसिंहजी को कुछ दिन जोधपुर में आकर रहना पड़ा।

इसी प्रकार जयसलमेर रावल अखैराजजी को भी कुछ दिन के लिये मारवाड़ में आकर अपनी रक्षा करनी पड़ी थी।

ख्यातों में यह भी लिखा है कि इसी वर्ष रायसिंहजी और आनन्दसिंहजी के कहने से कंतजी कदम और पीलाजी गायकवाड़ ने आकर जालोर में उपद्रव शुरू किया। परन्तु भंडारी खींवसी ने जाकर उनसे संधि करली। इससे वे वहाँ से वापस लौट गएँ।

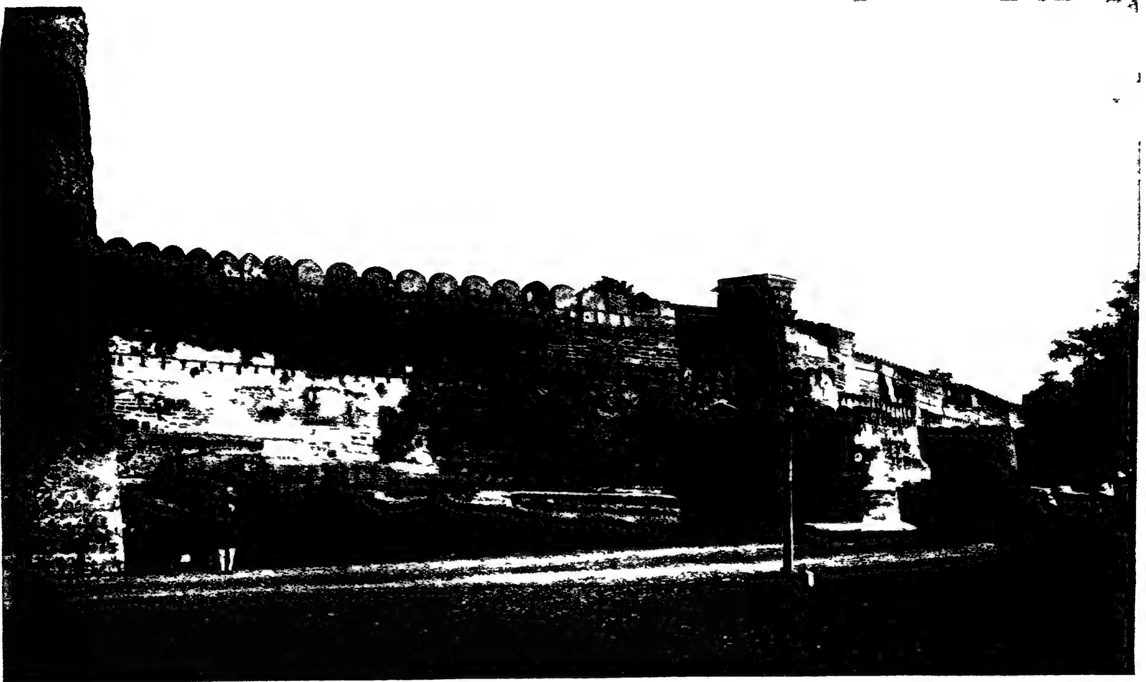
---

१. अभयोदय, सर्ग ७, श्लो० ४-३३। परन्तु उक्त काव्य में और 'राजरूपक' में इन्द्रसिंह को निर्वाह के लिये गाँव देने का उल्लेख नहीं है (देखो राजरूपक, पृ० २७६)।

२. अभयोदय, सर्ग ७, श्लो० ३६-४०। उक्त काव्य में महाराज के साथ बखतसिंहजी के मेड़ते आने का उल्लेख नहीं है। 'राजरूपक' में महाराजा अभयसिंहजी का मेड़ते लौटकर बखतसिंहजी को नागोर देना लिखा है। साथ ही उसमें यह भी लिखा है कि इसके बाद महाराज जैतारण, जालोर और सिवाने होकर जोधपुर लौटे थे (देखो पृ० २७७-२७८)। कहीं-कहीं वि० सं० १७८३ के कार्त्तिक (ई० सन् १७२६ के अक्टोबर) में बखतसिंहजी को नागोर का अधिकार देने का तय होना लिखा है।

वि० सं० १७८२ की आश्विन सुदी ५ के, महाराज के लिखे, पंचोली बालकृष्ण के नाम के, पत्र से आश्विन सुदी ४ को महाराज का मेड़ते से जैतारण की तरफ़ जाना प्रकट होता है।

३. ख्यातों में लिखा है कि वि० सं० १७८५ (ई० सन् १७२८) में बखतसिंहजी ने नरावत राठोड़ों से पौकरन छीन लिया और उसे, भीनमाल की एवज़ में, चाँपावत महासिंह को दे दिया।



नागोर का क़िला

यह किला समतल भूमि पर बना है। इसके गिर्द की दुहेरी दीवार घिराव मे करीब १ मील लबी है। इनमें की बाहर की दीवार की ऊँचाई २५ फुट और भीतर की ५० फुट है। ये दीवारें नीचे ३० फुट और ऊपर १२ फुट के करीब मोटी है।

वि० सं० १७८४ के श्रावण (ई० सन् १७२७ के जून-जुलाई) के क़रीब (बादशाह मुहम्मदशाह के बुलाने पर) महाराज लौटकर दिल्ली चले गए और इसी वर्ष के कार्तिक में इन्होंने गढमुक्तेश्वर की यात्रा की[२]।

वि० सं० १७८५ (ई० सन् १७२८) में आनन्दसिंहजी और रायसिंहजी ने ईडर पर अधिकार कर लिया[३]। यद्यपि उस समय उक्त प्रदेश महाराज के मनसब में था[४], तथापि इन्होंने मारवाड़ की तरफ़ का उपद्रव शांत होता देख इसमें कुछ भी आपत्ति नहीं की[५]।

१. अभयोदय, सर्ग ७, श्लो० ४१-४२।

'राजरूपक' में लिखा है कि मार्ग में परबतसर पहुँचने पर महाराज को चेचक निकल आई थी। (देखो पृ० २७८)।

२. अभयोदय, सर्ग ८, श्लो० २।

३. रासमाला, भा० २, पृ० १२५ की टिप्पणी १।

४. वि० सं० १७८२ की भादों सुदी ५ के, महाराज के नाम लिखे, पंचोली दौलतसिंह के, पत्र से इसी समय बादशाह की तरफ़ से महाराज को ईडर और थिराद का मिलना प्रकट होता है।

५. इसी बीच महाराना संग्रामसिंहजी (द्वितीय) ने ईडर-प्रांत को ठेके के तौर पर लेने के लिये, जयपुर-नरेश सवाई राजा जयसिंहजी के द्वारा, महाराज से बात तय करना चाहा। महाराज ने भी रायसिंहजी से तंग आकर उनकी यह प्रार्थना स्वीकार करली। इससे वहाँ का बहुत-सा प्रांत मेवाड़ के राज्य में मिला लिया गया। वि० सं० १७८६ की श्रावण बदी ८ के, और वि० सं० १७८६ (चैत्रादि सं० १७८७) की ज्येष्ठ सुदी ७ के राजाधिराज बख़्तसिंहजी के पंचोली बालकृष्ण के नाम लिखे पत्रों से प्रकट होता है कि उस समय तक महाराज ने रायसिंहजी और आनन्दसिंहजी का ईडर पर का अधिकार स्वीकार नहीं किया था। इससे ज्ञात होता है कि यह अधिकार बाद में ही स्वीकार किया गया होगा। 'गुजरात राजस्थान' में लिखा है कि आनन्दसिंहजी ने वि० सं० १७८७ की फागुन सुदि ७ (ई० सन् १७३१ की ४ मार्च) को ईडर में प्रवेश किया था। नहीं कह सकते कि यह कहां तक ठीक है। वि० सं० १७६४ की माघ सुदी ७ के आनन्दसिंहजी और रायसिंहजी के लिखे पुष्करणे ब्राह्मण जग्गू (जगन्नाथ) के नाम के पत्र में लिखा है कि तूने ही हमको महाराज से कहकर ईडर का राज्य दिलवाया है। इसलिये तू अपने किसी वंशज को यहाँ भेज दे।

वि० सं० १७८७ के आषाढ़ (ई० सन् १७३० के जून) में गुजरात के सूबेदार सरबुलंदख़ाँ के कार्यों को देखकर बादशाह उससे नाराज़ हो गया[1]। इससे उसने (अजमेर के साथ ही[2]) गुजरात का सूबा महाराज अभयसिंहजी को दे दिया[3]। इसी अवसर पर इन्हें ख़िलअत आदि के अलावा १८ लाख रुपये नक़द और मय गोला-बारूद के ५० छोटी-बड़ी तोपें भी दी गईं[4]। इस पर यह अलवर होते हुए अजमेर पहुँचे और वहाँ पर अधिकार कर मेड़ते होते हुए जोधपुर चले आए[5]। कुछ दिनों में जब २० हज़ार सवारों का रिसाला तैयार हो गया, तब यह यहाँ से चलकर जालोर पहुँचे[6]। यहीं पर इनके छोटे भ्राता बख़तसिंहजी आकर इनके साथ हो गए। इसके

---

१. इतिहास से ज्ञात होता है कि सरबुलंद ने गुजरात में होनेवाले मरहटों के उपद्रव को दबाने में असमर्थ होकर उन्हें वहाँ की आमदनी का चौथा भाग देने का वादा कर लिया था। साथ ही वह स्वयं भी बादशाह की परवाह न कर गुजरात में बड़ी लूट-मार करने लगा था। इसी से बादशाह उससे नाराज़ हो गया।

२. श्रीयुत सारडा का 'अजमेर', पृ० १६७।

३. ग्रांट डफ़ की 'हिस्ट्री ऑफ़ मरहटाज़' में इस घटना का समय ई० सन् १७३१ लिखा है। (देखो भा० १, पृ० ३७६)। परन्तु 'मआसिरुल उमरा' में दिए हि० सन् ११४० के हिसाब से ई० सन् १७२७ (वि० सं० १७८४) आता है। उसमें इसी के अगले साल इनका गुजरात जाना भी लिखा है (देखो भा० ३, पृ० ७५६)।

'राजरूपक' में इस घटना का समय वि० सं० १७८६ लिखा है। उससे यह भी ज्ञात होता है कि इसी के बाद यह गुजरात की चढ़ाई का प्रबन्ध करने के लिये आषाढ़ में दिल्ली से जोधपुर को रवाना हो गए (देखो पृ० २८३ और २८८) और यहाँ पर सारा प्रबन्ध कर लेने के बाद, वि० सं० १७८७ की चैत्र सुदी में, इन्होंने गुजरात की तरफ़ प्रयाण किया (देखो पृ० ३८७)।

४. महाराज के, शाही दरबार मे रहनेवाले अपने वकील, भंडारी अमरसिंह के नाम लिखे, वि० सं० १७८७ की कार्त्तिक सुदी १२ के, पत्र में १५ लाख रुपये, ४० तोपें, २०० मन बारूद और १०० मन सीसे का दिया जाना लिखा है।

५. 'लेटर मुग़ल्स' में लिखा है कि महाराज ने दिल्ली से जोधपुर पहुँच मारवाड़ और नागोर से २० हज़ार कुशल राठोड़-सवार एकत्रित किए थे। इसके बाद यह मय अपने छोटे भाई बख़तसिंहजी के अहमदाबाद की तरफ़ रवाना हुए। इनके पालनपुर के पास पहुँचने पर वहाँ का फ़ौजदार करीमदादख़ाँ भी इनके साथ हो लिया (देखो भा० २, पृ० २०५)।

६. अभयोदय, सर्ग १०, श्लो० १-१६। 'लेटरमुग़ल्स' नामक इतिहास से ज्ञात होता है कि वि० सं० १७८७ के द्वितीय भादों (ई० सन् १७३० के सितम्बर) में महाराज का कैंप जालोर में था। (देखो भा० २, पृ० २०३) और 'राजरूपक' से वि० सं० १७८७ के श्रावण में भी महाराज का निवास जालोर में होना प्रकट होता है (देखो पृ० ३१०)

बाद महाराज अपनी इस वीर-वाहिनी को लेकर सिरोही की तरफ़ के कुछ जागीरदारों को दंड देते हुए पालनपुर जा पहुँचे। इस पर वहाँ के शासक ने सामने आकर इनकी अभ्यर्थना की। जैसे ही इसकी सूचना (मुबारिज़ुलमुल्क) सरबुलंद को मिली, वैसे ही उसने अहमदाबाद से आगे बढ़ मार्ग में ही इनके रोक लेने की तैयारी शुरू की[२]। अपने गुप्तचरों के द्वारा यह हाल मालूम होने पर इन्हों (महाराज) ने २०,००० रुपये की हुंडी और नायबी की आज्ञा लिखकर सरदार मुहम्मदख़ाँ के पास भेज दी, और साथ ही उसे यह भी कहला दिया कि संभव हो, तो वह चुपचाप अहमदाबाद पर अधिकार कर ले। इस पर वह गुजरातियों की सेना इकट्ठी कर मौक़ा ढूँढने लगा। परन्तु सरबुलंद के पक्षवाले नगर के दरवाज़ों को ईंटों से बंदकर पूरी सतर्कता से नगर की रक्षा करने लगे थे। इससे वह सफल न हो सका[३]।

इसके बाद जिस समय महाराज सिद्धपुर के निकट पहुँचे, उस समय आस-पास के कई मुसलमान अमीर भी सरबुलंद का पक्ष छोड़ कर इनके झंडे के नीचे चले आएं।

इसी वर्ष के आश्विन (सितंबर) में महाराज ने अपना डेरा साबरमती-तट पर के मोजिर गाँव में कर वहीं पर अपने मोर्चे बनवाने शुरू किए। यहाँ से सरबुलंद

ख्यातों में लिखा है कि जिस समय महाराज सलावास में ठहरे हुए थे, उस समय भादराजन का ठाकुर नाराज़ होकर अपनी जागीर को लौट गया। यह देख महाराज के छोटे भ्राता बख़तसिंहजी कुछ सैनिकों के साथ एकाएक वहाँ जा पहुँचे। इससे उसे लौट आकर महाराज की सेना मे सम्मिलित होना पड़ा।

१. रेवाड़े का ठाकुर बहुधा जालोर की तरफ़ आकर उपद्रव किया करता था, इसी से उसे दंड दिया गया था।

२. लेटर मुग़ल्स, भा० २, पृ० २०३।

३. लेटर मुग़ल्स, भा० २, पृ० २०५ और बॉंबे गज़ेटियर, भा० १, खंड १, पृ० ३१०-३११।

४. वि० सं० १७८७ की द्वितीय भादों सुदी ३ के महाराज के पत्र से उस समय महाराज का सिद्धपुर में होना प्रकट होता है।

५. लेटर मुग़ल्स, भा० २, पृ० २०५-२०६।

६. महाराज के अपने वकील अमरसिंह के नाम के वि० सं० १७८७ की कार्त्तिक सुदी १२ के पत्र में उस समय की गुजरात की दशा का वर्णन इस प्रकार दिया है:-

मरहटे सिर्फ़ चौथ ही नहीं लेते प्रत्युत बड़ौदा, डभोही और जँबूसर आदि ३० लाख की आमदनी के प्रांतों पर भी उन्हीं का अधिकार है। इनमें सूरत आदि २८ प्रांत पीलू के अधिकार में हैं। उसका जी चाहता है, तो वहाँ की कुछ आमदनी शाही सूबेदार को दे देता है और नहीं चाहता

का शिविर केवल एक कोस की दूरी पर था। इससे रात होते ही वह अपनी तोपों को महाराज की सेना की पंक्ति की सीध में लगवाकर उस पर गोले बरसाने लगा। इसके बाद प्रातःकाल होने पर उसने अपनी सेना को युद्ध के लिये तैयार होने की आज्ञा दी। परन्तु रात की घटना से महाराज को अपने अधिकृत-स्थान की अनुपयोगिता सिद्ध हो चुकी थी। इसीसे यह अपनी सेना में आए हुए गुजरातियों की सलाह से अपनी राठोड़-वाहिनी को लेकर दो-ढाई कोस पीछे के सुरक्षित स्थान (खानपुर) में चले आए। यह स्थान वास्तव में ही सैनिक दृष्टि से बड़ा उपयोगी था। इसी से यहाँ पर नवीन मोरचे बनवाने की आज्ञा दी गई। इसके साथ ही इन्होंने कुछ चुने हुए सवारों को साबरमती नदी के उस पार के बैहरामपुर और बड़े नायनपुर पर अधिकार करने के लिये भेज दिया; क्योंकि उक्त स्थान अहमदाबाद पर गोलाबारी करने के लिये बड़े उपयोगी थे। महाराज की सैन्य के इस स्थान-परिवर्तन की सूचना सरबुलंदख़ाँ (मुबारिज़ुलमुल्क) को सायंकाल के समय मिली थी। इसलिये उसने रात्रि में होनेवाले आक्रमण से बचने के लिये अपने सैनिकों को तत्काल समुचित स्थानों पर नियत कर दिया। इसके बाद प्रातःकाल होते ही उसने शाही बाग़ के सामने पहुँच अपने मोरचे लगवा दिए। इसके साथ ही उसने अपनी सेना का एक भाग, मय एक तोपख़ाने के, नगर की रक्षा के लिये भेज दिया। इन कामों से निपटकर उसने फिर एक बार महाराज की सेना पर गोलबारी शुरू की।

इसके बाद जैसे ही महाराज की सेना के मोरचे यथास्थान लग चुके, वैसे ही उसने शत्रु-सेना की तोपों का जवाब देने के साथ-ही-साथ अहमदाबाद नगर और वहाँ के क़िले पर भी गोले बरसाने शुरू किए। राठोड़-वाहिनी का मोरचा ऊँचे स्थान पर होने के कारण इनके गोलों की चोट कारगर होती थी। यह देख दूसरे दिन (वि० सं० १७८७ की कार्तिक बदी ५) (ई० स० १७३० की २० अक्टोबर) को सरबुलंद ने आगे बढ़ महाराज की सेना पर आक्रमण कर दिया। यद्यपि इस युद्ध में उसके मुसलमान सैनिकों ने बड़ी वीरता दिखलाई, और एक बार खानपुर में घुसकर उसके एक भाग पर अधिकार भी कर लिया, तथापि अन्त में महाराज के तोपख़ाने और

है, तो नहीं देता है। पावागढ़ चिमनाजी के क़ब्ज़े में है। चाँपानेर का क़िला कंठाजी के पास है। इसके अलावा ये लोग देश में चौथ, देशमुखी और पेशकशी के लेने के साथ-ही कुछ स्थानों में दरोबस्त (धर-पकड़) भी करते रहते हैं।

सवारों की मार से घबराकर सरबुलंद को अपनी सेना को लौट चलने की आज्ञा देनी पड़ी।

इसके बाद स्वयं महाराज ने अपने राठोड़-रिसाले के साथ आगे बढ़ शत्रु-सेना पर धावा किया। यद्यपि यवनों ने गाँव की आड़ लेकर तोपों और बन्दूकों की मार से इनके रोकने की जी-तोड़ चेष्टा की, तथापि समुद्र-तरंग की तरह आगे बढ़ती हुई राठोड़-सेना ने, सब विघ्न बाधाओं को दूरकर, शत्रुओं को मार भगाया, और उनके अधिकृत स्थान पर अपना झंडा खड़ा कर दिया। यह देख सरबुलंद भी अपनी सेना को उत्साहित करता हुआ पलट पड़ा, और बड़ी वीरता से महाराज की सेना का सामना करने लगा। अन्त में उसने एक बार राठोड़ों को पीछे ढकेलकर ही दम लिया। परंतु इस युद्ध में एक तो उसके बहुत-से बड़े-बड़े वीर सरदार काम आ गए, और दूसरे उसके बहुत-से सैनिक राठोड़ों के दूसरे आक्रमण की आशंका से चुपचाप मैदान छोड़ कर चल दिए, इससे उसका बल क्षीण हो गया। शत्रु की इस प्रकार की दुर्दशा से उत्साहित होकर राठोड़ों ने सरबुलंद पर दूसरा हमला कर दिया। परंतु ऐसे ही समय उसके दो सेनापति अमीनबेगख़ाँ और शेख़ अल्लाहयारख़ाँ नगर-रक्षिणी सेना को लेकर रण-स्थल में आ पहुँचे। इससे यद्यपि आक्रमण में राठोड़ों को सफलता न हो सकी, तथापि सरबुलंद की सेना के बहुत से सैनिकों के घायल हो जाने से उसका उत्साह शिथिल पड़ गया। इसके बाद जैसे ही सायंकाल होने पर युद्ध बंद हुआ, वैसे ही उसने अपना शिविर युद्ध-स्थल से उखड़वाकर अहमदाबाद के बाहर की तरफ़ क़िले के नीचे लगवा दिया।

१. लेटर मुग़ल्स, भा० २, पृ० २०६-२०८।

२. लेटर मुग़ल्स, भा० २, पृ० २०८-२११।

'राजरूपक' में लिखा है:-

सतरै समत सत्यासियो, आसू उज्जल पक्ख ;
बिजै-दशम भागा विचित्र, अभै प्रतिज्ञा अक्ख।

(देखो पृ० ३६३)।

'मीराते अहमदी' में लिखा है कि सायंकाल के समय सरबुलंद के पास केवल ४०० सवार ही रह गए थे।

परन्तु महाराज द्वारा, शाही दरबार में स्थित, अपने वकील के नाम लिखे, वि० सं० १७८७ की कार्त्तिक बदी २ के, पत्र से प्रकट होता है कि आश्विन सुदी ५ को महाराज ने शहर से डेढ़ कोस पूर्व के हाँसोल-नामक गाँव के पास साबरमती के किनारे मोरचे लगाए थे। परन्तु सरबुलंद के शाही

इसके बाद ही नींबाज ठाकुर ऊदावत अमरसिंह आदि के द्वारा बातचीत तय होकर महाराज और सरबुलंद के बीच संधि हो गई। इससे गुजरात का सूबा उसने महाराज को सौंप दिया और इसकी एवज़ में महाराज ने उसे उसकी सेना के वेतन आदि के लिये एक लाख रुपये नक़द और वहाँ से जाने के समय भार-बरदारी की गाड़ियाँ और ऊँट देने का वादा किया।

इस प्रकार झगड़ा शांत हो जाने पर सरबुलंदख़ाँ स्वयं महाराज के कैंप में आकर उनसे मिला। बातों ही बातों में उसने स्वर्गवासी महाराजा अजितसिंहजी के साथ की अपनी मित्रता का वर्णन कर महाराज की पगड़ी से अपनी पगड़ी बदल ली[1]।

बाग़ और मुहम्मद अमीनख़ाँ के बाग़ की तरफ़ चले जाने में ७मी के दिन नगर के पश्चिम की तरफ़ भादर के क़िले के सामने (फ़तैपुर के पास=नदी के किनारे) मोरचे खड़े किए गए। यह देख क़िले और शहरपनाह से शत्रु की तोपें गोले बरसाने लगीं। तीन दिन तक मोरचों की लड़ाई होती रही। परन्तु चौथे दिन १०मी को, क़िले के पतन के लक्षण देख, सरबुलंद ने ८ हज़ार सवारों और १० हज़ार पैदल सिपाहियों के साथ महाराज की सेना पर हमला कर दिया। इसमें शत्रु के बहुतसे योद्धा मारे गए। इसके बाद महाराज और राजाधिराज ने मोरचों से आगे बढ़ सरबुलंद पर प्रत्याक्रमण किया। यह देख उसका तोपख़ाना इन पर गोले बरसाने लगा, और शत्रु-सैनिक गाँव की आड़ में छिप गए। परन्तु महाराज ने इसकी कुछ भी परवा न कर अपने सवारों की ३ अनियाँ बनाईं, और ये सब एक ही बार में तोपख़ाने से आगे बढ़ तत्काल शत्रु के सामने जा पहुँचीं। दो घंटे के युद्ध के बाद शत्रु के पैर उखड़ गए, और वह भाग कर डेढ़ कोस पर के क़ासिमपुर में चला गया। महाराज के सैनिक भी उसके पीछे लगे हुए थे। इसलिये जैसे ही ये वहाँ पहुँचे, वैसे ही शत्रु ने मकानों की आड़ लेकर इनका सामना किया। यहाँ पर क़रीब एक घंटे तक युद्ध होता रहा। इसके बाद जब सेना के बिखर जाने से सरबुलंद के पास केवल ८० सवार रह गए, तब वह वहाँ से भागकर नदी-पार के अपने शिविर में चला गया। इसी बीच शेख़ अल्लाहयारख़ाँ शहर से निकल उसकी मदद को पहुँचा था। परन्तु वह शीघ्र ही मारा गया। इसके बाद शाम हो जाने से महाराज भी अपने शिविर को लौट गए। इस युद्ध में शत्रु के बहुत-से घोड़े, तोपें आदि राठोड़ों के हाथ लगे। उसके हज़ार-बारह सौ आदमी मारे गए और सात-आठ सौ घायल हुए। महाराज की सेना में यद्यपि मरनेवालों की संख्या कम रही, तथापि घायल अधिक हुए। महाराज की सवारी के घोड़े के भी तलवार के तीन और तीरों के दो ज़ख्म लगे। तीन तीर उसका चमड़ा छीलते हुए निकल गए। इस युद्ध में राजाधिराज भी ज़ख्मी हुए। परन्तु ईश्वर ने सहाय की। शिविर में पहुँचने पर सरबुलंद की तरफ़ से संधि का प्रस्ताव हुआ। दूसरे दिन महाराज ने फिर चढ़ाई की, परन्तु शत्रु बाहर नहीं आया।

१. लेटर मुग़ल्स, भा० २ पृ० २११-२१२। उसमें यह भी लिखा है कि इस युद्ध में राजाधिराज बख़तसिंहजी के एक तीर का घाव लग गया था। इसीसे वह उस समय दरबार में उपस्थित न थे। परंतु ख्यातों से उस समय उनकाससैन्य वहाँ पर उपस्थित होना प्रकट

कुछ दिनों में यात्रा का प्रबन्ध ठीक हो जाने पर सरबुलंद आगरे की तरफ़ चला गया, और महाराज ने वि० सं० १७८७ की कार्त्तिक सुदी ६ (ई० सन् १७३० की ७ नवंबर) को अपने भ्राता बखतसिंहजी के साथ नगर में प्रवेश कर भादर के किले में निवास किया। इसके बाद इन्होंने वहाँ के प्रबन्ध की देख-भाल के लिये भंडारी रत्नसिंह को अपना नायब नियुक्त किया।

होता है। इसी प्रकार किसी-किसी ख्यात में आश्विन सुदी १२ को सरबुलंद का हिम्मत हारकर नींबाज ठाकुर अमरसिंह को संधि के लिये बुलवाना और फिर दोनों पक्षों के बीच संधि होना, तथा इसके बाद कार्त्तिक बदी ७ को सरबुलंद का गुजरात से रवाना होना लिखा है।

मूल में इस युद्ध की जो तिथियाँ दी गई हैं, वे 'लेटर मुगल्स' के अनुसार हैं।

महाराज के, शाही दरबार में स्थित, अपने वकील के नाम लिखे, वि० सं० १७८७ की कार्त्तिक सुदी १२ के, उपर्युक्त पत्र से यह भी ज्ञात होता है कि इस युद्ध का सारा प्रबन्ध महाराज ने अपनी ही तरफ़ से किया था। बादशाह की तरफ़ से तो केवल करीमख़ाँ, २०० सिपाहियों के साथ, उनके पास नियुक्त किया गया था।

१. लेटर मुग़ल्स, भा० २, पृ० २१२-२१३।

परंतु महाराज की तरफ़ से शाही दरबार में स्थित अपने वकील के नाम लिखे, वि० सं० १७८७ की कार्त्तिक बदी ४ के पत्र में सरबुलंद के सूबा छोड़ कर चले जाने और भादर के किले के विजय होने का उल्लेख मिलता है।

'सहरुलमुताख़रीन' में इस घटना का हाल इस प्रकार लिखा है:-

जब बादशाह रिश्वत की शिकायतों के कारण रौशनुद्दौला से अप्रसन्न हो गया, तब शाही दरबार में शम्सामुद्दौला का प्रभाव बढ़ने लगा। इसी अवसर पर उस (शम्सामुद्दौला) ने रौशनुद्दौला के पक्ष वाले सरबुलंदख़ाँ के एवज़ में महाराजा अभयसिंहजी को गुजरात का सूबेदार नियुक्त करवा कर उक्त पद की सनद इनके पास भेज दी। साथ ही उसने इन्हें शीघ्र गुजरात पहुँच सरबुलंद को दिल्ली भेज देने का भी लिख भेजा। परंतु अभयसिंहजी ने सरबुलंद से गुजरात का अधिकार ले लेना एक साधारण कार्य जान अपने प्रतिनिधि को कुछ सेना देकर वहाँ भेज दिया। जब वहाँ पर उसे सफलता नहीं हुई, तब महाराज ने एक दूसरे प्रतिनिधि को वहाँ जाने की आज्ञा दी। इसके साथ पहले से कुछ अधिक सेना भेजी गई थी। परंतु सरबुलंद ने उसे भी कृतकार्य न होने दिया। यह देख स्वयं महाराज अभयसिंहजी ४०-५० हज़ार सैनिक लेकर गुजरात को चले। इस पर सरबुलंद ने कई कोस आगे बढ़ इनका सामना किया। यद्यपि एक बार तो उसने इनको पीछे हटा दिया, तथापि अन्त में उसे संधि का प्रस्ताव करना पड़ा। इसके बाद वह स्वयं सायंकाल के समय सादे कपड़े पहन और थोड़े से नौकरों को साथ ले महाराज के डेरे पर पहुँचा। महाराज को इससे बड़ा आश्चर्य हुआ। पर इन्होंने उसे यथोचित सत्कार के साथ अपने पास बिठाया। इसके बाद उसने महाराज से कहा कि महाराजा अजितसिंहजी मेरे पगड़ी-बदल भाई थे, अतः आप मेरे भतीजे हैं। मैंने यह युद्ध केवल अपनी इज़्ज़त बचाने के

इसी वर्ष महाराज ने राजाधिराज बख़तसिंहजी को पाटन का सूबेदार नियुक्त कर उनके नायब को वहाँ पर प्रबन्ध करने के लिये भेज दिया।

अगले वर्ष (वि० सं० १७८८=ई० सन् १७३१ में) बाजीराव पेशवा ने बड़ोदे पर चढ़ाई की। उस समय उक्त नगर पीलाजी गायकवाड़ के अधिकार में था। इसकी सूचना पाकर महाराजा अभयसिंहजी ने पेशवा को अहमदाबाद बुलवाया, और उसे,

---

लिये किया है। मेरे और आपके बीच किसी तरह की व्यक्तिगत शत्रुता नहीं है। अब आप इस सूबे का कार्य सँभालें, और मेरे खर्च के लिये कुछ रुपये देकर मेरी यात्रा के लिये भार-बरदारी का प्रबन्ध कर दें। महाराज ने तत्काल उसके कहने के अनुसार सब प्रबंध कर देने की आज्ञा दे दी। जब सरबुलंद को महाराज की तरफ़ का पूरा-पूरा विश्वास हो गया, तब उसने पुराने सम्बन्ध का उल्लेख कर अपनी सुफ़ेद पगड़ी महाराज के सिर पर रख दी, और उनकी बहुमूल्य पगड़ी, जिसमें अनेक रत्न टके थे, उतारकर अपने सिर पर रख ली। इसके बाद वह महाराज से प्रेमलिंगन कर बिदा हो गया।

परंतु जिस समय सरबुलंद दिल्ली के मार्ग में था, उस समय शम्सामुद्दौला ने कुछ गुर्जबरदारों के साथ उसके पास यह शाही आज्ञा भिजवा दी कि महाराजा अभयसिंहजी का सामना करने के अपराध में उसके लिये दरबार में उपस्थित होने की मनाई हो गई है। इसलिये जब तक दूसरी शाही आज्ञा न मिले, तब तक वह दिल्ली न आकर मार्ग मे ही ठहर जाय।

शाही दरबार का यह रंग ढंग देख कुछ काल बाद आसफ़जहाँ ने राजा साहू के सेनापति बाजीराव को अभयसिंहजी के प्रतिनिधि से गुजरात छीन लेने के लिये तैयार किया। इसी से अन्त में उक्त प्रदेश मरहटों के अधिकार मे चला गया। इस पर महाराज ने भी उधर विशेष ध्यान नहीं दिया। (देखो भा० २ पृ० ४६२-४६३)।

महाराज के शाही दरबार मे स्थित अपने वकील के नाम लिखे अनेक पत्रों से प्रकट होता है कि मरहटों के लगातार के उपद्रवों और सरबुलंद की लूट-खसोट से अहमदाबाद का सूबा उजड़ गया था। इससे वहाँ की आमदनी से सेना का वेतन भी नहीं चुकाया जा सकता था। परंतु शाही प्रधान मन्त्री रुपये भेजने में ढील करता था। इसलिये स्वयं महाराज भी वहाँ रहना पसंद नहीं करते थे।

१. बँबे गज़ेटियर, भा० १, खंड १, पृ० ३१२। वहीं पर यह भी लिखा है कि महाराज के अहमदाबाद पहुँचने पर (सलावत मुहम्मदखाँ बाबी के पुत्र) शेरखाँ बाबी ने हाज़िर हो कर एक हाथी और कुछ घोड़े इनके नज़र किए। इस पर महाराज ने उसके मृत-पिता की जागीर उसे देकर इसकी सूचना बादशाह के पास भेज दी। साथ ही कैंबे (खंभात) के पास के प्रदेश का, जिसकी आमदनी स्वयं महाराज के लिये नियत थी, प्रबंध फ़िदाउद्दीनखाँ को सौंपा। (देखो भा० १, खंड १, पृ० ३११)।

२. महाराज के अपने वकील के नाम लिखे, वि० सं० १७८७ की माघ बदी ८ के, पत्र से ज्ञात होता है कि इस के पूर्व ही बाजीराव और चिमनाजी ४० हज़ार सवारों के साथ माही के उस पार उतर चुके थे, और कंठाजी, पीलू, सूदा और त्र्यंबकराव आदि एक बड़ी सेना लेकर सूरत पहुँच चुके थे।

बड़ोदे पर अधिकार करने में, पीलाजी के विरुद्ध, अज़मतुल्ला की सहायता करने को तैयार किया। उस समय महाराज की तरफ़ से बड़ोदे का शासन-भार अज़मतुल्ला को सौंपा हुआ था। इसी के अनुसार महाराज की और पेशवा की सम्मिलित सेनाओं ने बड़ोदे पर चढ़ाई की। परंतु इसी बीच सूचना मिली कि निज़ामुल्मुल्क स्वयं बाजीराव पेशवा को दबाने के लिये गुजरात की तरफ़ चला आ रहा है। इस पर पेशवा बड़ोदे की चढ़ाई का विचार छोड़कर दक्षिण की तरफ़ चला गया।

१. महाराज के अपने वकील के नाम लिखे, वि० सं० १७८७ की चैत्र सुदी १४ के, पत्र में लिखा है:-

त्र्यंबकराव दाभाडे से हमारी और बाजीराव की सेनाओं का युद्ध हुआ। इसमें त्र्यंबकराव, निज़ाम की फ़ौज का सरदार मुग़ल मौमीनयारखाँ और मूलाजी पँवार मारे गये; और पँवार ऊदा, चिमना और पंडित के साथ ही पीलू का बेटा भी पकड़ा गया। इस प्रकार हमारी विजय हुई। पीलू, कंठा और आनंदराव की फ़ौजें भागीं। पीलू भागकर डभोई में जा छिपा। बड़ोदे का प्रबंध उसके भाई के हाथ में है। दोनों स्थानों पर हमारी फ़ौजें पहुँच गई हैं। शीघ्र ही दोनों स्थान उनसे ख़ाली करवा लिये जायँगे। कंठा भागकर निज़ाम के पास गया है। इसलिये तुम नवाब से कहकर निज़ाम को बादशाह की तरफ़ से हिदायत करवा देना, जिससे वह हमारे कथनानुसार चले, और कंठा, पीलू वग़ैरह को पनाह न दे। इस युद्ध में निज़ाम की फ़ौज भी मारी गई है। इससे मुमकिन है निज़ाम इधर चढ़ आवे, और उससे युद्ध हो। अतः बादशाह से शीघ्र ही उसको हिदायत करवा दी जाय।

इस बार बाजीराव ने बादशाह की अच्छी सेवा की है। इसलिये उसको और राजा साहू को ख़िलअत, फ़रमान और हाथी तथा चिमना को ख़िलअत भिजवाने की कोशिश होनी चाहिए। साथ ही नवाब से बातचीत कर इनके लिये मनसब की भी कोशिश होनी चाहिए। निज़ामुल्मुल्क के कहने से नवाब ने लिखा है कि बाजीराव को किसी प्रकार की मदद न देकर निकाल दो। परंतु बाजीराव ने बादशाह की सहायता की है। पीलू और कंठा आठ वर्ष से परगने दबाए बैठे हैं। ऐसी हालत में यदि नवाब लोगों के कहने से गड़बड़ करेगा, तो हम गुजरात का सूबा छोड़कर चले आवेंगे। निज़ाम तो सिर्फ़ हम लोगों को आपस में लड़ाना चाहता है। यदि वह इधर आया, तो अवश्य ही उसे दंड दिया जायगा।

वि० सं० १७८७ की चैत्र सुदी १४ के दूसरे पत्र में महाराज ने लिखा है कि बाजीराव के पत्र से ज्ञात हुआ कि निज़ाम ने हमारे और बादशाह के असली पत्र उस (बाजीराव) के पास भेजकर उसको लिखा है कि बादशाह तो उसे पकड़ना या दंड देना चाहता है, और वह नाहक ही अपने सजातीयों से लड़कर अपना बल क्षीण कर रहा है। इस पर उसका विश्वास उठ गया है, और वह यहाँ से जाना चाहता है। इसलिये उसके नाम का फ़रमान शीघ्र भिजवाना चाहिए, वरना वह चला जायगा। नवाब को भी अब निज़ाम से सावधान हो जाना चाहिए। इस समय कंठा निज़ामुल्मुल्क के पास गया हुआ है। अगर वह यहाँ वापस आवेगा, तो अवश्य ही मारा जायगा।

इसके बाद बख़तसिंहजी भी लौटकर नागोर चले आए[१]।

उस समय स्वर्गवासी सेनापति खाँडेराव दाभाडे का प्रतिनिधि पीलाजी भीलों और कोलियों की सहायता से स्वतंत्र हो रहा था, और महाराज की आज्ञा की कुछ भी परवा नहीं करता था। इसलिये वि० सं० १७८८ के माघ (ई० सन् १७३२ की जनवरी) में महाराज ने ईंदा लखधीर को उसे मारने की आज्ञा दी। इसी के अनुसार उसने डाकोर पहुँच उसे धोके से मार डाला। यह देख मरहटे बड़ौदा-प्रांत को छोड़कर डभोई के क़िले में चले गए। इस पर महाराज ने बड़ोदे पर अधिकार कर तत्काल ही डभोई के दुर्ग को भी घेर लिया। परंतु अन्त में वर्षा-ऋतु के आ जाने से कुछ ही दिनों में इन्हें वहाँ का घेरा उठा लेना पड़ा[२]।

१. बॉंबे गज़ेटियर, भा० १, खंड १, पृ० ३१२।

ख्यातों में इसके बाद महाराज का कुंतजी कदम के विरुद्ध सेना भेजना और उसका वापस लौट जाना लिखा है। उनमें इसी के बाद महाराज के बुलाने पर राजाधिराज बख़तसिंहजी का अहमदाबाद वापस आना भी लिखा है।

यह बात महाराज के वि० सं० १७८८ की फागुन बदी १० के पत्र से भी प्रकट होती है। परंतु उसमें पीलाजी पर चढ़ाई करने का उल्लेख है।

उसी पत्र से यह भी ज्ञात होता है कि उस समय महाराज के मनसब के सवारों में दो हज़ार सवारों की वृद्धि की गई थी।

२. बॉंबे गज़ेटियर, भा० १, खंड १, पृ० ३१३। वि० सं० १७८८ (श्रावणादि) चैत्रादि सं० १७८९ की चैत्र सुदी ११ के महाराज के पत्र में, जो नड़ियाद से लिखा गया था, लिखा है-पीलाजी के माही पार करने पर हमारी सेना भी चंडूला से बाहर निकल कूच की तैयारी करने लगी। यह देख पीलाजी के आदमी हमसे मिलने को आए। हमने उनसे बड़ोदा, डभोई आदि बादशाही थाने छोड़कर शाही सेवा स्वीकार करने को कहा। परंतु पीला ने उत्तर में कहलाया कि वह तीन सूबेदारों के समय से बड़ोदे पर क़ाबिज़ है। सरबुलंद ने उस पर चढ़ाई की थी, परंतु उलटा उसे चौथ देने का वादा कर लौटना पड़ा।

ये लोग सम्मुख रण में लोहा न लेकर इधर-उधर से हमला कर शत्रु-सैन्य को तंग करते हैं। इससे जैसे ही हमारी अगाड़ी की सेना पाँच कोस आगे बढ़ी, वैसे ही वह भागकर डाकोर जा पहुँचा।

इस पर हमने सोचा कि इस प्रकार चढ़ाई करने से वह और भी दूर भाग जायगा। अतः पंचोली रामानंद, ईंदा लखधीर और भंडारी अजबसिंह को उससे बातचीत तय करने के बहाने उधर रवाना किया। उनसे यह भी कह दिया गया था कि तुम्हारी तरफ़ से सूचना मिलते ही यहाँ से सेना रवाना कर दी जायगी।

इसके बाद चैत्र सुदी ६ को २,००० चुने हुए सवार भेजे गए। बातचीत करने को गए हुए हमारे आदमियों ने पीलू को मार डाला। इसी अवसर पर (दो घंटे रात जाते-जाते) हमारी सेना के सवार भी वहाँ जा पहुँचे। इससे पीलू का भाई भैमा और उसके बहुत-से सैनिक भी मारे गए। ७०० घोड़े और जंजालें (लम्बी बंदूकें) तथा अन्य बहुत-सा सामान लूट मे हमारे सैनिकों के हाथ लगा।

अब हम शीघ्र ही बड़ोदे पहुँच उसे भी दुश्मन से ख़ाली करवाने वाले हैं। हमारी सेना के ४० सिपाही मारे गए, और ५० जमादार और १००-१५० वीर घायल हुए हैं।

इस बात की पुष्टि वि० सं० १७८८ (चैत्रादि सं० १७८९) की वैशाख सुदी १३ के महाराज के पत्र से भी होती है। उसमें पीलू के साथ १,५०० सवारों और ५,००० पैदल सिपाहियों के होने का उल्लेख है। साथ ही उसमे यह भी लिखा है कि बातचीत करने को गए हुए हमारे आदमियों का पत्र मिलते ही हमने सेना भेज दी थी। जैसे ही यह सेना पीलाजी के लश्कर के पास पहुँची, वैसे ही लखधीर ने अपनी वापस रवानगी की आज्ञा प्राप्त करने के बहाने पीला के निवास-स्थान में घुसकर उसे मार डाला। इसी अवसर पर पीला का भाई भी सख्त घायल हुआ, और उसके साथ के ५ सरदार मारे गए। शत्रु के सवारों के ८०० घोड़े हमारी सेना के हाथ आए।

इसके बाद हम सेना लेकर वैशाख सुदी ८ को बड़ोदे पहुँचे। कंडाली की गढ़ी और दूसरे दो चार स्थानों से शत्रु मार भगाया गया। अब वे लोग नर्मदा पर के कोरल गाँव और डभोई के क़िले में एकत्रित हुए हैं। इनकी संख्या अत्यधिक है। साथ ही त्र्यंबकराव की मा और ऊदा पँवार के भी इनकी सहायता मे आने की सूचना है। आने पर उनको भी सज़ा दी जायगी।

कल हम बड़ोदे से रवाना होकर नर्बदा की तरफ़ जानेवाले हैं। अब तक २४ क़िले तो शत्रुओं से छीन लिए गए हैं, और जो बच गए हैं, उन पर भी शीघ्र ही दख़ल कर लिया जायगा।

वि० सं० १७८८ (चैत्रादि संवत् १७८९) की ज्येष्ठ बदी २ के महाराज के पत्र मे लिखा है कि शत्रुओं ने डभोई के क़िले में एकत्रित होकर उपद्रव उठाया है। एक तो वहाँ शत्रुओं की बहुत बड़ी संख्या है। दूसरे वह क़िला भी बहुत मज़बूत है और हमारे पास उसके मआसरे के योग्य बड़ी-बड़ी तोपों का अभाव है। शीघ्र ही बरसात का मौसम आनेवाला है। यदि इससे पूर्व ही उक्त क़िला हाथ न आया, तो यहाँ पर मरहटों का दल और भी बढ़ जायगा। उस समय इसका हाथ आना कठिन होगा। वि० सं० १७८८ (चैत्रादि संवत् १७८९) की आषाढ़ बदी ११ के महाराज के पत्र में भी येही बातें लिखी हैं। परंतु उससे यह भी ज्ञात होता है कि बड़ोदा और जंबूसर के क़िले तो इसके पूर्व ही जीत लिए गए थे, उस समय डभोई के क़िलेवालों के साथ युद्ध हो रहा था। चाँपानेर का बड़ा क़िला भी शत्रुओं के अधिकार में था। महाराज की सेना को लम्बी नालियोंवाली तोपों की सख्त ज़रूरत थी। इसलिये महाराज ने अपने वकील को लिखा था कि वह नवाब (शाही प्रधान मंत्री) से कहकर सूरत के क़िलेदार के नाम शीघ्र ही दो बड़ी तोपें भेजने की आज्ञा भिजवा दे। काम हो जाने पर वे तोपें लौटा दी जायँगी। इसी के साथ सोहराबख़ाँ को भी अपनी सेना लेकर वहाँ पहुँचने का हुक्म भिजवाने में शीघ्रता करने को लिखा गया था।

ये सब पत्र महाराज ने शाही दरबार में रहनेवाले अपने वकील के नाम लिखे थे।

इन बराबर के झगड़ों से नष्ट-भ्रष्ट होते हुए गुजरात में भयंकर दुर्भिक्ष ने और भी हालत ख़राब कर दी[1]।

वि० सं० १७८९ के फागुन (ई० सन् १७३३ की फ़रवरी) में खाँडेराव की विधवा स्त्री ऊमाबाई ने, पीलाजी की मृत्यु का बदला लेने के लिये उसके पुत्र दामाजी गायकवाड़ आदि को साथ लेकर, अहमदाबाद पर चढ़ाई कर दी। परंतु इसमें उसे पूरी सफलता नहीं हुई। अन्त में दुर्गादास के पुत्र अभयकरण के द्वारा यह तय किया गया कि उसे वहाँ की आमदनी की चौथ (चौथा भाग) और दसोत (दसवाँ भाग) के अलावा अहमदाबाद के खज़ाने से अस्सी हजार रुपये और दिए जायँ। बादशाहने भी समय देख महाराज की की हुई इस संधि को पसन्द किया, और इनके लिये एक ख़िलअत भेजा[2]।

वि० सं० १७९० (ई० सन् १७३३) में महाराज ने गुजरात के सूबे का प्रबन्ध रत्नसिंह भंडारी को सौंप दिया[3], और स्वयं बख़तसिंहजी के साथ जालोर होते हुए शाहपुरवालों से दंड के रुपये लेकर जोधपुर चले आए[4]।

---

१. वि० सं० १७८९ की भादों बदी १ के, महाराज के अपने वकील के नाम लिखे, पत्र मे लिखा है कि गुजरात मे भयंकर अकाल है। नाज एक रुपये का सेर-भर तक बिक चुका है, फ़ौज की तनख्वाह के तीस लाख रुपये चढ़ गए हैं। इससे लोग भागने का इरादा कर रहे हैं। ऐसी हालत मे यदि नवाब रुपयों का प्रबंध शीघ्र नहीं करेगा, तो हम द्वारका-यात्रा कर यहाँ से लौट आवेंगे।

२. बँबि गज़ेटियर, भा० १, खं० १, पृ० ३१४।

३. बँबि गज़ेटियर भा० १, खंड १, पृ० ३१४। इसमे महाराज का जोधपुर होते हुए दिल्ली जाना भी लिखा है। इसी से अगले वर्ष जवाँमर्दख़ाँ ने महाराज के भ्राता आनन्दसिंह और रायसिंह से ईडर छीन लेने के लिये चढ़ाई की। परंतु उन्हों ने मल्हारराव होल्कर और रानोजी सिंधिया की (जो उस समय मालवे में थे) सहायता प्राप्त कर उलटा उसे १,७५,००० रुपये दंड के देने को बाध्य किया। इसमें से २५,००० रुपये तो उसी समय ले लिए गए, और बाक़ी के रुपयों के एवज़ में जवाँमर्दख़ाँ का भाई ज़ोरावरख़ाँ और अम्राजी कोली का प्रतिनिधि अजबसिंह अमानत के तौर पर रक्खे गए। (बँबि गज़ेटियर, भा० १, खंड १, पृ० ३१५)। ई० सन् १७३५ मे महाराज के प्रतिनिधि रत्नसिंह को उसके ख़र्च के लिये धौलका-प्रांत दिया था। (बँबि गज़ेटियर, भा० १, खं० १, पृ० ३१५)।

४. 'मआसिरुल उमरा' में इनका वि० सं० १७८९-९० (ई० सन् १७३२-३३) में जोधपुर लौटना लिखा है। परंतु वहीं पर उक्त इतिहास के लेखक ने अजितसिंहजी के मरने

इसी वर्ष के भादों (ई० सन् १७३३ के अगस्त) में राजाधिराज बख़्तसिंहजी के और बीकानेर-नरेश सुजानसिंहजी के बीच एक सरहदी मामले पर झगड़ा उठ खड़ा हुआ । इससे बख़्तसिंहजी ने बीकानेर पर चढ़ाई कर दी । आश्विन सुदी में महाराज भी अपने दल-बल-सहित उनकी सहायता को वहाँ जा पहुँचे । कुछ दिन तक तो दोनों तरफ़ से लड़ाई होती रही । परंतु अन्त में फागुन के महीने में लोगों ने बीच में पड़ आपस में मेल करवा दिया । फिर भी बीकानेर के कुछ सरहदी प्रदेशों पर वि० सं० १७९२ (ई० सन् १७३५) तक जोधपुरवालों का ही अधिकार बना रहा ।

वि० सं० १७९१ के ज्येष्ठ (ई० सन् १७३४ की मई) में महाराज नागोर, पुष्कर और अजमेर होते हुए मेवाड़ की तरफ़ चले । हुरडे में इन्होंने जयपुर, उदयपुर, कोटा, बीकानेर और किशनगढ़ के नरेशों से मिलकर एक शानदार दरबार

पर बख़्तसिंहजी का गद्दी बैठना लिख दिया है । यह ठीक नहीं है । 'ग्रांट डफ़् की हिस्ट्री ऑफ़् मरहटाज़' में लिखा है कि ई० सन् १७३२ (वि० सं० १७८९) में पीलाजी का ज्येष्ठ पुत्र धम्माजी सोनगढ़ से रवाना हुआ, और उसने गुजरात के पूर्व की तरफ़ के बहुत से प्रदेशों पर अधिकार कर जोधपुर तक चढ़ाई की । इसीसे महाराज अभयसिंहजी को गुजरात से लौटकर मारवाड़ में आना पड़ा । (देखो भा० १, पृ० ३८१) ।

१. 'बीकानेर की तवारीख़' में महाराज का स्वयं वहाँ न जाकर सेना भेजना ही लिखा है । उसमें यह भी लिखा है कि इस युद्ध में बीकानेर के राजकुमार ज़ोरावरसिंहजी ने अच्छी वीरता दिखाई थी । इसी से जोधपुर की फ़ौज को (पूरी) सफलता नहीं हुई । (देखो पृ० १६२) ।

२. यह बात बीकानेर के राजकीय इतिहास में भी प्रकट होती है । (देखो पृ० १६४) महाराज के, अपने शाही दरबार में रहनेवाले वकील के नाम लिखे, वि० सं० १७९० की मँगसिर सुदी ७ के, पत्र में लिखा है- "तुमने बादशाह के कथनानुसार शीघ्र ही हमें फिर अहमदाबाद जाने के बारे में लिखा, सो ज्ञात हुआ । बीकानेर का शहर हमारे अधिकार में आ गया है । क़िलेवाले अभी लड़ रहे हैं ।" इसी वर्ष की फागुन सुदी १० के नागोर से लिखे महाराज के पत्र से प्रकट होता है कि बीकानेरवालों ने १२ लाख रुपये देने और समय-समय पर सेवा में हाज़िर रहने का वादा कर महाराज से संधि कर ली थी । इन १२ लाख में से ८ लाख तो नक़द देने का इक़रार था और ४ लाख के एवज़ में ख़रबूज़ी और सारूंडा के प्रांत देने तय हुए थे ।

३. उस समय ये सब नरेश वहाँ आ गए थे ।

किया। इसमें उपस्थित होनेवालों ने एक दूसरे की सहायता करने की प्रतिज्ञा कर वि० सं० १७९१ की श्रावण बदी १३ (ई० सन् १७३४ की १७ जुलाई) को एक प्रतिज्ञा-पत्र लिखा। इसके बाद वर्षा-ऋतु के अंत में रामपुरे में अगला कार्य निश्चित करने का वादा कर यह देवलिये होते हुए जोधपुर लौट आए[1]।

इसी वर्ष वि० सं० १७९१-९२ (ई० सन् १७३४-३५) में यह मल्हारराव को दबाने के लिये शम्सामुद्दौला के साथ अजमेर और साँभर की तरफ़ गए। यद्यपि उस समय महाराज की सम्मति युद्ध के पक्ष में थी, तथापि राजा जयसिंहजी ने बीच में पड़ उसे रोक दिया, और बादशाह की तरफ़ से मरहटों को चौथ देने का प्रबन्ध करवा दिया[2][3]।

वि० सं० १७९२ (ई० सन् १७३५) में राजाधिराज बख़तसिंहजी ने दौलतसिंह साँखला आदि की मिलावट से एक बार फिर बीकानेर पर चढ़ाई करने का प्रबन्ध किया। परन्तु इसमें उन्हें विशेष सफलता नहीं हुई।

इसके बाद वि० सं० १७९२ के ज्येष्ठ (ई० सन् १७३५ की मई) में शम्सामुद्दौला के साथ ही महाराज भी दिल्ली चले गए[4]।

---

१. ख्यातों में लिखा है कि उस स्थान पर महाराज ने अपने लिये लाल डेरा खड़ा करवाया था। यह सूचना पाकर बादशाह इनसे नाराज़ हो गया। परंतु इनके वकील भंडारी अमरसी ने उसे समझाया कि मरहटों के बढ़ते हुए उपद्रव को दबाने का प्रबंध करने के लिये राजस्थान के नरेशों का एकत्रित होना आवश्यक था। परंतु शाही खेमा खड़ा किए विना ऐसा होना असंभव होने से ही महाराज ने लाल खेमा खड़ा करवाया था। यह सुन बादशाह ने महाराज को ख़िलअत और फ़रमान भेजकर अपनी प्रसन्नता प्रकट की।

२. कुछ ख्यातों में इस घटना का समय वि० सं० १७९१ और कुछ में वि० सं० १७९२ दिया है। उनमें महाराज का शाहपुरेवालों से देवलिया वापस छीनकर राठोड़ रघुनाथसिंह को देना और शाहपुरे के राजा उम्मैदसिंहजी का इनके पास आकर आजिज़ी प्रकट करना भी लिखा है।

३. लेटर मुग़ल्स, भा० २ पृ० २८०। यद्यपि इसमें महाराज का नाम नहीं है, तथापि मारवाड़ की ख्यातों से इस बात की पुष्टि होती है।

महाराज के, अपने वकील के नाम लिखे, वि० सं० १७९१ की आश्विन बदी १ के, पत्र में इनके ख़ाँ दौराँ की सहायता के लिये शीघ्र ही जयपुर की तरफ़ रवाना होने के विचार का उल्लेख है।

४. इसी वर्ष बुरहानुल्मुल्क ने सोहराबख़ाँ को वीरमगाँव का शासक नियत किया। परंतु भंडारी रत्नसिंह के विरोध करने पर बादशाह ने उक्त नगर फिर से महाराज की जागीर में रख

शाही सेना की मदद करने के कारण मल्हार-राव होल्कर महाराज से अप्रसन्न था। इसी से वि० सं० १७९३ (ई० सन् १७३६) में उसने कंतजी के साथ गुजरात से आगे बढ़ मारवाड़ पर चढ़ाई की[1]। यद्यपि कुछ दिन तक वह यहाँ के जालोर, सोजत, बीलाड़ा, मेड़ता और जोधपुर आदि प्रांतों में लूट-खसोट करता रहा, तथापि महाराज के सरदारों और मुसाहिबों ने उसे शीघ्र ही लौट जाने पर बाध्य करदिया। महाराज भी इस घटना की सूचना पाकर दिल्ली से रवाना होनेवाले थे, परन्तु इतने ही में होल्कर के लौट जाने का समाचार मिल जाने से इन्होंने अपना विचार स्थगित कर दिया।

इसके बाद बादशाह ने दरबारियों के कहने-सुनने से वि० सं० १७९३ (ई० सन् १७३७) में, गुजरात का सूबा मोमीनख़ाँ को दे दिया[2]। परन्तु जब उसने उक्त प्रांत पर अधिकार करने में अपने को असमर्थ पाया, तब रंगोजी को, ख़ास अहमदाबाद नगर, उसके आस-पास का प्रदेश और कैंबे (खंभात) बंदर को छोड़कर

दिया। इसके बाद सोहराब ने बुरहानुल्मुल्क से कह-सुनकर दुबारा उसे अपने नाम लिखवालिया। यह बात रत्नसिंह को बुरी लगी। इससे उसने इधर-उधर से सहायता लेकर उस पर चढ़ाई कर दी। परंतु सोहराबख़ाँ के पड़ाव के पास पहुँच उसने उससे कहलाया कि यदि वह बादशाह की तरफ़ से महाराज के पक्ष में अंतिम आज्ञा आ जाने पर उक्त स्थान को ख़ाली कर देने का वादा कर ले, तो आपस में संधि हो सकती है। यह बात सोहराबख़ाँ को मंजूर न हुई। इस पर दोनों तरफ़ से युद्ध की तैयारी होने लगी। परंतु इसके दूसरे ही दिन रत्नसिंह ने नैश-आक्रमण कर उसकी सेना को भगा दिया। सोहराबख़ाँ स्वयं भी घायल हो जाने के कारण बाद को शीघ्र ही मर गया। (बॉंबे गज़ेटियर, भा० १, खं० १, पृ० ३१५-३१६)।

वि० सं० १७९२ की आश्विन बदी २ के एक पत्र में राजाधिराज बख़तसिंहजी के फिर से ख़रबूज़ी प्रांत पर चढ़ाई करने का उल्लेख मिलता है।

१. बॉंबे गज़ेटियर, भा० १, खं० १, पृ० ३१७।

२. ग्रांटडफ की 'हिस्ट्री ऑफ़् मरहटाज़' में इस घटना का समय ई० सन् १७३५ लिखा है। (देखो भा० १, पृ० ३९०)।

मारवाड़ की ख्यातों में लिखा है कि इसी समय राजाधिराज बख़तसिंहजी ने जाकर गोपालपुरे की गढ़ी को घेर लिया। उस समय बीकानेर-नरेश ज़ोरावरसिंहजी उसी में ठहरे हुए थे। इसी बीच दिल्ली से महाराज की आज्ञा आ जाने के कारण जोधपुर की फ़ौज का एक दस्ता भी राजाधिराज की मदद में वहाँ जा पहुँचा। यह देख बीकानेरवाले घबरा गए और उन्होंने कुछ रुपये और सरहदी इलाक़ा राजाधिराज को देकर उनसे संधि कर ली।

उक्त सूबे की सारी आय का आधा भाग देने की प्रतिज्ञा पर, अपनी सहायता के लिये तैयार किया। यह देख महाराज ने (अपने प्रतिनिधि) रत्नसिंह को उनके सम्मिलित बल का यथा-शक्ति मुक़ाबला करने की आज्ञा भेज दी। परन्तु जब मोमीनख़ाँ और मरहटों की विशाल सेनाएँ अहमदाबाद के बिलकुल निकट पहुँच गईं, तब रत्नसिंह ने लाचार होकर वहाँ का सारा हाल महाराज को लिख भेजा। इस पर महाराज को इतना क्रोध आया कि यह बादशाह के सामने ही दरबार से उठकर रवाना हो गए। यह देख उपस्थित शाही अमीरों में धबराहट छा गई, और उन्होंने महाराज को वापस बुलवाकर बादशाह से गुजरात की सूबेदारी फिर से इन्हीं के नाम लिखवा दी[1]। परन्तु इसी के साथ बादशाह ने यह इच्छा प्रकट की कि गुजरात की नायबी भंडारी रत्नसिंह से लेकर राठोड़ अभयकरण को दे दी जाय। इस आज्ञा के पहुँचने पर मोमीनख़ाँ ने यह प्रस्ताव किया कि यदि रत्नसिंह बादशाही हुक्म के अनुसार अपना कार्य-भार अभयकरण को सौंप दे, और नगर की रक्षा का भार फ़िदाउद्दीनख़ाँ को दे दे, तो मैं कैंबे (खंभात) की तरफ़ जाने को तैयार हूँ। परन्तु रत्नसिंह ने यह बात नहीं मानी। इस पर ख़ाँ ने दाभाजी मरहटे को भी अपनी सहायता के लिये बुलवा लिया। इस प्रकार मरहटों की सहायता लेकर मोमीन ने अहमदाबाद पर चढ़ाई की। यद्यपि रत्नसिंह ने एक बार तो बड़ी वीरता से उनके सम्मिलित सैन्य को मार भगाया, तथापि अंत में नगर को अधिक काल तक सुरक्षित रखना असंभव समझ मोमीन से संधि करली। इसी के अनुसार वह (रत्नसिंह) उस (मोमीनख़ाँ) से अपने मार्ग-व्यय के लिये कुछ रुपये लेकर, शस्त्रों से सजे अपने दल के साथ, नगर से रवाना हो गया। उसके इस प्रकार चले जाने पर अहमदाबाद पर मोमीनख़ाँ का अधिकार हो गया। परन्तु इसके साथ ही उक्त प्रांत की आधी आमदनी के साथ-साथ अहमदाबाद का आधा नगर भी मरहटों के अधिकार में चला गया[2]।

१. बँबे गज़ेटियर, भा० १, खंड १, पृ० ३१८-३१६।

२. बँबे गज़ेटियर, भा० १, खंड १, पृ० ३१६-३२०। वि० सं० १७६५ (ई० सन् १७३८-१७३६) में नादिरशाह के आक्रमण ने मुग़ल बादशाहत को और भी शिथिल कर दिया। (क्रॉनॉलॉजी ऑफ़् मौडर्न इंडिया, पृ० १७७-१७८)।

वि० सं० १७६४ (ई० सन् १७३७) में महाराजा ने शाहपुरे के राजा उम्मैदसिंहजी को ले जाकर बादशाह से मिलाया था। (राजपूताने का इतिहास, खंड ३, पृ० ६४३)।

इस घटना के बाद महाराज दिल्ली से रवाना होकर साँभर, अजमेर और मेड़ते होते हुए जोधपुर चले आए[1]।

कुछ दिन बाद राजाधिराज बखतसिंहजी के राजकर्मचारियों के साथ अधिक सख़्ती का बरताव करने के कारण उनके और महाराज के बीच मनोमालिन्य हो गया। इस पर वि० सं० १७९६ के आषाढ़ (ई० सन् १७३९ के जून) में बखतसिंहजी ने मेड़ते पर अधिकार करने के लिये चढ़ाई की। यह देख महाराज ने उनको समझाने के लिये अपने विश्वास-पात्र पुरुषों को भेजा। परंतु जब उन्होंने इसकी कुछ भी परवा न की, तब महाराज स्वयं सेना सजाकर उनके मुक़ाबले को चले। परंतु अन्त में शीघ्र ही दोनों भाइयों के बीच मामूली मेल हो गया।

इस झगड़े से निपटकर महाराज ने फिर बीकानेर पर चढ़ाई की[2], और वहाँ पहुँच क़िले के चारों तरफ़ घेरा लगा दिया[3]। जब कुछ दिन बीत जाने पर वहाँ के क़िले की रसद समाप्त हो चली, तब बीकानेरवालों ने, अपने आदमी भेजकर, बखतसिंहजी से सहायता की प्रार्थना की। परंतु राजाधिराज ने बड़े भ्राता के विरुद्ध युद्ध में स्वयं बीकानेरवालों का पक्ष लेना अनुचित समझ, उन आदमियों को जयपुर महाराज जय-सिंहजी के पास भेज दिया। इस पर जयसिंहजी ने सोचा कि यदि बीकानेर पर महा-राज अभयसिंहजी का अधिकार हो गया, तो इनकी ताक़त और भी बढ़ जायगी, और जयपुर तक का बचना कठिन हो जायगा। यह सोच उन्होंने बीस हज़ार सैनिक लेकर जोधपुर पर चढ़ाई कर दी। इसकी सूचना पाते ही, वि० सं० १७९७ (ई० सन्

१. ख्यातों में लिखा है कि वि० सं० १७९५ (ई० सन् १७३८) मे महाराज की आज्ञा से राठोड़-वाहिनी ने भिणाय की तरफ़ चढ़ाई कर गौड़ अमरसिंह से राजगढ़ और सावर के शक्तावतों से घटियाली, पीपलाद और चौसल आदि छिन लिए थे। अन्त में शक्तावतों ने दस हज़ार रुपये देकर इनसे सुलह कर ली।

२. उस समय वहाँ पर ज़ोरावरसिंहजी का राज्य था।

३. बीकानेर-कौंसिल के मेम्बर मुंशी सोहनलाल के लिखे उक्त रियासत के इतिहास में लिखा है कि:-

(अभयसिंह ने) शहर बीकानेर पर हमला करके उसके एक हिस्से को तीन पहर तक लूटा। एक लाख रुपये का माल ग़नीमत में उसके हाथ लगा। राजा अभयसिंह का डेरा मन्दिर लक्ष्मीनाथजी के पास पुराने क़िले की जगह था, आदि (देखो पृ० १६६)। (इस इतिहास में जहाँ-जहाँ बीकानेर के इतिहास का नाम आया है, वहाँ-वहाँ इसी इतिहास से तात्पर्य है)।

१७४१) में, महाराज अभयसिंहजी बीकानेर का घेरा उठाकर जोधपुर चले आए[1]। इसी गड़बड़ में मौका पाकर बख़्तसिंहजी ने फिर मेड़ते पर अधिकार कर लिया[2]। परंतु अन्त में दोनों भाइयों के आपस में फिर सुलह हो गई। जयपुर-महाराज भी कुछ दिन जोधपुर में रहकर और भंडारी रघुनाथ के समझाने पर फ़ौज ख़र्च के रुपये वसूल कर वापस लौट गए[3]।

इसके बाद वि० सं० १७९८ के ज्येष्ठ (ई० सन् १७४१ की मई) में महाराज ने जयपुरवालों से बदला लेने का इरादा किया, और इसकी सूचना बख़्तसिंहजी के पास भी भेज दी। इस पर उन्होंने अजमेर पहुँच उस पर अधिकार कर लिया। जैसे ही आगरे में राजा जयसिंहजी को जोधपुरवालों के अजमेर पर अधिकार कर जयपुर पर आक्रमण करने के विचार की सूचना मिली, वैसे ही वह ५०,००० सवारों को लेकर इनके मुक़ाबले को चल पड़े। परंतु अभी महाराज अभयसिंहजी का मुकाम रीयाँ में ही था कि राजाधिराज बख़्तसिंहजी को शत्रु-सैन्य के (अजमेर के पास) गँगवाना नामक स्थान पर पहुँचने का समाचार मिला। इस पर वह महाराज के आने की राह न देख अकेले ही जयपुर की सेना से जा भिड़े[4]। ख्यातों से ज्ञात

१. बीकानेर के इतिहास मे इस घेरे का तीन महीने और पाँच दिन रहना लिखा है (देखो पृ० १६८)।

मारवाड़ की ख्यातों में महाराज का सावन सुदी ४ को जोधपुर पहुँचना लिखा है।

२. किसी-किसी ख्यात में लिखा है कि मेल करते समय महाराज ने बख़्तसिंहजी की इच्छा के अनुसार मेड़ते के बदले जालोर का प्रांत उनको दे दिया था।

३. ख्यातों में लिखा है कि जोधपुर में मुकाबला होने के पूर्व ही सुलह होजाने से जयपुर वालों को मिथ्याभिमान होगया था। इसीसे उनके लौटने के समय भखरी के ठाकुर मेड़तिया केसरीसिंह ने उनका गर्व मिटाने के लिये बड़ी वीरता से इनका सामना किया। इस विषय का यह सोरठा प्रसिद्ध है:-

केहरिया करनाल, जो न जुडत जयसाह सूँ।
आ मोटी अवगाल, रहती सिर मारूधरा॥

४. किसी-किसी ख्यात मे लिखा है कि जयसिंहजी ने जोधपुर से लौटते हुए अजमेर पर अधिकार कर लिया था। इसी से बख़्तसिंहजी ने वहाँ पहुँच उनके आदमियों को भगा दिया। श्रीयुत सारडा ने अपने 'अजमेर' नामक इतिहास में लिखा है:-

ई० सन् १७३१ (वि० सं० १७८८) के कुछ काल बाद भरतपुर के जाटों ने राजा चूडामन की अधीनता में आगरे पर आक्रमण शुरू कर दिए। बादशाह ने वहाँ की रक्षा का भार जयपुर-नरेश

होता है कि यद्यपि उस समय बख़तसिंहजी के पास केवल ५,००० और जयसिंहजी के पास क़रीब ५०,००० सैनिक थे, तथापि उन्होंने बड़ी वीरता से जयपुरवालों पर आक्रमण किया। एक बार तो जयपुरवालों के पैर ही उखड़ गए थे। परंतु बख़तसिंहजी

जयसिंहजी को सौंप अजमेर का शासन भी उन्हीं के अधिकार में दे दिया। परन्तु ई० सन् १७४० (वि० सं० १७९७) में महाराजा अभयसिंहजी और उनके छोटे भ्राता बख़तसिंहजी ने जयपुर और अजमेर पर चढ़ाई करने का इरादा किया। इसी के अनुसार बख़तसिंहजी ने जाकर अजमेर पर अधिकार कर लिया। इस कार्य में भिणाय और पिसाँगण के राठोड़-शासकों ने भी उन्हें सहायता दी थी। जब इसकी सूचना जयसिंहजी को मिली, तब वे ५०,००० सैनिकों को लेकर आगरे से उनके मुक़ाबले को चले। परन्तु उनके गँगवाना स्थान पर पहुँचने पर, ई० सन् १७४१ की ८ जून (वि० सं० १७९८ की आषाढ़-सुदी ६) को अकेले बख़तसिंहजी ने केवल ५,००० सवारों को साथ लेकर जयपुर-नरेश का सामना किया। इसके बाद वह पुष्कर में अपने बड़े भ्राता अभयसिंहजी के पास चले गए। अनंतर दोनों भाइयों ने मिलकर फिर (अजमेर से ४ कोस पूर्व पर के) लाडपुरा नामक गाँव में जयसिंहजी की सेना को जा घेरा। परन्तु इस वार के हमले में जयसिंहजी ने अपने को राठोड़ों से लोहा लेने में असमर्थ समझ, रघुनाथ भंडारी के द्वारा, संधि करली। इसी के अनुसार जयसिंहजी ने परबतसर, रामसर, अजमेर आदि के सात परगने अभयसिंहजी को सौंप दिए। परन्तु फिर भी अजमेर के क़िले पर जयसिंहजी का ही अधिकार रहा। अतः ई० सन् १७४३ के अक्टोबर (वि सं० १८०० के कार्त्तिक) में उनके मरने पर अभयसिंहजी ने सेना भेज कर उस पर अधिकार कर लिया। इसी के साथ राजा सूरजमल गौड़ से राजगढ़ भी छीन लिया।

इसके बाद सवाई राजा जयसिंहजी के उत्तराधिकारी राजा ईश्वरीसिंहजी ने फिर से अजमेर पर अधिकार करने के लिये चढ़ाई की। इसकी सूचना पाते ही महाराजा अभयसिंहजी अपने छोटे भ्राता बख़तसिंहजी के साथ वहां जा पहुँचे, और इन्होंने अजमेर की रक्षा का पूरा-पूरा प्रबन्ध कर लिया। यहीं पर कोटे का भट्ट गोविंदराम भी ५,००० सवारों के साथ आकर महाराज के साथ हो गया। अभयसिंहजी के पास उस समय ३०,००० सवार हो गए थे। अतः ईश्वरीसिंहजी के (अजमेर से ८ कोस पर के) ढानी नामक स्थान पर पहुँचने पर दोनों तरफ़ से युद्ध की तैयारी हुई। परन्तु इसी बीच जयपुर के रायमल और जोधपुर के पुरोहित जग्गू (जगन्नाथ) ने बीच में पड़ दोनों नरेशों में संधि करवा दी (देखो पृ० १६७-१६६)।

परन्तु वास्तव में चूडामन जाट हि० सन् ११३३ (वि० सं० १७७८=ई० सन् १७२१) में ही मर चुका था। अतः ई० सन् १७३१ में वह इस उपद्रव में कैसे शरीक हुआ होगा? (देखो लेटर मुग़ल्स, भा० २, पृ० १२२ और ऑरियंटल बायोग्राफ़िकल डिक्शनरी, पृ० ११५)।

कर्नल टॉड ने गँगवाने के युद्ध का वर्णन इसप्रकार किया है:-

जैसे ही दोनों तरफ़ की सेनाएँ एक दूसरी के पास पहुँचीं, वैसे ही बख़तसिंह ने अपनी सेना लेकर आँबेर की विशाल-वाहिनी पर हमला कर दिया। इसके बाद वह तलवार की धार और भाले की नोक से शत्रु-सैन्य को नष्ट करता और चीरता हुआ उसके भीतर प्रवेश करने लगा। परन्तु जिस समय उसने मुड़कर देखा, उस समय उसके साथ के सवारों में से केवल ६० सवार ही बाक़ी बचे

के भी बहुत-से वीर मारे जा चुके थे, इसलिये वहाँ पर अधिक ठहरना हानिकारक समझ वह रीयाँ में महाराज के पास चले आए। इसके बाद फिर शीघ्र ही दोनों भाइयों ने मिलकर दुबारा राजा जयसिंहजी पर चढ़ाई की। परंतु जयसिंहजी हाल में ही राठोड़ों के बाहु-बल की परीक्षा कर चुके थे, इसलिये उन्होंने महाराज से मेल कर लेने में ही अपना हित समझा, और इसीसे मारवाड़ के परबतसर आदि सातों परगने, जिन पर उन्होंने पहली बार की चढ़ाई के समय अधिकार कर लिया था, महाराज को सौंप दिए[1]। इसके साथ ही हाल के गँगवाने के युद्ध में हाथ लगी बख़तसिंहजी की सेना की दो तोपें और मुरलीमनोहरजी की मूर्ति-सहित हाथी[2] भी वापस देकर इनसे संधि कर ली। इसके बाद महाराना जगत-

थे। ऐसे अवसर पर यद्यपि गजसिंहपुरे के ठाकुर ने पीछे के जंगल की तरफ़ इशारा कर उससे उधर लौट चलने का आग्रह किया, तथापि राठोड़-वीर ने पीछे पैर रखने से साफ़ इनकार कर दिया, और सामने ही जयपुर-नरेश जयसिंहजी के पचरंगे झंडे को देख उस पर हमला कर दिया। इस पर चतुर कुंभानी ने, जो राजा जयसिंह और उनके झंडे के पास ही खड़ा था, उन्हें (जयसिंहजी को) शीघ्र ही वहाँ से टल जाने की सलाह दी। इसके अनुसार वह शत्रु के सामने पीठ दिखाना लज्जा-जनक समझ बाजू की ओर के खंडेले की तरफ़ निकल गए। परन्तु रणांगण छोड़ते समय उनके मुख से आप-ही-आप ये शब्द निकल पड़े:-

"यद्यपि आज तक मैंने १७ युद्धों में भाग लिया है, तथापि आज से पहले एक भी युद्ध ऐसा नहीं हुआ, जिसमें आज के युद्ध की तरह केवल तलवार के बल से ही विजय का फ़ैसला हुआ हो।"

कर्नल टॉड ने आगे लिखा है कि इस प्रकार सफलताओं से पूर्ण आयु व्यतीत करनेवाले राजस्थान के एक सबसे ज़बरदस्त, विद्वान् और बुद्धिमान् नरेश को मुट्ठी-भर वीरों के सामने से इस बेइज़्ज़ती के साथ हटना पड़ा'। इससे यह कहावत और भी पुष्ट हो गई—

"युद्ध में एक राठोड़ ने दस कछवाहों की बराबरी की।"

इसी के आगे कर्नल टॉड जयपुर-नरेश जयसिंहजी के कवियों द्वारा की गई बख़तसिंहजी की तारीफ़ के विषय में इस प्रकार लिखता है:-

"Jai Singh's own bards could not refrain from awarding the meed of valour to their foes, and composed the following stanzas on the occasion: "Is it the battle cry of Kali, or the war-shout of Hanumanta, or the hissing of Seshnag, or the denunciation of Kapaliswar? Is it the incarnation of Narsingh, or the darting beam of Surya? or the death-glance of the Dakini? or that from the central orb of Trinetra? Who could support the flames from this volcano of steel, when Bakhta's sword became the sickle of time?"

(ऐनाल्स ऐंड ऐंटिकिटीज़ ऑफ़ राजस्थान (क्रुक-संपादित), भा० २, पृ० १०५०-१०५१)।

१. ख्यातों में इन्हीं के साथ 'केकड़ी' का भी वापस देना लिखा है।

२. राजाधिराज बख़तसिंहजी को मुरलीमनोहरजी का इष्ट था। इसी से उनकी मूर्ति, हाथी के हौदे में बिठलाई जाकर, युद्ध में साथ रक्खी जाती थी। यही हाथी गँगवाने के युद्ध

सिंहजी (द्वितीय) ने बीच में पड़ इस संधि को पक्की करने के लिये दोनों पक्षों के बीच मित्रता करवा दी । यह घटना वि० सं० १७९८ (ई० सन् १७४१) की है ।

वि० सं० १८०० (ई० सन् १७४३) में[1] जयपुर-नरेश जयसिंहजी का स्वर्गवास हो गया, और उनके उतराधिकारी राजा ईश्वरीसिंहजी वहाँ की गद्दी पर बैठे[2] । इसी वर्ष महाराज अभयसिंहजी ने सेना भेजकर अजमेर के क़िले पर अधिकार कर लियाँ[3] । यह समाचार सुन जयपुर-नरेश ईश्वरीसिंहजी ने अजमेर पर चढ़ाई की । इसी समय भट्ट गोविंदराम ने कोटे से ५,००० सवारों के साथ आकर महाराज का पक्ष ग्रहण किया । परंतु अन्त में विना लड़े ही दोनों पक्षों के बीच संधि हो गई । इस से अजमेर महाराजा अभयसिंहजी के अधिकार में ही रह गया । यह घटना वि० सं० १८०१ (ई० सन् १७४४) की है ।

वि० सं० १८०४ (ई० सन् १७४७) में महाराज ने बीकानेर पर फिर एक फ़ौज भेजी । उस समय वहाँ पर स्वर्गवासी महाराजा ज़ोरावरसिंहजी के चचा आनन्दसिंहजी के द्वितीय पुत्र गजसिंहजी का अधिकार था । अतः महाराज की सेना को आई देख महाराज गजसिंहजी के बड़े भ्राता अमरसिंहजी भी उससे आ मिले[4] । इस पर राजा गजसिंहजी ने बड़ी वीरता से इनका सामना किया । यह घटना श्रावण (जुलाई) महीने की है । इसके बाद महाराज ने एक सेना वहाँ और भेज दी[5] । परन्तु कुछ काल बाद ही दोनों पक्षों के बीच संधि हो गई । इससे महाराज की सेना जोधपुर लौट आई ।

में भड़ककर शत्रु-सेना में चला गया था । इसी प्रकार राजाधिराज की सेना के क़रीब-क़रीब सारे वीरों के मारे जाने के कारण उनकी दो तोपें भी जयपुरवालों के हाथ लग गई थीं ।

१. ख्यातों में इस घटना का आश्विन सुदी १४ को होना लिखा है ।

२. क्रॉनोलॉजी ऑफ़ मॉडर्न इंडिया, पृ० १८३ ।

३. ख्यातों में लिखा है कि इसी समय महाराज के सेनापति ने राजा किशोरसिंहजी को १२ गाँवों-सहित राजगढ़ का अधिकार सौंप दिया था । उनमें यह भी लिखा है कि महाराज की आज्ञा से राजा किशोरसिंह और पंचोली बालकृष्ण ने जाकर राव उम्मैदसिंहजी को बूँदी पर अधिकार करने में सहायता दी थी ।

४. 'बीकानेर की तवारीख़' में अमरसिंह का महाराज के पास सहायता के लिये अजमेर आना और उसी के लिये महाराज का बीकानेर पर फ़ौज भेजना लिखा है । उसमें यह भी लिखा है कि अंत में उसे असफल होकर लौटना पड़ा था (देखो पृ० १७३-१७५) ।

५. अगली सेना के सेनापति भंडारी रत्नसी के मारे जाने से यह नई सेना भेजी गई थी ।

इसी वर्ष के माघ (ई० सन् १७४८ की जनवरी) में अहमदशाह दुर्रानी ने पंजाब पर चढ़ाई की[1]। यह देख बादशाह ने महाराजा अभयसिंहजी और राजा बख़्तसिंहजी को अपनी सहायता के लिये दिल्ली बुलवाया। यद्यपि महाराज राज्य के कार्यों में लगे होने से उधर न जा सके, तथापि राजाधिराज बख़्तसिंहजी वहाँ जा पहुँचे।

इसके बाद वि० सं० १८०४ की फागुन बदी ५ (ई० सन् १७४८ की ८ फ़रवरी) को बादशाह ने उन्हें शाहज़ादे अहमदशाह[2] के साथ शत्रुओं के मुक़ाबले को भेजा। सरहिंद में युद्ध होने पर अफ़ग़ान हारकर भाग गए, और लाहौर पर फिर मुहम्मदशाह का अधिकार हो गया।

वि० सं० १८०५ की वैशाख बदी १४ (ई० सन् १७४८ की १५ अप्रेल[3]) को बादशाह मुहम्मदशाह मर गया, और उसका पुत्र अहमदशाह दिल्ली के तख़्त पर बैठा। इसके बाद वि० सं० १८०५ की सावन सुदी १ (ई० सन् १७४८ की १५ जुलाई) को उसने राजाधिराज बख़्तसिंहजी को गुजरात की सूबेदारी दी[4]। परन्तु उस समय चारों तरफ़ मरहटों के आक्रमण हो रहे थे। अतः उन्होंने गुजरात जाना उचित न समझा, और वह दिल्ली से लौटकर जोधपुर चले आए[5]। यहाँ पर कुछ दिन बाद ही फिर महाराज और बख़्तसिंहजी के बीच मनोमालिन्य उठ खड़ा हुआ[6]। परन्तु शीघ्र ही मल्हारराव ने बीच में पड़ दोनों में मित्रता करवा दी।

इसी वर्ष जयपुर-नरेश ईश्वरीसिंहजी और उनके छोटे भाई माधोसिंहजी के बीच झगड़ा उठ खड़ा हुआ। इस पर मल्हारराव होल्कर ने माधोसिंहजी और बूँदी के उम्मैदसिंहजी का पक्ष लेकर जयपुर पर चढ़ाई की। इस समय महाराना जगतसिंहजी

१. क्रॉनोलॉजी ऑफ़ मॉडर्न इन्डिया, पृ० १८८।

२. क्रॉनोलॉजी ऑफ़ मॉडर्न इन्डिया, पृ० १८८। (यद्यपि उसमें उस दिन १८ फ़रवरी का होना लिखा है, तथापि गणना से १६ सफ़र को ८ फ़रवरी आती है)।

३. 'क्रॉनोलॉजी ऑफ़ मॉडर्न इन्डिया' में उस दिन हि० सन् ११६१ की २७ रबिउल आख़ीर को ई० सन् १७४८ की २७ अप्रेल का होना लिखा है। (देखो पृ० १८८)।

४. बॉबे गज़ेटियर, भा० १, खं० १, पृ० ३३२।

५. किसी-किसी ख्यात में लिखा है कि इसी समय महाराज ने बख़्तसिंहजी से जालोर लेकर उसकी एवज़ में उन्हें डीडवाने का प्रांत दिया था।

६. ख्यातों में साँभर, डीडवाने और जालोर के बारे में मनोमालिन्य होना लिखा है।



महाराजा अजितसिंहजी का स्मारक, मंडोर

यह वि० सं० १८६० (ई० स० १८०३) में बनकर तैयार हुआ था।

(द्वितीय) की प्रार्थना पर महाराज ने भी अपने दो हज़ार सवार रीयाँ ठाकुर शेरसिंह और ऊदावत कल्याणसिंह के साथ माधोसिंहजी की सहायता को भेज दिए[1]।

वि० सं० १८०६ की आषाढ सुदी १५ (ई० सन् १७४९ की १९ जून) को अजमेर में महाराजा अभयसिंहजी का स्वर्गवास हो गया।

महाराजा अभयसिंहजी[2] अपने पिता के समान ही वीर, साहसी, बुद्धिमान् और दानी थे[3]।

महाराजा अभयसिंहजी के महाराजकुमार का नाम रामसिंहजी था[4]।

महाराज अभयसिंहजी ने निम्न-लिखित स्थान बनवाए थे:—

अभयसागर तालाब (जोधपुर के चाँदपोल दरवाज़े के बाहर), चौखाँ गाँव का बग़ीचा, अठपहलू कूँआ, कोट और महल (इन महलों का बनना प्रारंभ होकर ही रह गया था), महाराजा अजितसिंहजी का देवल (यह मंडोर में है। पर उनके समय

१. इस युद्ध में ईश्वरीसिंहजी की पराजय हुई। इसी से उन्हे उम्मैदसिंहजी को बूंदी और माधोसिंहजी को टोंक के ४ परगने देने पड़े। (राजपूताने का इतिहास, खण्ड ३ पृ० ६४७)।

२. किशनगढ़ नरेश महाराजा राजसिंहजी के चतुर्थ पुत्र बहादुरसिंहजी पर महाराज की पूर्ण कृपा थी।

३. महाराज ने शायद निम्न-लिखित ७ गाँव दान दिए थे:-

१. आलावास, २. लोलावस (जोधपुर परगने का) ३. कूँपड़ावास (बीलाड़ा परगने का) ४. टाटरवा, ५. रॉणावास (मेड़ते परगने का) और ६. चाँचलवा (शेरगढ़ परगने का)। इनमे का पिछला गाँव वि० सं० १७८६ मे और बाक़ी के वि० सं० १७८१ (ई० सन् १७२४) मे दिए गए थे। इनके अलावा वि० सं० १७८६ (ई० सन् १७२९) मे इन्होंनें गोसाईजी को कोटे से बुलवाकर चौपासनी नामक गाँव दिया था, और साथ ही उनके लिये मारवाड़ के प्रत्येक गाँव के पीछे १ रुपया लाग का नियत कर दिया था।

४. वि० सं० १७८२ की फागुन बदी ६ के महाराज की तरफ़ से लिखे गए एक पट्टे मे इनके महाराजकुमार का नाम ज़ोरावरसिंह लिखा है (यह बात पहले भी यथास्थान फ़ुटनोट मे लिखी जा चुकी है)।

तक यह अधूरा ही रह गया था। इसीसे बाद में वि० सं० १८६० (ई० सन् १८०३) में समाप्त हुआ), मंडोर का दरवाज़ा (डेवढ़ी) और उस पर का मकान, देवताओं की मूर्तियाँ (जो महाराजा अजितसिंहजी की बनवाई पाबू आदि वीरों की मूर्तियों के पास ही पहाड़ काटकर बनवाई गई थीं), उन मूर्तियों का दालान, जोधपुर के क़िले का पक्का कोट, गोल की तरफ़ की पूर्वी बुर्जें (ये अधूरी ही पड़ी हैं, और अभयशाही बुर्जों के नाम से प्रसिद्ध हैं), क़िले में का चौकेलाव का कूँआ, बाग़ और फ़तहपौल (यह दरवाज़ा अहमदाबाद-विजय की यादगार में बनवाया गया था। इस युद्ध में विजय प्राप्त करने के बाद महाराज बहुत-से द्रव्य के साथ ही अनेक बहुमूल्य वस्तुएँ भी जोधपुर में लाए थे। उनमें का 'दल-बादल' नामक बड़ा शामियाना आज तक बड़े-बड़े दरबारों के समय काम में लाया जाता है, और 'इंद्रविमान' नामक हाथी का रथ सूरसागर नामक स्थान में रक्खा हुआ है)।

१. जोधपुर के क़िले में का फ़तहमहल पर का फूलमहल और कछवाहीजी का महल भी इन्हीं के बनवाए बतलाए जाते हैं।

२८. महाराजा रामसिंहजी

यह मारवाड़-नरेश महाराजा अभयसिंहजी के पुत्र थे। इनका जन्म वि० सं० १७८७ की प्रथम भादों बदी १० (ई० सन् १७३० की २८ जुलाई) को हुआ था; और पिता की मृत्यु के बाद वि० सं० १८०६ की सावन सुदी १० (ई० सन् १७४९ की १३ जुलाई) को यह मारवाड़ की गद्दी पर बैठे। यद्यपि यह भी अपने पिता के समान ही वीर प्रकृति के पुरुष थे, तथापि उस समय केवल उन्नीस वर्ष की अवस्था होने के कारण इनके स्वभाव में चंचलता अधिक थी। इसी से इनके राज्याधिकार प्राप्त कर लेने पर, मुँह-लगे लोगों के कहने-सुनने से, इनके और इनके चचा राजाधिराज बख़्तसिंहजी के बीच मनोमालिन्य हो गया और यह उनको जालोर का प्रांत लौटा देने के लिये दबाने लगे। इसी बीच मॉंडा ठाकुर कुशलसिंह, चंडावल ठाकुर कूँपावत पृथ्वीसिंह, रायण ठाकुर बनैसिंह आदि मारवाड़ के कई सरदार इनसे अप्रसन्न हो गए। उनमें मे जब कुछ लोग राजाधिराज बख़्तसिंहजी के पास नागोर पहुँचे, तब उन्होंने बड़े आदर-मान के साथ उन्हें अपने पास रख लिया। इससे अप्रसन्न होकर महाराजा रामसिंहजी ने नागोर पर चढ़ाई की। यह देख राजाधिराज बख़्तसिंहजी ने भी अपने अधीन के प्रत्येक

---

१. कुछ ख्यातों से ज्ञात होता है कि महाराजा रामसिंहजी ने, अपने राजतिलक के सम्बन्ध में आया हुआ, अपने चचा की तरफ़ का 'टीका' (उपहार) यह कहकर लौटा दिया था कि जब तक नागोर का प्रांत हमें नहीं सौंपा जायगा तब तक हम यह स्वीकार नहीं करेंगे।

२. ख्यातों से ज्ञात होता है कि अपनी मृत्यु के पूर्व महाराजा अभयसिंहजी ने रीयाँ के ठाकुर शेरसिंह से राजकुमार रामसिंहजी के पक्ष मे बने रहने की प्रतिज्ञा करवा ली थी। परंतु एक बार रामसिंहजी ने उस ठाकुर के एक सेवक को ले लेने का हठ किया। इस कारण वह भी अप्रसन्न होकर अपनी जागीर मे चला गया। अन्त में जब महाराजा रामसिंहजी ने नागोर पर चढ़ाई की, तब कोसाने के चांदावत देवीसिंह को भेजकर शेरसिंह को नागोर की इस चढ़ाई में साथ देने के लिये सहमत कर लिया और इसके बाद यह स्वयं रीयाँ जाकर उसे साथ ले आए।

समुचित स्थान पर इनके मुकाबले का प्रबंध करवा दिया[1]। इसीसे वहाँ पहुँचने पर महाराज की सेना के आगे बढ़ने में जगह-जगह बाधा उपस्थित होने लगी। फिर भी महाराज अपनी वीर-वाहिनी के साथ, बड़ी वीरता से शत्रुओं का दमन करते और उनकी उपस्थित की हुई बाधाओं को हटाते हुए, नागोर के पास जा पहुँचे। इस पर इनके बढ़ते हुए दल का मार्ग रोकने के लिये स्वयं राजाधिराज को आगे आकर मुक़ाबला करना पड़ा। कुछ दिनों तक तो दोनों तरफ़ के राठोड़-वीर आपस में लड़कर अपने ही कुटुंबियों और मित्रों के रक्त से रणभूमि को सींचते रहे। परंतु अन्त में बख़तसिंहजी के जालोर का प्रांत लौटा देने की प्रतिज्ञा कर लेने पर महाराज अपनी सेना के साथ मेड़ते लौट आए[2]। इसके कुछ दिन बाद ही राजाधिराज बख़तसिंहजी, जालोर लौटाने का विचार त्यागकर, बादशाह अहमदशाह की सहायता प्राप्त करने के लिये दिल्ली चले गए। परंतु उस समय मरहटों के उपद्रव के कारण दिल्ली की बादशाहत नाम-मात्र की रह गई थी। इसलिये उधर से सहायता मिलना असंभव था। यह देख राजाधिराज ने 'अमीरुलउमरा' सलाबतख़ाँ[3] (ज़ुल्फ़िक़ारजंग) को अजमेर पर अधिकार करने में, मरहटों के विरुद्ध, सहायता देने का वादा कर, उससे जोधपुर पर अधिकार करने में सहायता माँगी। जैसे ही इस घटना की सूचना महाराजा रामसिंहजी को मिली, वैसे ही इन्होंने भी जयपुर-नरेश ईश्वरीसिंहजी[4] से सहायता प्राप्त करने का प्रबंध कर लिया। इसी बीच रास ठाकुर ऊदावत केसरीसिंह, नींबाज ठाकुर कल्याण-

१. राजाधिराज बख़तसिंहजी ने सोचा कि मार्ग मे जिस समय महाराजा रामसिंहजी की सेना देसवाल आदि की गढ़ियों पर अधिकार करने में उलझी होगी, उस समय पीछे से आक्रमण कर उसका शिविर और सामान आसानी से लूट लिया जायगा। परंतु महाराज के साथ के दूरदर्शी सरदारों ने ऐसा अवसर ही न आने दिया।

२. ऐसा भी लिखा मिलता है कि जयपुर-नरेश ईश्वरीसिंहजी ने कह सुनकर यह प्रबंध कर दिया था कि बखतसिंहजी को जालोर के बदले अजमेर प्रांत के कुछ स्थान सौंप दिए जायँ और जालोर की मोरचेबंदी को ठीक करने में जो तीन लाख रुपये खर्च हुए हैं, वे भी जोधपुर के ख़ज़ाने से दे दिए जायँ। परंतु जब तक यह रुपया न दिया जाय, तब तक जालोर पर बख़तसिंहजी का ही अधिकार रहे। (तवारीख राज श्री बीकानेर, पृ० १७७)।

३. विक्रम-संवत् १८०५ (ईसवी सन् १७४८) मे बादशाह अहमदशाह ने इसे अपना 'मीर बख्शी' बनाया था।

४. जयपुर-नरेश महाराजा ईश्वरीसिंहजी की कन्या का विवाह महाराजा रामसिंहजी मे होना निश्चित हो चुका था। इसी मे वह इनकी सहायता को तैयारहुए थे।



२८. महाराजा रामसिंहजी

वि० सं० १८०९-१८०८ (ई० स० १७४९-१७५१)

सिंह, आसोप ठाकुर कूँपावत कनीराम और आउवा ठाकुर चाँपावत कुशलसिंह महाराज से नाराज होकर नागोर चले गए; और बखतसिंहजी के दिल्ली में होने के कारण उनके राजकुमार विजयसिंहजी को साथ लेकर जोधपुर-राज्य के बीसलपुर, काकेलाव, बनाड़ आदि गाँवों में उपद्रव करने लगे। कुछ दिन बाद इसी प्रकार पोकरन ठाकुर चाँपावत देवीसिंह और पाली ठाकुर चाँपावत पेमसिंह भी महाराज से अप्रसन्न होकर राजकुमार विजयसिंहजी के पास जा पहुँचे। बीकानेर-नरेश गजसिंहजी और रूपनगर (किशनगढ़) के स्वामी बहादुरसिंहजी ने पहले से ही राजाधिराज का पक्ष ले रक्खा था। परंतु जयपुर-नरेश ईश्वरीसिंहजी और मल्हारराव होल्कर, महाराज रामसिंहजी की तरफ़ थे। बखतसिंहजी के दिल्ली से लौट आने पर पीपाड़ के पास दोनों पक्षों के बीच घमसान युद्ध हुआ। ख्यातों में लिखा है कि इस युद्ध के समय बखतसिंहजी ने, सलाबतख़ाँ को समझाकर, सेना-संचालन का भार अपने ज़िम्मे लेना चाहा। परन्तु वह इसमें अपना अपमान समझ, सहमत न हुआ। इससे युद्ध के समय महाराज रामसिंहजी की सेना के प्रहार से बहुत-सी यवन-सेना नष्ट होगई और रण-खेत महाराजा रामसिंहजी के ही हाथ रहा। यह घटना विक्रम-संवत् १८०७ (ईसवी सन् १७५०) की है।

'सहरुल मुताख़रीन'[१] में इस घटना का हाल इस प्रकार लिखा है:–

"हि० स० ११६१ (वि० सं० १८०५=ई० स० १७४८) में राजा बख़तसिंह, जो अपने समय के राजपूताने के सब नरेशों में श्रेष्ठ था और जिसकी वीरता और बुद्धिमानी उस समय के सब राजाओं से बढ़ी-चढ़ी थी, दिल्ली आकर बादशाह अहमदशाह से मिला। वह अपने भतीजे राजा रामसिंह से जोधपुर, मेड़ता आदि का अधिकार छीनना चाहता था। इसलिये उसने, हर तरह की मदद देने का वादा कर, ज़ुल्फ़िक़ारजंग को अजमेर की सूबेदारी लेने के लिये तैयार किया और इसके बाद वह नागोर को लौट गया। कुछ समय बाद जब 'अमीरुल उमरा' (ज़ुल्फ़िक़ारजंग) को अजमेर की सूबेदारी मिली, तब वह अगले साल के अख़ीर (वि० सं० १८०६=ई० सन् १७४९) में कई अमीरों के साथ चौदह-पंद्रह हज़ार सैनिक लेकर दिल्ली से रवाना हुआ। मार्ग में यद्यपि साथ के अमीरों ने उसे बहुत मना किया, तथापि उसने नीमराने के स्वामी जाट-नरेश सूरजमल पर चढ़ाई कर दी। परंतु अन्त में, युद्ध में हार जाने के कारण

१. सहरुल मुताख़रीन, भा० ३, पृ० ८८३-८८५।

उसे सूरजमल से संधि करनी पड़ी। इसके बाद जब वह (ज़ुल्फ़िक़ार) नारनौल पहुँचा, तब राजा बख़तसिंह भी पूर्व-प्रतिज्ञानुसार वहाँ चला आया। उसके आने का समाचार पाते ही ज़ुल्फ़िक़ार सामने जाकर उसे लिवा लाया। उस समय राजा ने उसे जाट-नरेश सूरजमल की अधीनता स्वीकार कर लेने के कारण बहुत धिक्कारा। इसके बाद बख़त-सिंह और ज़ुल्फ़िक़ारजंग दोनों अजमेर की तरफ़ रवाना हुए। इनके गोकलघाट के करीब (अजमेर के निकट) पहुँचने पर राजा रामसिंह भी जयपुर के राजा ईश्वरीसिंह के साथ तीस हज़ार सवार लेकर इनके मुक़ाबले को चला। 'अमीरुलउमरा', ज़ुल्फ़िक़ार-जंग राजा बख़तसिंह के साथ पुष्कर, शेरसिंह की रीयाँ और मेड़ते होता हुआ पीपाड़ के पास पहुँचा। यहाँ पर बख़तसिंह ने 'अमीरुल उमरा' को समझाया कि जिस मार्ग से शाही सेना चल रही है, उस मार्ग में रामसिंह का तोपख़ाना लगा है। इसलिये तुमको इधर-उधर का ध्यान छोड़कर मेरे पीछे-पीछे चलना चाहिए। परंतु मूर्ख और अभिमानी ज़ुल्फ़िक़ार ने जवाब दिया कि आदमी एक दफ़ा जिधर मुँह कर लेते हैं फिर उधर से उसे नहीं मोड़ते। इस पर बख़तसिंह को लाचार हो, शत्रु की तोपों की मार से बचने के लिये, ज़ुल्फ़िक़ार की सेना से हटकर चलना पड़ा। अपनी तोपों के पीछे खड़ी राजा रामसिंह की राजपूत-सेना भी ज़ुल्फ़िक़ार की सेना के अपनी मार के भीतर पहुँचने तक धीरज बांधे खड़ी रही। परंतु जैसे ही उसकी फ़ौज राजपूत-सेना की तोपों की मार में आ गई, वैसे ही उसने उस पर गोले बरसाने शुरू कर दिए। इससे ज़ुल्फ़िक़ार के बहुत से सिपाही मारे गए। यह देख मुग़ल-फ़ौज ने भी झटपट अपनी तोपों को ठीक कर युद्ध छेड़ दिया। कुछ देर की गोलाबारी के बाद मुग़ल-सेना को पानी की आवश्यकता प्रतीत होने लगी। परंतु उस मैदान में पानी का कहीं भी पता न था। इससे प्यास के मारे वह और भी घबरा गई। इसके बाद जैसे ही राजा रामसिंह के तरफ़ की गोलाबारी का वेग घटा, वैसे ही वह मैदान छोड़ पानी की तलाश करने लगी, और उसकी खोज में भटकती हुई संयोग से राजा रामसिंह की सेना के सामने जा पहुँची। उसकी यह दशा देख राजपूत सैनिकों ने अपने आदमियों को उसके लिये जल का प्रबन्ध कर देने की आज्ञा दी और उन्होंने कुओं से पानी निकालकर मुग़ल-सैनिकों को और उनके घोड़ों को तृप्त कर दिया। इस प्रकार अपने शत्रुओं को स्वस्थ हुआ देख राजपूतों ने उनसे कहा कि इस समय तुम्हारे और हमारे बीच युद्ध चल रहा है, इसलिये अब तुम्हें यहाँ से शीघ्र भाग जाना चाहिए"।

इसी के आगे 'सहरुल मुताख़रीन' का लेखक लिखता है-"यद्यपि यह घटना अपूर्व है, तथापि मैंने इसे अपने मौसेरे भाई इस्माइलअलीखां की ज़बानी, जो उस समय ज़ुल्फ़िक़ारजंग के साथ था, सुनकर ही लिखा है। इसलिये यह बिलकुल सही है। राजपूतों का यह गुण और उच्च-स्वभाव प्रशंसनीय है। ईश्वर उनको और भी सद्गुण दे'[1]। इसके बाद यद्यपि बखतसिंह ने ज़ुल्फ़िक़ारजंग को हर तरह से समझाकर हिम्मत बँधानी चाही, तथापि वह घबराकर अजमेर की तरफ़ होता हुआ लौट गया। इस युद्ध में मल्हारराव होल्कर का पुत्र[2] और जयपुर-नरेश ईश्वरीसिंह रामसिंह की तरफ़ थे, फिर भी बख़तसिंह ने रसद आदि के संग्रह करने में चतुरता से और युद्ध में वीरता से काम लिया था। परन्तु ज़ुल्फ़िक़ारजंग के इस प्रकार हतोत्साह होकर लौट जाने से उसे भी युद्ध से मुँह मोड़ना पड़ा।"

वि० सं० १८०७ की कार्तिक सुदी ९ (ई० सन् १७५० की २८ अक्टोबर) को बखतसिंहजी ने मेड़ते पर चढाई की[3]। परन्तु इसमें भी उन्हें सफलता नहीं

---

१. شنیده شد که وقت نصف النهار چون توپها نهایت گرم شدند و تائرهٔ حرب افسردگی پذیرفت در افواج راجپوتانه خصوص دران میدان که قلت آب بمرتبهٔ اتم و اکمل است، رفقائی امیر الامرا بنابر بے آبی مضطرب گشته در تفحص آب اکثرے تا نزدیک لشکر رام سنگھ رسیدند — راجپوتیه اثر عطش از سیمائی آنها دریافته از چاه ها بدست ملازمان خود آب کشانیده اسپ و سوار را سیراب گردانیدند، گفتند الحال برگردید که میان ما، شما جنگ است حکایت احوال ذوالفقار جنگ، آب دادن راجپوتیه بدشمنان نهایت صحت دارد — چه سید اسمعیل علی خان بهادر خلف عبد العلی خان برادر خالزاد فقیر دران سفر رفیق، شریک آن لشکر بود — فقیر از زبان او استماع نموده بسلک تحریر کشید این صفت راجپوتان از عجائب اوصاف، محامد اخلاق است او تعالی جمع اصناف امم عالم را صفات حمیده، اخلاق پسندیده کرامت فرماید —

(सहरुल मुताख़रीन, भा० ३, पृष्ठ ८८५)।

२. संभव है, यह खाँडेराव हो, जो वि० सं० १८११ (ई० सन् १७५४) में जाट-नरेश सूरजमल से लड़ता हुआ डीग में मारा गया था।

३. इस अवसर पर महाराजा रामसिंहजी की तरफ़ से रीयाँ के ठाकुर शेरसिंह और राजाधिराज बख़तसिंहजी की तरफ़ के आउवे के ठाकुर कुशलसिंह के बीच बड़ी वीरता से युद्ध हुआ। अन्त में दोनों ही योद्धा आपस में लड़कर वीरगति को पहुंचे। यह युद्ध वि० सं० १८०७ की अगहन सुदी ६ (ई० सन् १७५० की २६ नवम्बर) को हुआ था।

मिली[1]। यह देख उन्होंने बीकानेर-नरेश गजसिंहजी और रूपनगर (किशनगढ़)-नरेश बहादुरसिंहजी को साथ लेकर रायपुर पर आक्रमण किया और वहां के ठाकुर को अधीनस्थ करने के बाद सोजत पर भी अधिकार कर लिया। वि० सं० १८०८ के वैशाख (ई० सन् १७५१ के अप्रेल) में महाराजा रामसिंहजी के और बखतसिंहजी के बीच सलावास में युद्ध हुआ और इसके बाद 'रूपावास' आदि में भी कई लड़ाइयां हुईं। अन्त में जैसे ही महाराज लौटकर जोधपुर पहुँचे, वैसे ही राजाधिराज के मेड़ते की तरफ़ आने की सूचना मिली। इसलिये यह जोधपुर में केवल एक रात रहकर शीघ्र ही मेड़ते जा पहुँचे। इसकी ख़बर पाते ही बखतसिंहजी गगराणे में ठहर गए, और उन्होंने रास-ठाकुर केसरीसिंह की सलाह से, जैतारण होकर बलूँदे पर चढ़ाई की। परन्तु मार्ग में बांजाकूड़ी के मुक़ाम पर बलूँदे के ठाकुर ने स्वयं आकर उनकी अधीनता स्वीकार करली। इसलिये वह उधर न जाकर नींबाज की तरफ़ चले। वहाँ के ठाकुर कल्याणसिंह ने उनका बड़ा आदर-सत्कार किया इसके बाद वह रायपुर होकर बीलाड़े और पाल को लूटते हुए, वि० सं० १८०८ के आषाढ़ (ई० सन् १७५१ के जून) में, जोधपुर पर अधिकार करने के विचार से, रातानाडा-तालाब के स्थान पर आकर ठहरे।

वि० सं० १८०७ (ई० सन् १७५०) में जयपुर-नरेश ईश्वरीसिंहजी का देहान्त हो चुका था। इसलिये महाराजा रामसिंहजी को उस तरफ़ से सहायता मिलनी बंद होगई थी। इधर मारवाड़ के मेड़तिये सरदारों के सिवा करीब-करीब अन्य सभी सरदार महाराज से बदल गए थे। इसी से जोधपुर पर बखतसिंहजी के आक्रमण करने पर कुछ ही देर की लड़ाई के बाद नगर के सिंधी सिपाहियों ने जोधपुर-शहर का सिवानची नामक दरवाज़ा खोल[3] दिया। इस घटना से नगर पर राजाधिराज बखतसिंहजी का अधिकार

१. 'तवारीख़ राज श्री बीकानेर' में इसी वर्ष की अगहन बदी ६ (ई० स० १७५० की ११ नवंबर) को मेड़ते के युद्ध मे रामसिंहजी का हारना लिखा है। (पृ० १७८)। इसी के बाद की लड़ाई में रीयाँ का ठाकुर शेरसिंह मारा गया था।

२. इस विषय का यह दोहा मारवाड़ मे प्रसिद्ध है:—

"रामै सूँ राजी नहीं, दीनो उत्तर देश।
जोधाणो झाला करै, आव धणी बखतेश॥"

३. यह घटना वि० सं० १८०८ की आषाढ़ बदी १० (ई० सन् १७५१ की ७ जून) की है।

हो गया। यह देख क़िलेवालों ने कुछ देर तक तो गोलाबारी कर इनका सामना किया, परन्तु अन्त में वि० सं० १८०८ की सावन बदी २ (ई० सन् १७५१ की २९ जून) को क़िले पर भी राजाधिराज का अधिकार हो गया। जब इस घटना की सूचना महाराजा रामसिंहजी को मिली, तब यह शीघ्र ही जोधपुर की तरफ़ चले। परन्तु राजाधिराज ने नगर के द्वार बंद करवाकर उसकी रक्षा का पूरा-पूरा प्रबंध कर लिया था। इससे नगर को कुछ दिन तक घेर रखने पर भी रामसिंहजी को सफलता न मिली। यह देख यह सिंधिया से सहायता प्राप्त करने के लिये जयपुर की तरफ़ चले गए। वि० सं० १८०९ (ई० सन् १७५२) में सिंधिया की सहायता से रामसिंहजी ने एक बार फिर जोधपुर पर चढ़ाई की। इससे कुछ दिन के लिये अजमेर और फलोदी पर इन (रामसिंहजी) का अधिकार हो गया। परन्तु शीघ्र ही इन्हें उक्त स्थानों को छोड़कर रामसर होते हुए मंदसोर की तरफ़ जाना पड़ा। अन्त में बहुत कुछ चेष्टा करने के बाद बख़तसिंहजी को साँभर का परगना इन्हें सौंप देना पड़ा। वि० सं० १८११ (ई० सन् १८५४) में विजयसिंहजी (बख़तसिंहजी के पुत्र) के समय, मरहटों[3] (जय आपा सिंधिया) की सहायता से, इन्होंने

---

१. नगर में प्रवेश करने पर राजाधिराज ने अपना निवास तलहटी के महलों मे किया था। 'तवारीख़ राज श्री बीकानेर' में लिखा है कि वि० सं० १८०८ की आषाढ़ सुदी ६ (ई० सन् १७५१ की २१ जून) को चार पहर तक जोधपुर-नगर लूटा गया। (पृ० १७८)। परंतु ज्ञात होता है कि इसमें 'बदी' के स्थान मे 'सुदी' और तिथि 'दशमी' के स्थान में 'नवमी' भूल से लिखी गई है।

२. 'तवारीख राज श्री बीकानेर' में लिखा है कि उस समय जोधपुर का क़िला भाटी राजपूतों की देख-रेख मे था (पृ० १७८)। मारवाड़ की ख्यातों मे क़िलेदार का नाम भाटी सुजानसिंह लिखा है। यह लवेरे का ठाकुर था। इस विषय का यह दोहा प्रसिद्ध है:-

"थारो नाम सुजाण थो, अबके हुओ अजाण।
आश्रम चौथे आवियो, औ चूको अवसाण।"

बख़तसिंहजी को क़िला सौंपने मे सांचोर का चौहान मोहकमसिंह भी शरीक था। इसलिये बख़तसिंहजी, इन दोनों से, अपने स्वामी महाराजा रामसिंहजी के साथ विश्वासघात करने के कारण, नाराज़ हो गए थे।

३. ग्रांट डफ़ की 'हिस्ट्री ऑफ़ मरहटाज़' में इस घटना का समय ई० सन् १७५९ (वि० सं० १८१६) लिखा है (भाग १, पृ० ५१३)। यह भूल प्रतीत होती है। वि० सं० १८११ की पौष बदी १० का, रामसिंहजी का एक ख़ास रुक्का मिला है। यह ताउसर (नागोर के निकट) से लिखा गया था। संभव है, उस समय मरहटों के साथ होने से यह उधर भी गए हों।

फिर एक बार अपना गया हुआ राज्य प्राप्त करने की चेष्टा की। परन्तु अन्त में इन्हें मारवाड़ के सिवाना, मारोठ, मेड़ता, सोजत, परबतसर, साँभर और जालोर प्रांत लेकर ही सन्तोष करना पड़ा। वि० सं० १८१३ (ई० सन् १७५६) में अपने अधिकृत प्रांतों के महाराजा विजयसिंहजी द्वारा छीन लिए जाने पर महाराजा रामसिंहजी ने फिर मरहठों से सहायता ली थी। वि० सं० १८२९ की भादों सुदी ६ (ई० स० १७७२ की ३ सितम्बर) को जयपुर में महाराजा रामसिंहजी का स्वर्गवास हो गया[1]।

१. किसी-किसी ख्यात में इनकी मृत्यु की तिथि माघ सुदी ७ (ई० स० १७७३ की ३० जनवरी) भी लिखी मिलती है। कहते हैं कि महाराजा रामसिंहजी ने १ टेला (मेड़ते परगने का) चारणों को और २ बासणी-सेपां (जोधपुर परगने का) पुरोहितों को दिए थे।

महाराजा रामसिंहजी के हाथ से जोधपुर निकल जाने के बाद की घटनाओं का यहां पर संक्षिप्त विवरण ही दिया गया है; क्योंकि उनका विस्तृत विवरण महाराजा बख़तसिंहजी और महाराजा विजयसिंहजी के इतिहासों में लिखा जायगा।

२६. महाराजा बख़तसिंहजी

यह महाराजा अजितसिंहजी के पुत्र और महाराजा अभयसिंहजी के छोटे भाई थे[1]। इनका जन्म वि० सं० १७६३ की भादों बदी ७ (ई० सन् १७०६ की १६ अगस्त) को हुआ था। वि० सं० १८०८ की सावन बदी २ (ई० सन् १७५१ की २१ जून) को इन्होंने अपने भतीजे महाराजा रामसिंहजी को हराकर जोधपुर की गद्दी पर अधिकार कर लिया[2]। इसके बाद ही इनके राजकुमार विजयसिंहजी ने चढ़ाई कर भाद्राजन भी ले लिया।

कुछ दिन बाद जब जय-आपा सिंधिया की सहायता[3] से रामसिंहजी ने अजमेर और फलोदी पर फिर से अधिकार कर लिया, तब इन्होंने मेड़ते से डाबड़े के ठाकुर चाँदावत बहादुरसिंह को एक बड़ी सेना के साथ उधर रवाना किया, और साथ ही रामसिंहजी के साथ के सरदारों के नाम की बनावटी चिट्ठियाँ लिखवाकर, एक सेवक के हाथ, बड़ी चालाकी से, मरहटा फ़ौज के सेनापति, सायबजी पटेल के पास पहुँचवादीं। इससे उसे उन सरदारों के महाराजा बख़तसिंहजी से मिले होने का भ्रम हो गया और वह घबराकर रामसिंहजी को साथ लिए रामसर की तरफ़ चला गया। इसप्रकार राम-सिंहजी के एकाएक मरहटों के साथ चले जाने से उनके साथ के कुछ सरदार तो डर कर अपनी-अपनी जागीरों को लौट गए और कुछ रामसिंहजी के पास रामसर जा पहुँचे। इससे मौक़ा पाकर बहादुरसिंह ने सहज ही अजमेर के क़िले पर अधिकार कर लिया। अन्त में जब सायबजी पटेल को सरदारों के नाम के पत्रों का बनावटी होना ज्ञात हुआ, तब वह बहुत पछताया। परंतु समय हाथ से निकल चुका था। इसलिये वह दक्षिण को चला गया और रामसिंहजी मंदसोर जा बैठे।

१. मआसिरुल उमरा, में लिखा है:-

अजितसिंह के दो लड़के थे। पहला अभयसिंह और दूसरा बख़तसिंह। बाप के मरने पर यही बख़तसिंह मुल्क पर क़ाबिज़ हुआ (भा० ३, पृ० ७५६)।

परंतु उसमें का यह लेख भ्रम-पूर्ण है।

२. इस घटना के पहले का इनका इतिहास महाराजा अजितसिंहजी, अभयसिंहजी और राम-सिंहजी के इतिहासों के साथ दिया जा चुका है।

३. ख्यातों में लिखा है कि आपाजी ने सायबजी पटेल को सेना देकर इनके साथ कर दिया था। परंतु कर्नल टॉड ने महादजी पटेल का सेना लेकर इनके साथ आना लिखा है। (एनाल्स ऐंड ऐंटिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान, भा० २, पृ० १०५८)।

इस झगड़े से छुट्टी पाकर महाराजा बख़तसिंहजी ने जयपुर की तरफ़ यात्रा की। इनके सींवली[1] स्थान पर पहुँचने पर जयपुर-नरेश महाराजा माधवसिंहजी भी सामने आकर इनसे मिले। महाराजा बख़तसिंहजी का विचार था कि यदि जयपुर-नरेश साथ देने को तैयार हों, तो मरहटों पर चढ़ाई कर उन्हें मालवे से भगा दिया जाय। परंतु इस विचार को कार्य-रूप में परिणत करने के पूर्व, वहीं पर, यह बीमार हो गए और वि० सं० १८०९ की भादों सुदी १३ (ई० सन् १७५२ की २१[2] सितंबर) को उसी स्थान पर इनका स्वर्गवास हो गया।

महाराजा बख़तसिंहजी[3] वीर, बुद्धिमान्, नीतिज्ञ और कार्य-कुशल शासक थे। जोधपुर लेने के पूर्व नागोर का प्रबंध भी इन्होंने बड़ी ख़ूबी के साथ किया था। साथ ही वहाँ के क़िले को सुदृढ़ और सुसज्जित करने में भी इन्होंने कोई कसर उठा न रक्खी थी। यद्यपि यह जोधपुर की गद्दी पर बैठने के १३ मास बाद ही स्वर्गवासी हो गए थे, तथापि इन्होंने यहाँ के प्रबंध में भी बहुत कुछ सुधार किए थे। मुरलीमनोहरजी के मंदिर के सामने की और नौ चौकियों की घनी बस्ती के कुछ मकानों और दूकानों को गिरवा-कर वहाँ पर नगर-वासियों के स्वास्थ्य के लिये चौक बनवा दिए थे; और गिराए गए

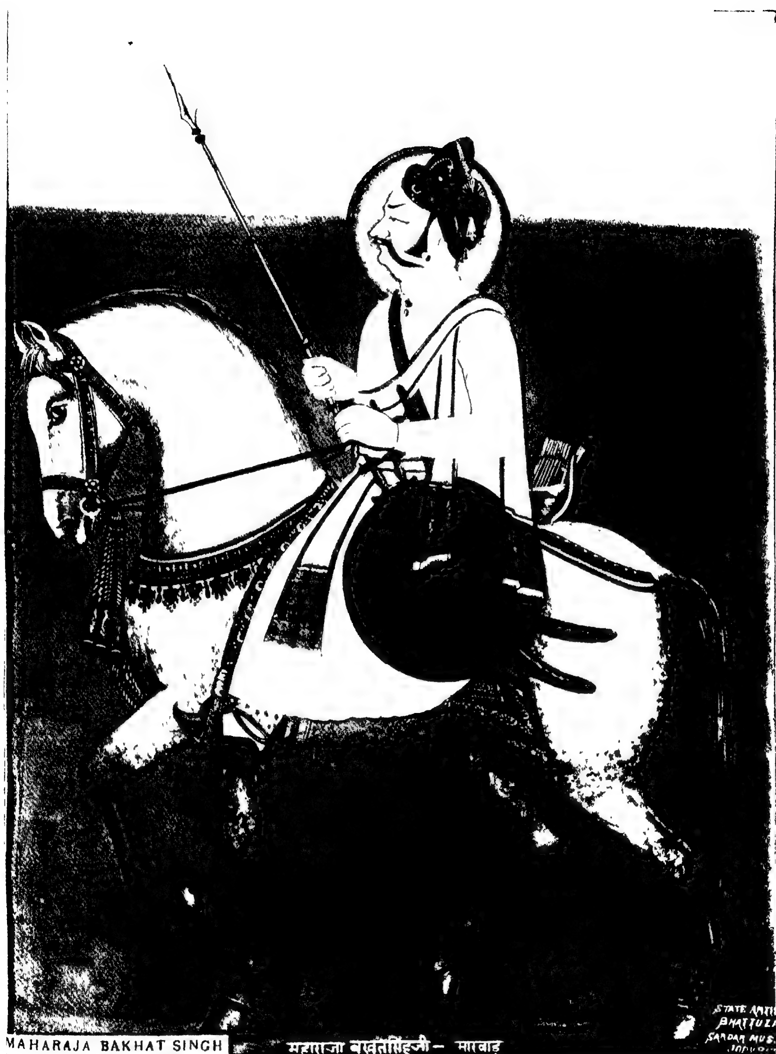
---

१. यह स्थान जयपुर-राज्य में है।

२. ख्यातों में लिखा है कि महाराजा बख़तसिंहजी जयपुर-नरेश महाराजा माधवसिंहजी को साथ लेकर मरहटों पर चढ़ाई करना चाहते थे। मेवाड़-नरेश महाराणा जगतसिंहजी द्वितीय की भी इस कार्य मे सम्मति थी। परंतु जगतसिंहजी का स्वर्गवास तो इनके जोधपुर लेने के पहले ही हो गया, और माधवसिंहजी को इस कार्य में साथ देने का साहस न हुआ। साथ ही उन (माधवसिंहजी) को यह भय हुआ कि बख़तसिंहजी के जयपुर की तरफ़ आने से कहीं उनके राज्य में भी कोई बखेड़ा न उठ खड़ा हो। इसलिये उन्होंने अपनी रानी से, जो किशनगढ़-नरेश की कन्या होने के कारण महाराज की भतीजी थी, कहकर महाराज को उससे मिलने के लिये बुलवाया, और वहाँ पर इन्हें एक ऐसा फूलों का हार पहनवाया, जिसके विषाक्त स्पर्श से यह शीघ्र ही बीमार होकर स्वर्गवासी हो गए।

वि० सं० १८२२ (ई० सन् १७६५) में इनके राजकुमार महाराजा विजयसिंहजी ने उक्त स्थान पर इनका एक स्मारक बनवाया था। यह अब तक विद्यमान है।

३. इन्होंने महाराजा बहादुरसिंहजी को किशनगढ़ पर अधिकार करने में सहायता दी थी। इसीसे बादशाह अहमदशाह के मदद देने पर भी उनके बड़े भ्राता सामंतसिंहजी वहाँ पर अधिकार करने में सफल न होसके।



२६. महाराजा बख़तसिंहजी

वि० सं० १८०८-१८०६ (ई० स० १७५१-१७५२)

मकानों और दूकानों के स्वामियों को हरजाना देकर संतुष्ट कर दिया था। सर्वसाधारण के सुभीते के लिये, शहर के बीच, कोतवाली का स्थान बनवाया था। इसी प्रकार 'मंडी' में की मसजिद गिरवाकर वहाँ पर नाज की बिक्री के लिये एक चौक बनवाया था। राव मालदेवजी के समय की बनी शहरपनाह का घिराव कम होने के कारण उसका फिर से विस्तार करवाया था। यह कार्य इन्होंने अपनी कुशलता से केवल ६ मास में ही संपूर्ण करवा लिया था। साथ ही इन्होंने जोधपुर के क़िले में भी अनेक सुधार किए थे। महाराजा जसवंतसिंहजी (प्रथम) का बनवाया महल गिरवाकर दौलतख़ाने का चौक बनवाया, और लोहापौल के पास के कोठारों को तुड़वाकर वहाँ का मार्ग चौड़ा करवा दिया। इनके अलावा क़िले में की मसजिद हटवाकर ज़नानी डेवढ़ी की नई पौल (दरवाज़ा), नई सूरजपौल, आनंदघनजी का मंदिर आदि स्थान बनवाए।

महाराजा बख़तसिंहजी के महाराजकुमार का नाम विजयसिंहजी था।

महाराजा बखतसिंहजी ने, घटना-वश, चारणों और पुरोहितों से अप्रसन्न होकर उनके अनेक गाँव ज़ब्त कर लिए थे। परंतु अन्त समय पौकरन ठाकुर देवीसिंह की प्रार्थना पर वे सब-के-सब वापस कर दिए[1]।

'सहरुल मुताख़रीन' के लेखक[2] गुलामहुसैनख़ाँ ने और कर्नल जेम्स टॉड[3] ने इनकी वीरता और बुद्धिमानी की बड़ी तारीफ़ लिखी है; और इन्हें अपने समय का श्रेष्ठ योद्धा और बुद्धिमान् शासक लिखा है।

१. ख्यातों में लिखा है कि यद्यपि महाराज के अंत समय वे चारण और पुरोहित, जिनके गाँव ज़ब्त कर लिए गए थे, उपस्थित न थे, तथापि स्वयं ठाकुर देवीसिंह ने महाराज के हाथ से संकल्प का जल ग्रहण कर दान का कार्य संपन्न किया था।

इसके अलावा बख़तसिंहजी ने और भी कई गाँव दान किए थेः-

१ इंद्रपुरा (डीडवाने परगने का, वि० सं० १७८५ में) नाथद्वारेवालों को, २ इंद्रपुरा (डीडवाने परगने का वि० सं० १७८६ मे) और ३ चंगावड़ा छोटा (जोधपुर परगने का वि० सं० १८०८ में) चारणों को, ४ धुनाडी (नागोर परगने का वि० सं० १७८६ में) पुरोहितों को और ५ गुणसली (मेड़ते परगने का १८०८ में) पीरज़ादों को दिया था। इसी प्रकार कीरतपुरे की २,००० बीघा भूमि भी चारणों को दी थी।

२. इसका खुलासा उल्लेख महाराजा रामसिंहजी के इतिहास में किया जा चुका है।

३. इसका कुछ वर्णन महाराजा अभयसिंहजी के इतिहास में दिया गया है।

कर्नल टॉड ने एक स्थान पर लिखा है[1]:—

बख़्ता (महाराजा बख़्तसिंह) प्रसन्न चित्त, बिलकुल निर्भय और अत्यधिक दानी होने के कारण एक आदर्श राजपूत था। उसका रूप तेजस्वी, शरीर बलिष्ठ और बुद्धि स्थानिक-साहित्य में पारंगत थी। वह एक श्रेष्ठ कवि था। यदि उसके हाथ से एक बड़ा अपराध न हुआ होता, तो वह भविष्य संतति के लिये, राजस्थान में होनेवाले राजाओं में, सब से श्रेष्ठ आदर्श नरेश होता। इन गुणों के कारण वह केवल अपने बंधुओं का ही प्रिय नहीं था, बल्कि अन्य बाहर के संबंधी भी उसका आदर करते थे।

कर्नल टॉड ने आगे फिर लिखा है[2]:—

यदि बख़्तसिंह कुछ वर्षों तक और जीवित रहता तो अधिक संभव था कि राजपूत, सारे हिंदोस्तान में, फिर से अपना पुराना अधिकार प्राप्त कर लेते।

१. "There was a joyousness of soul about Bakhat which united to an intrepidity and a liberality alike unbounded, made him the very model of a Rajput. To these qualifications were superadded a majestic mien and Herculean frame, with a mind versed in all the literature of his country, besides poetic talent of no mean order; and but for that one damning crime, he would have been handed down to posterity as one of the noblest princes Rajwara ever knew. These qualities not only riveted the attachment of the household clans, but secured the respect of all his exterior relations,......"

एनाल्स ऐंड ऐंटिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान, भा० २, पृ० १०५७।

२. "Had he been spared a few years to direct the storm then accumulating, which transferred power from the haughty Tatar of Delhi to the present soldier of the Kistna, the probability was eminently in favour of the Rajputs resuming their ancient rights throughout India."

एनाल्स ऐंड ऐंटिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान, भा० २, पृ० १०५८।

३० महाराजा विजयसिंहजी

यह महाराजा बखतसिंहजी के पुत्र थे। इनका जन्म वि० सं० १७८६ की[1] मँगसिर वदि ११ (ई० सन् १७२९ की ६ नवम्बर) को हुआ था। जिस समय सींधोली के मुकाम पर इनके पिता का स्वर्गवास हुआ, उस समय यह मारोठ (मारवाड़) में थे। पिता की अचानक मृत्यु का समाचार मिलने पर वहीं पर, वि० सं० १८०९ की भादों सुदि (ई० सन् १७५२ के सितम्बर) में, यह गद्दी पर बैठे[3]। इसके बाद यह मेड़ते होते हुए जोधपुर पहुँचे और वि० सं० १८०९ की माघ[4] वदि १२ (ई० सन् १७५३ की ३१ जनवरी) को यहां पर इन्होंने अपने राज-तिलक का उत्सव मनाया[5]।

१. कहीं-कहीं संवत् १७८७ भी लिखा मिलता है।

२. ख्यातों में लिखा है कि-इस अवसर पर महाराजा अजितसिंहजी के पुत्र किशोरसिंह ने भिणाय पर अधिकार कर लिया था। परन्तु महाराजा विजयसिंहजी ने मारोठ से रास-ठाकुर केसरीसिंह, भाटी किशनसिंह, आदि को वहाँ भेज दिया। इससे किशोरसिंह युद्ध में मारा गया और भिणाय फिर महाराज के शासन में आगया।

३. महाराजा विजयसिंहजी के समय का, वि० सं० १८०६ की माघ वदि १ (ई० सन् १७५३ की २० जनवरी) का, एक लेख फलोदी से मिला है। इसमें इनके ज्येष्ठ पुत्र का नाम फतैसिंह लिखा है। [जर्नल बंगाल एशियाटिक सोसाइटी (ई० सन् १९१६), पृ० १००]।

४. एक ख्यात में माघ के बदले मँगसिर लिखा है।

५. जोधपुर के किले में एक संगमरमर का चबूतरा बना है। इसे 'शृंगार चौकी' कहते हैं और इसी पर यहां के महाराजाओं का राज-तिलक होता है। इस पर वि० सं० १८१० की माघ वदि ५ रविवार (ई० सन् १७५४ की १३ जनवरी) का एक लेख खुदा है। उससे ज्ञात होता है कि यह चौकी विजयसिंहजी के राज्य समय उक्त तिथि को बन कर तैयार हुई थी। इस लेख में इनके महाराज कुमार का नाम फतैसिंह लिखा है। परन्तु उनकी मृत्यु महाराज की जीवितावस्था में ही हो गई थी।

वि० सं० १८११ (ई० सन् १७५४) में रामसिंहजी ने जयापा सिंधिया की सहायता प्राप्त कर अपने गए हुए राज्य को फिर से प्राप्त करने के लिये मारवाड़ पर चढ़ाई की। इस पर महाराजा विजयसिंहजी जोधपुर का प्रबन्ध कर, शत्रु सैन्य का सामना करने के लिये, मेड़ते जा पहुँचे। बीकानेर-नरेश गजसिंहजी और किशनगढ़-नरेश बहादुरसिंहजी भी, अपनी अपनी सेनाएं लेकर, महाराज की मदद को वहाँ आ गए।

कुछ दिनों बाद जब रामसिंहजी जयापा को साथ लिए, किशनगढ़[2] को लूटते हुए, अजमेर पर अधिकार कर, पुष्कर पहुँचे और वहां से आगे बढ़ आलणियावास को लूटते हुए गंगारडे में ठहरे, तब महाराजा विजयसिंहजी भी अपने दलबल सहित उनके मुकाबले को चले। इससे शीघ्र ही दोनों तरफ़ की सेनाओं के बीच युद्ध शुरू हो गया[3]।

इसी बीच मरहटों की सेना का एक भाग ऊदावत भरतसिंह की अध्यक्षता में जैतारण में इकट्ठा हुआ। परन्तु डेवढ़ी का दारोगा अणदू शीघ्र ही मेड़ते से कुछ चुने हुए वीरों को लेकर वहां जा पहुँचा। इससे मरहटों को हारकर जैतारण से लौट जाना पड़ा।

यद्यपि गंगारडे में भी पहली बार के युद्ध में महाराजा विजयसिंहजी की ही विजय[4] हुई थी, तथापि वि० सं० १८११ की आसोज वदि १३ (ई० सन् १७५४ की १४ सितम्बर) को, दूसरी बार के युद्ध में महाराज का तोपख़ाना पीछे छूट जाने

१. ख्यातों में दत्ताजी का भी इस चढ़ाई में साथ होना लिखा है। इस युद्ध में जयपुर-नरेश माधवसिंहजी प्रथम ने रामसिंहजी की सहायता की थी। (अजमेर, पृ० १७०)।

२. किशनगढ़ राज्य के दावेदार, सामन्तसिंहजी के पुत्र, सरदारसिंहजी भी मरहटों के साथ थे; क्योंकि जयापा ने उनके चचा बहादुरसिंहजी से किशनगढ़-राज्य का अधिकार छीन कर, उन्हें वहाँ की गद्दी पर बिठाने का वादा किया था।

३. श्रीयुत हरबिलास सारडा ने अपने 'अजमेर' नामक इतिहास में लिखा है कि अजमेर प्रान्त के खरवा और मसूदा के स्वामियों ने रामसिंह का और भिणाय, देवलिया और टंटोती के स्वामियों ने विजयसिंह का पक्ष लिया था। (देखो पृ० १७०)।

४. 'तवारीख राज श्री बीकानेर' में लिखा है कि मरहटों को हार कर सात कोस पीछे हटना पड़ा था। (देखो पृ० १८२)।



३०. महाराजा विजयसिंहजी

वि० सं० १८०६-१८५० (ई० स० १७५२-१७९३)

से पासा पलट गया। मौक़ा पाते ही मरहटों ने एकाएक उस तोपख़ाने पर हमला कर दिया। यह देख यद्यपि राठोड़-सरदारों ने प्राण देकर भी मान की रक्षा करने का बहुत कुछ प्रयत्न किया, तथापि उनकी सेना का व्यूह भंग हो जाने से बहुत से राठोड़-सरदार वीरगति को प्राप्त हुए और मैदान जयापा के हाथ रहा। इसके बाद सायंकाल हो जाने से महाराज अपने बचे हुए सरदारों आदि को साथ लेकर मेड़ते लौट गए और रात्रि के पिछले पहर में ही वहां से नागोर की तरफ़ चल दिए। इसी समय बीकानेर और किशनगढ़ के नरेशों को भी अपने-अपने देशों की रक्षार्थ लौट जाना पड़ा।[2]

मेड़ते के पास की उपर्युक्त विजय के बाद जयापा ने अपनी और रामसिंहजी की सेना के चार भाग किए। इनमें के मुख्य भाग ने जयापा की आधीनता में नागोर पर घेरा लगाया और अन्य तीनों भागों ने जोधपुर, जालोर और फलोदी पर आक्रमण किया। परन्तु जोधपुर में वहां के दुर्ग-रक्षक चांपावत सूरतसिंह[3] और नगर-रक्षक डेवढ़ीदार सोभावत गोयंददास आदि ने उनको सफल न होने दिया। इसी प्रकार जालोर में भी भंडारी पोमसिंह के आगे उनकी एक न चली।

यद्यपि नागोर में स्वयं महाराज ने भी बड़ी वीरता से जयापा का सामना किया, तथापि क़िले के शत्रु-सैन्य के बीच घिर जाने के कारण कुछ दिनों में वहाँ की रसद

कर्नल टॉड ने लिखा है कि राठोड़-सैनिकों ने अपने ही वीरों पर, जो मरहटों को हरा कर लौट रहे थे, भ्रम से गोलाबारी शुरू करदी। इससे उनकी विजय पराजय में बदल गई। (ऐनाल्स ऐण्ड ऐण्टिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान, भा० २, पृ० १६१-१६२)।

१. 'अजमेर' नामक इतिहास में लिखा है कि सिंधिया मैदान छोड़ कर भागने ही वाला था, परन्तु इसी बीच किशनगढ़-राज्य के दावेदार सरदारसिंहजी ने महाराजा विजयसिंहजी के मारे जाने की झूठी अफ़वाह फैलादी। इससे हतोत्साह होकर राठोड़-सैनिक मैदान से हट गए और महाराज को, मौक़ा हाथ से निकल जाने के कारण, लाचार होकर नागोर का आश्रय लेना पड़ा। देखो पृ० १७०)।

कर्नल टॉड ने भी इस घटना का उल्लेख किया है (ऐनाल्स ऐण्ड ऐण्टिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान, भाग २ पृ० १०६२-१०६३)।

२. 'तवारीख राज श्री बीकानेर' में किशनगढ़ नरेश का मेड़ते से ही अपने राज्य की तरफ़ लौट जाना लिखा है (देखो पृ० १८२)। परंतु बीकानेर का मार्ग नागोर की तरफ़ से होने के कारण बीकानेर महाराज वहां तक महाराजा विजयसिंहजी के साथ गए होंगे।

३. यह हरसोलाव का ठाकुर था।

समाप्त हो चली। यह देख क़िले वालों ने एक उपाय सोच निकाला। उन्होंने खोखर केसरख़ाँ को और एक गहलोत वीर को जयापा को छल से मार डालने के लिये नियत किया। इस पर वे दोनों बनियों का सा वेश बना कर आपस में लड़ते-झगड़ते जयापा के शिविर में जा पहुँचे। उस समय वह स्नान कर रहा था। परन्तु उनको लड़ता हुआ देख जिस समय उसने कारण जानने के लिये उन्हें अपने पास बुलाया, उस समय मौक़ा पाकर उन्होंने उसे मार डाला। इस घटना से मरहटा-सेना में गड़बड़ मच गई। इसी समय मौक़े की फ़िराक़ में बैठी हुई राठोड़-सेना ने क़िले से निकल उन पर आक्रमण कर दिया। इससे एक बार तो मरहटों के पैर उखड़ गए और वे क़िले का घेरा छोड़ भाग खड़े हुए। परन्तु शीघ्र ही जयापा के भाई दत्ताजी ने बिखरी हुई मरहटा सेना को एकत्रित कर फिर से नागोर पर घेरा डालने का प्रबन्ध किया। जनकोजी[3] ने भी इस काम में योग देना अपना कर्तव्य समझा। यह घटना वि० सं० १८१२ (ई० स० १७५५) की है[4]। इसकी सूचना मिलते

---

१. ख्यातों से ज्ञात होता है कि उस समय तक जोधपुर, जालोर, नागोर, और डीडवाने को छोड़ मारवाड़ राज्य के बाकी के सारे ही प्रदेशों पर रामसिंहजी का अधिकार हो गया था। यह देख महाराजा विजयसिंहजी ने विजयभारती नामक पुरुष को महाराना राजसिंहजी (द्वितीय) के पास भेजा और उनसे जयापा से संधि करवा देने का कहलाया। इस पर उनकी तरफ़ से सलूंबर का रावत जैतसिंह इस कार्य के लिये नागोर आया। परंतु मरहटों ने उसका संधि का प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया। इसी से महाराज विजयसिंहजी के सरदारों को जयापा के साथ कूटनीति का व्यवहार करना पड़ा। इस घटना से क्रुद्ध होकर मरहटों ने क़िले के बाहर ठहरे हुए उक्त रावत के शिविर पर हमला कर उसे और महाराज के सेवक विजयभारती को भी मार डाला।

२. मारवाड़ में इस विषय की यह कहावत प्रचलित है:—

'खोखर बड़ो खुराकी, खाय ग्यो आपा सरीखो डाकी'

जयापा के स्मारक में जो छतरी बनाई गई थी वह नागोर से तीन मील दक्षिण में विद्यमान है। ख्यातों से ज्ञात होता है कि जयापा को मारने वाले दोनों गुप्तचर मरहटों द्वारा उसी समय मार डाले गए थे।

३. यह जयापा का पुत्र था।

४. ग्रांट डफ़ की 'हिस्ट्री ऑफ़ मरहटाज़' में इस घटना का समय ई० स० १७५६ (वि० सं० १८१६) लिखा है। (परंतु साथ ही उक्त इतिहास के भा० १, पृ० ५१४ की टिप्पणी १ में इस घटना के दिए गए समय पर सन्देह प्रकट किया है।) उसमें यह भी लिखा है

ही रघुनाथराव ने भी मारवाड़ पर चढ़ाई की[1]। इस प्रकार जयापा के भाई दत्ताजी, पुत्र जनकोजी और रघुनाथ राव की सम्मिलित सेनाओं ने जोधपुर और नागोर को घेर लिया। इस विशाल मरहटा-वाहिनी से अकेले सामना करना हानिकारक जान महाराजा विजयसिंहजी बीकानेर पहुँचे और वहां से महाराजा गजसिंहजी को साथ लेकर महाराजा माधोसिंहजी से सहायता प्राप्त करने के लिये जयपुर गए। परन्तु माधोसिंहजी ने इनकी सहायता करने से इन्कार कर दिया। इस पर यह लौट कर बीकानेर होते हुए नागोर चले आए[2]। इसी बीच मारवाड़ में अकाल होने से मरहटों ने संधि करना स्वीकार कर लिया। इसलिये महाराज ने उन्हें २० लाख रुपये और अजमेर का प्रान्त देकर उनसे संधि करली। साथ ही मेड़ता, परबतसर, मारोठ, सोजत, जालोर आदि के परगने रामसिंहजी को दे दिए[3]। इस प्रकार आपस का झगड़ा शान्त हो जाने पर महाराजा विजयसिंहजी जोधपुर लौट आए।

कि जयापा के घातकों में से एक वहीं पर मारा गया और दूसरा बचकर निकल गया। परंतु उक्त इतिहास में रामसिंहजी और विजयसिंहजी दोनों को अभयसिंहजी का पुत्र लिखा है। यह ठीक नहीं है। (देखो भाग १, पृ० ५१३)।

'अजमेर' नामक इतिहास में इस घटना का समय ई० स० १७५६ (वि० सं० १८१३) लिखा है। (पृ० १७०)।

१. 'हिन्दू पद पादशाही' नामक इतिहास में अन्ताजी मानकेश्वर का १०,००० सैनिकों के साथ आकर राजपूताने में उपद्रव करना लिखा है।

२. 'तवारीख राज श्री बीकानेर' में लिखा है कि जयपुर-नरेश का विचार महाराजा विजयसिंहजी को धोके से मार डालने का था। परंतु वह सफल न हो सके। (देखो पृ० १८४-१८५)।

मारवाड़ की ख्यातों मे लिखा है कि पहले जयपुर-नरेश महाराजा माधोसिंहजी ने महाराजा विजयसिंहजी का पक्ष लेना चाहा था। परंतु फिर रामसिंहजी के साथ के, स्वर्गवासी जयपुर नरेश ईश्वरीसिंहजी की कन्या के, सम्बन्ध का और अपने कर्मचारियों के कहने का विचार कर उन्होंने अपना मत बदल दिया।

इसके बाद उन्होंने महाराजा विजयसिंहजी को क़ैद कर लेने का विचार किया। परंतु रीयाँ-ठाकुर जवानसिंह के कारण वह सफल न हो सके। ख्यातों से यह भी प्रकट होता है कि जयपुर-नरेश ने बीकानेर-नरेश गजसिंहजी को भी महाराज से जुदा करने के लिये उनका विवाह झिलाय ठाकुर की कन्या से निश्चित कर दिया था।

३. ख्यातों में लिखा है कि इन परगनों के साथ ही खरवा, मसूदा, भिणाय, केकड़ी, देवलिये के १६ गाँव और मसूदे के २७ गाँव रामसिंहजी को दिए गए थे। (कहीं कहीं सांभर, सिवाना, और नावे का भी रामसिंहजी को दिया जाना लिखा है)।

वि० सं० १८१३ (ई० सन् १७५६) में जिस समय रामसिंहजी जयपुर के स्वर्गवासी नरेश ईश्वरीसिंहजी की कन्या से विवाह करने (जयपुर) गए, उस समय मारवाड़ के सरदारों ने, महाराज की अनुमति प्राप्त कर, उनके अधिकृत प्रान्तों पर चढ़ाई की और मेड़ता, जालोर और सोजत के परगने उनके पक्षवालों से छीन लिए¹। इसकी सूचना मिलने पर रामसिंहजी ने एकबार फिर मरहटों से सहायता मांगी। इससे जयापा के भाई महादजी (माधोजी) को अपने भाई का बदला लेने का अच्छा मौक़ा मिल गया। उसने पेशवा से आज्ञा लेकर मारवाड़ में ऐसी लूट-मार मचाई की बहुत कुछ कोशिश करने पर भी महाराज को सफलता नहीं मिली। अन्त में महाराज को महादजी (माधोजी) से सन्धि करनी पड़ी। इसके अनुसार रामसिंहजी से छीने हुए परगने तो वापस उन्हें लौटा देने पड़े और डेढ़ लाख रुपया सिंधिया को देना निश्चित हुआ। इसके बाद महादजी (माधोजी) अजमेर का प्रबन्ध गोविन्दराव को सौंप दक्षिण को लौट गया²। परन्तु इस पराजय से मारवाड़ का प्रबन्ध शिथिल होगया

इससे उस समय महाराजा विजयसिंहजी के अधिकार में केवल नागोर, डीडवाना, फलोदी और जैतारण के प्रांत ही रह गए थे। महाराज के पक्ष के जिन जागीरदारों की जागीरें रामसिंहजी को दिए गए प्रांतों में थीं उनके ख़र्च के लिये महाराज को नक़द रुपये नियत करने पड़े थे।

१. ख्यातों में लिखा है कि जिस समय मेड़ते पर चढ़ाई करने का विचार हो रहा था, उस समय पौकरन-ठाकुर देवीसिंह ने महाराज से अर्ज़ की कि मरहटों के और अपने बीच में हुई संधि को कम से कम एक वर्ष तक पालन करने का वचन दिया जा चुका है और उस अवधि के समाप्त होने में अभी ५ महीने बाक़ी हैं, इसलिये जहां तक हो अभी रामसिंहजी को दिए गए प्रांतों पर चढ़ाई न की जाय। परंतु अन्य सरदारों के इस उचित परामर्श का विरोध करने पर वह अप्रसन्न हो गया और गुप्त रूप से मरहटों के साथ सहानुभूति रखने लगा। इससे भी मरहटों को मारवाड़ में लूट मार करने में बहुत कुछ सहायता मिली थी।

२. 'अजमेर' नामक इतिहास में लिखा है कि ई० स० १७५६ से १७५८ (वि० सं० १८१३ से १८१५) तक अजमेर ख़ास पर रामसिंहजी और मरहटों दोनों का अधिकार रहा था। इसके अलावा खरवा, मसूदा और भिणाय रामसिंहजी के हिस्से में आए थे और बाकी का सारा प्रांत जयापा के भाई जनकूजी (?) और दत्तूजी के अधिकार में गया था। परंतु ई० स० १७५८ में जिस समय रामसिंहजी जयपुर की तरफ़ चले गए, उस समय गोविन्दराव ने रामसिंहजी की तरफ़ के हाकिम को निकालकर अजमेर पर पूरा अधिकार कर लिया। परंतु इस पर जब महाराजा विजयसिंहजी ने रामसिंहजी को दिए गए प्रांतों पर अपना हक प्रकट किया, तब उसने खरवा, मसूदा और भिणाय इन्हें सौंप दिए। इसके बाद महाराज ने टंटोती में अपना थाना क़ायम किया। ये प्रांत ई० स० १७९१ (वि० सं० १८४८) तक मारवाड़ के अधिकार में रहे। (पृ० १७१)।

और सरदार लोग स्वाधीन होने की कोशिश करने लगे। वि० सं० १८१४ के फागुन (ई० सन् १७५८ के मार्च) में जब इन झगड़ों से निपट कर महाराज फिर जोधपुर लौटे, तब पौकरन-ठाकुर देवीसिंह¹ आदि सरदार बिना इनकी आज्ञा प्राप्त किए ही अपनी-अपनी जागीरों में जा बैठे और महाराज के बुलाने पर भी आने में बहाने करने लगे।

अगले वर्ष छोटी खाटू के ठाकुर जोधा ज़ालिमसिंह ने, मेगरासर (बीकानेर राज्य में) के हटीसिंह ने, डीडवाने की तरफ़ के शेखावतों ने और नागोर के पश्चिम में स्थित करमसोतों ने आस-पास के गाँवों को लूट कर नागोर प्रान्त में उपद्रव शुरू किया। परन्तु महाराज के कृपा-पात्र जगन्नाथ² ने जाकर उसे बड़ी वीरता से दबा दिया।

इन्हीं दिनों नींबाज-ठाकुर कल्याणसिंह का स्वर्गवास हो गया और रास-ठाकुर ने, महाराज से बिना अनुमति प्राप्त किए ही, अपने पुत्र दौलतसिंह को उसके गोद बिठा दिया। यद्यपि यह बात महाराज को बुरी लगी, तथापि समय की गति देख इन्हें चुप रह जाना पड़ा³। परन्तु इतने पर भी मारवाड़ के सरदार शान्त न हुए और अपनी-अपनी जागीरों में बैठे हुए रामसिंहजी से पत्र-व्यवहार करने लगे। इस पर महाराज ने सिंघी फतैचन्द को भेजकर सब सरदारों को जोधपुर में इकट्ठा किया। परन्तु ये लोग नगर के बाहर बख़तसागर तालाब के पास डेरे डालकर ठहर गए। यह देख महाराज ने अपने विश्वस्त-सेवक जगन्नाथ को उन्हें समझाकर नगर में ले आने

---

१. वि० सं० १८१५ (ई० स० १७५६) मे महाराज ने रास के ठाकुर केसरीसिंह को पौकरन के ठाकुर देवीसिंह को समझा कर ले आने के लिए भेजा। परंतु वहां पर आपस में झगड़ा हो जाने से देवीसिंह ने जोधपुर आने से इनकार कर दिया।

कर्नल टॉड ने लिखा है कि यह देवीसिंह महाराजा अजितसिंहजी का पुत्र था और पौकरन-ठाकुर (महासिंह) ने अपने औरस पुत्र के न होने से इसे गोद लिया था। (एनाल्स ऐण्ड ऐंटिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान, भा० २, पृ० १०६६) परंतु यह ठीक नहीं है। देवीसिंह वास्तव मे महासिंह का ही पुत्र था। यह देवीसिंह वीर और उद्दण्ड होने के कारण जोधपुर राज्य के अधिकार का अपनी तलवार के पट्टे (परतले) में होना बतलाया करता था।

२. यह महाराज को दूध पिलाने वाली धाय का पुत्र था।

३. इस घटना से अप्रसन्न होकर महाराज ने नींबाज की जागीर का एक गांव-पीपाड़ देने से इनकार कर दिया। इस से केसरीसिंह नाराज़ हो गया। इसके बाद सब सरदारों ने नींबाज़ में इकट्ठे होकर रामसिंहजी से मिलावट करने का षड्यंत्र शुरू किया।

के लिये भेजा। लेकिन बात चीत के सिलसिले में झगड़ा हो जाने के कारण सरदार लोग लौट कर बनाड़ की तरफ़ चले गए। इसकी सूचना मिलने पर महाराज ने फिर फतैचन्द आदि के द्वारा उन्हें समझाने की बहुत कुछ चेष्टा की, परन्तु सरदार लोग जोधपुर न आकर बीसलपुर की तरफ़ चल दिए। इस प्रकार आपस के विरोध को बढ़ता देख स्वयं महाराज उन्हें समझाने को रवाना हुए। जैसे ही सरदारों को महाराज के आने की सूचना मिली, वैसे ही उन्होंने सामने आकर इनकी पेशवाई की और दूसरे ही दिन वे सब महाराज के साथ जोधपुर चले आए।

वि० सं० १८१६ की फागुन बदी १ (ई० सन् १७६० की २ फरवरी) को महाराज के गुरु आत्मारामजी का देहान्त हो गया। उनकी समाधि के समय बड़े-बड़े सरदारों को क़िले पर उपस्थित होने की आज्ञा दी गई थी। इसके अनुसार जब पौकरन, रास, आसोप और नींबाज के ठाकुर क़िले पर आए, तब उनके साथ के सारे आदमी क़िले की पौल के बाहर ही रोक लिए गए; और इसके बाद रानियों के आत्मारामजी के शव के अन्तिम-दर्शन करने को आने का बहाना बना कर उक्त पौल के द्वार बन्द करदिए गए। अन्त में खिची गोरधन और (धायभाई) जगन्नाथ की सलाह से, रास्ते की कोठरियो में विदेशी सैनिकों को छिपाकर और क़िले का सब से ऊपर का द्वार बंद करवा कर, सरदारों को ऊपर आने को कहलाया गया। इस पर जैसे ही सब सरदार नक्कार ख़ाने की पौल[1] से आगे बढे, वैसे ही मार्ग की कोठरियों में छिपे सैनिकों ने बाहर आकर एकाएक उन पर हमला कर दिया। इससे पौकरन-ठाकुर देवीसिंह, रास-ठाकुर केसरीसिंह, आसोप-ठाकुर छत्रसिंह और नींबाज-ठाकुर दौलतसिंह पकड़े जाकर क़ैद करलिए गए[2]।

१. किसी किसी ख्यात मे इस पौल का नाम अमृती पौल लिखा है।

२. इनमें से ठाकुर दौलतसिंह बाद में छोड़ दिया गया, परंतु अन्य तीनों ठाकुरों का अन्त क़ैद में ही हुआ। इस विषय का यह दोहा मारवाड़ में प्रसिद्ध है:--

केहर देवो छत्रसी, दल्लो राजकुमार।
मरते मोडे मारिया, चोटी वाला चार॥

कर्नल टॉड ने ६ ठाकुरों का क़ैद किया जाना लिखा है। (एनाल्स सेण्ड ऐन्टिक्विटीज़ ऑफ राजस्थान, भाग २, पृ० १०७०) परंतु ख्यातों से यह बात सिद्ध नहीं होती।

इस घटना की सूचना मिलने पर उक्त सरदारों के बन्धुओं, सम्बन्धियों और मित्रों ने एकत्रित हो मारवाड़ में उपद्रव करने का आयोजन किया। यह देख धायभाई जगन्नाथ, विदेशी सैनिकों और छोटे-छोटे जागीरदारों को लेकर, उनको दबाने के लिये चला। साथ ही रायपुर-ठाकुर भाकरसिंह की मातहती में एक सेना नींबाज की तरफ़ रवाना की गई। इसी बीच सूचना मिली कि मेड़ते में इस समय शत्रु-सैन्य की संख्या बहुत कम रह गई है और रामसिंहजी हरसोर में है। परन्तु उपद्रवियों का विचार उन्हें शीघ्र ही मेड़ते ले आने का है। इस पर नींबाज की तरफ़ भेजी गई सेना को शीघ्र ही मेड़ते पहुँच उस पर अधिकार करने की आज्ञा दी गई। इसी के अनुसार उस सेना ने दूसरे दिन प्रातःकाल होने के साथ ही मेड़ते पर अधिकार कर लिया और शीघ्र ही सहायक सेना और रसद का प्रबन्ध कर वहाँ के मोरचे सुदृढ़ कर लिए।

मेड़ते के इस प्रकार एकाएक हाथ से निकल जाने की ख़बर मिलते ही रामसिंहजी ने एक बड़ी सेना के साथ आकर उक्त नगर को घेर लिया। यद्यपि कुछ दिनों बाद नगर में पानी की कमी होजाने के कारण अन्दर वालों को मेड़ते की रक्षा करना कठिन प्रतीत होने लगा, तथापि उन्होंने हिम्मत नहीं हारी और वे बड़ी वीरता के साथ शत्रुओं के आक्रमणों को रोकते रहे।

इसी बीच, इधर बारिश हो जाने से पानी का कष्ट दूर हो गया और उधर मेड़ते वालों के घिर जाने की सूचना पाकर जगन्नाथ, बाग़ियों के मुखिया चाँपावतों की सेना को जालोर की तरफ़ भगाकर, वहां आ पहुँचा। उसके दलबल सहित उधर आने की सूचना मिलते ही रामसिंहजी मेड़ते पर का घिराव हटाकर परबतसर की तरफ़ चले गए। जगन्नाथ ने वहां भी उनका पिछा किया। इस पर रामसिंहजी तो रूपनगर की तरफ़ चले गए[1] और उनके साथ के सरदारों में से कुछ जगन्नाथ के पास चले आए और कुछ अपनी-अपनी जागीरों में लौट गए। इस प्रकार जो सरदार जगन्नाथ के पास चले आए थे उनकी जागीरों में महाराज की तरफ़ से वृद्धि की गई। इसके बाद राजकीय सेना ने फिर बचे हुए बाग़ियों का पीछा किया। बीलाड़ा[2], सोजत आदि

१. ख्यातों में लिखा है कि इसके बाद रामसिंहजी जयपुर चले गए। उनके कुछ दिन वहां रहने पर जयपुर-नरेश ने सांभर का अपना हिस्सा उनको खर्च के लिए दे दिया।

२. ख्यातों में लिखा है कि चांपावत सबलसिंह आदि सरदारों ने बहुतसी सेना इकट्ठी कर बीलाड़े पर चढ़ाई की। यह देख वहां का हाकिम आगे बढ़ उनके मुकाबले को आया।

अनेक स्थानों पर दोनों पक्षों के बीच कई युद्ध हुए। अन्त में चांपावतों की सेना को सोजत से भागकर घाटे (पहाड़ों) की तरफ़ जाना पड़ा। इससे डरकर कई अन्य ठाकुर भी महाराज के झंडे के नीचे आ गए और महाराज ने भी उन्हें जागीरें आदि देकर शांत कर दिया। इसी बीच महाराज के एक सेनापति पंचोली रामकरण ने जालोर से शत्रुओं को भगाकर वहां पर भी अधिकार कर लिया।

वि० सं० १८१८ (ई० स० १७६१) में जोशी बालू ने राजकीय-सेना को लेकर इधर-उधर के बाग़ी जागीरदारों को दबाया और उनसे दण्ड के रुपये वसूल किए। वि० सं० १८१६ (ई० स० १७६२) में उसने अजमेर पहुँच उसे घेर लिया। परंतु महादजी (माधोजी) सिंधिया के समय पर वहां पहुँच जाने के कारण उसे लौट कर मेड़ते आ जाना पड़ा। अन्त में फिर सिंधिया को नौलाख रुपये मिल जाने से उसने महाराज से संधि कर ली।

कुछ दिन बाद बाग़ियों ने, घाटे से रायपुर की तरफ़ लौट कर, मारवाड़ में फिर लूट-खसोट शुरू की। इस पर जगन्नाथ ने पहले उनके मुखिया चांपावत सरदार की जागीर 'पाली' पर चढ़ाई कर उस पर अधिकार कर लिया, और फिर रायपुर, भखरी, गूलर, आदि की तरफ़ जाकर बाग़ी सरदारों का दमन किया। इससे मारवाड़ का उपद्रव बहुत कुछ शान्त हो गया।

जगन्नाथ के वीरता-पूर्ण कार्यों से महाराजा बहुत ही प्रसन्न थे और इसी से राज्य में उसका बड़ा मान था। परंतु अन्त में जोशी बालू के उसकी फ़ज़ूल ख़र्ची की शिकायत करने से महाराजा उस (जगन्नाथ) से अप्रसन्न हो गए। इससे उसके मान और प्रभाव को बड़ा धक्का पहुँचा।

युद्ध होने पर उक्त हाकिम मारा गया और सबलसिंह के भी कई घाव लगे। इसके बाद सबलसिंह और उसका भाई श्यामसिंह बीलाड़े पहुँचे। परंतु वहां पर मुंह से कुछ अनुचित शब्द निकालने के कारण सबलसिंह कूँपावत राजपूतों के हाथ से सख़्त घायल हुआ और खारिया नामक गांव में पहुँचने पर उसका देहान्त हो गया। किसी किसी ख्यात में सबलसिंह का चांदेलाव ठाकुर मोहनसिंह के हाथ से मारा जाना लिखा है।

१. ख्यातों में लिखा है कि उसने मेड़ते के एक व्यापारी की लड़की को अपनी उपपत्नी बना लिया था और उसको प्रसन्न रखने के लिये राजकीय-द्रव्य का बहुत सा भाग ख़र्च कर दिया करता था।

२. इसी अपमान से वि० सं० १८२१ के सावन (ई० सन् १७६४ के अगस्त) में जगन्नाथ का देहान्त हो गया।

इसके बाद महाराजा ने जावले के ठाकुर बदनसिंह को मेड़ते में क़ैद कर[1] उसकी जागीर ज़ब्त कर ली।

वि० सं० १८२२ (ई० स० १७६५) में महादजी (माधवराव) सिंधिया के फिर मारवाड़ पर चढ़ाई करने की सूचना मिली। इस पर महाराजा ने तीन लाख रुपये देकर उसे रोक दिया। परंतु फिर भी बाग़ियों का मुखिया चांपावत सरदार खानूजी नामक मरहटे को अपनी सहायता के लिये चढ़ा लाया। इसकी सूचना मिलते ही महाराजा की सेना ने आगे बढ़ उसका सामना किया। युद्ध होने पर शत्रुदल की हार हुई। इससे मरहटे अजमेर की तरफ़ चले गए और चाँपावतों को सांभर की तरफ़ भागना पड़ा।

इसी वर्ष महाराज ने गायों की चराई पर लगने वाले कर (घासमारी) को उठा कर जागीरदारों पर 'रेखबाब' नामक कर लगाया।

इसी वर्ष महाराजा विजयसिंहजी वैष्णव (नाथद्वारे के गुसाइयों के) संप्रदाय के अनुयायी हो गए, और इन्होंने अपने राज्य में मांस और मदिरा का प्रचार बिलकुल रोक दिया[2]। इन्होंने ही जोधपुर नगर में बालकृष्णजी का नया मन्दिर बनवाया था।

१. कुछ काल बाद आउवे के ठाकुर की सिफ़ारिश से क़ैद से छूट जाने पर यह रूपनगर चला गया।

२. कहते हैं कि एकबार आसोप-ठाकुर ने अपने गांव से, बोरे मे भरकर, बकरे का मांस मंगवाया था। परंतु जिस ऊंट पर वह बोरा बन्धा था, वह ऊंट नगर में आकर किसी तरह चमक गया और घबराकर उछल-कूद मचाने लगा। इससे बकरे का कटा हुआ सिर बोरे से निकलकर बाहर आ पड़ा। जब इस घटना की सूचना महाराज को मिली, तब इन्होंने ठाकुर को बुलाकर उससे अपनी आज्ञा का उल्लंघन करने का कारण पूछा। परंतु उसने काली ऊन का एक गोला पेश कर निवेदन किया कि वास्तव में यह गोला ही बोरे से निकलकर बाज़ार में गिर पड़ा था और सम्भवतः लोगों ने इसी को बकरे का सिर समझ यह शिकायत की है। इस प्रकार की बात बनाकर ठाकुर को अपना बचाव करना पड़ा।

महाराजा विजयसिंहजी ने कसाइयों की जीविका बन्द हो जाने से उन्हें मकानों पर पत्थर की पट्टियां आदि चढ़ाने का काम सौंपा था। तब से अब तक उनके वंशज यही काम करते और चँवालिए कहाते हैं।

एकबार राजकीय सेना के एक मुसलमान सैनिक ने एक बैल को शस्त्र से ज़ख्मी कर दिया। इसकी सूचना पाकर जब नगर का कोतवाल उसे पकड़ने को गया, तब सारे ही यवन-सैनिक बदल गए। यह देख लोगों ने महाराज को समझाया कि ऐसी हालत में अपराधी का अपराध क्षमा कर देना ही युक्ति-संगत है। अगर ऐसा नहीं किया जायगा तो सारी की सारी यवन-सेना नौकरी छोड़कर चली जायगी और इससे सरदारों को फिर से उपद्रव करने का मौक़ा मिल जायगा। परंतु महाराज ने इस सलाह के मानने से इनकार कर दिया और अपने नफ़े-नुकसान की परवा न कर अपराधी और उसका साथ देने वालों को कठोर दण्ड दिया।

वि० सं० १८२३ के कार्तिक (ई० स० १७६६ के नवम्बर) में महाराज ने नाथद्वारे की यात्रा की और इनके सेनापतियों ने इधर-उधर के सरकश जागीरदारों को दबाकर उनसे दण्ड के रुपये वसूल किए।

वि० सं० १८२४ (ई० स० १७६७) में महाराज ने पुष्कर की यात्रा की। वहीं पर इनकी मित्रता भरतपुर के (जाट) नरेश जवाहरसिंहजी से हुई। पहले लिखा जा चुका है कि जयापा की नागोर की चढ़ाई के समय जयपुर-नरेश माधवसिंहजी ने महाराज का साथ देने से इन्कार कर दिया था। इसी से यह उनसे नाराज़ थे। इसलिए इस वर्ष जब जवाहरसिंहजी और जयपुर-नरेश के बीच मनोमालिन्य हुआ, तब महाराज ने भरतपुर वालों का साथ दिया[1]। इसके बाद यह देवलिये तक जवाहरसिंहजी के साथ जाकर वहां से लौटते हुए सांभर और मारोठ होकर मेड़ते में कुछ दिन ठहर गए।

वि० सं० १८२७ (ई० स० १७७०) में मेवाड़ के महाराना अड़सी (अरिसिंह)जी, और उनके भतीजे (महाराना राजसिंहजी द्वितीय) के पुत्र रत्नसिंह[2] व उसके पक्ष के सरदारों के बीच झगड़ा उठ खड़ा हुआ। इस पर महाराना ने महाराजा विजयसिंहजी से सहायता मांगी। महाराज ने तत्काल अपनी राठोड़-सेना भेज कर मेवाड़ का उपद्रव शांत कर दिया। इससे प्रसन्न होकर महाराना अड़सीजी ने, आगे भी समय-समय पर होने वाले मेवाड़ के उपद्रवों को इसी प्रकार दबाने में सहायता देने की प्रतिज्ञा करवा कर, अपने राज्य का गोड़वाड़ का प्रांत महाराजा विजयसिंहजी को दे दिया[3]। उस समय से ही यह प्रांत मारवाड़ राज्य में मिला लिया गया है।

१. ख्यातों में लिखा है कि जिस समय जवाहरसिंहजी जयपुर राज्य में होकर भरतपुर की तरफ़ लौट रहे थे, उस समय कछवाहों ने उन पर पीछे से हमला कर दिया। इससे दोनों दलों के बीच घमसान युद्ध हुआ। इस यात्रा में जोधपुर की कुछ सेना भी भरतपुर वालों के साथ थी। इसके बाद जयपुर वालों ने भरतपुर-नरेश को पहुँचा कर लौटती हुई जोधपुर की सेना पर आक्रमण करने का प्रबन्ध किया। परंतु इसी बीच जयपुर-नरेश माधवसिंहजी के स्वर्गवास हो जाने से वे सफल न हो सके।

२. किसी किसी ख्यात में लिखा है कि रत्नसिंह के पक्ष वालों ने भी फ़ौज का ख़र्च देने की प्रतिज्ञा कर महाराज से सहायता मांगी थी। परंतु महाराज ने ऐसा करना उचित न समझा।

३. यद्यपि 'राजपूताने के इतिहास' में जोधपुर-नरेश द्वारा महाराना को दी गई सहायता का उल्लेख छोड़ दिया गया है, तथापि महाराना अड़सीजी के स्वहस्ताक्षरों से लिखे महाराजा

अगले वर्ष (वि० सं० १८२८=ई० स० १७७१ में) महाराज फिर नाथद्वारे की यात्रा को गए। इस बार बीकानेर-नरेश गजसिंहजी और कृष्णगढ़-नरेश बहादुरसिंहजी भी वहां आ गए थे। मौक़ा देख महाराना अड़सी (अरिसिंह) जी भी वहां पहुँचे और महाराज से गोड़वाड़ का प्रांत लौटा देने का आग्रह करने लगे। परंतु इन्होंने यह बात स्वीकार न की।

पहले लिखा जा चुका है कि जयपुर-नरेश ने अपना सांभर का हिस्सा ख़र्च के लिये रामसिंहजी को दे दिया था। इसलिये वि० सं० १८२६ (ई० स० १७७२) में उनका स्वर्गवास होते ही उनके अधिकृत उस भाग पर जोधपुर वालों ने अधिकार कर लिया।

वि० सं० १८३१ के भादों (ई० स० १७७४ के सितम्बर) में आउवा-ठाकुर जैतसिंह जोधपुर के क़िले में मारा गया और आउवे पर महाराज की सेनाने अधिकार कर लिया। इसके तीन वर्ष बाद (वि० सं० १८३४=ई० स० १७७७ में) ठाकुर

विजयसिंहजी के नाम के पत्र से, जो जोधपुर में सुरक्षित है, इस सहायता की पुष्टि होती है। उक्त पत्र में महाराना ने महाराज से बड़े ही मर्मस्पर्शी शब्दों में सहायता की प्रार्थना की है।

१. कहते हैं कि उक्त प्रांत पर अधिकार करने के लिये उदयपुर वालों की तरफ़ से वि० सं० १६०७ से १६१० (ई० सन् १८५० से १८५३) तक पूरी कोशिश की गई थी। परंतु अन्त में भारत-सरकार ने भी उनका दावा ख़ारिज कर दिया।

२. कहते हैं कि लोगों ने महाराज से यह शिकायत की कि जैतसिंह महाराजकुमार को भड़काता है और उसे बड़ा घमंड हो गया है। ख्यातों में लिखा है कि महाराजा विजयसिंहजी ने वैष्णवमतानुयायी होकर अपने राज्य में मांस और मदिरा का प्रचार रोक दिया था। परंतु आउवा-ठाकुर जैतसिंह का ख़याल था कि मेरे पिता कुशलसिंह ने महाराजा बख़तसिंहजी को जोधपुर का राज्य दिलवाने में अपने प्राण दिए थे, इसलिये उसका पुत्र होने के कारण महाराज मेरे कार्यों में विशेष रोक-टोक नहीं करेंगे। इसीसे वह शक्ति का उपासक होने के कारण कभी-कभी पशु-वध कर लिया करता था। महाराज ने शिकायत आने पर कई बार उसे ऐसा करने से मना किया। परंतु उसने इनके कथन पर विशेष ध्यान नहीं दिया। इससे महाराज रुष्ट हो गए और एक रोज़ उसे क़िले में बुलवाकर धोके से मरवा डाला। क़िले के उत्तर की तरफ़ सिंगोरिये की भाकरी के पास, जहां पर उसका दाह संस्कार किया गया था, एक चबूतरा बनाया गया था। लोग उक्त स्थान को जैतसिंहजी का थड़ा कह कर अब तक पूजते हैं। इस पूजा का कारण शायद उसका अपने शाक्त-धर्म पर दृढ़ रह कर प्राण देना ही होगा।

केसरीसिंह के बाग़ी होजाने पर उसकी जागीर रायपुर पर महाराज ने कब्जा कर लिया[1] और कुछ ही दिनों में अजमेर पर भी इनका बहुत कुछ दखल हो गया।

वि० सं० १८३७ (ई० स० १७८०) में उमरकोट (सिंध) के टालपुरों ने[2] मारवाड़ की सरहद पर उपद्रव उठाया और वे पौकरन आदि पर अधिकार करने का इरादा करने लगे। इस पर महाराज ने मांडणोत हरनाथसिंह, पातावत मोहकमसिंह, बारठ जोगीदास और सेवग थानू को अपना प्रतिनिधि बनाकर उनके पास चौबारी भेजा। जब मामला सुलझता हुआ नहीं देखा, तब इनमें से पहले तीन पुरुषों[3] ने मिल कर उनके सरदार बीजड़ को धोके से मारडाला। इस पर उसके अनुचरों ने उन तीनों को मार अपने स्वामी का बदला लिया। इसकी सूचना मिलने पर महाराज ने इन तीनों के पुत्रों को क्रमशः अलाय, करणू और रिनिया नामक गांव जागीर में दिए। इसके बाद बीजड़ के भाई-बन्धुओं ने अपने नेता का बदला लेने के लिये फिर से मारवाड़ की सरहद पर उपद्रव शुरू किया। इस पर महाराज ने उनको दण्ड देने के लिये एक सेना रवाना की। इस राठोड़-वाहिनी ने टालपुरों को हराकर उमरकोट पर ही अधिकार कर लिया[4]। यह घटना वि० सं० १८३९ (ई० स० १७८२)

१. वि० सं० १८३६ (ई० स० १७७९) में महाराज ने प्रसन्न होकर रायपुर की जागीर केसरीसिंह के पुत्र फ़तैसिंह को लौटा दी थी।

२. मारवाड़ की ख्यातों में टालपुरों का सोढ़ा राजपूतों से उमरकोट छीनना लिखा है?

३. सेवग थानू को इन तीनों ने पहले ही वहाँ से गिराब की तरफ़ भेज दिया था, क्योंकि वह ब्राह्मण था।

४. ख्यातों के अनुसार उमरकोट पर जोधपुर नरेशों का यह अधिकार वि० सं० १८६९ (ई० स० १८१२) तक रहा था। उमरकोट पर अधिकार करने में पौकरन के ठाकुर सवाईसिंह ने बड़ी वीरता दिखलाई थी। इससे प्रसन्न होकर वि० सं० १८३९ (ई० स० १७८२) में महाराज ने उसे प्रधान का पद और साथ ही उस कार्य के वेतन स्वरूप (बधारे में) मजल और दूनाड़ा नामक गांव दिए।

मिरज़ा कलिचबेग फ़ेदूनबेग की लिखी 'हिस्ट्री ऑफ़ सिंध' के, द्वितीय भाग में, उमरकोट के विषय में लिखा है:-

जिस समय सिंध के शासक मियाँ अब्दुन्नबी (कल्होरा) के राज्य में मीर बीजड़ का प्रताप बहुत बढ़ा हुआ था, उस समय जोधपुर नरेश के दो राठोड़-प्रतिनिधियों ने सिंध पहुँच, उसके साथ गुप्त परामर्श करने के बहाने से, उसे (बीजड़ को) मार डाला। परंतु मरने के पूर्व आहत बीजड़ ने अपनी

तलवार से उन दोनों राजपूतों को, मय उनके दो अनुचरों के, वहीं समाप्त कर दिया। यह घटना हि० स० ११६४ (ई० स० १७८१ ?) की है।

कुछ लोगों का अनुमान है कि यह कार्य मियाँ अब्दुन्नबी की प्रार्थना पर ही किया गया था। इसीसे उसने, इस कार्य की एवज़ में, उमरकोट का अधिकार जोधपुर-नरेश को सौंप दिया। परंतु इसके बाद ही उसे (मियाँ अब्दुन्नबी को) बीजड़ के पुत्र मीर अब्दुल्लाख़ाँ के भय से कलात की तरफ़ भागना पड़ा और उसी समय उसने अपने पुत्र को जोधपुर-नरेश के पास भेज दिया।

कुछ दिन बाद पूर्व की तरफ़ से महाराजा विजयसिंह की सेना ने और उत्तर की तरफ़ से कलात की सेना ने सिंध पर चढ़ाई की। इसकी सूचना मिलते ही मीर अब्दुल्लाख़ाँ ने पहले जोधपुर की सेना का मुक़ाबला करने के लिये प्रयाण किया। मार्ग मे रेगिस्तान को पार कर आगे बढ़ते ही, उसे एक पहाड़ी-गढ़ी में एक सौ राजपूत सरदार और ठाकुर दिखाई दिए। उनका मुखिया विजयसिंह का पुत्र और दामाद था; और उन सरदारों के अनुयायी पास की समतल भूमि पर ठहरे हुए थे। दोनों सेनाओं के बीच युद्ध होने पर विजय अब्दुल्ला के पक्ष में रही और राजपूतों का बहुत सा माल-असबाब भी उसके हाथ लगा।

इसके कुछ काल बाद मीर अब्दुल्ला के मियाँ अब्दुन्नबी द्वारा धोके से मरवाए जाने पर मीर फ़तैअलीख़ाँ बल्लोचों का मुखिया चुना गया।

आगे उक्त इतिहास में लिखा है कि मियाँ अब्दुन्नबी ने कुछ रुपया लेकर, इसके बहुत पहले ही, ख़ानगी तौर पर, उमरकोट जोधपुर के राजा विजयसिंह को सौंप दिया था। (परंतु 'फ़तेनामा' का लेखक मीर बीजड़ को मारने की एवज़ मे उमरकोट का दिया जाना लिखता है।) इसीसे उक्त राजा ने वहां के क़िले में अपनी कुछ फ़ौज रख छोड़ी थी। परंतु जब उसे (राजा की फ़ौज को) मीर के (हि० स० ११९६=ई० स० १७८२ मे) मियां अब्दुन्नबी पर विजय पाने का समाचार मिला, तब उसने शत्रु (मीर) से उस दुर्ग की रक्षा के लिये रसद और नई सेना भेजने के लिये अपने राजा को लिखा। इस पर राजा ने भी शीघ्र ही सामान से लदे १०० ऊंट और २,००० सैनिक उमरकोट की तरफ़ रवाना किए। मार्ग में उनमें के तीन सौ सैनिकों का सामना (मीर सुहराबख़ाँ[3] के बन्धु) मीर गुलाम मुहम्मद से, जो शिकार को निकला था, होगया। युद्ध होने पर करीब एक सौ राजपूत मारे गए और बचे हुए पीछे आती हुई अपनी सेना की तरफ़ लौट चले। बल्लोचों ने, जिनको पीछे आने वाली राजपूत-सेना का पता न था, इनका पीछा किया। परंतु कुछ ही देर मे वे (बल्लोच), उस विशाल राठोड़-वाहिनी के बीच घिर कर मारे गए। यह घटना हि० स० १२०१ (ई० स० १७८६) की है ?

इसकी सूचना मिलते ही मीर सुहराब ने, मीर फ़तैअली की सहायता से, राजपूतों का पीछा किया और उनके लौटकर अपने मुल्क में पहुंच जाने पर भी उनमे के बहुत से योद्धाओं को मार, उनके मुल्क को लूट और मंदिरों को गिरा कर बदला लिया। इसके बाद बल्लोच अपने देश को लौट गए।

(१) हिस्ट्री ऑफ़ सिंध, भाग २, पृ० १७८-१८३।

(२) हिस्ट्री ऑफ़ सिंध, भाग २, पृ० १६३।

(३) यह मीर चाकर का, जो खैरपुर के मीरों का पूर्वज था, पुत्र था। हिस्ट्री ऑफ़ सिंध, भाग २, पृ० १७१।

यह देख मियाँ अब्दुन्नबी तीसरी बार फिर कलात के शासक मुहम्मद नसीर के पास मदद लेने को गया। परंतु उसने बार-बार बल्लोचों से झगड़ा करना उचित न समझा। इसी लिये उसने, अब्दुन्नबी को अपने यहां से टालने के लिये, बल्लोचों के मुखिया मीर फ़तैअलीख़ाँ से लिखा-पढ़ी द्वारा मियाँ को कलात की सेना के साथ खुदाबाद (शिकारपुर) तक लौटा देने की अनुमति मांगी। यद्यपि फ़तैअलीख़ाँ ने यह बात मानली, तथापि कलात की सेना को नदी के उस पार ही रखने की सूचना भी दे दी। यह सब गुप्तरूप से तय हुआ था। इसके बाद अब्दुन्नबी कलात के शासक की दी हुई ब्रोहियों की सेना के साथ सीविस्तान के हटरी नामक स्थान पर पहुँच कर ठहर गया और नदी के पार करने के पूर्व जोधपुर के राजा की, जिसको शायद उसने पहले ही गुप्तरूप से मदद के लिये लिख भेजा था, सेना के आने की राह देखने लगा। परंतु इसी बीच उसके साथ के सैनिक, आस-पास के गांवों को उजड़े हुए देख, रसद और रुपयों के लिये गड़-बड़ मचाने और अब्दुन्नबी को वहीं छोड़ कर चले जाने का विचार करने लगे। यद्यपि अब्दुन्नबी ने राजपूतों की सेना को शीघ्र ले आने के लिये आदमी भेजे थे, तथापि राजपूतों ने कहला दिया कि जब तक वह (मियाँ) नदी पार न होलेगा, तब तक वे उसकी मदद को न आवेंगे। इसी समय ब्रोही सैनिक बाग़ी हो गए और स्वयं अब्दुन्नबी के सामान को लूट कर वहीं से अपने देश को लौट गए। इसके बाद अब्दुन्नबी अपनी रक्षा के लिये वहां से डेराह प्रांत की तरफ़ चला गया। जब राजपूत-सेना को, जो अपनी सरहद पर मियाँ का रास्ता देखती थी, उसके नदी के उस पार से ही चले जाने का समाचार मिला, तब वह भी वापस राजधानी को लौट गई। यह घटना हि० स० ११६७ (ई० स० १७८३) की है[2]।

'फ़ेरे नामे' का लेखक लिखता है कि जब हि० स० ११६८ (ई० स० १७८४)[3] में हैदराबाद के क़िले पर मीर फ़तैअलीख़ाँ का अधिकार हो गया, तब कल्होरा का कुटुम्ब, जो वहां रहता था, (अबिसीनिया–वासी गुलाम) शालमी के साथ जोधपुर भेज दिया गया; क्योंकि वहां पर पहले से ही मियां अब्दुन्नबी का लड़का रहता था।

परंतु इसमें की कुछ बातें मारवाड़ की ख्यातों से नहीं मिलती हैं और इसके सनों में भी गड़-बड़ नज़र आती है। उनमें मारवाड़-नरेश का बीजड़ के कुटुम्बियों को हराकर उमरकोट लेना लिखा है और उस समय के कल्होरा-शासक की स्थिति से भी इसी बात की पुष्टि होती है; क्योंकि वह स्वयं ही उस समय परमुखापेक्षी हो रहा था। ऐसी हालत में उमरकोट का टालपुरों से लेना और उसकी रक्षा करना विना तलवार के बल के असम्भव था। हाँ, यह सम्भव है कि निर्बल मियां अब्दुन्नबी ने टालपुरों के प्रभाव से बचने के लिये उनके एक नवीन शत्रु का वहां पर पैर जमाना ग़नीमत समझ महाराज से मैत्री करली हो और महाराज ने भी भविष्य की गड़-बड़ को मिटाने के लिये उसे कुछ रुपयों की सहायता दे दी हो।

(१) हिस्ट्री ऑफ़ सिंध, भाग २, पृ० १४२।

(२) हिस्ट्री ऑफ़ सिंध, भाग २, पृ० १६५-१६८।

(३) हिस्ट्री ऑफ़ सिंध, भाग२, पृ० २००।

की है[1]।

इसी बीच वि० सं० १८३८ (ई० सन् १७८१) में बीकानेर के महाराजकुमार राजसिंहजी, जो अपने पिता से अप्रसन्न हो जाने से देशणोक में रहते थे, जोधपुर चले आए। महाराजा विजयसिंहजी ने उन्हें बड़ी ख़ातिर के साथ अपने पास रख लिया और वि० सं० १८४२ (ई० सन् १७८५) में पिता-पुत्रों में मेल करवाकर उन्हें फिर बीकानेर भेज दिया।

वि० सं० १८३९ (ई० सन् १७८२) में फिर टालपुरों ने उमरकोट पर अधिकार करने का उद्योग किया। परन्तु महाराज के जोधों[2] और पातावत सरदारों की सैन्य ने, समय पर पहुँच, उन्हें सफल न होने दिया।

वि० सं० १८३६ (ई० सन् १७७९) के करीब जयपुर-नरेश पृथ्वीसिंहजी का स्वर्गवास हो गया और उनके पीछे महाराजा प्रतापसिंहजी गद्दी पर बैठे। इसलिये कुछ सरदारों ने मिल कर पृथ्वीसिंहजी के बालक-राजकुमार मानसिंह को उसके ननिहाल भेज दिया। कुछ वर्ष बाद वह वहाँ से सिंधिया के पास पहुँचा। इसीसे वि० सं० १८४४ (ई० सन् १७८७) में मरहटों[3] ने उसको गद्दी पर बिठाने के लिये जयपुर पर चढ़ाई की। इसकी सूचना पाते ही जयपुर-नरेश प्रतापसिंहजी ने महाराजा विजयसिंहजी से सहायता की प्रार्थना की। इस पर महाराज ने सिंघी भीमराज की

इसके अलावा उक्त इतिहास में, लिखा है कि हि० स० ११९७ (ई० स० १७८३) में तीमूरशाह ने मीर फ़तैअलीख़ाँ को सारे ही सिंध प्रदेश का शासक नियत कर मियाँ अब्दुन्नबी को इज़्ज़त के साथ राज-कार्य से अवसर ग्रहण कर लेने को बाध्य कर दिया और उसके निर्वाह के लिये पैनशन नियत करदी।

१. किसी किसी ख्यात में इस घटना का समय वि० सं० १८३७ भी लिखा मिलता है। नहीं कह सकते यह कहां तक ठीक है?

२. इनमें लाडनू का ठाकुर था।

३. उस समय ये मरहटे दिल्ली के बादशाह शाहआलम द्वितीय के स्वयंभू प्रतिनिधि बने हुए थे।

---

(१) हिस्ट्री ऑफ़ सिंध, भाग २, पृ० २०२।

अधिनायकता में अपनी एक सेना उधर भेज दी[1]। इस राठोड़-वाहिनी ने जयपुर-नरेश की सेना के साथ मिलकर तुंगाँ नामक स्थान में माधोजी की सेना का सामना किया। घमसान युद्ध होने के बाद मरहटों के पैर उखड़ गए और वे सनवाड़ की तरफ़ भाग चले[2]। इससे अजमेर पर महाराज का पूरा अधिकार हो गया[3]। इस युद्ध में किशनगढ़-नरेश ने भी राजकुमार मानसिंह का साथ दिया था। इससे मरहटों के परास्त हो भाग जाने पर राठोड़-सेना ने किशनगढ़ और रूपनगर को जा घेरा। सात महीने तक घिरे रहने से किशनगढ़-नरेश प्रतापसिंहजी तंग आगए और अन्त में उन्होंने तीन लाख रुपये दण्ड देना स्वीकार कर महाराज से संधि करली। इसके साथ ही उन्हें रूपनगर का अधिकार भी वीरसिंह के पुत्र अमरसिंह को देना पड़ा[4]।

वि० सं० १८४५ (ई० स० १७८८) में किशनगढ़-नरेश प्रतापसिंहजी स्वयं जोधपुर आकर महाराज से मिले और उन्होंने पुराने मनोमालिन्य को दूर कर फिर से मैत्री स्थापित की।

वि० सं० १८४७ (ई० स० १७९०) में माधोजी सिंधिया ने, अपनी पुरानी हार का बदला लेने के लिये, तुकोजी को साथ लेकर, मारवाड़ पर चढ़ाई की। यद्यपि यह झगड़ा जयपुरवालों के कारण ही हुआ था, तथापि इस बार वे मरहटों से मिल गए और उनके मुक़ाबले को सेना भेजने में बहानेबाज़ी करने लगे। इस पर

१. ग्रांट डफ् की हिस्ट्री ऑफ़ मरहटाज़, भा० २, पृ० १८१।

२. इस विषय का आधा दोहा प्रसिद्ध है:—

'उदलती आमेर राखी राठोड़ा खरी'।

३. ख्यातों में लिखा है कि मरहटों ने, किशनगढ़ वालों की सहायता से अंबाजी इंगलिया की अधीनता में, एक बार फिर अजमेर पर अधिकार करने की कोशिश की थी। परंतु इसमें उन्हें सफलता नहीं मिली। इसके बाद महाराज की सेना ने चांदावतों से रामसर छीन लिया।

४. जिस समय रूपनगर के स्वामी सरदारसिंहजी का स्वर्गवास होने लगा, उस समय उन्होंने अमरसिंह को गोद लेने की इच्छा प्रकट की थी। परंतु किशनगढ़-नरेश बहादुरसिंहजी ने उसकी एवज़ में अपने ज्येष्ठ पुत्र बिड़दसिंहजी को उनकी गोद बिठा दिया। इस पर अमरसिंह नाराज़ होकर महाराजा विजयसिंहजी के पास जोधपुर चला आया। इसीसे किशनगढ़-नरेश प्रतापसिंहजी महाराज से नाराज़ हो गए थे।

५. ख्यातों में लिखा है कि यद्यपि राठोड़ों ने जयपुर का पक्ष लेकर ही मरहटों से युद्ध किया था, और इन्हीं की सहायता से उस समय जयपुर की रक्षा हुई थी, तथापि कछवाहों के

महाराजा विजयसिंहजी ने बीकानेर और किशनगढ़ के नरेशों को सहायता के लिये बुलवा लिया।

इधर मेड़ते में जोधपुर, बीकानेर और किशनगढ़-नरेशों की सेनाएं युद्ध के लिये तैयार हो रही थीं और उधर महाराष्ट्र-वीर, सांभर, नांवा और परबतसर पर अधिकार करने के बाद, अजमेर को घेर कर[1], मेड़ते की तरफ़ बढ़ रहे थे। मार्ग में उनकी सेना के फ्रेंच जनरल (De Boigne) डी. बोइने का तोपख़ाना लूनी नदी की बालू में फँस गया। जैसे ही इसकी सूचना महाराज की सेना में पहुँची, वैसे ही कुछ सरदारोंने तत्काल उस तोपख़ाने पर आक्रमण करने की सलाह दी। परन्तु एक तो आपस की फूट के कारण यह मौक़ा आपस के वाद-विवाद और विचार में ही निकल गया और दूसरे उक्त फ्रेंच जनरल ने झूठा संधि का प्रस्ताव भेज कर राठोड़-सरदारों को धोके में डाल रक्खा। इसके बाद जब बोइने के तोपख़ाने ने राठोड़-सेना के पड़ाव के पास पहुँच उस पर गोले बरसाने शुरू किए, तब राठोड़ों को धोके का हाल मालूम हुआ। इस पर वे भी झटपट तैयार हो कर शत्रु से भिड़ गए। परन्तु शत्रु का आक्रमण होने तक धोके में रहने से इस युद्ध में राठोड़ सफल न हो सके और इन्हें मैदान से हट कर नागोर का आश्रय लेना पड़ा। साथ ही मरहटों को विजयी देख बीकानेर और किशनगढ़ के नरेशों को भी अपने-अपने राज्यों की रक्षार्थ लौट जाना पड़ा[2]।

चित्त में अपनी निर्बलता प्रकट होजाने के कारण ईर्ष्या ने स्थान ग्रहण कर लिया था, और वे एक बार राठोड़ों को भी नीचा दिखाने को तुले हुए थे। इसीसे जयपुर-नरेश प्रतापसिंहजी ने सिंधिया को कई लाख रुपये देने का वादा कर जोधपुर पर आक्रमण करने के लिये उत्साहित किया था।

किसी किसी ख्यात में यह भी लिखा है कि यद्यपि पहले तँवरों की पाटन के पास जोधपुर और जयपुर की सेनाओं ने मिलकर मरहटों का सामना किया, तथापि कुछ ही देर में जयपुर वालों ने माधोराव सिंधिया से संधि कर ली। इसीसे ठीक मौके पर अकेली राठोड़-वाहिनी को मरहटों का सामना करना पड़ा। इससे उसके बहुत से सरदार मारे गए और खेत मरहटों के हाथ रहा।

१. खरवे के सव सूरजमल ने घिर जाने पर भी छः मास तक मरहटों से अजमेर के क़िले की रक्षा की थी। परंतु अन्त में मरहटों के मेड़ते के युद्ध में विजय प्राप्त कर लेने से वह क़िला उनको सौंप दिया गया (अजमेर, पृ० १७३)।

२. कहीं-कहीं ऐसा भी लिखा मिलता है कि डी. बोइने के आक्रमण के पूर्व ही बीकानेर और किशनगढ़ के नरेशों को अपने-अपने राज्यों की रक्षार्थ लौट जाना पड़ा था। इससे इस युद्ध में मरहटों का सामना करने के लिये जोधपुर वाले अकेले ही रह गए थे। 'तवारीख

यह देख मरहटों ने जोधपुर पर कब्ज़ा कर लेने का विचार किया। इस पर देश-काल को अपने विपरीत देख महाराज ने मरहटों से संधि करली। इससे अजमेर प्रान्त और साठ लाख रुपये माधवराव (माधोजी) के हाथ लगे। साथ ही जो कर अब तक दिल्ली के बादशाह को दिया जाता था, वह भी मरहटों को देना तय हुआ। यह घटना वि० सं० १८४७ के फागुन (ई० स० १७९१ की फरवरी) की है।

महाराजा विजयसिंहजी ने एक जाट जाति की स्त्री को अपनी 'पासवान'[२] बना रक्खा था। उसका नाम गुलाबराय था। महाराज की अत्यधिक कृपा के कारण राज्य में भी उसका बहुत प्रभाव था और कभी-कभी वह राज्य के कामों में भी दखल दे दिया करती थी। इससे मारवाड़ के बड़े-बड़े सरदार अप्रसन्न हो गए और अपना विरोध प्रकट करने को जोधपुर छोड़ कर मालकोसनी की तरफ़ चले गए[३]। यह देख वि० सं० १८४८ के फागुन (ई० स० १७९२ की फरवरी) में महाराज स्वयं उनको लौटा

राज श्री बीकानेर' में के महाराजा सूरतसिंहजी के इतिहास में भी इस युद्ध का उल्लेख नहीं है (देखो पृ० १९७)।

१. महाराज ने इतने रुपये एक साथ न दे सकने के कारण कुछ तो गहने और जवाहरात आदि के रूप में मरहटों को उसी समय दे दिए, और बाकी रुपयों की एवज़ में ज़मानत के तौर पर साँभर, मारोठ, नांवा, परबतसर, मेड़ता और सोजत की आमदनी उन्हें सौंप दी।

२. राजपूताने में 'पासवान' राजा की उस उप-पत्नी को कहते हैं, जिसका दरजा महारानी से कुछ ही कम होता है।

पासवान गुलाबराय वैष्णव-संप्रदाय को मानने वाली थी। इसके पुत्र का नाम तेजसिंह था, जिसकी मृत्यु वि० सं० १८४२ में हुई थी।

३. एक बार गुलाबराय किसी बात पर महाराज के प्रधान-मंत्री और कृपापात्र खीची गोरधन (गोवर्धन) से नाराज़ हो गई। यह देख वह पौकरन ठाकुर सवाईसिंह के डेरे पर चला गया और सब सरदारों को एकत्रित कर पासवान के राज्य-कार्य में हस्ताक्षेप करने की शिकायत करने लगा। इस पर सब सरदारों ने मिलकर महाराज को समझाने का इरादा किया। परंतु इस गुप्त-मंत्रणा की सूचना गुलाबराय के कानों तक पहुँच जाने से वे सब घबरा कर बीसलपुर की तरफ़ चले गए।

किसी किसी ख्यात में यह भी लिखा मिलता है कि वि० सं० १८४७ (ई० स० १७९०) के करीब गुलाबराय ने, महाराज के ज्येष्ठ-पौत्र भीमसिंहजी के होते हुए भी, महाराज के छोटे पुत्र शेरसिंह को युवराज-पद दिलवा दिया था। इस से नाराज़ होकर चांपावत, कूंपावत, ऊदावत और मेड़तिये सरदार मालकोसनी की तरफ़ चले गए थे।

लाने को चले। जिस समय सरदारों का पड़ाव बीसलपुर में था, उस समय महाराज भी वहां जा पहुँचे। यह देख सारे सरदार सामने आकर महाराज से मिले और इनके साथ लौटकर जोधपुर की तरफ़ चले। परन्तु इनके जोधपुर पहुँचने के पूर्व ही, वि० सं० १८४६ की वैशाख वदि ७ (ई० स० १७६२ की १३ अप्रेल) को, महाराज के पौत्र भीमसिंहजी[1] ने जोधपुर के क़िले और नगर पर अधिकार कर लिया।

वि० सं० १८४६ की वैशाख बदि १० (ई० स० १७६२ की १६ अप्रेल) को पौकरन-ठाकुर और रास-ठाकुर के आदमी गुलाबराय को, क़िले पर पहुँचा देने के बहाने से, पीनस में बिठाकर ले गए और मार्ग में उन्होंने उसे मारडाला[2]। परन्तु महाराज को इसकी ख़बर न होने दी।

वि० सं० १८४६ की वैशाख सुदि ६ (ई० स० १७६२ की २७ अप्रेल) को जब महाराज जोधपुर के निकट पहुँचे, तब नगर और क़िले पर भीमसिंहजी का अधिकार देख बालसमंद के बग़ीचे में ठहर गए। अन्त में दस महीने बाद रीयां, कुचामन[3], मीठड़ी, बलूंदा और चंडावल के ठाकुरों ने पौकरन-ठाकुर सवाईसिंह को समझाया कि महाराज की उपस्थिति में उनके पौत्र भीमसिंहजी का ज़बरदस्ती राज्याधिकारी बन बैठना शोभा नहीं देता। इस पर उसने महाराज से भीमसिंहजी को ख़र्च के लिये सिवाना जागीर में देने और महाराज के बाद जोधपुर की गद्दी पर उनका अधिकार क़ायम रखने का वादा करवा कर उन (भीमसिंहजी) को सिवाने भिजवा देने का प्रबन्ध किया। यद्यपि भीमसिंहजी ने ये बातें स्वीकार करलीं, तथापि क़िला छोड़ने के पूर्व उन्होंने सरदारों से यह प्रतिज्ञा करवाली कि सिवाने की तरफ़ जाते समय मार्ग में उनसे किसी प्रकार की छेड़छाड़ नहीं की जाय। इस प्रकार पूरा प्रबन्ध होजाने पर वह क़िले से बाहर चले आए और महाराज से क्षमा मांग

---

१. भीमसिंहजी महाराजा विजयसिंहजी के द्वितीय पुत्र भोमसिंहजी के लड़के थे और महाराज के स्वर्गवासी ज्येष्ठ-पुत्र फ़तैसिंहजी की गोद बिठाए गए थे।

किसी किसी ख्यात में यह भी लिखा है कि जिस समय सरदार जोधपुर छोड़कर बीसलपुर या मालकोसनी की तरफ़ रवाना हुए थे, उस समय उन्होंने भीमसिंहजी को समझा दिया था कि महाराज के हमारे पीछे आने पर आप जोधपुर के क़िले और नगर पर अधिकार कर लेना।

२. यह पली के रूपावत सरदारसिंह के हाथ से मारी गई थी। और उसके पास जो धन था वह पौकरन-ठाकुर सवाईसिंह और रास-ठाकुर जवानसिंह ने आपस में बांट लिया था।

३. इस कार्य में मुख्य भाग कुचामन-ठाकुर ने लिया था।

सिवाने की तरफ़ रवाना होगए। उस समय प्रतिज्ञा करने वाले सरदार भी उन्हें सिवाने तक सकुशल पहुँचा देने के लिये उनके साथ हो लिए। मार्ग में सायंकाल हो जाने से इनका पहला पड़ाव झँवर नामक गांव में हुआ। इसी दिन वि० सं० १८५० की चैत्र सुदि ८ (ई० स० १७९३ की २० मार्च) को महाराज क़िले में दाख़िल हुए। यद्यपि सरदारों ने महाराज की अनुमति लेकर ही भीमसिंहजी को मार्ग में किसी प्रकार की छेड़छाड़ न होने देने का वचन दिया था, तथापि क़िले पर पहुँचते ही महाराज का क्रोध भड़क उठा और इन्होंने राज्य की विदेशी सेना को महाराज-कुमार भीमसिंहजी को मार्ग में से पकड़ लाने की आज्ञा देदी। इसी के अनुसार उस सेनाने दूसरे दिन प्रातःकाल होते-होते झँवर पहुँच भीमसिंहजी के दल पर आक्रमण कर दिया। यह देख राजकुमार को सकुशल सिवाने तक पहुँचाने के लिये साथ गए राज-भक्त सरदारों को भी, अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने के लिये, महाराज की सेना से युद्ध करना पड़ा। महाराज की भेजी हुई सेना की संख्या अधिक होने से इधर कुछ सरदार तो उसका मार्ग रोक कर युद्ध में प्रवृत्त हुए और उधर उनकी सलाह से ठाकुर सवाईसिंह भीमसिंहजी को लेकर पौकरन की तरफ़ चल दिया। दिन भर युद्ध होने के बाद जब महाराज को भीमसिंहजी के निकल कर चले जाने की सूचना मिली, तब इन्होंने युद्ध बन्द करने की आज्ञा भेजकर सेना को वापस बुलवा लिया और उन राज-भक्त सरदारों को हर तरह से तसल्ली दिलवाई।

इसके बाद महाराज ने सिंघी अखैराज को भेजकर गौडावाटी और मेड़ता प्रान्त के उन जागीरदारों से, जो महाराज-कुमार भीमसिंहजी के षड्यंत्र में सम्मिलित थे, दण्ड के रुपये वसूल किए।

वि० सं० १८५० की आषाढ वदि ३० (ई० स० १७९३ की ८ जुलाई) को[1] रात्रि में जोधपुर में महाराजा विजयसिंहजी का स्वर्गवास हो गया।

इन्होंने करीब ४० वर्ष राज्य किया था। इनके समय एक तो दिल्ली की बादशाहत शिथिल हो जाने से मरहटों का उपद्रव बढ़ गया था और दूसरे महाराजा रामसिंहजी और महाराजा बखतसिंहजी के आपस के झगड़े के कारण, जो उनके बाद वि० सं० १८२९ (ई० स० १७७२) तक चलता रहा था, मारवाड़ के सरदारों में स्वतंत्रता आ गई थी। इसी से इनके राज्य में हमेशा एक न एक उपद्रव जारी रहा। यह

१. किसी किसी ख्यात में इस घटना का एक दिन पहले होना लिखा है।

महाराजा परम वैष्णव थे और इन्होंने वि० सं० १८१७ (ई० स० १७६०) में जोधपुर नगर में गं"श्यामजी का विशाल मंदिर बनवाया था।

महाराजा विजयसिंहजी ने ही पहले-पहल वि० सं० १८२२ (ई० स० १७६५) में मारवाड़ में अपने नाम का चांदी का रुपया चलाया था[1]। यह 'विजयशाही' रुपये के नाम से प्रसिद्ध था और वि० सं० १९५७ (ई० स० १९००) तक प्रचलित रहा[2]।

'मआसिरुल उमरा' के लेखक ने महाराज के विषय में लिखा है:—

"उस (बख़तसिंह) के मरने पर उसका लड़का विजयसिंह अब तक (मारवाड़ पर) क़ाबिज़ है। यह राजा रियाया-परवरी, अधीन होने वालों की परवरिश और सरकशों की सर-शिकनी में मशहूर है[3]।"

वि० सं० १८३२ की सावन सुदि ११ (ई० स० १७७५ की ७ अगस्त= हिजरी सन् ११८९ की ९ जमादिउस्सानी) की एक शाही सनद से ज्ञात होता है कि दिल्ली के पास का रायसिना नामक गाँव, जहाँ पर इस समय नई दिल्ली बसी है, जोधपुर-नरेशों की परंपरागत जागीर में था। यद्यपि बीच में जोधपुर के गृहकलह के कारण वह ज़ब्त होगया था, तथापि उसके शान्त होने पर उपर्युक्त तिथि को फिर से महाराजा विजयसिंहजी को दे दिया गया था[4]।

१. यद्यपि कर्नल टॉड ने अपने राजस्थान के इतिहास में लिखा है कि अजितसिंह ने अपने नाम के सिक्के चलाए थे (ऐनाल्स ऐन्ड एन्टिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान (क्रुक संपादित), भा० २, पृ० १०२६) परंतु उनका अब तक कुछ भी पता नहीं चला है।

२. इसी वर्ष से मारवाड़ में बिजैशाही रुपये की एवज़ में भारत-सरकार के रुपये का चलन जारी हुआ था।

३. मआसिरुल उमरा, भा० ३, पृ० ७५६।

४. क्षत्रियअन्वेषक-पत्रिका, अंक १, (अप्रैल १९३०), पृ० ४-१४ और जर्नल रायल एशियाटिक सोसाइटी, लंदन, (जुलाई १९३१), पृ० ५१५-५२५।

महाराजा विजयसिंहजी के ७ पुत्र थे:—

१ फ़तैसिंहजी,[1] २ भोमसिंहजी,[2] ३ ज़ालिमसिंह[3], ४ सरदारसिंह[4], ५ गुमानसिंहजी,[5] ६ सांवतसिंह और ७ शेरसिंह[6]।

इन महाराज के समय जोधपुर नगर में निम्नलिखित स्थान बनवाए गए थे:—

१ गंगश्यामजी का मन्दिर, २ बालकृष्णजी का मन्दिर, ३ कुँजबिहारीजी का मंदिर, ४ गुलाब सागर तालाव,[7] ५ गिरदीकोर्ट,[8] ६ मायला बाग़ और ७ उसमें का झालेरा[9]।

---

१. यह विजयसिंहजी के ज्येष्ठ पुत्र थे। इनका जन्म वि० सं० १८०४ की सावन वदि ४ (ई० स० १७४७ की १४ जुलाई) को हुआ था। परंतु वि० सं० १८३४ की कार्त्तिक सुदि ८ (ई० स० १७७७ की ८ नवम्बर) को महाराजा की विद्यमानता में ही, निस्सन्तानावस्था में, इनका स्वर्गवास हो गया। इसी लिये इनके छोटे भ्राता भोमसिंहजी के पुत्र भीमसिंहजी इनकी गोद रक्खे गए थे।

जोधपुर नगर का फ़तैसागर नामक तालाब इन्हीं के नाम पर बनवाया गया था।

२. इनका जन्म वि० सं० १८०६ की द्वितीय भादों सुदि १० (ई० स० १७४९ की १० सितम्बर) को और इनकी मृत्यु, चेचक की बीमारी से, वि० सं० १८२६ की वैशाख वदि १३ (ई० स० १७६९ की ४ मई) को हुई थी। भीमसिंहजी इन्हीं के पुत्र थे।

३. इनको महाराज ने पहले नांवा और फिर (वि० सं० १८४८ के वैशाख=ई० स० १७९१ की मई में) गोड़वाड़ जागीर में दिया था। महाराज की इच्छा इन्हीं को अपना उत्तराधिकारी बनाने की थी। वि० सं० १८५५ (ई० स० १७९८) में इनका स्वर्गवास हुआ।

४. यह १७ वर्ष की आयु में ही चेचक से मर गए थे।

५. इनका जन्म वि० सं० १८१८ की कार्त्तिक सुदि ८ (ई० स० १७६१ की ५ नवम्बर) को हुआ था और वि० सं० १८४८ की आश्विन वदि १३ (ई० स० १७९१ की २६ सितम्बर) को इनका स्वर्गवास हो गया। इन्हीं के पुत्र मानसिंहजी भीमसिंहजी के बाद जोधपुर की गद्दी पर बैठे थे।

६. ख्यातों से ज्ञात होता है कि गुलाबराय ने वि० सं० १८४७ (ई० स० १७९०) में महाराज से कहकर इन्हीं को युवराज का पद दिलवाया था। इनका देहान्त वि० सं० १८५३ (ई० स० १७९६) में हुआ।

७. यह तालाब वि० सं० १८४५ में बनकर तैयार हुआ था।

८. यही आजकल सरदार मारकेट कहाता है।

९. इनमें के पहिले दो मन्दिरों के अलावा सब स्थान गुलाबराय ने बनवाए थे। पहले झालरे के स्थान पर एक बावली थी। वि० सं० १८३३ में उसी में परिवर्तन कर झालरा बनाया गया था। उपर्युक्त स्थानों के अलावा फ़तैसागर, क़िले में का मुरलीमनोहरजी का मन्दिर आदि अन्य अनेक स्थान भी इनके समय बनवाए गए थे।

महाराजा विजयसिंहजी ने कई गाँव दान दिए थे[1]।

---

१. १ जेलवा (बीलाड़े परगने का), २ केसरवाली ३ नींबोड़ा (जसवन्तपुरा परगने के), ४ जैतियावास ५ डाबरयाणी-खुर्द ६ दुगोर (मेड़ता परगने के), ७ बासणी-वैदां ८ सांगासणी (दुगोर की एवज़ में) (जोधपुर परगने के), ९ जैतपुरा (मेड़ता परगने का) ब्राह्मणों को; १० भावंडां ११ डोड्ड (नागोर परगने के) पुरोहितों को; १२ नगवाडा-कलां (परबतसर परगने का), १३ भैरूंवास (मेड़ता परगने का) चारणों को; १४ मूंदियाऊ (नागोर परगने का) (द्वारका के) रणछोड़रायजी के मन्दिर को; १५ पुनास (पुनियावास) (मेड़ते परगने का) जगन्नाथरायजी के मन्दिर को; १६ लाडवा (मेड़ते परगने का), १७ मालावास (परबतसर परगने का), १८ बोइल (बीलाड़ा परगने का) बालकृष्णजी के मन्दिर को, १९ अंबाली (नागोर परगने का) समनशाह की दरगाह को; २० अजबपुरा (नागोर परगने का) भगतों को; २१ खारड़ा-मेवासा (जोधपुर परगने का), २२ लालणा-खुर्द (परबतसर परगने का) गुसाइयों को और २३ मीरसिया (परबतसर परगने का) ढाढियों को।

इनके अलावा महाराज ने नाथद्वारेवालों आदि को और भी बहुत सा दान दिया था।

३१. महाराजा भीमसिंहजी

यह महाराजा विजयसिंहजी के पौत्र और भोमसिंहजी के पुत्र थे, परन्तु इनके बड़े चचा फ़तैसिंहजी और पिता भोमसिंहजी का स्वर्गवास (इनके पितामह) महाराजा विजयसिंहजी के जीतेजी हो जाने से, वि० सं० १८५० की आषाढ सुदि १२ (ई० स० १७९३ की २० जुलाई) को, यह अपने दादा के उत्तराधिकारी हुएँ।

इनका जन्म वि० सं० १८२३ की आषाढ सुदि १२ (ई० स० १७६६ की १९ जुलाई) को हुआ था। जिस समय महाराजा विजयसिंहजी का स्वर्गवास हुआ, उस समय यह अपना विवाह करने के लिये जयसलमेर गए हुए थे; परन्तु उक्त सूचना के मिलते ही, पौकरन-ठाकुर सवाईसिंह के साथ, जोधपुर आकर यहाँ की गद्दी पर बैठे।

इसी बीच इनके चचा ज़ालिमसिंह और चचेरे भाई मानसिंहजी भी जोधपुर के करीब पहुँच चुके थे[3]। परन्तु भीमसिंहजी के क़िले पर चढ़ जाने के कारण उन्हें, कूँपावत और मेड़तिया सरदारों को साथ लेकर, जोधपुर से लौट जाना पड़ा। इसके बाद उन्होंने मारवाड़ में लूट-मार शुरू की। परन्तु शीघ्र ही महाराजा भीमसिंहजी ने उनके उपद्रव को दबाने के लिये एक सेना भेजदी। यह देख ज़ालमसिंह गोडवाड़ की तरफ़ चला गया और मानसिंहजी ने जालोर के सुदृढ़ दुर्ग का आश्रय ग्रहण किया।

१. ख्यातों में भीमसिंहजी का जयसलमेर से पौकरन होते हुए, आषाढ सुदी ६ (१७ जुलाई) को जोधपुर के क़िले मे पहुँचना लिखा है।

२. एक स्थान पर इनका जन्म वि० सं० १८३३ की आश्विन सुदि १२ को होना लिखा है। परन्तु जब इनके पिता का देहान्त वि० सं० १८२६ में ही होगया था, तब यह जन्म संवत् कैसे सही हो सकता है।

३. महाराजा विजयसिंहजी के स्वर्गवास की सूचना पाते ही ज़ालिमसिंह और मानसिंहजी दोनों जोधपुर आकर नगर के बाहर शेखावतजी के तालाब पर ठहरे थे; क्योंकि सरदारोंने उन्हें क़िले में जाने से रोक दिया था। उस समय चांपावत-सरदार और उनके पक्षके अन्य कई सरदार भी भीमसिंहजी के पक्ष में थे।

४. किसी-किसी ख्यात में ज़ालिमसिंह का सोजत पर अधिकार कर लेना लिखा है।



३१. महाराजा भीमसिंहजी

वि० सं० १८५०-१८६० (ई० स० १७६३-१८०३)

इस प्रकार मारवाड़ में शान्ति हो जाने पर महाराजा भीमसिंहजी ने अपने पक्ष के सरदारों आदि को, जिन्होंने इन्हें भँवर के युद्ध और जोधपुर की गद्दी प्राप्त करने में सहायता दी थी, यथोचित पुरस्कार (जागीरें आदि) देकर अपनी प्रसन्नता प्रकट की।

अगले वर्ष (वि० सं० १८५१=ई० स० १७९४ में) मरहटों ने (लखवा की अधीनता में) मारवाड़ पर चढ़ाई की[1]। परन्तु महाराज ने भीतरी उपद्रव को दबाए रखने के विचार से उन्हें सेना के खर्च के लिये कुछ रुपये देकर लौटा दिया[2]।

अपनी अनुपस्थिति में ज़ालिमसिंह और मानसिंहजी के राज्य पर अधिकार करने का उद्योग करने के कारण यह उनसे अप्रसन्न होगए थे। इसीसे वि० सं० १८५३ (ई० स० १७९६) में इन्होंने अपने चचा ज़ालिमसिंह से गोडवाड़ छीनलिया। परन्तु इनके चचेरे भाई मानसिंहजी, जालोर-दुर्ग का आश्रय मिल जाने से, अपनी स्थिति को सम्हाले रहे। यह देख, वि० सं० १८५४ (ई० स० १७९७) में, इन्होंने सिंघी अखैराज[3] को जालोर[4] पर चढ़ाइ करने की आज्ञा दी। यद्यपि उसने जाकर जालोर के आस-पास के प्रदेश पर अधिकार करलिया, तथापि क़िला और नगर उसके हाथ न आसका।

इसी वर्ष ज़ालिमसिंह[5] ने, उदयपुर की सहायता प्राप्त कर, मारवाड़ पर चढ़ाई की। परन्तु महाराजा की आज्ञा से सिंघी बनराज ने उसे काछबली की घाटी में रोक दिया। वहीं[6] पर वि० सं० १८५५ (ई० सन् १७९८) में ज़ालिमसिंह का स्वर्गवास हुआ। इससे उधर का सारा झगड़ा अपने आप शान्त हो गया।

---

१. ख्यातों से ज्ञात होता है कि पौकरन-ठाकुर सवाईसिंह ने अपनी की हुई सेवा के उपलक्ष्य में फलोदी का प्रान्त जागीर में चाहा था और महाराजा भीमसिंहजी ने उसकी यह प्रार्थना स्वीकार भी करली थी; परन्तु सिंघी जोधराज के, सरदारों को परगना जागीर में देने का, विरोध करने से यह कार्य न हो सका। इससे उक्त ठाकुर अप्रसन्न हो गया और उसने तीर्थ-यात्रा के बहाने दिल्ली पहुँच लखवा को जोधपुर पर चढ़ाई करने के लिये तैयार किया।

२. वि० सं० १८५२ के चैत्र (ई० स० १७९६ के अप्रेल) में महाराज ने सिंध के भूतपूर्व शासक मियां अब्दुन्नबी के तृतीय पुत्र फ़ज़लअलीख़ाँ को निर्वाह के लिये जागीर दी।

३. इसी ने वि० सं० १८५७ (ई० स० १८००) में जोधपुर के पास का अखैसागर (अखैराजजी का) तालाब बनवाया था।

४. यह प्रान्त महाराजा विजयसिंहजी की तरफ़ से मानसिंहजी को जागीर में दिया गया था।

५. यह उदयपुर महाराना जगत्सिंहजी का दौहित्र था।

६. किसी-किसी ख्यात में इसका मेवाड़ में मरना लिखा है।

इसी वर्ष महाराजा भीमसिंहजी ने सिंघी अखैराज से अप्रसन्न होकर उसे क़ैद करदिया। इससे जालोर का घेरा शिथिल पड़गया। इसके बाद वि० सं० १८५८ (ई० स० १८०१) में जिस समय महाराजा भीमसिंहजी जयपुर-नरेश प्रतापसिंहजी की बहन से विवाह करने को पुष्कर[1] गए, उस समय मानसिंहजी ने चुपचाप जालोर के क़िले से निकल पाली नगर को लूट लिया[2]। इसकी सूचना मिलते ही महाराज की तरफ़ से सिंघी चैनकरण[3] और बलूंदा-ठाकुर चांदावत बहादुरसिंह उनको पकड़ने को चले। उन्होंने साकदड़ा स्थान पर पहुँच मानसिंहजी को घेर लिया। उस समय उन (मानसिंहजी) के साथ थोड़ीसी सेना होने से सम्भव था कि वह पकड़ लिए जाते, परन्तु उनके साथ के कुछ वीरों ने, राजकीय सेना को सम्मुख-युद्ध में फँसा कर, उनको जालोर पहुँच जाने का मौक़ा देदिया[4]। इस घटना के बाद सिंघी बनराज को फ़िर जालोर पर घेरा डालने की आज्ञा दी गई।

इसी वर्ष सरदारों में नाराज़ी फैल जाने से वे कालू नामक गाँव में इकट्ठे होकर आस-पास के प्रदेश में उपद्रव करने लगे। इस पर महाराज की आज्ञा से भंडारी धीरजमल ने वहां पहुँच उन्हें कालू से खदेड़ दिया। अगले वर्ष (वि० सं० १८५९= ई० स० १८०२ में) सरदारों के षड्यंत्र से महाराज का दीवान जोधराज, अपने घरमें सोई हुई हालत में, मारडाला गया[5]। इससे क्रुद्ध होकर महाराज ने आउवा, आसोप, चंडावल, रास, रोयट, लांबियाँ और नींबाज के ठाकुरों की जागीरें ज़ब्त

१. यद्यपि वि० सं० १८४७ (ई० स० १७९०) में ही अजमेर पर मरहटों का अधिकार हो गया था, तथापि मसूदा, खरवा, सुमेल, भिणाय और पिशांगण पर उस समय तक महाराज का ही शासन था।

२ ख्यातों में इस घटना का समय वि० सं० १८५८ की आषाढ सुदि १४ (ई० स० १८०१ की २४ जुलाई) लिखा है।

३. उस समय यही महाराज की जालोर-स्थित सेना का सेनापति था।

४. ख्यातों में लिखा है कि उस समय खेजड़ला-ठाकुर के भाई भाटी जोधसिंह ने मानसिंहजी से निवेदन किया कि आप तो जालोर चले जायँ और विपक्ष की सेना के मुकाबले का भार हम-लोगों पर छोड़ दें।

५. यद्यपि इस षड्यंत्र में पौकरन, रीयां आदि के और भी अनेक सरदार शामिल थे, तथापि वे लोग बाद में इससे अलग हो गए थे।

करलीं और साथ ही सिंघी इन्द्रराज को देछू में इकट्ठे हुए सरदारों को मारवाड़ से बाहर निकाल देने की आज्ञा दी। उन दिनों तिंवरी के पुरोहित भी सरदारों से मिले हुए थे। इसीसे इन्द्रराज ने उनके वहाँ पहुँच उनसे बीस हज़ार रुपये दण्ड के वसूल किए और इसके बाद आगे बढ़ सरदारों का पीछा किया। उसको इस प्रकार अपने पीछे लगा देख वे लोग गोडवाड़ की तरफ़ होते हुए मेवाड़ में चले गए। इस काम से छुट्टी मिलते ही इन्द्रराज ने मरहटों के चढ़े हुए रुपये देकर उनसे साँभर, परबतसर, आदि के परगने[2] वापस लेलिए और फिर जालोर पहुँच, वि० सं० १८६० की सावन सुदि ७ (ई० स० १८०३ की २६ जुलाई) के आक्रमण में, वहाँ के नगर पर अधिकार करलिया[3]। इससे क़िले वालों का बाहरी सम्बन्ध बिलकुल टूट गया और थोड़े ही दिनों में रसद आदि की कमी होजाने से मानसिंहजी को क़िला छोड़ कर निकल जाने का इरादा करना पड़ा। परन्तु इसी समय देवनाथ नाम के एक योगी ने उन्हें कुछ दिन और धैर्य रखने की सलाह दी। यद्यपि उस समय क़िले में रसद के न रहने से भीतर वालों को हर बात का कष्ट था, तथापि मानसिंहजी ने योगी के कथन का विश्वास कर, कुछ दिन के लिये, क़िला छोड़कर निकल जाने का विचार स्थगित करदिया।

वि० सं० १८६० की कार्तिक सुदि ४ (ई० स० १८०३ की १६ अक्टोबर) को जोधपुर में महाराजा भीमसिंहजी का स्वर्गवास हो गया[4]। इस समाचार के जालोर पहुँचते ही भंडारी गंगाराम और सिंघी इन्द्रराज ने, महाराजा भीमसिंहजी के पीछे पुत्र न होने से, वह चलता हुआ युद्ध तत्काल बंध करदिया।

१. धीरजमल ने लांबियां और रास पर पहले ही अधिकार कर लिया था और इस समय वह नींबाज को घेरे था। परन्तु नींबाज-ठाकुर के पुत्र के महाराज से क्षमा मांग लेने पर केवल पीपाड़ ज़ब्त किया जाकर बाकी की जागीर उसे लौटा दी गई।

२. वि० सं० १८४७ (ई० स० १७६०) में, महाराजा विजयसिंहजी के समय, ये परगने, रुपयों की एवज़ में, मरहटों को सौंपे गए थे।

३. इसी आक्रमण में सिंघी बनराज मारा गया था। जालोर से मिले लेख में भी उसका सावन सुदि ७ के झगड़े में मारा जाना लिखा है।

४. पीठ में फोड़ा निकलने से इनका स्वर्गवास हुआ था।

महाराजा भीमसिंहजी ने करीब १० वर्ष राज्य किया था। यह महाराजा दानी, वीर और न्याय-प्रिय थे। फिर भी कुछ लोगों के बहकाने से इनका बरताव अपने बान्धवों के साथ बहुत कड़ा रहा था।

यद्यपि इनके कोई पुत्र नहीं था, तथापि इनके स्वर्गवास के बाद कुछ सरदारों ने इनकी रानी के गर्भवती होने की घोषणा करदी और उसी गर्भ से बादमें धौंकलसिंह का जन्म होना प्रकट किया गया। परन्तु अन्त में यह षड्यंत्र असफल हुआ।

मंडोर में का महाराजा अजितसिंहजी पर का देवल (स्मारक-भवन), जो अधूरा रह गया था, इन्हीं के समय समाप्त हुआ था।

---

१. महाराजा भीमसिंहजी ने, वि० सं० १८५१ (ई० स० १७९४) में, (जोधपुर परगने का) बघडा नामक गांव एक मन्दिर के निर्वाहार्थ दिया था।

शुद्धिपत्र नं० १

श्रावणादि और चैत्रादि संवतों का अन्तर

पृष्ठ	पंक्ति	श्रावणादि संवत्	चैत्रादि संवत्
६५	१-२	वि० सं० १४८० की चैत्र-सुदी ३ (ई० स० १४२३ की १५ मार्च)	वि० सं० १४८१ की चैत्र सुदि ३ (ई० स० १४२४ की ४ मार्च)
६८	२६	वि० सं० १५९५ (ई० स० १५३८)	वि० सं० १५९६ (ई० स० १५३९)
७०	४-५	वि० सं० १४४९ की वैशाख सुदी ४ (ई० स० १३९२ की २८ अप्रेल)	वि० सं० १४५० की वैशाख सुदि ४ (ई० स० १३९३ की १६ अप्रेल)
८३	२-३	वि० सं० १४७२ की वैशाख बदी ४ (ई० स० १४१५ की २९ मार्च)	वि० सं० १४७३ की वैशाख बदि ४ (ई० स० १४१६ की १७ मार्च)
१०२	८	वि० सं० १५४५ की वैशाख सुदी ५ (ई० स० १४८८ की १६ अप्रेल)	वि० सं० १५४६ की वैशाख सुदि ५ (ई० स० १४८९ की ६ अप्रेल)
१०४	२-३	वि० सं० १५४५ की ज्येष्ठ सुदी ३ (ई० स० १४८८ की १४ मई)	वि० सं० १५४६ की ज्येष्ठ सुदि ३ (ई० स० १४८९ की ३ मई)
१०४	२४	वि० सं० १२३६ (ई० स० ११७९)	वि० सं० १२३७ (ई० स० ११८०)
१०७	२	वि० सं० १५४८ की चैत्र सुदी ३ (ई० स० १४९१ की १३ मार्च)	वि० सं० १५४९ की चैत्र सुदि ३ (ई० स० १४९२ की १ मार्च)
१०७	५-६	वि० सं० १५४८ की वैशाख सुदी ३ (ई० स० १४९१ की १२ अप्रेल)	वि० सं० १५४९ की— प्रथम वैशाख सुदि ३ (ई० स० १४९२ की ३१ मार्च)
१०९	७-९	वि० सं० १५१४ की वैशाख वदी ३० (ई० स० १४५७ की २३ अप्रेल)	वि० सं० १५१५ की वैशाख वदि ३० (ई० स० १४५८ की १३ अप्रेल)
१११	३	वि० सं० १५४० की वैशाख सुदी ११ (ई० स० १४८३ की १८ अप्रेल)	वि० सं० १५४१ की वैशाख सुदि ११ (ई० स० १४८४ की ६ मई)
११४	७	वि० सं० १५८८ (ई० स० १५३१)	वि० सं० १५८९ (ई० स० १५३२)
११५	१	वि० सं० १५८८ की ज्येष्ठ सुदी ५ (ई० स० १५३१ की २१ मई)	वि० सं० १५८९ की ज्येष्ठ सुदि ५ (ई० स० १५३२ की ९ मई)

पृष्ठ	पंक्ति	श्रावणादि संवत्	चैत्रादि संवत्
११६	२-३	वि० सं० १५८८ की आषाढ वदी ५ (ई० स० १५३१ की ५ जून)	वि० सं० १५८६ की आषाढ वदि ५ (ई० स० १५३२ की २४ मई)
१२०	१	वि० सं० १५६३ (ई० स० १५३६)	वि० सं० १५६४ (ई० स० १५३७)
१४६	२२	वि० सं० १५८८ (ई० स० १५३१)	वि० सं० १५८६ (ई० स० १५३२)
१७६	२७	वि० सं० १६५०	वि० सं० १६५१
१७६	३१	वि० सं० १६३६	वि० सं० १६४०
१८७	७	वि० सं० १६६५ (ई० स० १६०८)	वि० सं० १६६६ (ई० स० १६०६)
२८८	१७-१८	वि० सं० १७५७ (ई० स० १७००)	वि० सं० १७५८ (ई० स० १७०१)
३००	२२	वि० सं० १७६६	वि० सं० १७६७
३१५	३१	वि० सं० १७७५	वि० सं० १७७६
३४३	७	वि० सं० १७८७	वि० सं० १७८८
३४३	२६	वि० सं० १७८७	वि० सं० १७८८

शुद्धिपत्र नं० २.

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१७	६	"आलमगीर नामे" ..	"आलमगीर नामे[1]"
२१	७	३५	४३
३१	२	राव सीहाजी	१ राव सीहाजी
३४	२७	पृ० ३०	पृ० ६३०
४२	२	राव सीहाजी	राव सीहाजी[1]
७३	२२	वि० सं० १४८५ (ई० स० १४२८)	वि० सं० १४८४ (ई० स० १४२७)
७५	१४	थी, ...	थी,[2]
७७	४-५	वि० सं० १५६४ (ई० स० १५३७)	वि० सं० १४६४ (ई० स० १४३७)
७७	८	पड़ी	पड़ी[1] ।
८३	१	राव जोधाजी	१५ राव जोधाजी
८७	१७	चचा	चाचा
८६	३	सके।	सके[1] ।
६१	८	उनके	उनकी
१०७	३	की है।	की है[2] ।
११५	२६	ई० स० १७६०	ई० स० १७६१
१२३	१२	१५४१	१५४२
१२५	६	(ई० स० १५४१) ..	(ई० स० १५४२)
१३८	१	वि० सं० १६१४ (ई० स० १५५७)	वि० सं० १६१५ (ई० स० १५५८)
१३८	१३	(ई० स० १५६१) ..	(ई० स० १५६२)
१३६	२८	इन्हीं	इसी
१४३	१४	वि० सं० १५४५=ई० स० १४८८	वि० सं० १५५५=ई० स० १४६८
१४६	२७	(हि० स० ६७१ ..	(हि० स० ६७०
१५७	१५	इसी वर्ष (१६३३) के कार्तिक (ई० स० १५७६ के अक्टोबर)	(कहीं वि० सं० १६३२ का कार्तिक (ई० स० १५७५ का अक्टोबर) लिखा है।
१५७	२६	सयम-समय	समय-समय

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१६१	८	जयपुर के	आंबेर के *
१६८	२-३	वि० सं० १६३६ (ई० स० १५८२)	वि० सं० १६३८ (ई० स० १५८१)
१७७	१५	जगमल	जगमाल
१८३	२१	है:—	है[४]:—
१९०	२४	थी।	था।
१९४	४	लौदी	लोदी
१९५	१४	वि० सं० १६७५ ..	(पालनपुर की तवारीख़ में इस सम्वत् के साथ ही हि० स० १०२९ लिखा है। यह विचारणीय है।
१९७	१	१८ सितंबर	६ सितंबर
२०१	५	चैत्र सुदि ९ (·······११ मार्च)	ज्येष्ठ सुदि १३ (·······१२ मई)
२०५	७	२६	२८
२०५	२८-३०	फ़ुटनोट २	२ तुज़क जहांगीरी पृ० ४३४
२१५	७	(१० दिसंबर) ..	(१० नवंबर)
२१६	२-३	करीब २ या १ १/२ मास ..	(करीब २ या १ १/२ मास?)
२२०	१	(ई० स० १६५८) ..	(ई० स० १६५७)
२२३	२	किया।	कियां।
२३३	१०	पौष सुदि ६ (२७ दिसंबर) ..	वि० सं० १७१८ की पौष सुदि ६ (ई० स० १६६१ की १७ दिसम्बर)
२३३	२६	(वि० सं० १५१९)	(वि० सं० १७१९)
२३३	३०	वि० सं० १७१७ की मंगसिर सुदि ५ तक गुजरात में रहना ..	वि० सं० १७१८ की पौष वदि ५ या ७ को गुजरात से रवाना होना
२४१	१३	वि० सं० १७३३ की चैत्र वदि ३ (ई० स० १६७६ की १२ मार्च)	वि० सं० १७३२ की चैत्र वदि ३० (ई० स० १६७६ की ४ मार्च)

* [illegible]
था। इसलिये इस इतिहास के पृष्ठ २०३ (पंक्ति १०), २०५ (पं० ११), २१८ (पं० २७), २९३ (पं० २८), २९४ (पं० २०), २९६ (पं० २६), ३०२ (पं० [illegible]), ३११ (पं० १७), ३१३ (पं० १६), ३१५ (पं० १७, १९), ३२४ (पं० २०), ३२५ (पं० १७) और ३३२ (पं० ३०) पर छपे जयपुर शब्द के स्थान पर उक्त राज्य की प्राचीन राजधानी आंबेर समझना चाहिए।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२४७	८	Jzia	Jazia
२६१	२	बदी	सुदि
२६१	२८	Compaign	Campaign
२६२	१	हिन्दु	हिन्दू
२६५	५	कई महीने	कई दिन
२८४	१०	यह	ये
३०२	२६	(आषाढ)	(श्रावण)
३०५	१	रायसिंहजी	राजसिंहजी
३०८	१६	पृ० २६	पृ० २६०
३१०	२८	वली	करली
३१४	३	दिलवादी ।	दिलवादी[३] ।
३१६	१३	दन्ड	दण्ड
३३६	२१	पृ० ३८७	पृ० २६४
३५१	२१	छिन	छीन
३५२	२२	इनका	उनका
३५६	१७	नागोर	जालोर
३६२	२३	पहुँकी	पहुँची
३६४	२७	बदी····७ जून	(कहीं-कहीं सुदि लिखा मिलता है ।)····२२ जून
३६५	१२	(ई० स० १८५४)	(ई० स० १७५४)
३६८	२	सींधली	सींधोली
३६६	२३	छोटा	कलां
३७८	१४	खिची	खीची
३८३	१	ई० स० १७७१ में)	ई० स० १७७२ में)
३८४	२३	उसे प्रधान	उसे फिर से प्रधान
३६३	२	गं श्यामजी	गंगश्यामजी
३६३	३	वि० सं० १८२२ (ई० स० १७६५)	वि० सं० १८३७ (ई० स० १७८०)
३६४	२४	वि० सं० १८४७	वि० सं० १८४८
४००	६-१०	फुटनोट १	×